

MAHANIRXANA-TANTRAM.

COMPILED BY

SHRIMAN MAHESHWAR BHAGWAT

PURVA KANDAM

CORRECTED BY

PANDIT JWALAPRASAD MISRA

Head Pandit Kameshwarnath Sanskrit Pathshala

TRANSLATED BY

P BALDEO PRASAD MISRA OF MORADABAD

PRINTED & PUBLISHED

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS

BOMBAY.

1903,

(All rights reserved.)

॥ ॥ ॥

महानिर्वाणतन्त्रम् ।

(सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम्)

श्रीमन्महेश्वरभगवत्प्रणीतम् ।

मुरादाबादनिकासिसुखानन्दमिश्रात्मजपण्डित-
बलदेवमसादमिश्रविरचितया,
भाषाटीकया समलंकृतम् ।

तदतत्

तान्त्रिकजनोपकारार्थं

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये 'श्रीवेङ्कटेश्वर' (स्टीम) मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

वैशाख शके १८२५, मवत् १९६०.

सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" मन्वाल्याधीने

स्वाधीन रक्ष्यते

महानिर्वाणतन्त्रकी भूमिका ।



सनातनधर्मावलम्बी आर्यसन्तानोंमें जो धर्मशास्त्र प्रचलित हो रहे हैं, उन सबका परमउद्देश केवल ब्रह्मस्वरूपकी उपलब्धि है । अनेक धर्मशास्त्रोक्त अनेक देवी देवताओंकी पूजा निसप्रकार केवल ब्रह्मप्राप्तिकी कारण है, ऐसेही सनातनधर्मशास्त्र भी केवल वेदार्थके जाननेका अनुपम उपाय है । भिन्न २ धर्मशास्त्रोंमें अथवा एक शास्त्रके भिन्न २ अंशोंमें अलग २ देवताके आराधना करनेकी विधि है । कहींपर लिखा है कि, महादेवजीही सर्वप्रकारसे आराध्य हैं । शिवको छोड़कर दूसरे देवताकी पूजा करनेसे पाप होता है । कहीं लिखा है कि, विना विष्णुजीकी उपासना किये गति नहीं होती । कहीं यह देखा जाता है कि, शक्तिआराधनाही चारो फलकी प्राप्त करानेवाली होती है । इन बातोंके देखनेसे धर्मशास्त्रकी पृथक्ता तो परस्पर ज्ञात होती है । परन्तु शैव, वैष्णव, या शाक्त किसी सम्प्रदायकी विधिमें कोई विरोध दिखाई नहीं देता । यदि शैव शिवकी उपासनाको छोड़कर विष्णु, शक्ति, सूर्य, वा गणपतिकी पूजाकरे तो उसको पाप लगेगा । इसप्रकार सबकोही अपन २ कुलदेवताकी आराधना करनी चाहिये, परन्तु किसी दूसरे देवताकी निन्दा करना कभी उचित नहीं है, । भगवद्गीतामें श्रीनारायणजीने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहा है कि, 'श्रियान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' । इसका तात्पर्य यही है कि, उत्तम अनुष्ठानयुक्त पराये धर्मकी अपेक्षा अपना धर्म हिंसादिदोषसं दूषित होनेपर भी श्रेयस्कर है ।

हमारे देशमें अनेक लोग वंशपरम्परासे तांत्रिक उपासनामें दीक्षित होकर भी तन्त्रानभिज्ञताके हेतु तन्त्रमें कहाहुई विधिको बुरा कहते हैं । धर्मशास्त्रका और तन्त्रका मर्म जानते होते तो यह लोग कभी ऐसा न कहते । विशेष करके तांत्रिक अनुष्ठान फलको शीघ्रही लाता है । जो लोग दीक्षागुरु हैं वे तन्त्रमें विशेष ज्ञान न रखनेके कारण शिष्यको विधिविधानसे सब कार्य नहीं बताते । इसकारण मंत्र

महानिर्वाणतन्त्रकी भूमिका ।



सनातनधर्मावलम्बी आर्यसन्तानोंमें जो धर्मशास्त्र प्रचलित हो रहे हैं, उन सबका परमउद्देश केवल ब्रह्मस्वरूपकी उपलब्धि है । अनेक धर्मशास्त्रोक्त अनेक देवी देवताओंकी पूजा निसप्रकार केवल ब्रह्मप्राप्तिकी कारण है, ऐसेही सनातनधर्मशास्त्र भी केवल वेदार्थके जाननेका अनुपम उपाय है । भिन्न २ धर्मशास्त्रोंमें अथवा एक शास्त्रके भिन्न २ अंशोंमें अलग २ देवताके आराधना करनेकी विधि है । कहींपर लिखा है कि, महादेवजीही सर्वप्रकारसे आराध्य है । शिवको छोड़कर दूसरे देवताकी पूजा करनेसे पाप होता है । कहीं लिखा है कि, बिना विष्णुजीकी उपासना किये गति नहीं होती । कहीं यह देखा जाता है कि, शक्तिआराधनाही चारों फलकी प्राप्त करानेवाली होती है । इन बातोंके देखनेसे धर्मशास्त्रकी पृथक्ता तो परस्पर ज्ञात होती है । परन्तु शैव, वैष्णव, या शाक्त किसी सम्प्रदायकी विधिमें कोई विरोध दिखाई नहीं देता । यदि शैव शिवकी उपासनाको छोड़कर विष्णु, शक्ति, सूर्य, वा गणपतिकी पूजाकरें तो उसको पाप लगेगा । इसप्रकार सबकोही अपन २ कुलदेवताकी आराधना करनी चाहिये, परन्तु किसी दूसरे देवताकी निन्दा करना कभी उचित नहीं है । भगवद्गीतामें श्रीनारायणजीने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहा है कि, "श्रियान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः" । इसका तात्पर्य यही है कि, उत्तम अनुष्ठानयुक्त पराये धर्मकी अपेक्षा अपना धर्म हिसादिदोषसं दूषित होनेपर भी श्रेयस्कर है ।

हमारे देशमें अनेक लोग वंशपरम्परासे तांत्रिक उपासनामें दीक्षित होकर भी तन्त्रानभिज्ञताके हेतु तन्त्रमें कहींहुई विधिको बुरा कहते हैं । धर्मशास्त्रका और तन्त्रका मर्म जानते होते तो यह लोग कभी ऐसा न कहते । विशेष करके तांत्रिक अनुष्ठान फलको शीघ्रही लाता है । जो लोग दीक्षागुरु हैं वे तन्त्रमें विशेष ज्ञान न रखनेके कारण शिष्यको विधिविधानसे सब कार्य नहीं बताते । इसकारण मन्त्र

मृतत्व और साधन निष्फल होते हैं । किसी ज्ञानी गुरुसे उपदेश ले कि, जिससे अगकी विकलता न हो तब देखिये कि, कैसा मत्स्य फल मिलेगा ।

तत्रका ज्ञान हा तो किसी प्रकारसे अगकी विकलता नहीं हाससती । इसीकारणसे हमने तत्र शास्त्रके मन्त्रार करनेका विचार किया है ।

समस्त १९२ तत्र हैं जो कि, पृथ्वीकी क्रान्तिरेखाके अनुसार तीन सम्प्रदायोंमें बाँटे गये हैं । उनमेंसे ६४ तत्र विष्णुशान्त ह जाकि गौडराजमें मन्त्रित है । पूज्यपाद स्वामी कृष्णानन्दजीने विष्णुशान्तसम्प्रदायसे संग्रह करकेही तत्रसारनामक ग्रंथ रनाया है । ६४ तत्र रथशान्त है । नेपाल आदि देशोंमें बहुतायतमें इन ग्रंथोंका मन्त्रार है । यह “महानिर्वाणतंत्र” उर्ध्वान्नाय तत्र राधातत्र आदि ६४ तत्र इन सम्प्रदायके अन्तर्गत है । शेष ८४ तत्र और २ स्थानाम मन्त्रित है । दुर्गात्मा यवन लोगोंके अत्याचारसे कोई २ तत्र तो सम्पूर्णतः लुप्त होगये । कोई २ तत्र अपनी २ सीमाको लँघन कर भिन्न २ अधिकारमें स्थापित होगये । यही कारण है जो प्राणतोषिणी तंत्रमें समस्ततंत्रोंका गत उद्धृत हुआ है ।

तत्रसारमें महानिर्वाणतंत्रका नाम नहीं लिखा है । इसकारणसे कोई २ महात्मा इस ग्रंथकी मामाणिकतामें सशय करते हैं । ऐसी शका करनेवालोंको उचित है कि, पद्मपुराण अग्निपुराण और शंकरविनयको पढ़कर अपने सदेहका दूरकरे ।

सामवेद और अथर्ववेदसे तत्रशास्त्रका आविर्भाव हुआ है । ब्रह्मज्ञानरूप मन्दिरमें प्रवेश करनेकेलिय तत्रशास्त्रही प्रथम साधन है । कुलार्णव तत्र और इस महानिर्वाणतंत्रमें ब्रह्मोपासनाकी विधि व प्रकरण वर्तमान है । जिसने साकार उपासनादिस अपन चित्तको कुछेक शुद्धकरलिया है वह ब्राह्मण, शूद्र, शैव, शाक्त, वष्णव, गृहस्थ वा उदासीन जो कोई भी हो किसी भी देवताके भक्तसे दीक्षित हो या अदीक्षित हो वह ब्रह्मज्ञानी गुरुके द्वारा पुनर्वा दीक्षा प्राप्त करसकता है । यद्यपि इस ब्रह्मोपासनामें किंचित सगुणभाव है तथापि जबतक सोह ज्ञानसे उत्तीर्ण होकर निर्विकल्प ज्ञानमें न पहुँचेगा तबतक पूरी भौतिकसे सगुणभावका दूर नहीं किया जासकेगा विशेष करके सगुणभावके बिना ध्यान और उपासना नहीं होसकती । यदि कोई जलमें गिरजाय तो वह जलका अवलम्ब और परिहार कर तैरा

हुआ पार जायगा. इसी भाँतिसे गुणराशिमें पतितहुए हम लोग विनागुणका अवलम्बन किये और गुणका परिहार किये उससे(गुणसे) उत्तीर्ण नहीं होसकते.

पं० जीवानन्द विद्यासागरकी मूल मुद्रित पुस्तकके अतिरिक्त हमको दो प्राचीन लिखित पुस्तकें भी मिलीं । जिनमेसे एक पुस्तक भी ७५० वर्ष पूर्वकी लिखीहुई है । इसी पुस्तकसे भलीभाँति शुद्ध करके वर्तमान पुस्तक में पाठान्तरआदि सन्निवेशित किये हैं ।

अपने गूज्यपाद ज्येष्ठ सहोदर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रको शतशः धन्यवाद देता हूँ कि, जिन्होंने आद्यन्त पर्यन्त इस तंत्रकी लिखित कापीको देखकर मुझको उपकृत कियाहै । इनके अतिरिक्त "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालय कल्याणके कर्मचारी पं० किशनलाल, बाबू उदितनारायण लाल वर्मा, वकील गान्धीपुर, पं० ईश्वरप्रसाद पांडे सदरमेरठ, पं० हरिहरप्रसाद शाठक प्रोपाइटर "मेडिकल" प्रेस व सत्यसिन्धु भासिक पत्र कानपुर, बाबू शालदेवसहाय माथुर सौदागर मुरादाबाद, आयुर्वेद मचारक सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला शालिग्रामजी वैद्य मुरादाबाद, तथा श्रायुत ललताप्रसादजी शर्मा दरीवा पान मुरादाबाद निवासी भी धन्यवादके पात्र हैं कि, जिन्होंने सदैव काल उत्साह देते रहकर तंत्रशास्त्रका अनुवाद मचलित करनेका विचार किया।

परमोदार गुणग्राही, स्वभाषाहितैषी. "श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेसाधिप खेमराज श्रीकृष्णदासजीकोभी बारंबार धन्यवाद दिया जाता है कि, महान् अनुग्रहसे यह ग्रंथ मुंबईमें उन्होने जिन "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्ट्रीट) मुद्रणालयमें मुद्रितकर आप महाशयोंके सन्मुख लाया ।

इस ग्रंथके सम्पूर्ण अधिकार भी उक्त यंत्राधीशको समर्पित हैं ।

नित्यतंत्र और गुप्ततंत्रकीभी भाषाशिक्षा मैंने किया है, जो कि मुद्रित होचुकी है । जिनकी इच्छा हो १) २० मूल्य भेजकर मेरे पाससे भेगवा लें ।

Obedient
Baldev Prasad Misra,
Dindarpura,
Moradabad
N.-W. P.

} कृपापात्र-
सुखानंदमिश्रात्मज
बलदेवप्रसाद मिश्र,
दीनदारापुरा, मुरादाबाद.

वेङ्कटेश्वर "श्रीवेङ्कटेश्वर" छपाखाना, खेतवाड़ी-बंबई

महानिर्वाणतन्त्रका-सूचीपत्र ।

भूमिका, तांत्रिकउपासना, मूलमंत्र और आध्यात्मिकतत्त्वादि ।

प्रथमोच्छास ।

कैलासमे भवानीजीका शिवजीसे जीवके निस्तारहोनेके उपायका प्रश्न करके कैलास और सदाशिवका वर्णन, पार्वतीजीके प्रश्न करनेकी मार्थना, महादेवजीका सम्मतिदेना, भगवतीका प्रश्न करना, सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुगमें आचार व्यवहारका वर्णन, कलियुगमें दिव्यभाव और पशुभावका निषेध, पशु और दिव्यभावके लक्षण, वीरसाधन और वीरसाधनके पतितहोनेकी शका, मद्यपान दूषणीय क्यों है ? कलियुगके खोटे वृत्तिशाले मनुष्योंका उद्धार करनेके उपायका प्रश्न ॥ श्लोक ॥ ७४ ॥

द्वितीयोच्छास ।

भगवतीजीका कलियुगके जीवके निस्तारका उपाय पूछना, पार्वतीजीके प्रश्नकी प्रशंसा, कलियुगमें दुर्भेदमनुष्योंकी वेदपुराणादिके द्वारा मुक्तिकी अर्हताभावना कहनी, कलियुगमें तत्रही निस्तारका उपाय है । कलियुगमें शौचादिके न होनेसे वेदमंत्रकी विफलता। अनेक तंत्र और देवता व सम्पदायका कथन, महानिर्वाणतन्त्रकी प्रशंसाका वर्णन, ब्रह्मोपासनाकी रीति, परब्रह्मकी प्रशंसा ॥ श्लोक ५४ ॥

तृतीयोच्छास ।

परब्रह्मकी उपासनाके उपदेश । ब्रह्मसाधनके प्रश्नोत्तर, ब्रह्मके लक्षण, मन्त्रोद्धार, मंत्रकी प्रशंसा। मंत्रका अर्थ और चेतन्य करना । अनेक मन्त्र। मन्त्रोक्तान्यासा। प्रणायाम। ध्यान, मानसपूजा, बाहिरीपूजा, पंचरत्ननामक स्तोत्रजगन्मगलनामक कवच, प्रणामादिकथन, महाप्रसादग्रहण । इसके त्यागनेके महापापका वर्णन, साधकका आचार, व्यवहार, सध्या और इह्मगायत्री । प्रातिफिया, पुरश्चरण विधि, दीक्षा और ब्रह्ममंत्रके सिद्धकरनेकी आवश्यकता, ब्रह्ममंत्र ग्रहणकरनेके नियम और रीतिपद्धति । शान्तवैष्णवादि सबही दुबारा ब्रह्ममंत्र ग्रहण करनेमें अधिकारी हैं या नहीं, ब्रह्ममंत्रमें गुरुके विचारकी आवश्यकता है या उपासकका माहात्म्य और उसके निन्दकके महापापका वर्णन दलो ।

चतुर्थोच्छास ।

शक्तिउपासनाके विषयमे पार्वतीजीका मन्त्र । परामकृतिका स्वरूप ।
तलियुगमें पशुभाव और दिव्यभावका निषेध, वीरसाधनकी
फलता । ब्रह्मज्ञानके लिये शुद्धाशुद्धका समझान, शक्तिसे सृष्टि, स्थिति
और संहारका कथन, महाकाल और आदिकालिकाके नामका माहात्म्य
होलमशसा, प्रबलकलिके लक्षण, सुरापानमे कौलका अधिकार क्यों है, कौलकी
वित्रता, संकल्पसिद्धिकथन, कलिकिंकरवर्णन, सत्यनिष्ठाकी प्रशंसा, कुलाचारकी
आवश्यकता, कलिमे जातकर्मादिकी सजा । और नित्यनैमित्तिक्रियावर्मादिका
मंत्रके अनुसार करनेका विधान । तंत्रके विरुद्धकर्म करनेका दोष । तंत्रसम्मत ।
प्रमस्त नित्य और नैमित्तिक कार्योंका अनुष्ठानही आद्यासाधनहै ॥ श्लोक ॥ १०९ ॥

पंचमोच्छास ।

आद्याके मंत्रका उद्धार । मंत्रसाधनप्रशंसा । मंत्रक भेद । शक्तिपूजाक पंच
तत्त्व और पंचतत्त्वके विना पूजाकी निष्फलताकथन । मातृ किया, स्नानसध्याव-
न्दनादि नित्यकर्म, गुरुका ध्यान, गुरुका प्रणाम, इष्टदेवताको प्रणाम, स्नान-
विधि, शिखाबंधन, तिलक और त्रिपुङ्गुधारण, तांत्रिकसध्या, गायत्रीध्यान, तर्प-
ण, देवताको अर्घ्यदेना, मूलपूजाका पूर्वकृत्य, यज्ञमंडपमें जाना हाथ पाव धोना
साधारण अर्घ्यका स्थापित करना । द्वारदेवताकी पूजा । विघ्ननिवारण । आस-
नस्थापन, विजयाशोधन, विजयासे तर्पण, विजयागहण, पूजाद्रव्यको उचित
स्थानमें रखना, अग्नि प्राकारका ध्यान, करशोधन, दिग्बंधन, भूतशुद्धि, जीव
न्यास, मातृकान्यास, सरस्वतीका ध्यान, अन्तर्मातृकान्यास, बाह्यमातृकान्यास,
प्राणायामऋष्यादिन्यास, करन्यास, अग्न्यास, पीठन्यास, आठ भैरव और आठ
नायकाओंके नाम, आद्याका मूलध्यान । मानसपूजाका कथन । विशेषअर्घ्यके
संस्कारकी विधि, आदिकालिकाके यत्र बनोनी रीति, पाठदेवतापूजापद्धति,
सुधाघटस्थापन और तत्त्वसंस्कारका कथन, घटनिर्माणकरनेकी विधि और
व्यवस्था । घटविशेषमें फल, सुराशोधन, ब्रह्मशाप व कृष्णशापके छूटनेकी विधि
आनंद और भैरवचक्र, भैरवीकः मंत्र, मासशोधन । मत्स्यशोधन और मुद्राशो-
धन ॥ श्लोक ॥ २१५ ॥

पष्ठोच्छास ।

पंचतत्त्वादिकथन । पूजाके भेद, मांसके प्रकारभेद, बलिपशुनिरूपण, मत्स्य और मुद्राभेदकथन । शुद्धितात्पर्य, सुरापाननिषेध, शक्तिग्रहणविधि, शक्तिशोधनविधि, श्रीपात्रस्थानविधि, नवपात्र और अन्यान्यपात्रस्थापन विधि, तर्पण और बलिप्रकरण । बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणेश और सर्वभूतोंकी और शिवावलिकी रीति । मलपूजा, आवरणपूजा, और पशुनाले । आदिकालिकाका दूसरा ध्यान, आद्याका आवाहन, माणमतिष्ठा और जीवन्मासविधि, देवताशोधन, षोडशोपचार, उपचार देनेके मंत्रादि । गुरुशक्तिकी पूजा और तर्पणविधि, आवरणदेवताकी पूजापद्धति, बलि । होम, मंडलसंस्कारविधि, अग्निगलानेका मंत्र, पूर्णाहुतिकी क्रिया, जप, स्तोत्र, कवच, पाठादि, जपपद्धति, मालाकी पूजा और तर्पण, जपसमर्पण, स्तोत्र, कवच, पाठ, प्रदक्षिणा, आत्मसमर्पण, विसर्जनविधि, निर्माल्यवासिनीकी पूजा, ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादिकी पूजा चक्रानुष्ठान, पानपात्रनिर्माणविधि, पानपात्र और शुद्धिपात्रस्थापनके नियम, परिवेषणके नियम, सुधापानकी व्यवस्था, कुलस्त्री और गृहस्थसाधकके सुरापानके नियम, चक्रका मसाला भोजन करनेमें घृष्टका विचार दृश्यनीय है ॥ श्लोक ॥ १५९ ॥

सप्तमोच्छास ।

आद्याशक्तिका शतनामस्तोत्र । भगवतीका मंत्र और तिसका उत्तर । स्तवमाहात्म्य, स्तवके ऋष्यादि मंत्र । पुनर्धारककारकूटस्तवमाहात्म्य-कीर्तन । आदिकालिकाका कवच, त्रैलोक्यविजयके ऋष्यादि मंत्र, त्रैलोक्य-विजयकवच, त्रैलोक्यविजयकवचमाहात्म्य, आद्यामंत्रकी पुरश्चरणविधि । संक्षेपपूजा और संक्षेपपुरश्चरणपद्धति । कालीमंत्रकी प्रशंसाका कहना, कुल, कुलाचार और पंचतत्त्वनिरूपणकथन । प्रथमतत्त्व, द्वितीयतत्त्व, तृतीयतत्त्व, चतुर्थतत्त्व, पंचमतत्त्व, और पंचतत्त्वके लक्षणकथन ॥ श्लोक ॥ १६१ ॥

अष्टमोच्छास ।

वर्णाश्रमविधि । वर्णाश्रममें भगवतीका मंत्र और तिसका उत्तर । कलिमें पंचवर्ण और दो प्रकारके आश्रमोंका निर्देश, गृहस्थाश्रम, भिक्षु-

काश्रम, कठियुगमे सन्यासकी व्यवस्था, दोनोमे सबके अधिकारिव्यवस्था, गृहस्थाश्रम और संन्यासका कालनिरूपण, गृहस्थका कर्तव्यकर्म और आचार व्यवहारकथन, गृहीका नित्यकर्म पितामाताके प्रति व्यवहार, पत्नीके प्रति व्यवहार, पुत्र और कन्याके प्रति व्यवहार, भ्राताआदि बधुओके प्रति व्यवहार, सामाजिकव्यवहार, आन्तरिक और बाह्य शौचाशौचनिरूपणविधि, सध्याकालविधि, वैदिकसध्याके अनुष्ठानमे भगवतीका सशय, वैदिकसध्या करनेकी आवश्यकतावर्णन, स्वाध्याय और गृहकर्मके अनुष्ठानमे नियतकालादिपातकर्तव्य । कलिमे उपवास और दानविधि, पुण्यकाल, पुण्यतीर्थकथन, पितामाताकी सेवा छोड़कर तीर्थमे जानेसे नरकका निर्णय । नारीधर्म और उसका कर्तव्य । यौनमे स्त्री स्वामीके वश रहे । अभक्ष्यमासनिर्णय, और निरामिषभोजनविधि । ब्राह्मणादि पाच-वर्णोंकी वृत्ति । ब्राह्मणोंके कर्म । क्षत्रिय और राजाके कर्म । वैश्य और शूद्रके कर्म । भैरवाचक्र और उसका विधि । घटस्थापन और सक्षेपपूजाकथन, आनन्द-भैरवी और आनन्दभैरवका ध्यान । गृहस्थको सुरापानका निषेध । गृहस्थको परशुकि सगमनिषेध । शैवविवाह । चक्रके स्थापनका माहात्म्य । चक्रमे साधकका कर्तव्य । कलियुगमे कुलधर्म छिपानेका दोष । तत्त्वचक्रवर्णन । तत्त्वचक्रमे अधिकारिता । तत्त्वचक्रमे तत्त्वशोधनमन्त्र । तत्त्वचक्रकी अनुष्ठान विधि । सन्यासधर्मकथन । सन्यास ग्रहणकरनेका काल । वृद्ध पिता माता पतिग्रतास्त्री और छोटे २ बालबच्चोंको छोड़कर सन्यास ग्रहणकरनेका निषेध । सबजातिके पुरुषोंको सन्यासमे अधिकार है । सन्यासग्रहण करनेके समय कर्तव्यकर्म । सन्यास ग्रहणकरनेमे गुरुका आश्रय लेना । तीन ऋण (देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण) का छूटना । अपना आद्व । अग्निस्थापन, शाकल्पहोम, व्याहृतिहोम, प्राणहोम, तत्त्वहोम, यज्ञोपवीतहोम । शिखा काटना, आहुति देना । महावाक्यका उपदेश, शिष्यको अपनारूप समझकर गुरुको मणाम ब्रह्ममन्त्रोपासकका सन्यास-सन्यासीके आचार व्यवहार । सन्यासीके मृतक होनेपर उसकी देहको भस्मकरना निषेध है, चित्तशुद्धिके लिये उपासनादिकथन, कुलावधूत और यतीका माहात्म्य कहना ॥ श्लोका ॥ २८९ ॥

नवमोल्लास ।

दशविधिसंस्कारकी आवश्यकता और कुशंडिका । कलियुगमें मंत्रप्रयोगकी पृथक्ता । कुशंडिकाके लिये वेदी बनाना, अग्निका स्थापन, अग्निका ध्यान, अग्निके सात जीवोंका वर्णन, अग्निस्थापनक्रिया, यज्ञकी सामग्रीका संस्कार । धाराहोम । यथार्थकर्मका होम । स्वष्टरुद्धोम । व्याहृतिहोम । पूर्णाहुति, शान्तिकर्म, अग्निके निकट मार्यना और अग्निविसर्जन । दक्षिणादान होमान्ततिलक, पुष्पधारण । मस्तकमे पुष्पधारण, चरुकर्म, जानहोम, दशविधिसंस्कार । ऋतुसंस्कार, गर्भाधान, पुंसवन, पंचामृतदान । सीमंतोन्नयन । जातकर्म, नामकरण, चाहिरी, मुंडन, कर्णवेध, उपनयन, ब्रह्मचर्यप्रदान, गायत्रीका अर्थ, गृहस्थाश्रमग्रहण, विवाह, कन्यादान, विवाहांग कुशंडिका, विना स्त्रीकी अनुमतिके दुवारा ब्राह्मविवाहका निषेध, शैवविवाहकथन, ब्राह्मविवाहकी संतानके रहित शैवविवाहकी संतानका धनाधिकारनिषेध, रोटी कपड़ेकी व्यवस्था शैवविवाहके भेद और शैवविवाहकी रीति, अनुलोमज और विलोमज शैवसन्तानकी जातिका निर्णय, शैवविवाहका हेतुवादकथन ॥ श्लोक ॥२८३॥

दशमोल्लास ।

आभ्युदयिक, पार्वण, एकोदिष्ट, अन्त्येष्टि और मेतश्राद्धादि । वृद्धिश्राद्धमें मश्र, वृद्धिश्राद्धादिव्यवस्था और उसके प्रातिनिधिका निरूपण, वृद्धिश्राद्धप्रयोग, पार्वणश्राद्धव्यवस्था । श्राद्धमें विधान, एकोदिष्टश्राद्धव्यवस्था, मेतश्राद्धव्यवस्था, आशौचव्यवस्था, शवदाहव्यवस्था । सहमरणव्यवस्था, अन्त्येष्टिक्रियाकी व्यवस्था । आद्यश्राद्धके अधिकारीका निरूपण, तिलकांचनउत्सर्गव्यवस्था, । सस्यादिदानव्यवस्था, वृषोत्सर्ग । कौलपूजाप्रशंसाकथन, शुभकर्मका दिननिरूपण, गृहमवेशनियम और संक्षेपसे यात्राका वर्णन, दुर्गोत्सवादिमें कौलका कर्तव्य । कौलमाहात्म्यवर्णन । पूर्णाभिषेक और उसकी व्यवस्था । पूर्णाभिषेकका योग्य अधिकारी । गुरुका आश्रय ग्रहणकरना । गणेशपूजा । ध्यान, पीठशक्ति और आवरणपूजा, अधिवास, तिलकांचन, कौलभोज्यदान, पीडशमातृकापूजा । वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध, पूर्णाभिषेकके लिये गुरुके पास जायकर मार्यना । पूर्णाभिषे-

कका संकल्प, गुरुवरण, यज्ञमंडपका संस्कार, घटस्थापन । पात्रस्थापन और तर्पणविषयकव्यवस्था । पूजा और शक्तिसाधककी पूजा, शक्तिसाधकसे गुरुकी मार्यना । शक्तिसाधककी पूर्णाभिषेकमें सम्मति, पूर्णाभिषेकमंत्रकथन, पशुको दियाहुआ मंत्र फिर ग्रहण करना, शिष्यका नामकरणव्यवस्था, गुरुदक्षिणा, शक्तिसाधककी पूजा और अमृतकी मार्यना करना । अमृतदानमें गुरुकी मार्यना करना, शक्तिसाधककी सम्मति । कौललोगोंकी अनुमति लेकर शिष्यको अमृतका दान करना, प्रसादका परसना, चक्रका अनुष्ठान करना, पूर्णाभिषेकमें नवरात्रादि कल्पभेद और व्यवस्थाकथन, शाक्ताभिषिक्तकी चक्रेश्वरताका निषेध करना, कुलद्रव्य और कुलसाधकका निन्दाका दोष कहना, ब्रह्मनिष्ठकौलके लिये कर्मत्याग करना; अथवा कर्मानुष्ठानकरणमें तुल्यताका कथन, सर्वत्र ब्रह्मकी पूजाकी व्यवस्था, सत्कौलका लक्षणकथन ॥ श्लोक ॥ २१२ ॥

एकादशोल्लास ।

शान्तिरक्षा, प्रायश्चित्तव्यवस्था, द्विविधपापका लक्षण, राजा मजाके पापका दंड; धर्माधर्म, प्रशोत्तर, व्यभिचार, बलात्कारमें पाप और उसका दंड, पराई स्त्रीको पापकी दृष्टिसे देखनेका पाप, नरहत्या, कर्तव्यपालनमें अस्वीकार, धर्मपत्नीमें अन्यायका व्यवहार, वंचक, विश्वासघातक, चोर, झूठी गवाही देनेवाला, जालकरनेवालेको दण्ड, धर्मशाला और विचारपद्धति, हिन्दुआईनका (कानून) सार तात्पर्य, महारोगादिका प्रायश्चित्त, व्रतभंगका महापाप, गोवधका महापाप, इत्यादि विविध प्रसंग ॥ श्लोक ॥ १७० ॥

द्वादशोल्लास ।

सदाशिवकेद्वारा सनातन व्यवहारविषयककथन । सम्बंधकथन, राजा मजा व्यवहारकथन, विवाह धनाधिकारव्यवस्था, पिंडदानव्यवस्था, शौचाशौचकथन, प्रकारभेदसे दियाह कीर्तद्रव्यादिका मोल, ऋण, इत्यादि ॥ श्लोक १२९, ३० ॥

त्रयोदशोल्लास ।

महाकार्त्तरूप, साधन, भजन, ध्यान, धारणा, देव देवीकी प्रतिष्ठाका कारण नियमव्यवस्था, दानके नियम, दाताका भाव, निष्काम और कामनाका भाव, पशुयज्ञादिविधि, पूजाध्यानादिका प्रकरण, गृहपूजा और नियम, नवग्रहका रूप,

ध्यानपूजापद्धति, विविधर्वाजमंत्र, जलाशयमतिष्ठा, सत्कर्मकियाकथन, वास्तु-
मतिष्ठाका क्रम और पूजा । संसारके विविध कार्य, दशसंस्कारव्यवस्था ॥
श्लोक ॥ ३१० ॥

चतुर्दशोच्छास ।

शिवपूजाका प्रश्न । समस्तशिवपूजाओंके पीछे फिर अचलशिवपूजाका कथन,
शिवलिंग क्याहै? उसकी पूजा, ध्यान, विश्वरूप क्यों है? पूजनौय क्यों है?
आसन, उपचार, पूजा, ध्यान, धारणा, फलविधि, अर्चनाविधि इत्यादि । मुक्ति
क्याहै ? मुक्तिकी आवश्यकता, मुक्तपुरुष कौन है? मुक्तिका उपाय ज्ञान
और कर्मकथन, ज्ञान और मुक्तिका संबंध, साधुके लक्षण, चारमकार
अवधूतोंके लक्षण, सर्वधर्मनिर्णयसार इत्यादि ॥ श्लोक ॥ २११ ॥

महानिर्वाणतन्त्रका सूचापत्र समाप्त ॥



महानिर्वाणतन्त्रकी अनुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
प्रथमोच्छास ।		तीसरा उच्छास ।	
हरपार्वतीवर्णन	१	ब्रह्मोपासनाविषयमें पार्वतीका	
पार्वतीका प्रशनाभिलाष	३	मन्त्र	२९
महादेवजीकी आज्ञा.... ..	४	सदाशिवकी उक्ति	३०
पार्वतीका प्रश्न	५	परमब्रह्मके लक्षण	३१
सत्ययुगमें लोकाचार	५	ब्रह्ममंत्रोद्धार	३२
त्रैतायुगमें लोकाचार	७	ब्रह्ममंत्रप्रशंसा	३३
द्वापरमें लोकाचार	८	मंत्रार्थकथन	३६
कलियुगमें लोकव्यवहार ...	९	मन्त्रचैतन्य... ..	३७
कलियुगमें पशुभाव और दिव्य-		ब्रह्ममंत्रप्रकारकथन.... ..	३८
भावका प्रतिषेध	१३	ब्रह्ममंत्रके ऋष्यादिकथन...	३८
कलियुगमें मद्यमांसादिसेवनसे		अंगन्यास करन्यास	३९
दोष... ..	१४	प्राणायाम	३९
कलियुगमें निस्तार उद्धारोपाय		ब्रह्मध्यान	४१
प्रश्न	१६	मानसपूजा... ..	४१
दूसरा उच्छास ।		वाह्यपूजा और उपाधारसंशो-	
सदाशिवका उत्तर	१८	धन	४१
कलिकालमें लोककर्तव्य	१९	ब्रह्मस्तोत्र	४३
महानिर्वाणतन्त्रकी प्रशंसा...	२३	ब्रह्मकवच	४५
ब्रह्मस्वरूपकथन	२४	नमस्कार	४६
ब्रह्मोपासनाकी उपयोगिता	२८	ब्रह्मप्रसादका माहात्म्य ...	४७

विषय.	पृष्ठाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
ब्रह्ममंत्रमाहात्म्य.....	५०	गुरुध्यान और गुरुपूजा	९२
ब्रह्ममंत्रकर्त्तव्य ...	५१	इष्टदेवतापूजा	९२
ब्रह्मसन्ध्योपासना ...	५२	स्नानादिविधि	९३
ब्रह्मगायत्री	५३	सन्ध्याविधि ...	९४
ब्रह्मोपासनामाहात्म्य ...	५४	आद्याकी गायत्री...	९८
ब्रह्ममंत्रग्रहणविधि	५७	महाकालीपूजाविधि	१००
ब्रह्मदीक्षाका फल	६२	विजयाशोधन ...	१०२
चतुर्थ उल्लास ।		भूतशुद्धि ...	१०५
शक्तिउपासनाके विषयमें		मातृकान्यासके ऋष्यादि-	
भगवतीका मन्त्र ...	६३	न्यास ...	१०८
शक्तिका स्वरूप और नाम-		मातृकाध्यान ...	११०
रूपभेद	६५	मातृकास्थानमे वर्णन्यास...	११०
कलियुगमें पशुभावादिनिषेध	६७	प्राणायाम	११२
वीरभावका फल ...	६७	ऋष्यादिन्यास ...	११३
शक्तिका सृष्टिकर्त्तव्य ...	६८	व्यापकन्यास ...	११४
कौलमशंसा ...	७१	अंगन्यास करन्यास ...	११४
प्रबलकलिलक्षण ...	७२	पीठन्यास ...	११५
कलिकी अवस्थावस्थान ...	७५	महाकालीका ध्यान	११८
सत्यनिष्ठाकी उपवेशनता...	७८	मानसपूजा	११९
आगमके अनुसार समस्त		विशेषार्थस्थापन ...	१२२
संस्कारोंकी आवश्यकता	८०	यंत्रनिर्माण ...	१२३
पांचवाँ उल्लास ।		कलशस्थापन ...	१२६
शक्तिसाधनकथन...	८७	कलशलक्षण ...	१२७
आद्याका मंत्रोद्धार ...	८८	सुराशोधन ...	१२९
पूजाके समय पांचतत्वोंकी		मांसशोधन ...	१३२
आवश्यकता ...	९०	मत्स्यशोधन ...	१३३

विषय.	पृष्ठाङ्क.
मुद्राशोधन	१३३
पंचतत्त्वशोधन	१३४
छठा उल्लास ।	
सुराभेद	१३५
मांसभेद	१३५
मत्स्यभेद	१३६
मुद्राभेद... ..	१३६
शक्तिभेद	१३८
शक्तिशोधन	१३८
श्रीपात्रस्थापन	१३८
गुरुपात्र भोगपात्र इत्यादिस्था- पन	१४५
आनन्दभैरवादिका तर्पण....	१४५
बटुकबलि	१४७
क्षेत्रपालबलि	१४८
गणेशबलि... ..	१४८
सर्वभूतबलि	१४९
शिवाबलि	१४९
पुष्पध्यान	१५०
भगवतीका आह्वान	१५१
माणमतिष्ठा	१५१
सकलीकरण	१५३
षोडशउपचार	१५३
उपचारदानमंत्र... ..	१५३
पङ्कजपूजा	१५८
गुरुतर्पण... ..	१५९

विषय.	पृष्ठाङ्क.
अष्टशक्ति और अष्टभैरवका तर्पण... ..	१५९
दिक्पालपूजा	१५९
पशुबलि	१६०
खड्गपूजा... ..	१६१
सदीपशीर्षबली	१६२
होम	१६३
जप... ..	१७५
जपसमर्पण	१७७
आत्मसमर्पण	१७७
चक्रानुष्ठान	१७९
पानपात्रलक्षण	१७९
पानकीसीमा	१८१

सातवाँ उल्लास ।

कालिकाशतनामस्तोत्र	१८५
कालिकाकवच	१९५
पुरश्चरणविधि	१९९
कुल और कुलाचारके लक्षण	२०३

आठवाँ उल्लास ।

वर्णाश्रमकथन	२०८
आश्रमभेद	२०८
गृहस्थाश्रमविधि... ..	२११
गृहस्थकर्तव्य	२११
नारीकर्तव्य	२२७
ब्राह्मणवृत्ति	२२९
क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्ति...	२२९

विषय.	पृष्ठाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
ब्राह्मणादिकर्तव्य...	२३०	अभिषेक...	२९८
भैरवीचक्र ...	२३८	निष्क्रमण ...	३००
तत्त्वचक्र	२४३	अन्नमाशन ...	३०१
ब्रह्मचक्रमें जातिभेदाभाव...	२५२	चूडाकरण ...	३०३
अवधूताश्रम ...	२५३	उपनयन ...	३०६
संन्यासग्रहणविधि ...	२५३	गायत्र्युपदेश ...	३११
पित्रादिको पिण्डदान ...	२५६	गृहस्थाश्रमधारण ...	३११
अग्निस्थापन ...	२५८	ब्राह्मविवाहविधान ...	३१६
प्राणादिहोम और तत्त्वहोम	२५८	शैवविवाहविधि ...	३२४
यज्ञोपवीतहोम और शिखाहोम	२६०	दशवाँ उल्लास ।	
तत्त्वमसिमहावाक्योपदेश...	२६१	नित्यनैमित्तिकक्रियाविधि ...	३२९
संन्यासीका कर्तव्य ...	२६३	वृद्धिश्राद्धविधि ...	३३०
संन्यासियोका दाहनिषेध...	२६६	पार्वणश्राद्धविधि	३४५
नवम उल्लास ।		मेतश्राद्धविधि ...	३४७
दशविधसंस्कारविधि	२६८	एकोद्दिष्टश्राद्धविधि	३४७
कुशकण्डिका ...	२७०	आशौचनिर्णय	३४८
चरुकर्म ...	२८२	सहमरणनिषेध ...	३४९
गर्भाधानमें ऋतुसंस्कार ...	२८५	ब्रह्ममेंत्रोपासकके इच्छानुसार	
प्रकारान्तर ...	२८९	दाहादिकर्म ...	३४९
गर्भाधान ...	२८९	अन्त्येष्टिक्रिया ...	३५०
पुंसवन ...	२९२	श्राद्धाधिकार और तिलकांचन	३५०
पंचामृत ...	२९४	वृषोत्सर्ग ...	३५१
सीमन्तोन्नयन ...	२९४	श्राद्धादिकार्यमें कौलार्चन	३५२
जातकर्म ...	२९६	कौलमाहात्म्य ...	३५२
नाडीछेदन ...	२९७	पूर्णाभिषेकविधि ...	३५५
नामकरण ...	२९७	पूर्वादिनमें गणेशपूजा	३५६

विषय.	पृष्ठाङ्क.
अधिवासन और तिलकांचन	३५९
वसुधारा	३६०
गुरुवरण	३६१
कलशस्थापन	३६३
श्रीपात्रादिस्थापन....	३६४
अभिषेकमंत्रे	३६७
गुरुपूजा और कौलार्चन	३७१
अभिषेकसमाप्ति	३७३
कौलदीक्षामंशसा	३७४

ग्यारहवाँ उल्लास

पापभेदकथन ...	३८०
पापराजाका दंड ...	३८१
पापभेदसे दण्डभेद ...	३८६
विधवाकाकर्तव्य....	३८९
मातृबान्धव पितृबान्धवादि निरूपण ...	३९०
भ्रूणहत्यादिपापोंका प्रायश्चित्त	३९२
चोरी आदिके पापोंकाप्रायश्चित्त	३९६
साक्षिनिरूपण ...	३९६
जालकरनेका दंड ...	३९८
शपथप्रकार ...	३९८
पंचनस्त्वसेवन करनेकामाहात्म्य	३९९
अवैधपानमे दोष....	४००
अतिपानका दंड....	४०२
अवैधमांसभक्षणका दंड	४०४

विषय.	पृष्ठाङ्क.
अवैध अन्न भोजन करनेका प्रायश्चित्त ...	४०४
गोवधपायश्चित्त	४०६
जीववधपायश्चित्त ...	४०७
मातापिता व कौलादिकी निन्दाका प्रायश्चित्त...	४०८
अनेक पापोंका प्रायश्चित्त	४०८
मृतदेहदूषित गृह, वापी, कूपादिका शोधन ...	४१०
अनेकमकारके पापोंका प्राय- श्चित्त ...	४१२

बारहवाँ उल्लास ।

धनाधिकारनिरूपण	४१४
पिण्डाधिकारनिरूपण ..	४१७
आशौचम्यवस्था ...	४२७
दत्तकपुत्रविधि ...	४२९
स्वोपार्जितादि धनदेने और वैचनका अधिकार ...	४३१
अनधिकारितानिरूपण	४३२
स्वावरसम्पत्तिप्रियाधिकार	४३६
वापोकूपादिमे साधारणका जलपानाधिकार ...	४३८
तेरहवाँ उल्लास ।	
निराकारशक्तिके आकाररूप- नाका कारण...	४४३
मकाम उपासनाका फल...	४४६

विषय.	पृष्ठाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
देवालयसंस्कार और प्रति-		महाकालीमतिष्ठा	४९७
ष्ठाका फल	४४६	चौदहवाँ उल्लास ।	
पुल बनानेका फल	४४८	अचललिंगमतिष्ठाकी विधि	५०६
वृक्ष उद्यानादिकी प्रतिष्ठाका		अचललिंगमाहात्म्य	५०७
फल	४४८	अधिवास	५११
देववाहनादिनिर्माणविधि...	४४८	सदाशिवध्यान	५१२
वासुदेवपूजाविधि	४५१	शिवर्वाज	५१४
वास्तुपुरुषध्यान	४५५	गौरीपट्टशोधन	५१४
ग्रहपूजा और ग्रहमंत्र	४५७	सर्वदेववलि	५१६
ग्रहध्यान	४५८	शिवस्थापन	५१७
ग्रह्याका ध्यान	४६३	अष्टमूर्तिपूजा	५२१
वास्तुदेव और ग्रहोंकामंत्र...	४६४	मार्थना	५२२
जलाशयादिमोक्षणमंत्र	४६८	अकस्मात् पूजाके रुक्मानमे	
वास्तुकयागक्रम	४७१	कर्त्तव्य	५२५
गणेशजीका ध्यान और पूजा	४७२	कर्मफल	५२७
जलाशयोत्सर्ग	४७३	ज्ञानमाहात्म्य	५२८
गृहसंस्कार	४८०	चारमकारके अवधूत	५३४
देवमतिष्ठा	४८०	ओतत्सत् मंत्रका माहात्म्य	५३७
पोङ्गोपचार	४८४	परमहंसका कर्त्तव्य	५४०
दशोपचार और पंचोपचार	४८५	कौलमाहात्म्य	५४१
उपचारमदानमंत्र	४८५	महानिर्वाणतंत्रका माहात्म्य	५४४
वाहनदानमंत्र	४९३		

इति महानिर्वाणतंत्रकी अनुक्रमणिका समाप्ता ।



॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवातजात्मने नमः ।

महानिर्वाणतन्त्रम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।



प्रथमोल्लासः १.

गिरीन्द्रशिखेररम्येनानारत्नोपशोभिते ।

नानावृक्षलताकीर्णेनानापक्षिरवैर्युते ॥ १ ॥

उपोति जागती जगतमें, जननि जवाजयकार ।

काळीकरधरकर डबर, भक्तपरचो मैं प्रधार ॥ १ ॥

अर्थ—कैलास पर्वतका एकरमणीक शिखर है, यह अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, अनेक प्रकारके वृक्षलताओंसे युक्त और बहुतसे पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान है ॥ १ ॥

सर्वर्तुकुसुमामोदमोदितेसुमनोहरे ।

शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याल्येमरुद्भिरुपवीजिते ॥ २ ॥

अर्थ—इस मनोहर स्थानमें सब ऋतु सब समयमें उदित होकर अनेक प्रकारका कुसुम सौरभ फैलाती हैं। सदैव शीतल, मंद, सुगंध पवन चला करता है ॥ २ ॥

अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते ।

स्थिरच्छायदुमच्छायाच्छादितेस्निग्धमञ्जले ॥ ३ ॥

अर्थ—अप्सरारोंके मधुर गानेका शब्द सदा गुंजारता

रहता है । वहाँके आँदेदार वृक्षगण स्थिरभावसे छाया देते हैं, यह स्थान अत्यन्त मृगध और मनोहर है ॥ ३ ॥

मत्तकोकिलसन्दोहसङ्घुष्टविपिनान्तरे ।

सर्वदास्वगणैः सार्धमृतुराजनिपेविते ॥ ४ ॥

अर्थ—दूसरे वनोंमें मधुर रवसे कोयलें शब्द कर रही हैं । तहाँ सदा ऋतुराज वसंत अपने सहकारियोंके साथ विराजमान है ॥ ४ ॥

सिद्धचारणगन्धर्वगाणपत्यगणैर्वृते ।

तत्रमौनधरंदेवंचराचरजगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

अर्थ—सिद्ध, चारण, गंधर्व और विनायकोंसे यह स्थान सदा घिरा रहता है । इस शिखरपर चराचर जगत्के गुरुरूप महादेवजी मौन होकर विराजमान हैं ॥ ५ ॥

सदाशिवंसदानन्दंकरुणामृतसागरम् ।

कर्पूरकुन्दधवलंशुद्धसत्त्वमयंविभुम् ॥ ६ ॥

अर्थ—वे सदा कल्याणके देनेवाले, सदानन्द, करुणास्वरूप अमृतके समुद्र हैं । उनका आकार कपर और बबूलके फूलकी समान श्वेत है, शुद्धसत्त्वमय और अनुपम विभु हैं ॥ ६ ॥

दिगम्बरं दीननाथंयोगीन्द्रंयोगिवल्लभम् ।

गङ्गाशीकरसंसिक्तजटामण्डलमण्डितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—वे दिगम्बर—अर्थात् मायारहित हैं, दीननाथ, योगियोंमें इंद्र और योगियोंके प्यारे हैं, उनके जटाजूट गंगाशीकरसे संयुक्त हो रहे हैं ॥ ७ ॥

विभूतिभूषितंशान्तंव्यालमालंकपालिनम् ।

त्रिलोचनंत्रिलोकेशंत्रिशूलवरधारिणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उनके सब शरीरमें विभूति लगी हुई है, मूर्ति अत्यन्त शान्त है, वे नरकपाल और सर्पोंकी मालासे शोभायमान हैं, उन त्रिलोकीके नाथ और त्रिनेत्रके हाथमें त्रिशूल है ॥ ८ ॥

आशुतोपंज्ञानमयंकैवल्यफलदायकम् ।

निर्विकल्पंनिरातङ्कंनिर्विशेषंनिरञ्जनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—वे आशुतोष—अर्थात् शीघ्रही प्रसन्न होनेवाले, ज्ञानमय और कैवल्य फल देनेवाले हैं, वे सुखदुःखरहित, तीनों तापोंसे हीन, भेदहीन और निरञ्जन—अर्थात् ज्ञानीसे अगम्य हैं ॥ ९ ॥

सर्व्वेपांहितकर्तारं देवदेवंनिरामयम् ।

प्रसन्नवदनंवीक्ष्यलोकानांहितकाम्यया ।

विनयावनतादेवीपार्वतीशिवमब्रवीत् ॥ १० ॥

अर्थ—वे निरामय, देवदेव और सबके हितकारी हैं, उनका प्रसन्न वदन देखकर देवी पार्वतीने एकदिन लोकके हितार्थ अवनत हो विनीत वचन कहकर पूछा ॥ १० ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

देवदेव ! जगन्नाथ ! मन्नाथ ! कहणानिधे ! ।

त्वदधीनास्मि देवेश ! तवाज्ञाकारिणी सदा ॥ ११ ॥

अर्थ—पार्वतीजी बोलीं—हे देवदेव ! हे जगन्निवास ! आप मेरे नाथ और दयाके समुद्र हैं । हे देवताओंके ईश्वर ! मैं आपके अधीन हूं सदा आपकी आज्ञाके अनुसार वर्तनेवाली हूं ॥ ११ ॥

विनाज्ञायामया किञ्चिद्वापितुं नैव शक्यते ।

कृपावलेशो मयि चेत्स्नेहोऽस्ति यदि मां प्रति ॥ १२ ॥

अर्थ—विना आपकी अनुमतिके प्राप्त हुए मैं आपसे कुछ भी नहीं कह सकती यदि मेरे प्रति आपके कृपाकण प्रकाशित हों और जो आपका स्नेह मेरे ऊपर हो ॥ १२ ॥

तदानिवेद्यते किञ्चिन्मनसायद्विचारितम् ।

त्वदन्यः संशयस्यास्य कस्त्रिलोक्यामहेश्वर ! ।

छेत्ता भवितुमर्हो वा सर्वज्ञः सर्वशास्त्रवित् ॥ १३ ॥

अर्थ-तो मैं अपने मनकी वासना आपके निकट प्रकाश करसक्ती हूं. हे महेश्वर ! आपके सिवाय और कौन मेरे संदेहको भंजन कर सक्ता है और कौन सर्वशास्त्रका जाननेवाला सर्वज्ञ है ॥ १३ ॥

श्रुत्सदाशिव उवाच ।

किमुच्यते महाप्राज्ञे कथ्यतां प्राणवल्लभे ।

यदकथ्यं गणेशोऽपि स्कन्दे सेनापतावपि ॥ १४ ॥

अर्थ-सदाशिवने कहा-हे प्राणवल्लभे ! तुम अत्यन्त बुद्धिमती हो. कहो कि, तुम क्या जाननेकी इच्छा करती हो, जो बात गणेश या कार्तिकसे प्रकाशित नहीं की उस बातको तुम्हारे निकट कहतेहुए मुझको कुछ बाधा नहीं है ॥ १४ ॥

तवात्रैकथयिष्यामि सुगोप्यमपि यद्भवेत् ।

किमस्ति त्रिपुलोकैः पुगोपनीयं तवाग्रतः ॥ १५ ॥

अर्थ-जो विशेष गुप्त करने योग्य भी हो तो भी मैं उसको तुमसे कहूंगा, (अधिक क्या कहूं) त्रिलोकीमें ऐसा कोई विषय नहीं है जो तुमसे छिपा हुआ रहसके ॥ १५ ॥

ममरूपासि देवित्वं न भेदोऽस्ति त्वयामम ।

सर्वज्ञा किं न जानासि त्वनभिज्ञे वपृच्छसि ॥ १६ ॥

अर्थ-हे देवि ! तुम हमाराही स्वरूप हो, तुममें और हममें कुछ भेद नहीं है तुम सर्वज्ञ होकर भी अनभिज्ञकी नाई हमसे क्या पूछती हो ? ॥ १६ ॥

इतिदेववचःश्रुत्वापार्वतीहृष्टमानसा ।

विनयावनतासाध्वीपरिपप्रच्छशङ्करम् ॥ १७ ॥

अर्थ-तब पार्वतीजी, परमेश्वरके मुखारविंदसे यह वचन सुनकर चित्तमें अत्यन्त हर्षित हुई और विनयद्वारा नम्र हुए वचनोंकरके महादेवजीसे कहने लगीं ॥ १७ ॥

श्रीआद्योवाच ।

भगवन् ! सर्वभूतेश ! सर्वधर्मविदावर ।

कृपावताभगवताब्रह्मान्तर्यामिणापुरा ॥ १८ ॥

अर्थ-आदिशक्तिने कहा-हे भगवन् ! आप सर्व प्राणियोंके ईश्वर और सर्व धर्म जाननेवालोंमें प्रथम गिननेके योग्य हैं १८

प्रकाशिताश्चतुर्वेदाःसर्वधर्मोपबृंहिताः ।

वर्णाश्रमादिनियमायवचैवप्रतिष्ठिताः ॥ १९ ॥

अर्थ-आपने कृपाके वश होकर सर्वधर्मयुक्त चार वेद प्रगट किये हैं इन दोनोंमें सब वर्ण और आश्रमोंके विधिकी व्यवस्था कीगई है ॥ १९ ॥

त्वदुक्तयोगयज्ञाद्यैःकर्मभिर्भुविमानवाः ।

देवान्पितृन्प्रीणयन्तःपुण्यशीलाःकृतेयुगे ॥ २० ॥

अर्थ-आपके वचनानुसार योग व यज्ञादि सिद्ध करके सत्य-युगके पुण्यवान् मनुष्यगण देवता और पितृगणोंको नृत्न करते हैं ॥ २० ॥

स्वाध्यायध्यानतपसादयादानैर्जितेन्द्रियाः ।

महाबलामहावीर्यामहासत्त्वपराक्रमाः ॥ २१ ॥

अर्थ-तिस कालके लोक इंद्रियोंको जीतकर वेदका पढ़ना, परमार्थकी चिन्ता, तप, दया और दानशीलताके द्वारा, महाबलवान्, महावीर्ययुक्त और अत्यन्त पराक्रमा होते थे ॥ २१ ॥

देवायतनगामित्यदेवकल्पाद्व्रताः ।

सत्यधर्मपराःसर्वेसाधवःसत्यवादिनः ॥ २२ ॥

अर्थ-वे लोग दृढव्रत, देवताओंकी समान, मर्त्य-अर्थात् मरणशील होकर भी देवलोकमें जासकें थे, उस समयमें सबही सत्य बोलनेवाले, साधू और श्रेष्ठ मार्गमें चलनेवाले थे ॥ २२ ॥

राजानःसत्यसङ्कल्पाःप्रजापालनतत्पराः ।

मातृवत्परयोपित्सुपुत्रवत्परसूनुषु ॥ २३ ॥

अर्थ-उस कालमें राजालोग सत्यसंकल्प और प्रजापालन परायण थे, वह पराई स्त्रीको माताकी समान और पराए पुत्रको पुत्रके समान देखते थे ॥ २३ ॥

लोष्ठवत्परवित्तेषुपश्यन्तोमानवास्तदा ।

आसन्स्वधर्मनिरताःसदासन्मार्गवर्तिनः ॥ २४ ॥

अर्थ-उस समयके लोग पराये धनको मट्टीके ढेलकी समान देखते थे (अधिक क्या कहा जाय) सबही अपने धर्ममें निरत और श्रेष्ठमार्गके अवलम्बी थे ॥ २४ ॥

नमिथ्याभाषिणःकेचिन्नप्रमादरताःकचित् ।

नचौरानपरद्रोहकारकानदुराशयाः ॥ २५ ॥

अर्थ-कोई भी मिथ्यावादी, प्रमादी, चोर, पराई बुराई करनेवाला और बुरे आशयवाला न था ॥ २५ ॥

नमत्सरानातिरुष्टानातिलुब्धानकामुकाः ।

सदन्तःकरणाःसर्वेसर्वदानन्दमानसाः ॥ २६ ॥

अर्थ-वह मत्सरता-अर्थात् शुभ मनुष्योंके साथ द्वेष करना-क्रोध, लोभ वा कामुकताके हाथमें नहीं गिरे, सबहीका अन्तःकरण सत् और आनन्दमय था ॥ २६ ॥

भूमयःसर्वशस्याढ्याःपर्जन्याःकालवर्षिणः ।

गावोऽपिदुग्धसम्पन्नाःपादपाःफलशालिनः ॥ २७ ॥

अर्थ-पृथ्वी तिसकालमें अनेक प्रकारके धान्योंसे पूर्ण थी, अवसरपर मेघ जल वर्षाते थे, गायें दूधके भारसे झुकी रहती थीं और वृक्ष फलोंके भारसे पूर्ण थे ॥ २७ ॥

नाकालमृत्युस्तत्रासीन्नदुर्भिक्षंनवारुजः ।

हृष्टाःपुष्टाःसदारोग्यास्तेजोरूपगुणान्विताः ॥ २८ ॥

अर्थ-उस समयमें अकालमृत्यु, दुर्भिक्ष, वा रोगभय नहीं था सबही हृष्ट, पुष्ट, रोगरहित, तेजस्वी और रूपगुणसे युक्त थे ॥ २८ ॥

स्त्रियोनव्यभिचारिण्यःपतिभक्तिपरायणाः ।

ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राःस्वाचारवर्तिनः ॥ २९ ॥

अर्थ-स्त्रियें व्यभिचारिणी नहीं थीं सबही पतिमें भक्ति करती थीं । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सबही नियमित आचार व्यवहारके अनुसार चलते थे ॥ २९ ॥

स्वैःस्वैर्धर्मैर्यजन्तस्तेनिस्तारपदवींगताः ।

कृतेव्यतीतित्रेतायांद्वाधर्मव्यतिक्रमम् ॥ ३० ॥

अर्थ-वह अपने २ जातीय धर्मका अनुष्ठान करके निस्तारके मार्गको प्राप्त हुए हैं, सत्ययुगके अन्त-अर्थात् त्रेताके आगमनमें आपने धर्मकी कुछ एक अंगहीनता देखी ॥ ३० ॥

वेदोक्तकर्मभिर्मर्त्यानिशक्ताःस्वेष्टसाधने ।

बहुक्लेशकरं कर्मवैदिकंभूरिसाधनम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-क्योंकि उस समय मनुष्यगण वेदोक्त कर्मके द्वारा

अपना इष्ट सिद्ध करनेमें असमर्थ हुए. उन्होंने जाना कि, वैदिक कार्योंके सिद्ध करनेको अत्यन्त साधना करनी चाहिये और वह कार्य बहुतसे क्लेशोंसे सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥

कर्तुं न योग्यामनुजाश्चिन्ताव्याकुलमानसाः ।

त्यक्तुं कर्तुं न चाहति सदाकातरचेतसः ॥ ३२ ॥

अर्थ-जब मनुष्य वैदिक कार्योंके सिद्ध करनेको असमर्थ हुए तब उनके अन्तःकरण चिन्तासे व्याकुल हो उठे, वह न तो वेदोक्त कार्योंकोही सिद्ध करसके और न उनको त्यागही करनेमें समर्थ हुए इस कारण खेद करने लगे ॥ ३२ ॥

वेदार्थयुक्तशास्त्राणि स्मृतिरूपाणि भूतले ।

तदा त्वंप्रकटीकृत्य तपःस्वाध्यायदुर्वलान् ॥ ३३ ॥

लोकानतारायः पापाद्दुःखशोकामयप्रदात् ।

त्वां विना कोऽस्ति जीवानां घोरसंसारसागरे ॥ ३४ ॥

अर्थ-तिस कालमें आपने वेदार्थमय स्मृतिशास्त्र पृथ्वीपर प्रगट करके तप करने और वेद पढ़नेमें असमर्थ लोगोंको दुःख, शोक और पीडादायक पापसे उद्धार किया था, आपके सिवाय इस संसाररूपी घोर समुद्रसे और कौन जीवोंकी रक्षा करसक्ता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भर्ता पिता समुद्रर्ता पितृवत्प्रियकृतप्रभुः ।

ततोऽपि द्वापरे प्राप्ते स्मृत्युक्तसुकृतोद्भिजे ॥ ३५ ॥

अर्थ-जिसप्रकार पिता अपने पुत्रको पालता है वैसेही आप अधम जीवके पालन करनेवाले हैं. भरण, पोषण करनेवाले और उद्धार करनेवाले आपही हैं. आप सबके स्वामी और कल्याण विधाता हैं. इस उपरांत जब द्वापरयुग आया तब स्मृतिसम्मत क्रियादिका हास होने लगा ॥ ३५ ॥

धर्माद्धलोपेमनुजेआधिव्याधिसमाकुले ।

संहिताद्युपदेशेनत्वयैवोद्धारितानराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—तिस कालमें आधा धर्मलोप होगया, इसकारण मनु-
ष्यगण अनेक प्रकारकी आधिव्याधियोंसे पूर्ण हुए, इस समयमें
आपने संहिताशास्त्रका उपदेश देकर मनुष्योंका उद्धार
किया ॥ ३६ ॥

आयातेपापिनिकलौसर्वधर्मविलोपिनि ।

दुराचारेदुष्प्रपञ्चेदुष्टकर्मप्रवर्तके ॥ ३७ ॥

अर्थ—इस समयमें सर्व धर्मका लोप करनेवाले, दुष्टकर्मको
करानेवाले, दुराचारी, खोटे प्रपंचको करानेवाले कलियुगको
अधिकार हुआ ॥ ३७ ॥

नवेदाःप्रभवस्तंत्रस्मृतीनांस्मरणंकुतः ।

नानेतिहासयुक्तानांनानामार्गप्रदर्शनाम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—इस कालमें वेदका प्रभाव खर्ब होगया स्मृतियें भी
विस्मृतिके समुद्रमें डूबगई। इस समयमें अनेक प्रकारके इति-
हासोंसे पूर्ण अनेक प्रकारके मार्गोंको दिखानेवाले ॥ ३८ ॥

बहुलानांपुराणानांविनाशोभविताविभो ।

तदालोकाभविष्यन्तिधर्मकर्मबहिर्मुखाः ॥ ३९ ॥

अर्थ—बहुतसे पुराणोंका नामतक प्रकाशित नहीं रहेगा। हे
विभो ! इसकारण सबही धर्मकर्मसे विमुख होजायेंगे ॥ ३९ ॥

उच्छृङ्खलामदोन्मत्ताःपापकर्मरताःसदाः ।

कामुकालोलुपाःक्रूरानिष्टुरादुर्मुखाःशठाः ॥ ४० ॥

अर्थ—कलिके जीवगण शृंखलारहित (अर्थात् वेदादिरूप

बेडियां जिनकी कटगई हैं) मदीन्मत सर्वदा पापमें लित, कामी, धनके लालचि, क्रूर, निष्ठर, अप्रियभाषी और शठ होजायेंगे ॥ ४० ॥

स्वल्पायुर्मन्दमतयोरोगशोकसमाकुलाः ।

निःश्रीकानिर्वलानीचानीचाचारपरायणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ-इस कालके लोग अल्पायु. मन्दमति, रोगशोकसे युक्त, श्रीहीन, बलहीन, नीचहोकर नीचकार्योंको करेंगे ॥ ४१ ॥

नीचसंसर्गनिरताःपरवित्तापहारकाः ।

परनिन्दापरद्रोहपरिवादपराःखलाः ॥ ४२ ॥

अर्थ-इस कालमें सबही नीचोंका संग करेंगे. पराये चित्तको हरण करनेवाले, परनिन्दा, परद्रोही. पराई स्थानमें तत्पर और खल होजायेंगे ॥ ४२ ॥

परस्त्रीहरणपापशङ्काभयविवर्जिताः ।

निर्धनमलिनादीनादिरद्राश्विररोगिणः ॥ ४३ ॥

अर्थ-पराई स्त्रीके हरण करनेमें यह लोग पापकी शंका या भय नहीं करेंगे यह लोग निर्धन, मलीन, दीन और सदा रोगी रहकर समय बितावेंगे ॥ ४३ ॥

विप्राःशूद्रसमाचागःसन्ध्यावन्दनवर्जिताः ।

अयाज्ययाजकालुःधादुर्वृत्ताःपापकारिणः ॥ ४४ ॥

अर्थ-ब्राह्मण सन्ध्यावन्दनादिहीन हो शूद्रके समान आचार करेंगे वे लोभके वश होकर अयाज्य याजन-अर्थात् जिस पुरुषकी पुरोहिताई करनेसे अधर्म होता है उसके पुरोहित बनकर यज्ञ करावेंगे और 'दुरात्मा' होकर पापकार्य करेंगे ॥ ४४ ॥

१. पापाः शङ्काभयविवर्जिताः इति पाठान्तरम् । २. अयाज्ययाजका मूका इत्यपि क्वचित्पाठः ।

असत्यभाषिणोमूर्खादाम्भिकादुष्प्रपञ्चकाः ।

कन्याविक्रयिणोव्रात्यास्तपोव्रतपराङ्मुखाः ॥ ४५ ॥

अर्थ—यह झूठ बोलनेवाले. मूर्ख, दंभी और घोर प्रपञ्चक (धोखेबाज) होंगे कन्याको बेचेंगे पतित और तपोव्रतभ्रष्ट होकर समय बितावेंगे ॥ ४५ ॥

लोकप्रतारणार्थायजपपूजापरायणाः ॥

पाखण्डाःपण्डितम्मन्याःश्रद्धाभक्तिपिवर्जिताः ॥ ४६ ॥

अर्थ—कालियुगके ब्राह्मणलोग लोगोंको छलनेके अभिप्रायसे जप और पूजा करेंगे; परंतु मनके अन्तरमें श्रद्धा भक्ति कुछ भी नहीं रहेगी यह घोर पाखंडी और पतितके समान कार्य करके भी अपनी पंडितार्इका परिचय देंगे ॥ ४६ ॥

कदाहाराःकदाचाराधूर्तकाःशूद्रसेवकाः ।

शूद्रान्नभोजिनःक्रूरावृषलीरतिकामुकाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—इनका आहार निंदित होगा. आचार अधम होगा. यह शूद्रके सेवक होकर शूद्रका अन्न ग्रहण करेंगे और शूद्रकी स्त्रीका संग करनेमें लोलुप होंगे ॥ ४७ ॥

दास्यन्तिधनलोभेनस्वदारात्रीचजातिषु ।

ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत्केवलंसूत्रधारणम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अधिक कहांतक कहा जाय यह धनके लोभसे नीच जातिके पुरुषको अपनी स्त्री दे देंगे । यह लोग केवल चिह्नके लिये गलेमें डोरा डाल रखेंगे ॥ ४८ ॥

नैवपानादिनियमोभक्ष्याभक्ष्यविवेचनम् ।

धर्मशास्त्रेसदानिन्दासाधुद्रोहोनिर्न्तरम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-इनके भक्ष्याभक्ष्यका विचार या पानादिका नियम नहीं रहेगा यह सदा धर्मशास्त्रकी निंदा और साधुओंका द्रोह करेंगे ॥ ४९ ॥

सत्कथालापमात्रञ्चनतेषामनसिकचिन्त ।

त्वयाकृतानितन्त्राणिजीवोद्धारणहेतवे ॥ ५० ॥

अर्थ-इनके मनमें सत्कथाका आलाप कभी स्थानको प्राप्त नहीं होगा, (जो हो) जीवोंका उद्धार करनेके लिये आपने "तन्त्रशास्त्र" बनाया है ॥ ५० ॥

निगमागमजातानिभुक्तिमुक्तिकराणिच ।

देवीनांयत्रदेवानांमन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-और भोग अपवर्गविधायक बहुतसे आगम व नियम प्रकाशित किये हैं; तिनमें देव देवियोंके मंत्र और यन्त्रादिक सिद्ध करनेके उपाय हैं ॥ ५१ ॥

कथितावहवोन्यासाःसृष्टिस्थित्यादिलक्षणाः ।

वद्धपद्मासनादीनिगदितान्यपिभूरिशः ॥ ५२ ॥

अर्थ-आपने सृष्टि, स्थिति आदिके लक्षण और प्रकार न्यासकी कथा कही है आपने वद्धपद्मासन और मुक्तपद्मासनादि बहुतसे आसनोंका भी विषय कहा है ॥ ५२ ॥

पशुवीरदिव्यभाषादेवतामन्त्रसिद्धिदाः ॥

श्वासनंचितारोहोमुण्डसाधनमेवच ॥ ५३ ॥

अर्थ-जिनसे देवताओंका मंत्र सिद्ध होजावे आपने तैसे पशु वीर और दिव्यभाव प्रकाशित किये हैं । इनके सिवाय श्वासन चितारोहण और मुंडसाधनभी कहा है ॥ ५३ ॥

लतासाधनकर्माणित्वयोक्तानिसहस्रशः ।

पशुभावदिव्यभावौस्वयमेवनिवारितौ ॥ ५४ ॥

अर्थ-आपने लतासाधनादि अगणित अनुष्ठानोंका वर्णन किया है किन्तु आपने पशु व दिव्यभाव सम्बन्धमें निषेध किया है ॥ ५४ ॥

कलौनपशुभावोऽस्तिदिव्यभावःकुतोभवेत् ।

पत्रंपुष्पफलंतोयंस्वयमेवाहरेत्पशुः ॥ ५५ ॥

अर्थ-तात्पर्य यह है कि-अब कलियुगमें पशुभाव होनेकी संभावना नहीं तब दिव्यभावकी संभावना कैसे संभव होसकी है. पत्ते, फल, फूल और जल इनका लाना पशुभावके अवलंबन करनेका काम है ॥ ५५ ॥

नशूद्रदर्शनंकुर्यान्मनसानस्त्रियंस्मरेत् ।

दिव्यश्चदेवताप्रायःशुद्धान्तःकरणःसदा ॥ ५६ ॥

अर्थ-शूद्रका देखना और मन मनमेंही स्त्रीकी मूर्तिका देखना कर्तव्य नहीं है; दिव्यभाव अवलंबन करनेके लिये देवताओंकी समान निर्मल अन्तःकरण होना उचित है ॥ ५६ ॥

द्वन्द्वातीतोवीतरागःसर्वभूतसमःक्षमी ।

कलिकल्मषयुक्तानांसर्वदास्थिरचेतसाम् ॥ ५७ ॥

अर्थ-इसके सिवाय सुख दुःखको समान भोगकरना, रागद्वेषसे रहित होकर चलना, सब प्राणियोंको एकसा देखना और क्षमाशील होना पड़ेगा. विशेष विचारकरनेसे जाना जाता है कि, यह कलिकाल अत्यन्त भयानक है, इस कालके जीवगण सदा पापमें आसक्त और चंचलचित्तवाले रहते हैं ॥ ५७ ॥

निद्रालस्यप्रसक्तानांभावशुद्धिःकथंभवेत् ।

वीरसाधनकर्माणिपञ्चतत्त्वोदितानिच ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो लोग निद्रा और आलस्यसे युक्त हैं उनके भावकी शुद्धिका होना कैसे किसप्रकारसे संभव है? हे शंकर! आपने वीरसाधन विषयमें पञ्चतत्त्वका विषय कहा है ॥ ५८ ॥

मद्यमांसंतथामत्स्यमुद्रामैथुनमेवच ।

एतानिपञ्चतत्त्वानित्वयाप्रोक्तानिशंकर ॥ ५९ ॥

अर्थ-आपने मद्य. मांस. मत्स्य, मुद्रा और मैथुन पांचतत्त्वोंको सविशेष कहा है ॥ ५९ ॥

कलिजामानवालुब्धाःशिश्रोदरपरायणाः ।

लोभात्तत्रपतिष्यन्तिनकरिष्यंतिसाधनम् ॥ ६० ॥

अर्थ-परन्तु (दुःखकी बात है कि) कलियुगके जीवगण शिश्रोदरपरायण (केवल आहार विहारसेही मनको कृतार्थ समझनेवाले) होंगे वह साधनोंको छोड़ लोभसे बाध्य हो इन पांच तत्त्वोंमें गिरेगे ॥ ६० ॥

इन्द्रियाणांसुखार्थायपीत्वाचबहुलमधु ।

भविष्यन्तिमदोन्मत्ताहिताहितविवर्जिताः ॥ ६१ ॥

अर्थ-वह मदमाते हो हिताहितके विचारको पानी देंगे, और इन्द्रियोंके सुखके लिये बहुतसा मधु पीवेंगे ॥ ६१ ॥

परस्त्रीवर्षकाःकेचिद्स्यवोवहवोभुवि ।

नकरिष्यन्तिमत्ताःपापयोनिविचारणम् ॥ ६२ ॥

अर्थ-वह परनारियोंके सतीत्वका नाश करेंगे और चोरोंकी वृत्तिसे दिन बितावेंगे । वह पापाचारी पुरुष मत्त होकर योनिविचार नहीं करेंगे ॥ ६२ ॥

अतिपानादिदोषेणरोगिणोबहवःक्षितौ ।

शक्तिहीनावुद्धिहीनाभूत्वाचविकलेन्द्रियाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—वह अत्यंत पानदोषसे इस पृथ्वीपर सदा रोगी रहेंगे शक्तिहीन. बुद्धिहीन और विकलेंद्रिय होजायेंगे ॥ ६३ ॥

हृदे गर्ते प्रान्तरे च प्रासादार्त्पवतादपि ।

पतिष्यन्तिमरिष्यन्तिमनुजामदविह्वलाः ॥ ६४ ॥

अर्थ—वह मतवाले हो हृद् (अगाध जलाशय) गर्त (कर-विल) प्रान्तर (दुर्गममार्ग) प्रासाद (बड़ी अटारी) या पर्वतके शिखरसे गिरकर मरेगे ॥ ६४ ॥

केचिद्विवादयिष्यन्ति गुरुभिः स्वजनैरपि ।

केचिन्मौनामृतप्राया अपरेबहुजल्पकाः ॥ ६५ ॥

अर्थ—कोई १ पुरुष मतवाले हो बड़े बूढ़े और स्वजनोंके साथ लड़ाई, झगडा करेंगे, कोई मृतकतुल्य और मौनी होकर रहेंगे, कोई २ बड़ी भारी जल्पना (पराये मतको खण्डन करके अपना मत जनाने) में लगे रहेंगे ॥ ६५ ॥

अकार्य्यकारिणःक्रूराधर्ममार्गविलोपकाः ॥

हिताययानिकर्म्मणिकथितानि त्वयाप्रभो ॥ ६६ ॥

मन्ये तानि महादेव । विपरीतानिमानवे ॥

केवायोगंकरिष्यन्तिन्यासजातानिकेऽपि वा ॥ ६७ ॥

अर्थ—यह बुरी कियाओंके करनेवाले, क्रूर और धर्ममार्गका लोप करनेवाले होंगे । हे प्रभो ! आपने प्राणियोंके मंगलार्थ जिन कार्योंका उपदेश दियाहै मैं जानती हूं कि, कलियुगमें वह कार्य मनुष्योंके लिये विपरीत होजायेंगे. कोई योगाभ्यासमें रत होगा कोई न्यासादि कार्य करेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्तोत्रपाठयन्त्रलिपिं पुंश्चर्य्याजगत्पते । ।

युगधर्मप्रभावेणस्वभावेनकलौनराः ॥ ६८ ॥

भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताःसर्वथापापकारिणः । ।

तेषामुपायंदीनेश ! कृपयाकथयप्रभो ! ॥ ६९ ॥

अर्थ-हे जगन्नाथ ! कौन पुरुष स्तोत्र पढ़कर यंत्रलिपी और पुरश्चरण करेगा, युगधर्मके प्रभावसे स्वभावसेही कलि-युगी मनुष्य अत्यंत दुर्वृत्त और पाप करनेवाले होंगे। हे प्रभो ! हे देवेश ! हे दीनेश ! उनका क्या उपाय होगा सो आप कृपा करके मुझसे कहें ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

आयुरारोग्यवर्चस्यंवलवीर्य्यविवर्धनम् ।

विद्याबुद्धिप्रदंनृणामप्रयत्नशुभङ्करम् ॥ ७० ॥

अर्थ-किस उपाय करनेसे मनुष्योंकी आयु आरोग्य, तेज, बल और वीर्य बढ़े, किस उपायसे मनुष्यकी विद्या, बुद्धि, तेज हो और बिनाही यंत्र किये मंगल प्राप्त होजाय ॥ ७० ॥

येनलोकाभविष्यन्तिमहाबलपराक्रमाः ।

शुद्धचित्ताःपरहितामातापित्रोःप्रियङ्कराः ॥ ७१ ॥

अर्थ-जिससे मनुष्य महाबलवान्, पराक्रमी, विशुद्ध चित्त, पराया हित करनेमें रत और उस कार्यका जो माता पिताको प्याराहो करनेवालाहो ॥ ७१ ॥

स्वदारनिष्ठाःपुरुषाःपरस्त्रीषुपराङ्मुखाः ।

देवतागुरुभक्ताश्चपुत्रस्वजनपोषकाः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जिस प्रकारसे मनुष्य अपनी स्त्रीमें रत, परस्त्रीविमुख देवता व गुरुभक्त और पुत्र व स्वजनोका प्रतिपालक होवे ॥ ७२ ॥

ब्रह्मज्ञाब्रह्मविद्याश्चब्रह्मचिन्तनमानसाः ।

सिद्ध्यर्थंलोकयात्रायाःकथयस्वहिताययत् ॥ ७३ ॥

अर्थ—पुरुष जिस प्रकारसे ब्रह्मज्ञानसंपन्न और ब्रह्मपरायण हो, उस उपायको आप लोकयात्राकी सिद्धि और सबका हित करनेके लिये वर्णन करें ॥ ७३ ॥

कर्तव्यंयदकर्तव्यंवर्णाश्रमविभेदतः ।

विनात्वांसर्वलोकानांकल्पात्ता भुवनत्रये ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनि-
स्तारोपायप्रश्नो नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

अर्थ—वर्णाश्रमके विभागानुसार जो कुछ कर्तव्य और जो अकर्तव्य हैं वह सब आप प्रगट करें, आपके अतिरिक्त सबका उद्धार करनेवाला इस त्रिलोकमंडलमें और कौन है ? ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदा-
द्यासदाशिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
जीवनिस्तारोपायप्रश्नो नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

द्वितीयोल्लासः २.

इतिदेव्यावचःश्रुत्वाशङ्करोल्लोकशङ्करः ।

कथयामासतत्त्वेनमहाकारुण्यवारिधिः ॥ १ ॥

अर्थ—इसके उपरांत करुणासागर लोकमंगलकारी महादेवजी, इसप्रकार देवी पार्वतीजीकी उक्ति सुनकर यथार्थ तत्त्वके कहनेका आरंभ करते हुए ॥ १ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

साधु पृष्टं महाभागे । जगतांहितकारिणि । ।

एतादृशः शुभः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥ २ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिव बोले-हे महाभागे ! तुम जगत्का हित करनेवाली हो. तुमने अत्यन्त सुन्दर बात पूछी है, पहले किसीने कभी ऐसा प्रश्न नहीं किया ॥ २ ॥

धन्यासि सुकृतज्ञासि हितासिकलिजन्मनाम् ।

यद्यदुक्तं त्वया भद्रे ! सत्यं सत्यं यथार्थतः ॥ ३ ॥

अर्थ-तुम धन्य और सुकृतज्ञ हो वारतवमे तुमही कलि-युगके जीवोंका हित करनेवाली हो. हे भद्रे ! तुमने जो कुछ मेरे प्रति कहा सो सब सत्य है ॥ ३ ॥

सर्वज्ञात्वं त्रिकालज्ञाधर्मज्ञापरमेश्वरि ।

भूतं भवद्भविष्यदधर्मयुक्तं त्वया प्रिये ॥ ४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! तुम सर्वज्ञ और त्रिकालकी जाननेवाली हो. तुमने भूत, भविष्यत् और वर्तमान विषयमें जो धर्मानुगत बातें कहीं ॥ ४ ॥

यथा तत्त्वं यथान्यायं यथायोग्यं न संशयः ।

कलिकल्मषदीनानां द्विजादीनां सुरेश्वरि ॥ ५ ॥

अर्थ-इसमें कोई संदेह नहीं कि, वह वास्तवमें न्यायानुसार सत्य है. हे सुरेश्वरि ! कलिकल्मषसे ग्रसित, दीनभावको प्राप्त हुए द्विजादियोंको ॥ ५ ॥

मेध्यामेध्याविचाराणां शुद्धिः श्रौतकर्मणा ।

न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-पवित्र अपवित्रका विचार नहीं रहैगा, इस कारण वह लोग श्रुति, स्मृति और संहितामें कहे कर्म संपादन करके किस प्रकारसे शुद्ध होंगे ॥ ६ ॥

सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यंसत्यंमयोच्यते ।

विनाह्यागममार्गेणकलौनास्तिगतिःप्रिये ! ॥ ७ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मैं सत्य सत्य और फिर सत्य करके सत्यही कहता हूँ कि, कलिकालमें आगमपंथके सिवाय जीवके छुट-कारेकी और दूसरी गति नहीं है ॥ ७ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणादौमयैवोक्तंपुराशिवे ! ।

आगमोक्तविधानेनकलौदेवान्यजेत्सुधीः ॥ ८ ॥

अर्थ-हे शिवे ! मैंने पहले श्रुतिस्मृति और पुराणादिमें कहा है कि, कलियुगमें तान्त्रिकविधानसे पंडित लोग देवताओंकी पूजा करेंगे ॥ ८ ॥

कलावागममुल्लङ्घ्ययोऽन्यमार्गेप्रवर्तते ।

नतस्यगतिरस्तीतिसत्यंसत्यंनसंशयः ॥ ९ ॥

अर्थ-इस कालमें जो पुरुष आगमके मार्गको लांघकर, और मार्गमें दौड़ता है उसको सद्गति नहीं मिलती यह सम्पूर्ण सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ९ ॥

सर्वेवैदेःपुराणैश्चस्मृतिभिःसंहितादिभिः ।

प्रतिपाद्योऽस्मिनान्योऽस्तिप्रभुर्जगतिमांविना ॥ १० ॥

अर्थ-समस्त वेदशास्त्रोंसे, समस्त पुराणोंसे, समस्त स्मृतियोंसे, और समस्त संहिताओंसे, केवल मैंही प्रतिपाद्य हुआ हूँ (वास्तविक) इस संसारमें मेरे सिवाय और कोई प्रभु नहीं है १०

आभनन्तिचतेसर्वेभत्पदंलोकपावनम् ।

मन्मार्गविमुखालोकाःपापण्डाव्रह्मवातिनः ॥ ११ ॥

अर्थ-वेदादि समस्त ग्रंथ मेरे पदको लोकपावन कहकर

कीर्तन किया करते हैं, जो लोग मुझसे विमुख हैं वह ब्रह्म-
हत्याके पापमें लिप्त और घोर पाखंडी हैं ॥ ११ ॥

अतोमन्मतमुत्सृज्ययोयत्कर्मसमाचरेत् ।

निष्फलं तद्भवेद्देवि ! कर्त्तापिनारकी भवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-हे देवि ! मेरे मतको लंघन करके जो पुरुष कर्मका
अनुसरण करता है । उसका वह कर्म निष्फल होजाता है
और कर्म कर्त्ताभी नरकमें पड़ता है ॥ १२ ॥

मूढो मन्मतमुत्सृज्य योऽन्यन्मतमुपाश्रयेत् ।

ब्रह्महापितृहास्त्रीघ्नः स भवेन्नात्र संशयः ॥ १३ ॥

अर्थ-जो मूढ़ मनुष्य मेरे मतको छोड़कर और मतका
आश्रय ग्रहण करता है, इसमें कोई संदेह नहीं कि, वह पुरुष
ब्रह्मघाती और स्त्रीहत्याकारी होता है ॥ १३ ॥

कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः ।

शस्ताः कर्मसु सर्वे पुजयज्ञक्रियादिषु ॥ १४ ॥

अर्थ-कलिकालके मध्य तंत्रमें कहे हुए समस्त मंत्र सिद्ध
और शीघ्र सिद्धिके देनेवाले होते हैं यह समस्त मंत्र, समस्त-
कर्म और जपयज्ञादिमें श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विपरीनो रगा इव ।

सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव ॥ १५ ॥

अर्थ-जिस प्रकार विषहीन सर्पकी अवस्था होजाती है,
वैसेही इस समय वैदिकमन्त्रादि वीर्यरहित और मृतकतुल्य
होरहे हैं वह मंत्र सत्ययुग, त्रेता और द्वापर युगके अधि-
कारमें थे ॥ १५ ॥

पाञ्चालिका यथा भित्तौ सत्त्वंन्द्रियसमन्विताः ।

अमूरशक्ताः कार्येषु तथा न्ये मन्त्रराशयः ॥ १६ ॥

अर्थ-जिसप्रकार गृहकी भीतमें खिंचीहुई चित्र-
इन्द्रियोंसे युक्त होनेपरभी कार्यके सिद्ध करनेकी साम
नहीं रहती, वैसेही अवस्था मन्त्रोंकी है ॥ १६ ॥

अन्यमंत्रैः कृतं कर्म वन्ध्यास्त्रीसङ्गमो यथा ।

न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम् ॥ १७ ॥

अर्थ-जिसप्रकार बाँझका संग करनेसे पुत्रकी प्राप्ति नहीं
होती, वैसेही और मन्त्रोंकी सहायताके द्वारा कर्म करनेसे
क्रिया सिद्ध नहीं होती वरन् श्रम निरर्थक होता है ॥ १७ ॥

कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिं मिच्छति यो नरः ।

तृपितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥ १८ ॥

अर्थ-जो पुरुष कलिकालके विषय और शास्त्रोंमें कहे हुए
उपायोंसे सिद्ध होना चाहता है, वोह मूढ़ प्यासा होकर
गंगाजीके किनारे कुआ खोदता है ॥ १८ ॥

मद्भक्रादुदितं धर्ममहित्वान्यद्धर्ममीहते ।

अमृतं स्वगृहेत्यक्त्वा क्षीरमार्कं स वाञ्छति ॥ १९ ॥

अर्थ-जो मनुष्य मेरे मुखसे निकले हुए धर्मकी अवहेलना
करके धर्मको ग्रहण करताहै वोह पुरुष अपने घरमें रखे
हुए अमृतको छोड़कर आकके सारभागको चाहता है ॥ १९ ॥

नान्यः पन्थामुक्तिहेतुरिहामुवसुखाप्तये ।

यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥ २० ॥

अर्थ-जिसप्रकार तंत्रमें कहाहुआ मार्ग मोक्ष और सुखके
लिये उपयोगी है, वैसे मुक्तिदायक और सुखविधायक
दूसरा पन्थ दृष्ट नहीं आता ॥ २० ॥

तन्त्राणिवहुधोक्तानि नानाख्यानान्वितानि च ।

सिद्धानां साधकानाञ्च विधानानि च भूरिशः ॥ २१ ॥

कीर्तन हमने अनेकप्रकारके आख्यानोसे युक्त अनेकप्रका-
हृततन्त्र प्रकाशित कियेहैं, उनमें साधक व सिद्धोंके अर्थ नाना
वधकी व्यवस्था लिखी है ॥ २१ ॥

अधिकारिविभेदेनपशुबाहुल्यतःप्रिये ! ।

कुलाचारोदितंधर्मगुप्तार्थकथितंकचित् ॥ २२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! अधिकारीभेदमें पशुभावकी अधिकता
होनेके कारण रक्षाके लिये कुलाचारगत धर्मके गुप्त अर्थ
प्रगट किये हैं ॥ २२ ॥

जीवप्रवृत्तिकारीणिकानिचित्कथितान्यपि ।

देवानानाविधाःप्रोक्तादेव्योऽपिवहुधाप्रिये ! ॥ २३ ॥

अर्थ-किसी किसी स्थलमें जीवोंकी प्रवृत्तिकेलिये अनुरूप
व्यवस्था करी है. हे प्रिये ! हमने अनेकप्रकारके देव और
अनेकप्रकारकी देवियोंका तत्त्व प्रगट किया है ॥ २३ ॥

भैरवाश्चैववेतालावटुकानायिकागणाः ।

शाक्ताःशैववैष्णवाश्चसौरैराणपतादयः ॥ २४ ॥

अर्थ-भैरव, वेताल, बटुक, नायिका, शाक्त, शैव, वैष्णव
सौर और राणपत्यगणोंका विषयभी वर्णन किया है ॥ २४ ॥

नानामन्त्राश्चयन्त्राणिसिद्धोपायान्यनेकशः ।

भूरिप्रयाससाध्यानियथोक्तफलदानिच ॥ २५ ॥

अर्थ-(इसके अतिरिक्त) अनेकप्रकारके मंत्र यंत्र और
यथोक्तफलदायक, बहुतसे श्रमसे सिद्ध होनेवाली अनेक
प्रकारकी सिद्धियोंका उपायभी कहा है ॥ २५ ॥

यथायथाकृताःप्रश्नायेनयेनयदायदा ।

तदातस्योपकारायतथैवोक्तंमयाप्रिये ! ॥ २६ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! जिसने जिस २ समय जैसा जैसा प्रश्न किया है, मैंने उसी समय उन लोगोंके मंगलार्थ वैसाही उत्तरभी दिया है ॥ २६ ॥

सर्वलोकोपकारायसर्वप्राणिहितायच ।

युगधर्मानुसारेणयाथातथ्येनपार्वति ! ॥ २७ ॥

अर्थ—हे पार्वति ! मैंने युगधर्मके अनुसार सर्वलोक और प्राणियोंके मंगलार्थ यथार्थ स्वरूपसे यह धर्मकीर्तन किया है २७

त्वयायादृक्कृताःप्रश्नानकेनापिपुराकृताः ।

तवस्नेहेनवक्ष्यामिसारात्सारंपरात्परम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इस समय जो प्रश्न तुमने किया पहला ऐसा प्रश्न कभी किसीने नहीं किया इस क्षणमें तुम्हारे स्नेहके वश हो, इस तत्वका जो कि परेसेभी परे और सारकाभी सार है वह वर्णन करताहूँ ॥ २८ ॥

वेदानामागमानाञ्चतन्त्राणाञ्चविशेषतः ।

सारमुद्धृत्यदेवेशि ! तवाग्रेकथ्यते मया ॥ २९ ॥

अर्थ—हे देवि ! समस्त वेद, आगम और विशेष करके तंत्रोंके सारको उद्धृत करके मैं तुम्हारे आगे कहताहूँ ॥ २९ ॥

यथानरेपुतन्त्रज्ञाःसरितांजाह्नवीयथा ।

यथाहंत्रिदिवेशानामागमानामिदंतथा ॥ ३० ॥

अर्थ—जिस प्रकार मनुष्योंमें तांत्रिक पुरुष श्रेष्ठ हैं जैसे नदियोंमें गंगाजी बड़ी हैं, जिसप्रकार देवताओंके मध्य में देवताधिपति हैं वैसेही तंत्रोंमें यह महानिर्वाणतंत्र श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

कीर्तः ^{किंवदं} किपुराणैश्च किंशास्त्रैर्वहुभिः शिवे ॥

ह- ^{विशतिः} सिद्धिः ॥ ३१ ॥

वेद, पुराण और बहुतसे शास्त्रोंका अनुशीलन करनेसे क्या फल लाभ हुआ करता है, हे देवि! जो यह महान्तंज जाना हुआ हो तो समस्त सिद्धियोंके प्राप्त करनेमें बाधा नहीं रहती ॥ ३१ ॥

यतो जगन्मङ्गलाय त्वया हं विनियोजितः ।

अतस्ते कथयिष्यामि यद्विश्वाहितकृद्रवेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-(देवि) जब कि तुमने जगत्के हितार्थ मुझको नियोजित किया है, तब जिससे जगत्का हित हो, उस विषयको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ३२ ॥

कृते विश्वहिते देवि ! विश्वेशः परमेश्वरि ।

प्रीतो भवति विश्वात्मा यतो विश्वं तदाश्रितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-हे देवि! हे परमेश्वरि! जगत्का हित होनेपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं कारण कि, वह विश्वके आत्मास्वरूप हैं और विश्व (संसार) उनके आश्रयमें स्थिर हो रहा है ॥ ३३ ॥

स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।

स्वप्रकाशः सदा पूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ३४ ॥

अर्थ-वह एक अद्वितीय, सत्य, नित्य, परात्पर, ब्रह्मादि देवताओंसे भी परे हैं और स्वयंप्रकाश-अर्थात् उनको चंद्र सूर्यादिके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं है, वह सतत पूर्ण और सच्चिदानन्द हैं ॥ ३४ ॥

निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः ।

गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदृग्बिभुः ॥ ३५ ॥

अर्थ—बोह निर्विकार. निराधार (आश्रयशून्य). निर्विशेष (स्वगत भेदरहित) निराकुल (आकुलता शून्य), गुणातीत (शीत उष्ण सुखदुःखादिसत्त्वादि वा इनसेभी परे) सर्वसाक्षी (सबके शुभाशुभकर्मोंको साक्षात् देखनेवाला), 'सर्वात्मा (सबके स्वरूप) और सर्वद्रष्टा (सब पदार्थोंके देखनेवाले जो कि लोकमें हैं) ॥ ३५ ॥

गूढः सर्वेषुभूतेषुसर्वव्यापिसनातनः ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासःसर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—बोह गूढभावसे सर्वप्राणियोंमें विराजमान रहते हैं वह सर्वव्यापि और सनातन (आदिअन्तशून्य हैं) उन्होंने समस्त इन्द्रियोंको और उनकी शक्तिको प्रकाशित किया तो है; परन्तु उनको इन्द्रियां नहीं हैं ॥ ३६ ॥

लोकातीतो लोकहेतुर्वाङ्मनसगोचरः ।

सर्वेतिविश्वं सर्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन ॥ ३७ ॥

अर्थ—वह लोकोंसे परे हैं और सबलोकोंके कारण हैं, वोह मन और वाणीसे नहीं जानेजाते, वह सर्वज्ञ पुरुष सधही जान सके हैं; परन्तु उनको नहीं कोई जानसक्ता ॥ ३७ ॥

तदधीनं जगत्सर्वत्रैलोक्यं सचराचरम् ।

तदालम्बनतास्तिष्ठेदवितर्क्यमिदं जगत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—चराचरसहित यह त्रिलोकमंडल उनके अवलंबनसे स्थित हो रहा है। यह अप्रतर्क्य जगत् उसकी अधीनताको नहीं छोड़ सक्ता ॥ ३८ ॥

तत्सत्यतामुपाश्रित्य सद्ब्रह्मातिष्ठथक् पृथक् ।

तैवैवेतुभूतेन वयं जातामहेश्वरि ! ॥ ३९ ॥

अर्थ-यह अनित्य जगत उनकी सत्यताके आश्रयसे सत्यकी समान पृथग्भावसे प्रकाशित हो रहा है; उनहीके हेतुभूत होनेसे हम उनसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥

कारणं सर्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।

लोकेषु सृष्टिकरणात् स्रष्टा ब्रह्मोतिगीयते ॥ ४० ॥

अर्थ-वही एक परमेश्वर सर्वभूतोंका कारण है, उसने सृष्टि की है, इसकारण उसका नाम सृष्टिकर्ता और बृहत् होनेसे उसका नाम ब्रह्मा है ॥ ४० ॥

विष्णुः पालयिता देवी । संहर्ता हंत दिच्छया ।

इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे तद्द्रव्यवर्तिनः ॥ ४१ ॥

अर्थ-हे देवि ! विष्णुजी उनकी इच्छासे पालन करते हैं, मैं भी संहार कार्यमें नियुक्त हो रहा हूँ । इंद्रादि लोकपालगण भी उनकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं ॥ ४१ ॥

स्वेस्वेऽधिकारे निरतास्ते शासन्ति तदाज्ञया ।

त्वं पराप्रकृतिस्तस्य पूज्या सिभुवनतये ॥ ४२ ॥

अर्थ-उनकी आज्ञासे वे अपने २ अधिकारमें नियुक्त रहकर इस जगत्का शासन करते हैं तुम प्रधान प्रकृति हो इस कारण तुम त्रिलोकीमें पूजित हुई हो ॥ ४२ ॥

तेनान्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।

स्वस्वकर्मप्रकुर्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ॥ ४३ ॥

अर्थ-सर्वान्तर्यामी उस ईश्वरके नियोगसे जीवगण अपना अपना कर्म किया करते हैं, कोई कभी स्वाधीन भावसे नहीं चलसक्ता ॥ ४३ ॥

यद्गयाद्वातिवातोऽपिसूर्यस्तपतियद्गयात् ।

वर्षन्तितोयदाः कालेषुष्पन्तितरवोवने ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिसके भयसे वायु प्रवाहितहो रही है, सूर्य भगवान् किरणोंको फैला रहे हैं, मेघ समयपर जल वर्षाते हैं और वनमें वनवृक्ष फूलते हैं ॥ ४४ ॥

कालंकालयतेकालेमृत्योर्मृत्युर्भियोभयम् ।

वेदान्तवेद्योभगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ॥ ४५ ॥

अर्थ—जो प्रलयमें निमेषादि कालकोभी ग्रास करते हैं, जो मृत्यु और भयकेभी भय स्वरूप हैं, जो वेदान्तवेद्य यत् तत् शब्दसे उपलक्षित हैं जो भगवान् हैं ॥ ४५ ॥

सर्वदेवाश्चदेव्यश्चतन्मयाः सुरवन्दिते ।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ततन्मयंसकलंजगत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—हे देववन्दिते ! समस्त देवदेवीगण और ब्रह्मसे आरंभ करके स्तम्ब (तृणादिक तृणका अग्रभाग पर्यन्त समस्त) जगत् तन्मय है ॥ ४६ ॥

तस्मिस्तुष्टेजगत्तुष्टंप्रीणितेप्रीणितंजगत् ।

तदाराधनतोदेवि । सर्वेषांप्रीणनंभवेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ—उन सर्वेश्वरके परितुष्ट करनेसे जगत् परितुष्ट रहता है और प्रसन्न होनेसे जगत् प्रसन्न होताहै. हे देवि ! उनकी आराधनासे सबको प्रीति प्राप्त हो जाती है ॥ ४७ ॥

तरोर्मूलाभिपेकेणयथातद्भुजपल्लवाः ।

तृप्यन्तितदनुष्ठानात्तथासर्व्वेमरादयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखा व पत्र बढ़ते हैं, वैसेही उन परमेश्वरकी आराधनासे समस्त देवता तृप्तिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४८ ॥

यथातर्चनाद्ध्यानात्पूजनाजपनात्प्रिये ! ।

भवन्तितुष्टाःसुन्दर्यस्तथाजानीहिसुव्रते ! ॥ ४९ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! प्रिये ! तुम्हारी अर्चना करनेसे तुम्हारा ध्यान करनेसे, तुम्हारी पूजा करनेसे और तुम्हारा जप करनेसे मातृगण संतुष्ट हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

यथागच्छन्तिसरितोऽवशेनापिसरित्पतिम् ।

तथार्चादीनिकर्माणितदुद्देश्यानिपार्व्वति ! ॥ ५० ॥

अर्थ-हे पार्व्वति ! जिस प्रकार नदियें, अवश होकर समुद्रमें प्रवेश करती हैं, वैसेही पूजाध्यानादि समस्त कर्म केवल उस एक ईश्वरमें पहुँच जाते हैं ॥ ५० ॥

योयोन्यान्यान्यजेंदेवाञ्छ्रद्धयायद्यदासये ।

तत्तददातिसोऽध्यक्षस्तैस्तैर्देवगणैःशिवे ! ॥ ५१ ॥

अर्थ-जो जो पुरुष जिस २ वस्तुको पानेके अभिप्रायसे श्रद्धासहित जिस २ देवताकी अर्चना करते हैं, परमेश्वर अध्यक्षस्वरूपसे उन देवताओंके द्वारा उन उन आदमियोंको वैसेही फलदान कराताहै ॥ ५१ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतवाग्रेकथ्यतेप्रिये ! ।

ध्येयःपूज्यःसुखाराध्यस्तंविनानास्तिमुक्तये ॥ ५२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! और अधिक तुमसे क्या कहूँ, संक्षेपसे केवल यही कहताहूँ कि, उस परमेश्वरकोही ध्यान चाहिये वही पूज्य हैं वही सुखाराध्य हैं उसके अतिरिक्त जीवकी मुक्तिका दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५२ ॥

नायासोनोपवासश्चकायक्लेशोनविद्यते ।

नैवाचारादिनियमोनोपचाराश्चभूरिशः ॥ ५३ ॥

अर्थ-ईश्वरकी आराधना करनेमें परिश्रम उपवास, व

आचार विचारादिका प्रयोजन नहीं है और ऐसे (बहुत)
आचारकी भी आवश्यकता नहीं ॥ ५३ ॥

नदिकालविचारोऽस्तिनमुद्रान्याससंहतिः ।

यत्साधनेकुलेशानितंविनाकोऽन्यमाश्रयेत् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनि-
स्तारोपाय प्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमो नाम
द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

अर्थ-इनकी साधनामें दिक् वा कालके विचारका प्रयो-
जन नहीं है, मुद्रा वा न्यासकीभी आवश्यकता नहीं है अत-
एव हे कुलेशानि ! उन परमेश्वरके सिवाय किसी दूसरेका
आश्रय और कौन ग्रहण करेगा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे १० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारो-
पायप्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमोनाम द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

तृतीयोल्लासः ३.

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेवमहादेव ! देवतानांगुरोगुरो ।

वक्तात्वंसर्वशास्त्राणांमन्त्राणांसाधनस्यच ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजी बोली-हे देव ! महादेव ! देवताओंके जो
गुरु हैं, आप उनकेभी गुरु हैं, आप समस्तशास्त्र, मंत्र और
साधनके वक्ता हैं ॥ १ ॥

कथितंयत्परंब्रह्मपरमेशंपरात्परम् ।

यस्योपासनतोमर्त्योभुक्तिमुक्तिञ्चविन्दति ॥ २ ॥

अर्थ-आपने जिन परात्पर परमेश्वर परब्रह्मका वर्णन किया और जिनकी उपासना करनेमें मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त करसके हैं ॥ २ ॥

केनोपायेन भगवन् ! परमात्मा प्रसीदति ।

किंतस्य साधनं देव ! मन्त्रः को वा प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥

अर्थ-हे भगवन् ! किस उपायसे वह परमात्मा प्रसन्न होते हैं ? हे देव ! उनका साधन वा मंत्र किस प्रकारसे है ? ॥ ३ ॥

किं ध्यानं किं विधानं अपरे शंस्यमहात्मनः ।

तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो ! ॥ ४ ॥

अर्थ-उन परमात्मा परमेश्वरका ध्यान क्या है और विधि कैसी है, हे प्रभो ! मैं उसका यथार्थ तत्त्व श्रवण करनेके लिये उत्सुक हुई हूं अतएव कृपा करके मुझसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीलक्ष्मीशिव उवाच ।

अतिगुह्यं परं तत्त्वं शृणु मत्प्राणवल्लभे ! ।

रहस्यमेतत्कल्याणि ! न कुत्रापि प्रकाशितम् ॥ ५ ॥

अर्थ-श्रीमहादेवजी बोले-हे प्राणवल्लभे ! तुम मुझसे यह अतिगुप्त ब्रह्मतत्त्व श्रवण करो, मैंने इस रहस्यको कहीं नहीं प्रकाशित किया है ॥ ५ ॥

तव स्नेहेन वक्ष्यामि मम प्राणाधिकं परम् ।

ज्ञेयं भवति तद्ब्रह्म सच्चिद्विश्वमयं परम् ॥ ६ ॥

अर्थ-यह गुप्त विषय मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्यारा पदार्थ है, तुम्हारे प्रति स्नेह होनेसे मैं तुमसे कहता हूं उन सच्चित विश्वात्मा परब्रह्मको किस प्रकारसे जाना जासکتा है ॥ ६ ॥

अभिलाषी हैं, उनको आगे लिखाहुआ साधन करना चाहिये, मैं उस साधनत्वको कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ ११ ॥

प्रणवपूर्वमुद्धृत्यसच्चित्पदमुदाहरेत् ।

एकंपदान्तेब्रह्मेतिमन्त्रोद्धारःप्रकीर्तितः ॥ १२ ॥

अर्थ-पहले तुमसे मंत्रोद्धार वर्णन करताहूँ प्रथम “प्रणव” कीर्तन करके फिर “सच्चित्” पद उच्चारण करना चाहिये फिर “एकम्” पदकेपीछे “ब्रह्म” पद कीर्तन करनेसे “ओं सच्चिदेकं ब्रह्म” मंत्रका उद्धार होगा ॥ १२ ॥

सन्धिक्रमेणमिलितःसप्ताणोऽयंमनुर्मतः ।

तारहीनेनदेवेशि ! पट्टवर्णोऽयंमनुर्भवेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-यह मंत्र संधिक्रमके अनुसार मिलकर सप्तवर्ण होगा, हे देवि ! ओंकार अलग करके उच्चारण करनेसे यह पट्टक्षर होगा ॥ १३ ॥

सर्वमन्त्रोत्तमःसाक्षाद्धर्मार्थकाममोक्षदः ।

नात्रसिद्धाद्यपेक्षास्तिनारिमित्रादिदूषणम् ॥ १४ ॥

अर्थ-समस्त मंत्रोंसे यह मंत्र श्रेष्ठ है यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका देनेवाला है, इसमें सिद्ध व असिद्ध व अरि-मित्र दोषकी संभावना नहीं है ॥ १४ ॥

नतिथिर्नचनक्षत्रंनराशिगणनन्तथा ।

कुलाकुलादिनियमोनसंस्कारोऽत्रविद्यते ।

सर्वथासिद्धमन्त्रोऽयंनात्रकार्य्याविचारणा ॥ १५ ॥

अर्थ-इसमें तिथि, नक्षत्र, राशिगण, कुलाकुलादिके नियम या संस्कारकी आवश्यकता नहीं है । यह मंत्र सर्वथा सिद्ध होजाता है । इसमें कार्यका विचार नहीं है ॥ १५ ॥

१ पट्टवर्णो यो मनुर्मत इति पठ्यते । २ कुलाकुलानां नियमः इत्यन्ये पठन्ति ।

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्धदिलभ्यते ।

तदा तद्भक्तो ज्ञात्वा जन्मसाफल्यमाप्नुयात् ॥ १६ ॥

अर्थ-जो जन्मान्तरकी ^{उत्कृष्ट} कृतिके फलसे सद्गुरु प्राप्त होजाय तो उसके मुखसे मंत्र श्रवण करके शिष्यगण जन्म सफल करसक्ते हैं ॥ १६ ॥

चतुर्वर्गकरे कृत्वा परब्रेहचमोदते ॥ १७ ॥

अर्थ-(तब) मनुष्य चतुर्वर्गको प्राप्त करके यहाँ और पर-लोकमें आनंद भोग करसक्ता है ॥ १७ ॥

सधन्यः सकृतार्थश्च सकृती स च धार्मिकः ।

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ १८ ॥

अर्थ-वही धन्य है, वही कृतार्थ है, वही कृती है, वही धार्मिक है, उसनेही सब तीर्थोंमें स्नान किया है और सब यज्ञोंमें दीक्षित हुआ है ॥ १८ ॥

सर्वशास्त्रेषु निष्णातः सर्वलोकप्रतिष्ठितः ।

यस्य कर्णपथोपान्तप्राप्तो मेन्द्रमहामणिः ॥ १९ ॥

अर्थ-वह सर्वशास्त्रोंका वेत्ता है (अधिक क्या कहें) उसकी सबलोकोंमें प्रतिष्ठा है कि, जिसके कर्णकुहरमें ब्रह्म मंत्ररूप महामणिने स्थान पाया है ॥ १९ ॥

धन्यामातापिता तस्य पवित्रं तत्कुलं शिवे ।

पितरस्तस्य सन्तुष्टा मोदन्ते त्रिदशैः सह ।

गायन्ति गायन्ती गाथां पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ २० ॥

अर्थ-हे शिवे ! उसके माता पिता धन्य होजाते हैं कुल

पवित्र होजाता है उसके पितृलोक संतुष्ट होकर देवताओंके साथ आनन्द भोगते हुए इस गाथाको गाया करते हैं कि॥ २०॥

अस्मत्कुलेकुलश्रेष्ठो जातोद्दहोपदेशिकः ।

किमस्माकंगयापिण्डैर्नक्तोर्थः श्राद्धतर्पणैः ॥ २१ ॥

अर्थ-हमारे वंशमें उत्पन्न हुए पुत्रने ब्रह्ममंत्रसे दीक्षित हो कुलको पवित्र किया है । हमारे निमित्त गया वा तीर्थक्षेत्रमें पिण्ड देने या श्राद्धादि करनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २१ ॥

किंदानैः किजपैर्होमैः किमन्यैर्वहुसाधनैः ।

वयमक्षयतृप्ताः स्मः सत्पुत्रस्यास्य साधनात् ॥ २२ ॥

अर्थ-जब कि, हमारे कुलमें सत्पुत्र उत्पन्न होकर ब्रह्मसाधनासे सिद्ध हुआ है तब हमारे लिये दान, जप, होम, वा और साधनाओंसे क्या प्रयोजन है (अधिक क्या कहें) हमने अक्षयतृप्तिकी प्राप्ति किया है ॥ २२ ॥

गृणु देवि ! जगद्ब्रह्मे ! सत्यं सत्यं मयोच्यते ।

परब्रह्मोपासकानां किमन्यैः साधनान्तरैः ॥ २३ ॥

अर्थ-हे देवि ! तुम जगत्पूज्य हो मैं तुमसे सत्य ही कहना हूँ कि, जो लोग परब्रह्मके उपासक हैं उनको और किसी साधनाका प्रयोजन नहीं है ॥ २३ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत् ।

ब्रह्मभूतस्य देवेशि ! किमवाप्यं जगद्वये ॥ २४ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! ब्रह्ममंत्रको श्रवण करते ही देही ब्रह्ममय होजाता है, जो ब्रह्ममय होजाता है और जो ब्रह्ममय होस ता है, उसके लिये इस जगमें कौनसी वस्तु दुर्लभ है ॥ २४ ॥

किं कुर्वन्ति ग्रहारुणवेतालश्चेतकादयः ।

पिशाचागुह्यकाभूताडाकिन्योमातृकादयः ।

तस्यदर्शनमात्रेणपलायन्तेपराङ्मुखाः ॥ २५ ॥

अर्थ—ग्रह, बेताल, चेटकादिपिशाचगण, गुह्यक, भूत, डाकिनी और मातृकादिगण रुठकर उसका क्या करसक्ती हैं ॥ २५ ॥

रक्षितोब्रह्ममन्त्रेणप्रावृत्तोब्रह्मतेजसा ।

किंविभेतिग्रहादिभ्योमार्त्तण्डइवचापरः ॥ २६ ॥

अर्थ—जो ब्रह्ममंत्रसे भलीभाँति रक्षित है और ब्रह्मतेजसे भलीभाँति ढकाहुआ है वोह दूसर सूर्यके समान है वह ग्रहादिसे क्या भय पासक्ता है ? ॥ २६ ॥

तद्वृत्तेभयापन्नाःसिंहद्वयायथागजाः ।

विद्रवन्तिचनश्यन्तिपतद्गाइवपावके ॥ २७ ॥

अर्थ—सिंहको देखकर जैसी अवरथा हाथियोंकी होजाती है वैसे ही उसको देखकर ग्रहादि भागजाते हैं. अग्निमे पतंगोंकी जैसी दशा होजाती है वैसेही ग्रहगण उसके तेजसे नष्ट होजाते हैं ॥ २७ ॥

नतस्यदुरितंकिञ्चिद्ब्रह्मनिष्ठस्यदेहिनः ।

सत्यपूतस्यशुद्धस्यसर्वप्राणिहितस्यच ।

कोवोपद्रवमन्विच्छेदात्मावघातकंविना ॥ २८ ॥

अर्थ—सत्यपूत सबका उपकार करनेवाला और परिशुद्ध (निर्मल अंतःकरणवाले) ब्रह्मनिष्ठ पुरुष सदा रहें, इसकारण कोई पाप भी उसपर आक्रमण नहीं करसक्ता आत्मघातके सिवाय और कौन पुरुष ऐसे महात्माके प्रति उपद्रव करनेकी इच्छा करता है ॥ २८ ॥

ये द्रुह्यन्तिखलाःपापाःपरब्रह्मोपदेशिने ।

स्वद्रोहंतेप्रकुर्वन्तिनातिरिक्तायतः सतः ॥ २९ ॥

अर्थ-जो खलमतियुक्त पापाचारी पुरुष परब्रह्मोपासकके साथ विरुद्ध व्यवहार करते हैं, वह अपने आपही अपना बुरा करते हैं परब्रह्मका उपासक और ब्रह्म एकही है, अलग या दूसरा नहीं है ॥ २९ ॥

सतुसर्वहितःसाधुःसर्वेषांप्रियकारकः ।

तस्यानिष्टेकृतेदेवि ! कोवास्याग्निरुपद्रवः ॥ ३० ॥

अर्थ-हे देवि ! ब्रह्मोपासक पुरुष सबका हितकारी और साधु होता है, वस ऐसे महात्माका अनिष्ट करनेसे कौन पुरुष निरुपद्रव रहसक्ता है ? ॥ ३० ॥

मन्त्रार्थमन्त्रचैतन्ययोनैर्जानातिसाधकः ।

शतलक्षप्रजतोऽपितस्यमन्त्रोनसिद्ध्यति ॥ ३१ ॥

अर्थ-जो साधक मंत्रका अर्थ और उसकी चैतन्यशक्तिको नहीं जानता, वह शतलक्ष जप करनेसेभी सिद्ध नहीं हो-सक्ता ॥ ३१ ॥

अतोऽस्यार्थश्चैतन्यंकथयामिशृणुप्रिये ।।

अकारेणजगत्पातासंहर्तारस्यादुकारतः ।

मकारेणजगत्स्रष्टाग्रणवार्थउदाहृतः ॥ ३२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! इसकारणसे मैं इस मंत्रके अर्थको और उसकी चैतन्यशक्तिको कहता हूँ तुम श्रवण करो "अ" कारका अर्थ है जगत्पाता "उ" कारका अर्थ है संहारकर्ता, और "म" कारका अर्थ जगत्की सृष्टि करनेवाला है; प्रणव (ओं) का अर्थ ऐसा है ॥ ३२ ॥

सच्छब्देनसदास्थायिचिच्चैतन्यंप्रकीर्तितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-"सत्" शब्दका अर्थ सदास्थायि और "चित्" शब्दका अर्थ चैतन्य है ॥ ३३ ॥

एकमद्वैतमीशानिवृहत्त्वाद्ब्रह्मणीयते ।

मन्त्रार्थः कथितो देविसाधकाभीष्टसिद्धिदः ॥ १४२ ॥

अर्थ—हे देवि ! “एक” शब्दका अर्थ द्वैतभाववर्जित ब्रह्मच्छब्दमें “ब्रह्म” अर्थप्रयुक्त होता है. मैंने साधुओंके अभीष्टका देनेवाला इसमंत्रका अर्थ तुमसे कहा ॥ ३४ ॥

मन्त्रचैतन्यमेतत्तु तदधिष्ठातृदेवता ।

तज्ज्ञानं परमेशानि ! भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—इसके अधिष्ठातृ देवताके ज्ञान होनेका नामही मन्त्रचैतन्य है. हे परमेश्वर ! मन्त्रके अधिष्ठाता देवताके ज्ञानके द्वारा सिद्धि प्राप्त होजाती है ॥ ३५ ॥

अस्याधिष्ठातृदेवेशि ! सर्वव्यापिसनातनम् ।

अवितर्क्यनिराकारं वाचातीतं निरञ्जनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे देवेशि ! जो अवितर्क्य सर्वव्यापी, सनातन, निराकार और निरञ्जन है वही इस मंत्रके प्रतिपाद्य देवता हैं ॥ ३६ ॥

वाङ्मायाकमलाद्येन तारहीनेन पार्वति ! ।

दीयते विविधा विद्या मायाश्रीः सर्वतोमुखी ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे पार्वति ! यह मन्त्र प्रणव (ओ) रहित होके “ह्रीं” “श्रीं” को प्रणवस्थानमें प्राप्तकर विविध विद्या, माया और सर्वतोमुखी लक्ष्मी देता है (?) ॥ ३७ ॥

तारेण तारहीनेन प्रत्येकं सकलं पदम् ।

गुग्मायुग्मक्रमेणापि मन्त्रोऽयं विविधो भवेत् ॥ ३८ ॥

१. तस्याधिष्ठातृ इति पाठान्तरम् । २. अवितर्क्य निरातङ्गमिति पाठस्तु नास्मभ्यं रोचते ।

(१) जिसप्रकार में सच्चिदेकं मन्त्र, इस मंत्रके द्वारा विद्या, ह्रींसच्चिदेकं मन्त्र, इस मंत्रके माया, श्रीसच्चिदेकं मन्त्र, इस मंत्रसे लक्ष्मीकी आराधना की जाती है ।

अर्थ-जो खल्वेक प्रत्येक पदमें अथवा समस्तपदोंमें प्रणवयुक्त साथविरुद्धवृत्त करनेसे किंवा इसके दो २ पदोंमें प्रणवयुक्त करते हैं, अलग करनेसे अनेक प्रकारके मंत्र उत्पन्न होते हैं (१) ॥ ३८ ॥

ऋषिःसदाशिवो ह्यस्य छन्दोऽनुष्टुप्पुदाहृतम् ।

देवतापरमं ब्रह्म सर्वान्तर्यामिनिर्गुणम् ॥ ३९ ॥

अर्थ-इस मंत्रके ऋषि सदाशिव हैं, छंद अनुष्टुप् है, देवता सर्वान्तर्यामि निर्गुण परब्रह्म है ॥ ३९ ॥

चतुर्वर्गफलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्तितः ।

अङ्गन्यासकरन्यासौ कथयामि शृणु प्रिये ॥ ४० ॥

अर्थ-चतुर्वर्ग फलप्राप्तिको विनियोग करना होता है, हे प्रिये ! अङ्गन्यास और करन्यासका वर्णन करता हूँ श्रवण करो (२) ॥ ४० ॥

तारंसच्चिदेकमिति ब्रह्मेति सकलंततः ।

अङ्गुष्ठतर्जनीमध्यानामिकासु महेश्वरि ॥ ४१ ॥

(१) प्रत्येक पदमें प्रणव मिल कर यथा-ओमत्, ओचित्, ओम् एतम् आब्रह्म । प्रणवरहित करके यथा-सत् चित् एक ब्रह्म । समस्तपदमें प्रणव मिलकर यथा-ओमं बिदेकं ब्रह्म । प्रणवरहित यथा-रुचिदेकं ब्रह्म । दो दो पदोंमें प्रणव मिलकर यथा-ओं सद्ब्रह्म, ओ चित् ब्रह्म, ओ एतं ब्रह्म, आसचित्, ओचिदेकम् । प्रणवरहित करके यथा-सद्ब्रह्म, चिद्ब्रह्म, एक ब्रह्म, सचित्, चिदेकम् ॥ ३८ ॥

(२) चतुर्वर्गफल प्राप्ति के लिये विनियोग कीर्तन करना होगा ।

प्रयोगो यथा-किं रस, सदाशिव य ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः । हृदि सर्वान्तर्यामिनिर्गुण परब्रह्मणो देवताये नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये विनियोग । इस मंत्रसे ऋषियाम नमस्कर फिर अग्न्यस्य करन्यास करे ।

कनिष्ठयोः करतलपृष्ठयोः सुरवन्दिते । ।

नमः स्वाहा वषट् हुं वौषट् फडन्तैर्यथाक्रमम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—प्रथम करन्यासने “ओं सत्, चित, ब्रह्म, एकं, ओं सच्चिदेकं ब्रह्म.” यथाक्रमसे इन कई शब्दोंको उच्चारण करके अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा इन डंगलियोंमें और दोनों करतलपृष्ठमें अन्ते “नमः” “स्वाहा” “वषट्” “हुं” “वौषट्” और “फट्” यथा क्रमसे उच्चारण करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

न्यसेन्यासोक्तविधिनासाधकः सुसमाहितः ।

हृदादिकरपर्यन्तमेवमेवविधीयते (१) ॥ ४३ ॥

अर्थ—साधक इसप्रकार सावधानमनसे न्यासोक्तविधिके अनुसार करन्यास करे, क्रमसे हृदयादिसे लेकर करतक अंगन्यास करे ॥ ४३ ॥

प्राणायामंततः कुर्यान्मूलेन प्रणवेन च ।

मध्यमानामिकाभ्याश्च दक्षहस्तस्य पार्वति ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसके उपरांत “ओं सच्चिदेकं ब्रह्म” इस मूल मंत्र अथवा प्रणवके द्वारा प्राणायाम करना चाहिये हे पार्वति ! बाँये हाथकी मध्यमा और अनामिका अंगुलिसे ॥ ४४ ॥

वामनासापुटं धृत्वा दक्षनासापुटेन च ।

पूरयेत्पवनं मन्त्रीमूलमष्टमितं जपन ॥ ४५ ॥

१ नमः स्वाहा वषट् वौषट् फडन्तैर्यथाक्रमम् इति पाठस्तु ममाणाद्विदुः स्मिनः । २ हृदादिकरपर्यन्तमेवमेवविधीयते इति पाठस्तु न सर्वाचीन किन्तु हृदादिपाठ इति समीचीनतर ।

(१) करन्यास मयोग, यथा—आ अद्भुष्टभ्यानम । सत् तर्जनेभ्या स्थाप्य । निम्नमध्याभ्या वषट् । एतन्नामिदं भ्या हुम् । तत्र कनिष्ठभ्या वौषट् । अनामिकाय ब्रह्म करतलपृष्ठाभ्यां फट् ।

अंगन्यासमयोग, यथा—ओ हृदयाय नमः । सच्चिदम स्यात् । चिच्छिदयाय वषट् । एतं धवन य हुम् । ब्रह्म नेत्रत्रयाय वौषट् । आमाभिः क दक्ष तर लपृष्ठाभ्यां फट् ।

३ दक्षनासापुटेन सः इति पुस्तकान्तरस्थः पाठः ।

अर्थ-वामनासापुट धारण करके दक्षिण नासापुटके द्वारा वायुको खेंचकर आठबार मूलमंत्र जपे, या प्रणवका उच्चारण करे ॥ ४५ ॥

अंगुष्ठेन दक्षिणासां धृत्वा कुंभकयोगतः ।

जपेद्वात्रिंशतावृत्त्या ततो दक्षिणासाया ॥ ४६ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त अंगुष्ठसे दक्षिण "नासा" धारण करके श्वासको रोके और बत्तीसबार मूलमंत्रका जप करे ॥ ४६ ॥

शनैः शनैस्त्यजेद्वायुं जपन् पण्डिशधामनुम् ।

वामनासापुटेऽप्येवं पूरकुम्भकरेचकम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-क्रम २ से श्वास छोड़ते २ सोलहबार, मूलमंत्रको जपकर, फिर इस प्रकार वामनासापुटसे रेचक, पूरक और कुंभक करे ॥ ४७ ॥

पुनर्दक्षिणतः कुर्यात्पूर्ववत्सुरपूजिते ! ।

प्राणायामविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य साधने ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे सुरवंदिते ! फिर दक्षिणनासासे आरंभ करके वामनासापर क्रमानुसार पहलेकी समान रेचक, पूरक और कुंभक करे मैंने ब्रह्मसाधनसंबंधमें यह प्राणायामकी विधि तुमसे कही ॥ ४८ ॥

ततो ध्यानं प्रकुर्वीत साधकाभीष्टसाधनम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधक अपने अभीष्टके सिद्ध करनेवाले ध्यानको करता है ॥ ४९ ॥

हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं

हरिहरविधिवेद्योगिभिर्ध्यानगम्यम् ॥

जननमरणभीतिभ्रंशिसच्चित्स्वरूपं

सकलभुवनबीजं ब्रह्मैतन्मयीति ॥ ५० ॥

अर्थ-जो निर्विशेष अनेक प्रकारके भेदोंसे रहित हैं और
चेष्टारहित हैं, जो हरिहर और ब्रह्मके जानने योग्य वस्तु हैं,
जो योगीन्द्रोंके ध्यानमें भी आते हैं, जिनके प्राप्त होनेसे जन्म
मृत्युका भय दूर हो जाता है, जो समस्त भुवनके बीजस्वरूप
हैं, मैं उन्हीं ब्रह्मका हृदयकमलमें ध्यान करता हूँ ॥ ५० ॥

ध्यात्वैवंपरमंब्रह्ममानसैरुपचारकैः ।

पूजयेत्परयाभक्त्याब्रह्मसायुज्यहेतवे ॥ ५१ ॥

अर्थ-ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्तिके अर्थ साधक इसप्रकार ध्यान
करके अत्यन्त भक्तिभावसे मानसोपचारके द्वारा परब्रह्मकी
अर्चना करे ॥ ५१ ॥

गन्धंदद्यान्महीतत्त्वंपुष्पपाकाशमेव च ।

धूपंदद्याद्रायुतत्वं दीपं तेजः समर्पयेत् ॥

नैवेद्यंतोयतत्वेन प्रदद्यात्परमात्मने ॥ ५२ ॥

अर्थ-इस पूजामें भूतत्वको गंधरूपमें कल्पना करके ब्रह्ममें
समर्पण करे, (इसी भाँति) आकाशको पुष्प, वायुतत्त्वको धूप,
तेजको दीप और जलराशिको नैवेद्य कल्पना करके परमात्मा-
की समर्पण करे ॥ ५२ ॥

ततो जप्त्वामहामन्त्रं मनसा साधकोत्तमः ।

समर्प्य ब्रह्मणे पश्चाद्ब्रहिः पूजां समारभेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त मनही मनमें "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म"
महामन्त्र जप करता रहे. ब्रह्ममें सबको समर्पण करके फिर
बाहिरी पूजामें मनको लगाना चाहिये ॥ ५३ ॥

उपस्थितानिद्रव्याणि गन्धपुष्पादिकानि च ।

वस्त्रालङ्कारणादीनि भक्ष्यपेयानियानि च ॥ ५४ ॥

देखसक्ता, तुम अविनाशी हो, अनिर्देश्य हो, इन्द्रियोंसे अगम्य हो, अचिन्त्य हो, अक्षय, अव्यक्त और सत्यरूप हो, तुम जगतके भासक हो, तुम हमारी भक्तिविश्लेषणादि अपार विपद्से रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामस्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः ॥
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवांभोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥ ६३ ॥

अर्थ-मैं उस अद्वितीयब्रह्मका स्मरण करता हूँ जगत्में एक मात्र साक्षी और जगत्का केवल एकही पोत होनेसे मैं तुम्हारी शरण हुआ ॥ ६३ ॥

पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः ।

यः पठेत्प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

अर्थ-परमात्मा ब्रह्मका पञ्चरत्ननामक यह स्तोत्र जो, भक्तिके सहित पाठ करेंगे उनको ब्रह्मसायुज्य प्राप्त हो जायगा ॥ ६४ ॥

प्रदोषेऽदः पठेन्नित्यं सोमवारे विशेषतः ।

श्रावयेद्बोधयेत्प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठान्स्ववान्धवान् ॥ ६५ ॥

अर्थ-प्रदोषके समय यह स्तोत्र प्रतिदिन पाठकरना चाहिये विशेष करके शानीपुरुषको उचित है कि, अपने बंधु-बांधवोंको सोमवारके दिन यह श्रवण करा दें और भली-भाँतिसे समझा दें ॥ ६५ ॥

इतिते कथितं देवि ! पञ्चरत्नं महेशितुः ।

कवचं शृणु चार्वाङ्गि ! जगन्मङ्गलनामकम् ।

पठनाद्वारणाद्यस्य ब्रह्मज्ञो जायते ध्रुवम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैंने तुमसे महेश्वरका पंचरत्न
कहा अब जगन्मंगल नाम 'कवच' को कहता हूँ ॥ ७६ ॥
करो. इसके श्रवण करने और धारण करनेसे निश्चयना करके
हो सक्ता है ॥ ६६ ॥

परमात्माशिरःपातहृदयपरमेश्वरः ।
कण्ठपातुजगत्पातावदनंसर्वदृग्विभुः ॥ ६७ ॥
करौमेपातुविश्वात्मापादौरक्षतुचिन्मयः ।
सर्वाङ्गसर्वदापातुपरंब्रह्मसनातनम् ॥ ६८ ॥

अर्थ-कवच यह है-परमात्मा मेरे शिरकी रक्षा करें, पर-
मेश्वर हृदयकी रक्षा करें, जगत्पाता कंठकी रक्षा करें, चिन्मय
मेरे दोनों चरणोंकी रक्षा करें, सनातन परब्रह्म मेरे सब शरी-
रकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

श्रीजगन्मङ्गलस्यास्यकवचस्यसदाशिवः ।
ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुप्तिपरमब्रह्मदेवता ।
चतुर्वर्गफलावाप्त्यैविनियोगःप्रकीर्तितः ॥ ६९ ॥

अर्थ-सदाशिव इस जगन्मंगल कवचके ऋषी हैं, छंद अनु-
ष्टुप् है, परब्रह्म देवता, चतुर्वर्ग प्राप्तिके लिये विनियोग कीर्तन
करना होता है (१) ॥ ६९ ॥

यःपठेद्रहस्यकवचमृपिन्यासपुरःसरम् ।
सब्रह्मज्ञानमासाद्यसाक्षाद्रहस्यमयोभवेत् ॥ ७० ॥

(१) ऋषिन्यास यथा-अस्य श्रीजगन्मङ्गलनामक कवचस्य सदाशिवकविरनुष्टुप्
छन्दः परमब्रह्म देवता, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये श्रीजगन्मङ्गलाख्यकवचपठे विनियोगः ।
शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दो नमः । हृदि परमब्रह्मणे देवतायै
नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये श्री गौ-नं-ग ल । ख्ययै वि । योः ।

देखसक्ता, तुम अन्यासको करके इस ब्रह्मकवचका पाठ करते हो, अचिन्त्यज्ञान पायकर ब्रह्ममय होजाते हैं ॥ ७० ॥

भासकहो, यविलिख्यगुटिकांस्वर्णस्थांधारयेद्यदि ।

रक्षा कर्केण्ठेवादक्षिणेवाहौसर्वसिद्धीश्वरोभवेत् ॥ ७१ ॥

तदेकं—यदि कोई भोजपत्रपर लिखकर इस कवचको सुवस्त्रके ताबीजमें रखके कंठ वा दाहिने हाथमें धारण करता है, उसके समस्तकार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ७१ ॥

इत्येतत्परमंब्रह्मकवचन्तेप्रकाशितम् ।

दद्यात्प्रियायशिष्यायगुरुभक्तायधीमते ॥ ७२ ॥

अर्थ—मैंने तुमसे यह परब्रह्म कवच प्रकाशित किया, इसको गुरु, भक्त, प्रियशिष्यको देना चाहिये ॥ ७२ ॥

पठित्वास्तोत्रकवचंप्रणमेत्साधकाग्रणीः ॥ ७३ ॥

अर्थ—साधकोंमें अग्रगण्य इसस्तोत्र कवचको पढ़कर प्रणाम करें ॥ ७३ ॥

ॐ नमस्तेपरमंब्रह्मनमस्तेपरमात्मने ।

निर्गुणायनमस्तुभ्यंसद्गुपायनमोनमः ॥ ७४ ॥

अर्थ—तुम परमात्मा परब्रह्महो, तुमको नमस्कार है, तुम गुणातीत और सत्स्वरूपहो, तुमको नमस्कार है ॥ ७४ ॥

वाचिकंकायिकंवापिमानसंवायथामति ।

आराधनेपरेशस्यभावशुद्धिर्विधीयते ॥ ७५ ॥

अर्थ—परमब्रह्मकी आराधनामें कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीन प्रकारमें जैसी इच्छा हो वैसा नमस्कार किया जासक्ता है; परंतु चित्तकी शुद्धिका विशेष प्रयोजन है ॥ ७५ ॥

एवंसंपूज्यमतिमान्स्वजनैर्वान्धवैःसह ।

महाप्रसादंस्वीकुर्याद्रक्षणःपरमात्मनः ॥ ७६ ॥

अर्थ-बुद्धिमान् पुरुष इसप्रकार ब्रह्मकी अर्चना करके आत्मीय अन्तरंगोंके साथ महाप्रसादको ग्रहण करे ॥ ७६ ॥

पूजनेपरमेशस्यनावाहनविसर्जने ।

सर्वत्रसर्वकालेपुसाधयेद्रक्षणसाधनम् ॥ ७७ ॥

अर्थ-परमेश्वरकी पूजाका काल, आवाहन और विसर्जन नहीं है ब्रह्मसाधनके लिये सब समय ठीक है ॥ ७७ ॥

आस्नातोवाकृतस्नानोभुक्तोवापिबुभुक्षितः ।

पूजयेत्परमात्मानंसदानिर्मलमानसः ॥ ७८ ॥

अर्थ-स्नान कियेहुए या बिना स्नान कियेहुए भुक्त या अभुक्त जिसअवस्थामें और जिसकालमें हो विशुद्ध चित्त होकर परमेश्वरकी उपासना करना योग्य है ॥ ७८ ॥

अनेनब्रह्ममन्त्रेणभक्ष्यपेयादिकञ्चयत् ।

दीयतेपरमेशायतदेवपावनमहत् ॥ ७९ ॥

अर्थ-इसब्रह्ममन्त्रके द्वारा जो कोई भी खाने पीनेकी वस्तु ब्रह्ममें समर्पण की जाती है ॥ ७९ ॥

गङ्गातोयैशिलादौचस्पृष्टदोषोऽपिवर्त्तते ।

परब्रह्मार्पितेद्रव्येस्पृष्टास्पृष्टंनविद्यते ॥ ८० ॥

अर्थ-गंगाजल और शालिग्रामशिलादिमें दोष लगसक्ता है; परन्तु परब्रह्ममें जो वस्तु अर्पण की जाती है, उसमें किसी दोषके लगनेकी संभावना नहीं है ॥ ८० ॥

पक्वंवापिनपक्वंशामन्त्रेणानेनमन्त्रितम् ।

साधकोब्रह्मसात्कृत्वाभुजीयात्स्वजनैःसह ॥ ८१ ॥

अर्थ-द्रव्य हुआ हो या वे पकाहो ब्रह्ममंत्रके बलसे जय वोह द्रव्य ब्रह्ममें अर्पण कियाजाय, तब साधकको उचित है कि, अपने स्वजनोंके साथ उसको भोजन करे ॥ ८१ ॥

नात्रवर्णविचारोऽस्तिनोच्छिष्टादिविवेचनम् ।

नकालनियमोऽप्यवशौचाशौचतथैवच ॥ ८२ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिवेदित सामग्रीके भोजन करनेमें जातिका विचार वा जैठका विचार नहीं है । इसमें कालाकाल या शौचाशौचके विचारकी भी आवश्यकता नहीं है ॥ ८२ ॥

यथाकालेयथादेशेयथायोगेनलभ्यते ।

ब्रह्मसात्कृतंनैवेद्यमश्रीयादविचारयन् ॥ ८३ ॥

अर्थ-हं देवि ! तौभी वह अतिशय पवित्र हैं और देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ८३ ॥

आनीतंश्वपचेनापिश्वमुखादपिनिःसृतम् ।

तदन्नंपावनंदेवि ! देवानामपिदुर्लभम् ॥ ८४ ॥

अर्थ-जिस समयमें जिसदेशमें जैसा ब्रह्मनिवेदित नैवेद्य प्राप्त होजाय उसको बिनाविचारे भोजन करलेना चाहिये ॥ ८४ ॥

किंपुनर्मनुजादीनांवक्तव्यंदेववन्दिते ! ।

परमेशस्यनैवेद्यसेवनाद्यत्फलंभवेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-हं देववन्दिते ! जब ऐसा अन्न देवताओंकोभी दुर्लभ है, फिर मनुष्योंकी तो बातही क्या है ॥ ८५ ॥

महापातकयुक्तोवायुक्तोवाप्यन्यपातकैः ।

सकृत्प्रसादग्रहणान्मुच्येननात्रसंशयः ॥ ८६ ॥

अर्थ-जो पुरुष महापातकी हो वा जिनमें और पातक किये

हो वहभी यदि केवल एकहीबार ब्रह्मका प्रसाद पावै तो वोह सब पापोसे छूटजाता है इसमे कोईभी संदेह नहीं है ॥ ८६ ॥

सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।

तत्फलं लभते मर्त्यो ब्रह्मार्पितनिपेवणात् ॥ ८७ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिवेदित वस्तु ग्रहण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, सादेतीन करोड तीर्थोंमें स्नानदान करनेसे फल होता है. ब्रह्मार्पित वस्तु ग्रहण करनेसेभी मनुष्यको वही फल प्राप्त होता है ॥ ८७ ॥

अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्टायत्फलमश्रुते ।

भक्षिते ब्रह्मनैवेद्ये तस्मात्कोटिगुणं लभेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अश्वमेधादि यज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त होता है, ब्रह्मनिवेदित वस्तुके भक्षण करनेसे उससे करोडगुण फल मिलता है ८८

जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्रकोटिश्चैतरेपि ।

महाप्रसादमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ८९ ॥

अर्थ-यदि सहस्र करोड जीभ होजाँय और शतकरोड मुख होजाँय तोभी ब्रह्मप्रसादका माहात्म्य वर्णन नहीं किया जा सक्ता ॥ ८९ ॥

यत्र कुत्रस्थितो वापि प्राप्य ब्रह्मार्पितामृतम् ।

गृहीत्वा कीकशो वापि ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ९० ॥

अर्थ-यदि चांडालभी किसी स्थानमें ब्रह्मप्रसाद प्राप्त करके उसको भोजन करले तो उसको ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

यदि स्यान्नीचजातीयमन्नं ब्रह्मणि भावितम् ।

तदन्नं ब्राह्मणैर्ग्राह्यमपि वेदान्तपारगैः ॥ ९१ ॥

अर्थ-यदि नीचजातिका अन्न ब्रह्ममें समर्पण किया जाय तो वेदान्तपारग ब्राह्मणभी उस अन्नको ग्रहण कर सकते हैं ॥ ९१ ॥

जातिभेदेनकर्तव्यःप्रसादेपरमात्मनः ।

योऽगुह्यबुद्धिकुरुतेसमहापातकीभवेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ-परमात्माके प्रसादको ग्रहण करनेमें जातिभेदका विचार करना कर्तव्य नहीं है । जो पुरुष इसको अपवित्र समझता है वोह महापातकमें लिप्त होता है ॥ ९२ ॥

वरं पापशतंकुर्याद्भरं विप्रवधं प्रिये ! ।

परब्रह्मार्पिते ह्यत्रेण कुर्यादवहेलनम् ॥ ९३ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! वरन् लोक शतशत पापकार्य कर सक्ता है, वरन् ब्रह्महत्या कर्तव्यकर्मके बीचमें गिनी जासक्ती है तथापि ब्रह्मके अत्रका अवहेलन करना कर्तव्य नहीं है ॥ ९३ ॥

येत्यजन्ति न रामूढा महामन्त्रेण संस्कृतम् ।

अन्नतोयादिकं भद्रे ! पितृस्ते पातयन्त्यधः ॥ ९४ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! जो मूढ़लोग महामंत्र पढ़ेहुये इस सुसंस्कृत अन्न जलादिको त्याग करते हैं, उनके पितृपुरुष अधोलोकमें रहते हैं ॥ ९४ ॥

स्वयमप्यन्धतामिस्त्रेपतन्त्याहूतसंप्लवम् ।

ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यद्रेष्टृणां नास्ति निष्कृतिः ॥ ९५ ॥

अर्थ-वह लोगभी प्रलयकालतक अंधतामिच्छनामक नरकमें वास करते हैं । जो ब्रह्मसात् कृतनैवेद्यादिसे द्वेष करते हैं उनका किसी प्रकारसे छुटकारा नहीं ॥ ९५ ॥

पुण्यायन्ते क्रियाः सर्वाः सुपुंतिः सुकृतायते ।

स्वेच्छाचारोऽत्र विहितो महामन्त्रस्य साधने ॥ ९६ ॥

अर्थ-जो लोग ब्रह्ममंत्रको साधन करते हैं, उनके अपवित्र क-

मभीषवित्र होजाते हैं सुषुप्ति पुण्यकर्म होजाती है और अवैध स्वेच्छाचार अनुष्ठान शान्त्रोक्तकर्ममें गिना जाता है ॥ ९६ ॥

किंतस्यवैदिकाचारैस्तांत्रिकैर्योपितस्यकिम् ।

ब्रह्मनिष्ठस्यविदुषःस्वेच्छाचारोविधिःस्मृतः । ९७ ॥

अर्थ—जो ब्रह्मनिष्ठ और ज्ञानवान् है उसके लिये वैदिक या तांत्रिक क्रियाका प्रयोजन क्या है उसका स्वेच्छाचार ही विधिरूप होकर आदृत किया जाता है ॥ ९७ ॥

कृतेनास्यफलं नास्ति नाकृतेनापि किलिपम् ।

निर्विघ्नः प्रत्यवायोऽस्य ब्रह्ममन्त्रस्य साधनात् ॥ ९८ ॥

अर्थ—ब्रह्मनिष्ठ पुरुष कोई भी वैधकार्य करके उसके फलको प्राप्त नहीं होता और वैध कर्म न करनेपर भी उसका प्रत्यवाय नहीं होता विचार करनेसे जाना जाता है कि ब्रह्ममन्त्र साधन करनेमें किसीप्रकारके विघ्न या प्रत्यवायकी सम्भावना नहीं है ॥ ९८ ॥

अस्मिन् धर्मे महेश ! स्यात्सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

परोपकारनिरतो निर्विकारः सदाशयः ॥ ९९ ॥

अर्थ—हे महेश्वर ! इस धर्मका अनुष्ठान करनेमें सत्यवादी जितेन्द्रिय, परोपकारी, निर्विकार और सदाशय होना चाहिये ॥ ९९ ॥

मात्सर्यहीनोऽदम्भी च दयावान् शुद्धमानसः ।

मातापित्रोः प्रीतिकारी तयोः सेवत तत्परः ॥ १०० ॥

अर्थ—ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको मात्सर्य व दम्भीन दयावान् शुद्धचित्त पितामाताका प्रियकारी और उनकी सेवामें परायण होना चाहिये ॥ १०० ॥

ब्रह्मश्रोताब्रह्ममन्ताब्रह्मान्वेषणमानसः ।

यतात्मादृढबुद्धिः स्यात्साक्षाद्ब्रह्मेति भावयन् ॥ १०१ ॥

अर्थ-जो ब्रह्म प्रतिपाद्य विषयको श्रवण करते हैं, ब्रह्म चिन्तन और ब्रह्मानुसंधान करते हैं वही संयतचित्त स्थिर-बुद्धिसे ब्रह्मको साक्षात् करसक्ते हैं ॥ १०१ ॥

न मिथ्याभाषणं कुर्यान्नापरानिष्टचिन्तनम् ।

परस्त्रीगमनञ्चैव ब्रह्ममन्त्रीविवर्जयेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-हे देवि ! ब्रह्मनिष्ठपुरुषको मिथ्या कहना पराया बुरा चेतना या पराई स्त्रीका हरण करना कर्तव्य नहीं है ॥ १०२ ॥

तत्सदिति वदे देवि ! प्रारम्भे सर्वकर्मणाम् ।

ब्रह्मार्पणमस्तु वाक्यं पानभोजनकर्मणोः ॥ १०३ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिष्ठपुरुष सबकार्योंके आरम्भमें “तत् सत्” वाक्य उच्चारण करे और पान भोजनादि कार्यमें “ब्रह्मार्पणमस्तु” कहकर ब्रह्मको अर्पण करे ॥ १०३ ॥

येनोपायेन मर्त्यानां लोकयात्राप्रसिद्ध्यति ।

तदेव कार्यं ब्रह्मज्ञैरिदं धर्मसनातनम् ॥ १०४ ॥

अर्थ-जिससे भलीभाँति संसारयात्राका निर्वाह हुए जाय, वही कार्य ब्रह्मजको करना उचित है यही ब्रह्मज्ञानियोंका सनातन धर्म है ॥ १०४ ॥

अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये ब्रह्ममन्त्रस्य शाम्भवि ! ॥

यां कृत्वा ब्रह्मसम्पत्तिं लभन्ते भुवि मानवाः ॥ १०५ ॥

अर्थ-हे शाम्भवि ! अब मैं तुमसे ब्रह्मसन्ध्याविधि कहता हूँ, ब्रह्मनिष्ठलोग इस सन्ध्याविधिको समाप्त करके ब्रह्मरवरूप-सम्पत्ति प्राप्त कर सकेंगे ॥ १०५ ॥

प्रातर्बध्याह्नसायह्नियथादेशेयथासने ।

पूर्ववत्परमब्रह्मध्यात्वासाधकसत्तमः ॥ १०६ ॥

अर्थ--श्रेष्ठ साधकको प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्यासमय, यथोक्त स्थानमें कहेहुए आसनपर पहलेकी समान बैठकर परब्रह्मका ध्यान करना उचित है ॥ १०६ ॥

अष्टोत्तरशतं देवि ! गायत्रीजपमाचरेत् ।

जपंसमर्प्यविधिवत्पूर्ववत्प्रणमेत्सुधीः ॥ १०७ ॥

अर्थ--हे देवि ! इसके उपरांत ज्ञानी पुरुष एकशत आठ-बार गायत्रीका जपकर विधिविधानसे उसके समाप्त होने-पर प्रणाम करे (१) ॥ १०७ ॥

एषासन्ध्यामयाप्रोक्तासर्वथाब्रह्मसाधने ।

यदनुष्ठानतोमन्त्रीशुद्धान्तःकरणोभवेत् ॥ १०८ ॥

अर्थ--हे पार्वति ! मैंने तुमसे ब्रह्ममंत्रके सिद्धकरनेकी संध्याको कहा, इसका अनुष्ठान करनेसे साधकका अंतःकरण शुद्ध होजाता है ॥ १०८ ॥

गायत्रीं शृणु चार्चय ! सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

परमेश्वरं देऽन्तमुक्त्वा विद्महेतदनन्तरम् ॥ १०९ ॥

अर्थ--हे सुन्दरि ! इस समय सबपापोंकी नाश करनेवाली गायत्रीको कहताहूँ श्रवणकरो, प्रथम परमेश्वरशब्दमें चतुर्थी विभक्तिका एकवचन मिलाकर फिर "विद्महे" उच्चारण करना चाहिये ॥ १०९ ॥

परतत्त्वाय पदतो धीमहीति वदेत्प्रिये ! ।

तदनन्तरमीशानि ! तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥ ११० ॥

अर्थ--हे प्रिये ! इसके उपरांत "परतत्त्वाय" उच्चारण कर-

(१) गायत्रीः--ओं परमेश्वराय विद्महे परतत्त्वाय धीमहि ॥ तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥

नेक पीछे “धीमहि” पदका उच्चारण करना चाहिये फिर
“तन्नोब्रह्मप्रचोदयात्” पदको उच्चारण करे (१) ॥ ११० ॥

इयं श्रीब्रह्मगायत्रीचतुर्वर्गप्रदायिनी ।

पूजनं यजनञ्चैव स्नानं पानञ्च भोजनम् ॥ १११ ॥

यद्यत्कर्म प्रकुर्वीत ब्रह्ममन्त्रेण साधयेत् ।

ब्राह्मेण हूतैर्चोत्थाय प्रणम्य ब्रह्मदंगुरुम् ॥ ११२ ॥

अर्थ—यह ब्रह्मगायत्री चतुर्वर्गको दान करती है, पूजन, यजक-
रना, स्नान, पान, भोजनादि जो जो कर्म करने होते हैं ब्रह्ममन्त्र-
द्वारा उनको सिद्ध करना चाहिये, ब्राह्मसुहूर्तमें बिस्तरेको त्याग-
कर ब्रह्मदाता गुरुको प्रणाम करना चाहिये ॥ ११॥ ११२ ॥

ध्यात्वा च परमं ब्रह्म यथाशक्तिमनुस्मरेत् ।

पूर्ववत् प्रणमेद्ब्रह्म प्रातः कृत्यमिदं स्मृतम् ॥ ११३ ॥

अर्थ—अनंतर ब्रह्मका ध्यान करके यथाशक्ति मन्त्रको उच्चा-
रण करे, फिर ब्रह्मको नमस्कार करे, वस येही ब्रह्मनिष्ठ लो-
गोंका प्रातःकृत्य है ॥ ११३ ॥

द्वात्रिंशत्सहस्रेण जपेनास्य पुरकिं स्या ।

तद्दशांशेन हवनं तर्पणं तद्दशांशतः ॥ ११४ ॥

अर्थ—यदि ब्रह्ममन्त्रका पुरश्चरण करना हो तो बत्तीस हजार
जप करना चाहिये, जपका दशांश होम और होमका दश-
मांश तर्पण करना उचित है ॥ ११४ ॥

सेचनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन सुन्दरि ! ।

ब्राह्मणान् भोजयेन्मन्त्री पुरश्चरणकर्मणि ॥ ११५ ॥

अर्थ—हे सुन्दरि ! तर्पणका दशमांश अभिषेक करना उचित

(१) हम परमेश्वरका सदा ध्यान करते हैं । हम परतत्त्व अर्थात् ब्रह्मसत्त्वका सदा
ध्यान करते हैं । वह ब्रह्म हमको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें लगावे ॥

है, जो पुरुष मंत्रसाधक है, उसको पुरश्चरण करनेके समय अभिषेकका दशमांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये ॥ ११५ ॥

भक्ष्याभक्ष्यविचारोऽत्रत्याज्यंग्राह्यंनविद्यते ।

नकालशुद्धिनियमोनवास्थाननिरूपणम् ॥ ११६ ॥

अर्थ-ब्रह्मपुरश्चरणमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार या त्याज्या-त्याज्यका विचार और काल व रथानका स्थिर करना कुछ भी नहीं है ॥ ११६ ॥

अभुक्तोवापिभुक्तोवास्नातोवासनातएववा ।

साधयेत्परममन्त्रंस्वेच्छाचारेणसाधकः ॥ ११७ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिष्ठपुरुष ऐसे कार्यमें स्नातहो, अस्नातहो, भुक्तहो, अभुक्तहो जिस अवस्थामें भी हो इच्छानुसार इस परममंत्रका साधन करसक्ता है ॥ ११७ ॥

विनायासंविनाक्लेशंस्तोत्रंचकवचंविना ।

विनान्यासंविनामुद्रांविनासेतुंवरादाने ! ॥ ११८ ॥

अर्थ-हे वर्चणिनि ! ब्रह्मके साधन करनेमें क्लेश, श्रम नहीं करना पड़ता, रनोत्र या कवचभी नहीं पढ़ना होता, इसमें न्यास, मुद्रा और सेतुकीभी आवश्यकता नहीं है ॥ ११८ ॥

विनाचौरगणेशादिजपञ्चकुलुकांविना ।

अकस्मात्परमब्रह्मसाक्षात्कारोभवेद्भुवम् ॥ ११९ ॥

अर्थ-इस कार्यमें चौर गणेशादिकी पूजा, वा कुलुकाभी नहीं करनी हंती, इन सब अनुष्ठानोंके किये विनाभी अल्पकालमें निश्चयही परमब्रह्मसे साक्षात् होसक्ता है ॥ ११९ ॥

संकल्पोऽस्मिन्महामन्त्रेमानसः परिकीर्तितः ।

साधनेब्रह्ममन्त्रस्यभावशुद्धिर्विधीयते ॥ १२० ॥

अर्थ-इस महामंत्रका साधनकरनेमें मानसिक संकल्प-काही प्रयोजन है और भावशुद्धिकीभी आवश्यकता है ॥ १२० ॥

सर्वब्रह्ममयं देवि ! भावयेद्ब्रह्मसाधकः ।

न चास्य प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यमेव च ।

महामनोः साधने तु व्यङ्गं साङ्गाय ते ध्रुवम् ॥ १२१ ॥

अर्थ-हे देवि ! समस्त पदार्थों को ही ब्रह्ममय जानकर बिचार करना ब्रह्मसाधक को उचित है, इस कार्यमें कोई कसर वा अंग-हीनता प्रगट नहीं हो और प्रत्यवाय भी नहीं। यदि कार्य की गतिसे कोई अंगहीनता हो तो भी वह सांग हो जाता है ॥ १२१ ॥

कलौ पापयुगे धोरे तपो हीनेऽतिदुस्तरे ।

निस्तारवीजमेतावद्ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम् ॥ १२२ ॥

अर्थ-इस कलियुगमें दुःसाध्य तपस्या का प्रभाव क्षीण हो गया है, पाप की धोर धार बढ़ रही है, इस ब्रह्मसाधन ही केवल जीवके निस्तार होने का मार्ग है ॥ १२२ ॥

साधनानि बहुक्तानि नाना तन्त्रागमादिषु ।

कलौ दुर्बलजीवानामसाध्यानि महेश्वरि ! ॥ १२३ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! यद्यपि मैंने अनेक प्रकारके मंत्र अनेक प्रकारके आगम और अनेक प्रकारके साधन कहे हैं; परन्तु कलियुगके दुर्बल जीवोंके लिये वह सब अतिशय दुःसाध्य हैं ॥ १२३ ॥

अल्पायुषः स्वल्पवृत्ता अत्राधीना सवः प्रिये ।

लुब्धा धनार्जने व्यग्राः सदा चञ्चलमानसाः ॥ १२४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! कलियुगके लोग अल्पायु और अत्रगत प्राण होंगे वह अनुष्ठान करनेमें यत्न नहीं कर सकेंगे विशेषकर वह लोभी और धनके पैदा करनेमें व्यग्र हो अत्यन्त चपल-मति होंगे ॥ १२४ ॥

समाधावस्थिरधियोयोगक्लेशसहिष्णवः ।

तेपाहितायमोक्षायब्रह्ममार्गोयमीरितः ॥ १२५ ॥

अर्थ—वह योगमें क्लेश करने या समाधिके विषे स्थिर रहनेमें समर्थ नहीं होंगे इस कारण उनका हित करने और उनके मोक्षके लिये मैंने ब्रह्मोपासनाका मार्ग स्वच्छ कर दिया ॥ १२५ ॥

कलौनास्त्येवनास्त्येवसत्यंसत्यंमयोच्यते ।

ब्रह्मदीक्षांविनादेवि ! कैवल्यायसुखायच ॥ १२६ ॥

अर्थ—मैं सत्यही कहता हूँ कि, ब्रह्मदीक्षाके सिवाय कलियुगमें सुख और मुक्तिविधायी और कोई साधन नहीं है ॥ १२६ ॥

प्रातःकृत्यंप्रातरेवसंध्यांकुर्यात्त्रिकालतः ।

मध्याह्नेपूजनंकुर्यात्सर्वतन्त्रेष्वयंविधिः ।

परब्रह्मोपासनेतुसाधकेच्छाविधिःशिवे ! ॥ १२७ ॥

अर्थ—सर्व तंत्रोंकी व्यवस्था यही है कि, प्रातःकालमें प्रातःकृत्य समाप्त करके त्रिकालीन संध्या करे और मध्याह्न समयमें पूजा करे. हे शिवे ! परमब्रह्मकी उपासनामें साधककी इच्छाही विधि गिनी जाती है ॥ १२७ ॥

विधयःकिङ्कुरायत्रनिषेधाःप्रभवोपिन ।

स्वेच्छाचारेणैष्टसिद्धिस्तद्विनाकोऽन्यमाश्रयेत् १२८ ॥

अर्थ—जिसकार्यमें विधि किंकरस्वरूप है और सब निषेधभी स्वामीपनसे विमुख हैं, ब्रह्मसाधनमें स्वेच्छाचार होनेसे इष्ट सिद्धि होती है तिसके सिवाय और किसका आश्रय लिया जा सकता है ॥ १२८ ॥

ब्रह्मज्ञानीगुरुंप्राप्यशान्तंनिश्चलमानसम् ।

धृत्वातच्चरणांभोजंप्रार्थयेद्भक्तिभावतः ॥ १२९ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिष्ठपुरुष, स्थिरमति, शान्त, ब्रह्मज्ञानी, गुरुको प्राप्त करके उसके चरणकमलमें भक्तिसे भरकर यह प्रार्थना करे ॥ १२९ ॥

करुणामय ! दीनेश ! तवाहंशरणागतः ।

त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां देहिमृद्ध्यशोधन ! ॥ १३० ॥

अर्थ-हे दयामय, दीनेश ! मैं तुम्हारी शरण हुआ. हे यशोधन ! तुम मेरे मस्तकपर चरणकमलकी छाया करो ॥ १३० ॥

इतिप्रार्थ्यगुरुं पश्चात्पूजयित्वा स्वशक्तिः ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तूष्णीं तिष्ठेद्गुरोः पुरः ॥ १३१ ॥

अर्थ-गुरुसे ऐसी प्रार्थना करके शिष्य यथाशक्ति गुरुकी अर्चना करे, तिसके उपरान्त उसके निकट हाथ जोड़कर मौनभावसे रहे ॥ १३१ ॥

गुरुर्विचार्य विधिवद्यथोक्तं शिष्यलक्षणम् ।

आहूय कृपया दद्यात्सच्छिष्याय महामनुम् ॥ १३२ ॥

अर्थ-गुरुभी यथाविधान वा यथारित्तसे लक्षणकी परीक्षा करके शिष्यको बुलायकर दयायुक्तहृदयसे महामंत्र दे ॥ १३२ ॥

उपविश्यासने ज्ञानी प्राङ्मुखो वा पृथङ्मुखः ।

स्ववामेशिष्यमानीय कारुण्येनावलोकयेत् ॥ १३३ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त वह जानवान् पुरुष पूर्वमुख वा उत्तरमुखहो आसनपर बैठ शिष्यको अपनी बाईओर बैठा उसके प्रति करुणाकी दृष्टिसे देखे ॥ १३३ ॥

ततः शिष्यस्य शिरसि ऋषिन्यासपुरःसरम् ।

जपेदष्टशतं मंत्रं साधकस्येष्टसिद्धये ॥ १३४ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधककी इष्टसिद्धिके लिये ऋषिन्यास करके शिष्यके मस्तकपर एकसौ आठमंत्र जप करे ॥ १३४ ॥

दक्षकर्णे ब्राह्मणानामितरेषाञ्च वामतः ।

सप्तधा श्रावयेन्मन्त्रं सद्गुरुः करुणानिधिः ॥ १३५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त करुणामय सद्गुरु ब्राह्मणशिष्यके दाहिने कानमें और दूसरे जातिवाले शिष्यके बाँये कानमें सातवार मंत्रको सुनावे ॥ ३५ ॥

उपदेशविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य कालिके ! ।

नात्र पूजाद्यपेक्षास्ति संकल्पमानसञ्चरेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ-हे कालिके ! तुमसे ब्रह्ममंत्रको कहा इसमें पूजादिकी अपेक्षा नहीं है, केवल मानसिक संकल्प करना होता है ॥ १३६ ॥

ततः श्रीगुरुपादान्जेदण्डवत्पतितं शिषुम् ।

उत्थापयेद्गुरुः स्नेहादिममन्त्रमुदीरयन् ॥ १३७ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त जब शिष्य गुरुके चरणकमलमें दण्डवत् करे तब गुरुको उचित है कि, यह मंत्रपाठ कराकर शिष्यको उठावे ॥ १३७ ॥

उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि ब्रह्मज्ञानपरो भव ।

जितेन्द्रियः सत्यवादी वलारोग्यं सदास्तुते ॥ १३८ ॥

अर्थ-हे बेटा ! तुम उठो । इस समय तुम मुक्त हुए हो, तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मजानी हो तुम्हारा बल और आरोग्य सदा प्रकाशित होता है ॥ १३८ ॥

तत उत्थाय गुरवे यथाशक्त्यनुसारतः ।

दक्षिणां स्वं फलं वापि दद्यात्साधकसत्तमः ।

गुरोराज्ञावशीभूत्वा विहरेद्देषवद्भुवि ॥ १३९ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधक उठे और दक्षिणामें शक्तिके अनुसार धन वा फल गुरुको देवे, फिर गुरुजीकी आज्ञाके अनुसार शिष्य पृथ्वीपर देवताको समान विहार करता रहे ॥ १३९ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण तदात्मा तन्मयो भवेत् ।

ब्रह्मभूतस्य देवेशि ! किमन्यैर्वहुसाधनैः ।

इति संक्षेपतो ब्रह्मदीक्षाते कथिता प्रिये । ॥ १४० ॥

अर्थ-ब्रह्ममन्त्र ग्रहण करने पर जीवकी आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है, जो ब्रह्ममय होता है, उसको और साधनका क्या प्रयोजन है ? हे प्रिये ! तुमसे संक्षेप करके ब्रह्मदीक्षाको कहा ॥ १४० ॥

गुरुकारुण्यमात्रेण ब्रह्मदीक्षां समाचरेत् ॥ १४१ ॥

अर्थ-जब गुरुकी कृपा प्रकाशित होती है तब ब्रह्ममन्त्रमें दीक्षित होना शिष्यका कर्तव्य है ॥ १४१ ॥

शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौराणां पतास्तथा ।

विप्राविप्रेतराश्चैव सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः ॥ १४२ ॥

अर्थ-शाक्त, शैव, वैष्णव; सौर वा गणपत्य चाहे जौनसा उपासक हो ब्राह्मण हो या किसी और वर्णका हो सबहीको ब्रह्ममन्त्रका अधिकार है ॥ १४२ ॥

अहं मृत्युञ्जयो देवि ! देवदेवो जगद्गुरुः ।

स्वेच्छाचारी निर्विकल्पो मन्त्रस्याख्यप्रसादतः ॥ १४३ ॥

अर्थ-हे देवि ! इसमन्त्रके प्रसादसे मैं मृत्युञ्जय देवदेव और जगद्गुरु हुआ हूं मैं स्वेच्छाचारी और निर्विकल्प हूं ॥ १४३ ॥

अमुमेव ब्रह्ममन्त्रं मत्तः पूर्वं मुपासिताः ।

ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्चापि देवा देवर्षयस्तथा ॥ १४४ ॥

अर्थ—पहले मेरे निकटसे यह मंत्र पायकर ब्रह्मा भृगु आदि महर्षियोंने इन्द्रादि देवताओंने और नारदादि देवर्षियोंने ब्रह्मकी उपासना की थी ॥ १४४ ॥

देवर्षिवक्त्रान्मुनयस्तेभ्यो राजर्षयः प्रिये ।

उपासिता ब्रह्मभूताः परमात्मप्रसादतः ॥ १४५ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! देवर्षियोंसे मुनि और मुनियोंसे राजर्षिलोग यह मंत्र पायकर परमात्माके प्रसादसे ब्रह्ममय हुए हैं ॥ १४५ ॥

ब्राह्मे मनौ महेशानि विचारो नास्ति कुत्रचित् ।

स्वीयमन्त्रं गुरुर्दद्याच्छिष्येभ्यो ह्यविचारयन् ॥ १४६ ॥

अर्थ—हे शिवे ! किसी विषयमें ब्रह्ममंत्रका विचार नहीं है। गुरु निःसन्देह मनसे शिष्यको यह मंत्र देसक्ता है ॥ १४६ ॥

पितापि दीक्षयेत्पुत्रान्भ्राताभ्रातृन्पतिः स्त्रियम् ।

मातुलोभाग्निन्यांश्च नमृन्मातामहोऽपि च ॥ १४७ ॥

अर्थ—पिता पुत्रको, भ्राता भ्राताको, पति पत्नीको, मामा भानजेको और नाना धेवतेको यह मंत्र देसक्ता है ॥ १४७ ॥

स्वमन्त्रदाने यो दोषस्तथापि त्रादि दीक्षया ।

सिद्धे ब्रह्ममहामन्त्रे तदोपो नैव विद्यते ॥ १४८ ॥

अर्थ—अपने आप यह मंत्र दूसरेको देनेसे या पित्रादि-द्वारा दीक्षा होनेसे जो दोष होता है इस महामन्त्रके देनेमें उन दोषोंकी सम्भावना नहीं है ॥ १४८ ॥

ब्रह्मज्ञानिमुखाच्छ्रुत्वा येन केन विधानतः ।

ब्रह्मभूतो नरः पूतः पुण्यपापैर्न लिप्यते ॥ १४९ ॥

अर्थ—चाहे जिस विधानसेहो ब्रह्मजानी गुरुके मुखसे

ब्रह्ममंत्रके श्रवण करनेसे मनुष्य ब्रह्मरवरूप और पवित्र होता है फिर वह पापपुण्यसे नहीं जकड़ा जाता ॥ १४९ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासितायेगृहस्थाब्राह्मणादयः ।

स्वस्ववर्णोत्तमास्तेतुपूज्यामान्याविशेषतः ॥ १५० ॥

अर्थ-जितने ब्राह्मण वा और जातिके मनुष्य ब्रह्ममंत्रके उपासक हैं वह अपनी २ जातिमें पूज्य और मान्य हैं ॥ १५० ॥

ब्राह्मणायतयःसाक्षादितरेब्राह्मणैःसमाः ।

तस्मात्सर्वेपूजयेयुर्ब्रह्मज्ञानब्रह्मदीक्षितान् ॥ १५१ ॥

अर्थ-ब्रह्मोपासक ब्राह्मण साक्षात् यतिके तुल्य हैं और जातिके मनुष्य ब्राह्मणकी समान हैं, इसकारण ब्रह्ममंत्रसे दीक्षित ब्रह्मज्ञानीपुरुषकी पूजा करना सबको कर्तव्य है ॥ १५१ ॥

येचतानवमन्यन्तेतेनराब्रह्मघातिनः ।

पतन्तिघोरनरकेयावद्भास्करतारकम् ॥ १५२ ॥

अर्थ-ब्रह्मज्ञानीका अपमान करनेवाले ब्रह्मघाती हैं जबतक सूर्य और तारे दिखाई देते रहेंगे तबतक उनको घोर नरकमें वास करना पड़ेगा ॥ १५२ ॥

यत्पापंस्त्रीवधेप्रोक्तंयत्पापंभ्रूणघातेने ।

तस्मात्कोटिगुणंपापंब्रह्मोपासकनिन्दनात् ॥ १५३ ॥

अर्थ-स्त्रीहत्या और भ्रूणहत्यासे जो पाप होता है ब्रह्मोपासककी निन्दा करनेसे तिससे कोटिगुण पाप होता है ॥ १५३ ॥

यथाब्रह्मोपदेशेनविमुक्ताःसर्वपातकैः ।

गच्छन्तिब्रह्मसायुज्यंतथैवतवसाधनात् ॥ १५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिरतारोपायप्रश्नो-
त्तरे परब्रह्मोपदेशकथनं नाम तृतीयोऽध्यासः ॥ ३ ॥

अर्थ-जिसप्रकार मनुष्य ब्रह्मोपासके प्राप्त करनेसे सर्व प्रकारके पापोंसे छूट ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होजाता है वैसेही तुम्हारी साधना करनेसे जीवकी वही गति होती है ॥१८४॥

इति श्रीमाहानिर्वाणतत्रे सर्वतत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-

सदाशिवसवादे बलदेवमसादमिश्रकृतभाषाटीकयां जीवनि-

स्तारोपायमश्नोत्तरे परब्रह्मोपदशकथन नाम

तृतीय उल्लासः ॥ ३ ॥

चतुर्थोल्लासः ४.

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुत्वा सभ्यक्षपरब्रह्मोपासनं परमेश्वरि ।

परमानन्दसम्पन्नाशङ्करं परिपृच्छति ॥ १ ॥

अर्थ-परमेश्वरी परमेश्वरके मुखसे परब्रह्मकी उपासनाको भलीभाँति सुनकर आनन्दित हो श्रीमहादेवजीसे पूछती हुई ॥ १ ॥

कथितं यत्त्वयानाथ ब्रह्मोपासनमुत्तमम् ।

सर्वलोकप्रियकरं साक्षाद्ब्रह्मपदप्रदम् ॥ २ ॥

अर्थ-देवीजी बोली-हे नाथ ! आपने जो सर्वलोकोंकी प्यारी साक्षात् ब्रह्मपदको देनेवाली ब्रह्मोपासनाका वर्णन किया ॥ २ ॥

तेजोबुद्धिवलैश्वर्यदायकं सुखसाधनम् ।

तृप्तास्मि जगदीशान ! तव वाक्यमृतप्लुता ॥ ३ ॥

अर्थ-इसके द्वारा तेज, बुद्धि, बल और ऐश्वर्य बढ़ता है, यह सब सुखोंकी निदानरूप है. हे जगदीश्वर ! आपके वचन-मृतको पान कर मैं तृप्त हुई हूँ ॥ ३ ॥

यदुक्तंकरुणासिन्धो ! यथाब्रह्मनिपेयणात् ।

गच्छन्तिब्रह्मसायुज्यंतथैवमसाधनात् ॥ ४ ॥

अर्थ-हे दयासमुद्र ! आपने कहा है कि, ब्रह्मोपासनासे जैसे ब्रह्मसायुज्य मिलता है ॥ ४ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामिमदीयंसाधनंपरम् ।

ब्रह्मसायुज्यजननंयत्त्वयाकथितंप्रभो ! ॥ ५ ॥

अर्थ-हे प्रभो ! आपके कहनेके अनुसार ब्रह्मसायुज्यसे उत्पन्न होनेवाले अपनी साधनाके फलको मैं जाननेकी इच्छा करती हूँ ॥ ५ ॥

विधानंकीदृशंतस्यसाधनंकेनवर्त्मना ।

मन्त्रःकोवात्रविहितोध्यानपूजादिकञ्चकिम् ॥ ६ ॥

अर्थ-इस साधनकी विधि क्या है ? और किस मार्गका अवलम्बन करनेसे साधन होसکتा है ? इसका मंत्र वा ध्यान क्या है ? पूजा किस प्रकारकी है ? ॥ ६ ॥

सविशेषंसावशेषमामूलाद्भक्तुमर्हसि ।

ममप्रीतिकरंदेवलोकानांहितकारकम् ।

कोह्यन्यस्त्वामृतेशम्भो ! भवव्याधिभिपगुरुः ॥ ७ ॥

अर्थ-हे देव ! मुझको प्रसन्न करनेवाला और लोकोंका हितकारी इस उपासनाका क्रम विशेषतासे सम्पूर्णही आदिसे अन्ततक वर्णन कीजिये. हे शम्भो ! आपके बिना और कौन पुरुष संसारी व्याधिकी चिकित्सा करनेका गुरु होसکتा है ? ॥ ७ ॥

इतिदेव्यावचःश्रुत्वादेवदेवोमहेश्वरः ।

उवाचपरयाप्रीत्यापार्व्वर्त्तीपार्वतीपतिः ॥ ८ ॥

अर्थ-हे देवदेव महादेवजी, देवीजीके इसप्रकार वचनसुन परमप्रसन्न हो उनसे कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

शृणुदेवि ! महाभागेतवाराधनकारणम् ।

तवसाधनतोयेनब्रह्मसायुज्यमश्रुते ॥ ९ ॥

अर्थ—सदाशिव बोले—हेदेवि ! मनुष्य तुम्हारी साधनासे ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करसक्ता है, इस कारण मैं तुम्हारी उपासनाका वर्णन करताहूँ ॥ ९ ॥

त्वंपराप्रकृतिःसाक्षाद्ब्रह्मणःपरमात्मनः ।

त्वत्तोजातंजगत्सर्वत्वंजगज्जननीशिवे ! ॥ १० ॥

अर्थ—तुमही परमब्रह्मकी साक्षात् प्रकृतिहो, हे शिवे ! तुमसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, तुम जगत्की माताहो ॥ १० ॥

महदाद्यणुपर्य्यन्तंयदेतत्सचराचरम् ।

त्वयैवोत्पादितंभद्रे ! त्वदधीनमिदंजगत् ॥ ११ ॥

अर्थ—हे भद्रे ! महत्तत्त्वसे लेकर परमाणुतक और समस्त चराचरसहित यह जगत् तुमसेही उत्पन्न हुआ है और समस्त जगत् तुम्हारीही आधीनतामें बंधाहुआ है ॥ ११ ॥

त्वमाद्यासर्वविद्यानामस्माकमपिजन्मभूः ।

त्वंजानासिजगत्सर्वनत्वांजानातिकश्चन ॥ १२ ॥

अर्थ—तुमही समस्त विद्याओंकी आदिभूतहो और हमारे जन्मभूमिहो, तुम सारेसंसारको जानतीहो; परन्तु तुमको कोई नहीं जानसक्ता ॥ १२ ॥

त्वंकालीतारिणीदुर्गापोडगीभुवनेश्वरी ।

धूमावतीत्वंगलाभैरवीछिन्नमस्तका ॥ १३ ॥

त्वमन्नपूर्णावाग्देवीत्वंदेवि ! कमलालया ।

सर्वशक्तिस्वरूपात्वंसर्वदेवमयीतनुः ॥ १४ ॥

अर्थ-तुम काली, दुर्गा, तारिणी, षोडशी, भुवनेश्वरी, धूम्र-
वती, बगला, भैरवी और छिन्नमस्ताहो, सर्वशक्तिस्वरूपिणी-
हो, तुम सर्वदेवमयी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो ॥ १३ ॥ १४ ॥

त्वमेवसूक्ष्मास्थूलात्वंव्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।

निराकारापिसाकाराकस्त्वावेदितुमर्हति ॥ १५ ॥

अर्थ-तुमही स्थूल, तुमही सूक्ष्म. तुमही व्यक्त और अव्य-
क्तस्वरूपिणीहो, तुम निराकार होकर साकारहो, तुम्हारे
यथार्थतत्त्वको कोईभी नहीं जानता है ॥ १५ ॥

उपासकानांकार्यार्थश्रेयसेजगतामपि ।

दानवानांविनाशायधत्सेनानाविधास्तनूः ॥ १६ ॥

अर्थ-तुम उपासकजनोंका कार्य करनेके लिये, जगतका
मंगल करनेके लिये और दानवोंको दलनेके लिये अनेक
प्रकारकी मूर्ति धारण करती हो ॥ १६ ॥

चतुर्भुजात्वंद्विभुजापद्भुजाष्टभुजातथा ।

त्वमेवविश्वरक्षार्थनानाशस्त्रास्त्रधारिणी ॥ १७ ॥

अर्थ-तुम संसारकी रक्षा करनेके लिये कभी द्विभुज, कभी
चतुर्भुज, कभी पद्भुज और कभी अष्टभुज मूर्ति धारण करके
अनेक भौतिके अस्त्रशस्त्र लिये रहती हो ॥ १७ ॥

तत्तद्रूपविभेदेनमन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ।

कथितंसर्वतन्त्रेषुभावाश्चकथितास्त्रयः ॥ १८ ॥

अर्थ-सब तंत्रोंमें तुम्हारे अनेकप्रकारसे रूपभेद, यंत्रभेद
और मंत्रभेदका वर्णन लिखा है और तुम्हारी त्रिविध भाव-
मय उपासनाकाभी वर्णन है ॥ १८ ॥

पशुभावःकलौनास्तिदिव्यभावोऽपिदुर्लभः ।

वीरसाधनकर्माणिप्रत्यक्षाणिकलौयुगे ॥ १९ ॥

अर्थ—कलियुगमें पशुभावभी दुर्लभ है इस युगमें वीरसाधनका अनुष्ठान प्रत्यक्ष फल देनेवाला है ॥ १९ ॥

कुलाचारंविनादेवि ! कलौसिद्धिर्नजायते ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसाधयेत्कुलसाधनम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे देवि ! कुलाचारके सिवाय कलियुगमें सिद्ध होनेका उपाय नहीं है, इसकारण सब यत्नोंकरके सबको कुलधारण करना चाहिये ॥ २० ॥

कुलाचारेणदेवेशि ! ब्रह्मज्ञानंप्रजायते ।

ब्रह्मज्ञानयुतोमर्त्योर्जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ २१ ॥

अर्थ—हे देवि ! कुलाचारसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है जो पुरुष ब्रह्मज्ञानवाला है वही निःसंदेह जीवन्मुक्त है ॥ २१ ॥

ज्ञानेनमेध्यमाखिलममेध्यंज्ञानतोभवेत् ।

ब्रह्मज्ञानेसमुत्पन्नेमेध्यामेध्यंनविद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—ज्ञानके प्रभावसे समस्तवस्तु पवित्र और अपवित्र समझी जाती हैं; परन्तु ब्रह्मज्ञानके प्रकाशित होनेसे किसी पवित्र वा अपवित्रका विचार नहीं रहता है ॥ २२ ॥

योजानातिपरंब्रह्मसर्वव्यापिसनातनम् ।

किमस्त्यमेध्यंतस्याग्रेसर्वंब्रह्मेतिजानतः ॥ २३ ॥

अर्थ—जो पुरुष सर्वव्यापी सनातन परब्रह्मको जान सक्ता है, सबको ब्रह्ममय जाननेसे उसके लिये कौनसी वस्तु अपवित्र रहसक्ती है ॥ २३ ॥

त्वंसर्वरूपिणीदेवीसर्वेपांजननीपरा ।

तुष्टायांत्वयिदेवेशि ! सर्वेपांतोपणंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे देवि ! तুম सर्वस्वरूपिणी और सबकी प्रधन जननी हो तुम्हारे संतुष्ट होनेसे सब संतुष्ट होजाते हैं ॥ २४ ॥

सृष्टेरादौ त्वमेकासीत्तमोरूपमगोचरम् ।

त्वत्तो जातं जगत्सर्वं परब्रह्मसिद्धक्षया ॥ २५ ॥

अर्थ-तुम सृष्टिकी आदिमें तमरूपसे अदृश्यहो विराजमानथी तुमही परब्रह्मकी सृष्टि करनेकी इच्छारूपिणी हो, तुमसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है (?) ॥ २५ ॥

महत्तत्त्वादिभूतान्तत्त्वया सृष्टमिदं जगत् ।

निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ २६ ॥

अर्थ-महत्तत्त्वसे लेकर 'महाभूत' तक समस्तसंसार तुमसे ही उत्पन्न हुआ है, सब कारणका कारण परब्रह्म केवल निमित्तमात्र है ॥ २६ ॥

सद्रूपं सर्वतो व्यापि सर्वमावृत्य तिष्ठति ।

सदैकरूपं चिन्मात्रं निलिप्तं सर्ववस्तुषु ॥ २७ ॥

अर्थ-ब्रह्म सत्वरूप और सर्वव्यापी है उसने सबसंसारको ढक रक्खा है वह सदा एकभावसे रहता है, वह चिन्मय है और सबवस्तुओंसे अलग है ॥ २७ ॥

न करोति न चाश्रति न गच्छति न तिष्ठति ।

सत्यं ज्ञानमनाद्यन्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ २८ ॥

अर्थ-वह कुछ नहीं करता, भोजन नहीं करता, गमन नहीं

{ १ } (तुम परब्रह्मकी सिसृक्षास्वरूप-अर्थात् सृष्टि करनेकी इच्छास्वरूप हो) परब्रह्मकी इच्छाशक्ति मणवती पार्वतीजी हैं । गोरक्षसंहितामें कहा है । "इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गोरी माह्वी तु वैष्णवी । त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके-तत्परं ज्योतिरोमिति" । परमब्रह्मकी शक्तिके तीन भाग हैं-इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति । इच्छाशक्ति गोरी, क्रियाशक्ति माह्वी, ज्ञानशक्ति वैष्णवी । यह तीन शक्तियां मणवती पति-पाय हैं ।

करता और स्थिति नहीं करता वह सत्य और ज्ञानस्वरूप
आदि अन्तर्हित वचन मनसे अगोचर है ॥ २८ ॥

तस्येच्छामात्रमालम्ब्य त्वं महायोगिनी परा ।

करोपिपासि हं स्यन्ते जगदेतच्चराचरम् ॥ २९ ॥

अर्थ—तुम परात्परा महायोगिनी हो, केवल तुम उस ब्रह्मा-
की इच्छाका सहारा लेकर इस चराचर जगत्को उत्पन्न और
पालन संहार करती हो ॥ २९ ॥

त्वरूपं महाकालौ जगत्संहारकारकः ।

महासंहारसमये कालः सर्वग्रसिष्यति ॥ ३० ॥

अर्थ—जगत्का संहार करनेवाला काल, तुम्हारा एकरूप है
यह महाकाल महाप्रलयमें समस्त पदार्थोंको ग्रहण करेगा ॥ ३० ॥

कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः ।

महाकालस्य कलनात्त्वमाद्या कालिका परा ॥ ३१ ॥

अर्थ—सर्वभूतोंको ग्रस करता है, इस कारण उसका नाम
महाकाल है; तुम महाकालको ग्रस करती हो. इस कारणसे
तुम्हारा नाम कालिका है ॥ ३१ ॥

कालसंग्रसनात्काली सर्वेषामादिरूपिणी ।

कालत्वादादिभूतत्वादाद्या कालीति गीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ—तुम कालको ग्रस करती हो इस कारण तुम्हारा
नाम काली है सबकी आदिकालत्व और आदिभूतत्व होनेसे
लोग तुमको आद्या काली कहते हैं ॥ ३२ ॥

पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृतिः ।

वाचातीतं मनोगम्यं त्वमेकैवावशिष्यसे ॥ ३३ ॥

अर्थ—तुम प्रलयके समयमें वाक्यके अतीत, मनके अगो-

चर, निराकारस्वरूप तममयरूप धारणकर अकेली विद्यमान रहती हो ॥ ३३ ॥

साकारापिनिराकारामाययावदुरूपिणी ।

त्वंसर्वादिरनादिस्त्वंकर्त्रीहर्त्रीचपालिका ॥ ३४ ॥

अर्थ-तुम साकार होकरभी निराकारहो; परन्तु मायाका आश्रय ग्रहण करके अनेकरूप धारण करतीहो, तुम सबकी आदिहो; परन्तु तुम्हारा आदि कोईभी नहीं है, तुम सृष्टि उत्पन्न करनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली हो ॥ ३४ ॥

अतस्तेकथितंभद्रे । ब्रह्ममंत्रेणदीक्षितः ।

यत्फलंसमवाप्नोतितत्फलंत्वसाधनात् ॥ ३५ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! मैंने इसीकारणसे कहा कि, ब्रह्मदीक्षितपुरुष जो फल पाता है तुम्हारी साधनासे भी वह फल पाया जा सक्ता है ॥ ३५ ॥

नानाचारेणभावेनदेशकालाधिकारिणाम् ।

विभेदात्कथितंदेवि । कुत्रचिद्भुतसाधनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-मैंने देशभेदसे, कालभेदसे अनेकप्रकारके आचार और अनेकप्रकारके भाव प्रकाशित किये हैं. किसी २ तंत्रमें गुप्तसाधनकी कथाभी कही है ॥ ३६ ॥

येयत्ताधिकृतामर्त्यास्तेतत्रफलभागिनः ।

भविष्यन्तितरिप्यन्तिमानुपागतकिल्बिषाः ॥ ३७ ॥

अर्थ-जो मनुष्य जैसे आचार जैसे भाव और जैसे साधनका अधिकारी है, तैसाही अनुष्ठान करनेसे फलभागी होता है,

और साधना करनेसे पापरहित हो संसारसमुद्रके पार हा जाता है ॥ ३७ ॥

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः कुलाचारे मतिलभेत् ।

कुलाचारेण पूतात्मा साक्षाच्छिवमयो भवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-जन्म २ में उपार्जित किये हुए पुण्यके प्रभावसे कुलाचारमें जिनकी वासना होती है वह लोग कुलाचारके अवलम्बनसे आत्माको मग्न करके साक्षात् शिवमय हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

यत्रास्ति भोगा बहुल्यं तत्र योगस्य का कथा ।

योगेऽपि भोगविरहः कौलस्तूभयमश्रुते ॥ ३९ ॥

अर्थ-जहांपर भोगोंकी बहुतायत है, वहां योगकी संभावना कैसी ? जहांपर योग है, वहींपर भोगका अभाव है; परन्तु कुलाचारमें प्रवृत्त होनेपर भोग वा योग दोनोंही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

एकश्चेत्कुलतत्त्वज्ञः पूजितो येन सुव्रते !

सर्वदेवाश्च देव्यश्च पूजितानां त्रसंशयः ॥ ४० ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! कुलतत्त्वका जाननेवाला पुरुष यदि एककी ही अर्चना करे तो समस्त देवदेवियोंकी पूजा हो जाती है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ४० ॥

पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् ।

तत्संपात्कोटिगुणं पुण्यं लभेत् कौलिकार्चनात् ॥ ४१ ॥

अर्थ-सुवर्णपरिपूर्ण पृथ्वीके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है कुलाचारसम्मत अर्चना करनेपर तिससे करोड़ गुणा फल मिलता है ॥ ४१ ॥

श्वपचोऽपिकुलज्ञानीब्राह्मणादतिरिच्यते ।

कुलाचारविहीनस्तुब्राह्मणःश्वपचाधमः ॥ ४२ ॥

अर्थ-यदि चाण्डालजाती कुलाचारपरायण हो, तो वह ब्राह्मणसे भी श्रेष्ठ है यदि ब्राह्मण कुलाचारसे रहित होवे तो वह चाण्डालसे भी अधम होता है ॥ ४२ ॥

कौलधर्मात्परोधर्मोनास्तिज्ञानेतुमामके ।

यस्यानुष्ठानमात्रेणब्रह्मज्ञानीनरोभवेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-भुझको जाननेके लिये कौलधर्मसे अधिक कोई धर्म श्रेष्ठतर नहीं है; इसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य ब्रह्मज्ञानी होजाता है ॥ ४३ ॥

सत्यं ब्रवीमि ते देवि ! हृदिकृत्वावधारय ।

सर्वधर्मोत्तमात्कौलात्परोधर्मो न विद्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैं तुमसे सत्यही कहता हूँ कि, तुम हृदयमें इसको स्थिर करो सब धर्मोंमें उत्तम कौलधर्मसे अधिक उत्तम धर्म और नहीं है ॥ ४४ ॥

अयन्तु परमो मार्गो गुप्तोऽस्ति पशुसङ्कटे ।

व्यक्तीभविष्यत्यचिरात्संवृत्ते प्रवले कलौ ॥ ४५ ॥

अर्थ-यह परममार्ग पशुसंकटसे ढका हुआ है जब प्रवल कलियुग आवेगा, तब यह प्रकाशित होगा ॥ ४५ ॥

कलिकाले प्रवृद्धे तु सत्यं सत्यं मयोच्यते ।

न स्थास्यति विना कौलात्पशवो मानवा भुवि ॥ ४६ ॥

अर्थ-मैं सत्यही सत्य कहता हूँ कि, कलिकी प्रबलता होनेपर कौलाचारी मनुष्यके सिवाय पशुभावावलम्बी मनुष्य पृथ्वीपर नहीं रहेगा ॥ ४६ ॥

यदातुवैदिकीदीक्षादीक्षापौराणिकीतथा ।

नस्थास्यतिवरारोहे ! तदैवप्रबलःकलिः ॥ ४७ ॥

अर्थ—हे वरारोहे ! जब कलि प्रबल होजायगा, तब वैदिक पौराणिकदीक्षा पृथ्वीपर नहीं रहेंगी ॥ ४७ ॥

यदातुपुण्यपापानांपरीक्षावेदसम्भवा ।

नस्थास्यतिशिवे ! शान्ते ! तदैवप्रबलःकलिः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे शिवे ! जिस संसारमें पापपुण्यकी वेदोक्त परीक्षाकी शक्ति न रहेंगी तबही जानलेना कि, अजीत कलियुग आगया ॥ ४८ ॥

क्वचिच्छिन्नाक्वचिद्भिन्नायदासुरतरङ्गिणी ।

भविष्यतिकुलेशानि ! तदैवप्रबलःकलिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—हे कुलेश्वर ! जब तुम देखोगी कि, सुरतरङ्गिणी गंगाजी स्थान २ में छिन्न भिन्न होगई हैं, तबही जानलेना कि, प्रबल कलियुगकी अबाई हुई ॥ ४९ ॥

यदातुम्लेच्छजातीयाराजानोधनलोलुपाः ।

भविष्यन्तिमहाप्राज्ञे ! तदैवप्रबलःकलिः ॥ ५० ॥

अर्थ—हे महाप्राज्ञे ! जब तुम देखोगी कि, म्लेच्छजातीके राजालोग धनके अत्यन्त लोभी हुए हैं तबही कलियुगकी प्रबलता जान सकोगी ॥ ५० ॥

यदास्त्रियोऽतिदुर्दान्ताःकर्कशाःकलहेरताः ।

गर्हिष्यन्तिचभर्तारंतदैवप्रबलःकलिः ॥ ५१ ॥

अर्थ—जिससमय स्त्रिये बहुतही ढीठ होजयेंगी कर्कश और क्लेशप्रिय होकर पतिकी निंदा करने लगेगी तबही जान लेना कि, प्रबल कलियुगकी अबाई होगई ॥ ५१ ॥

यदातुमानवाभूमौस्त्रीजिताःकामकिङ्कराः ।

दृढ्यन्तिगुरुमित्रादींस्तदैवप्रवलःकलिः ॥ ५२ ॥

अर्थ-जिसकालमें मनुष्य कामके चले और स्त्रैण होकर बन्धुबान्धवोंके साथ विरुद्ध व्यवहार करेंगे उस समय घोर कलियुगका आगमन समझियो ॥ ५२ ॥

यदाक्षोणीस्वल्पफलातोयदाःस्तोकवर्षिणः ।

असम्यक्फलिनोवृक्षस्तदैवप्रवलःकलिः ॥ ५३ ॥

अर्थ-जिसकालमें पृथ्वीपर थोड़े फल होनेलगेगे मेघ थोड़ा जल वर्षावेगे, वृक्ष साधारण फलवान् होंगे तब जान लेना कि, कलियुगकी घोर स्वामिता होगई ॥ ५३ ॥

भ्रातरःस्वजनामात्यायदाधनकणेहया ।

मिथःसम्प्रहरिष्यन्तितदैवप्रवलःकलिः ॥ ५४ ॥

अर्थ-जिसकालमें धनके लोभसे अन्धे हो माता, बन्धुबान्धव, मंत्रिगण परस्पर क्लेश और झगडा करेंगे तब जान लेना कि, घोर कलियुग आगया ॥ ५४ ॥

प्रकटेमद्यमांसादौनिन्दादण्डविवर्जिते ।

गूढपानंचरिष्यन्तितदैवप्रवलःकलिः ॥ ५५ ॥

अर्थ-जिस समय प्रगटभावसे मद्य, मांस भोजन करने-परभी कोई निन्दा नहीं करेगा, कोई दण्ड नहीं देगा बरन् सर्व साधारण गुप्तभावसे शराब पीने लगेगे तब जान लेना कि, बहुतायतसे कलियुगकी आबाई हुई ॥ ५५ ॥

सत्यत्रेताद्यापरेषुयथामद्यादिसेवनम् ।

कलावपितथाकुर्यात्कुलधर्मानुसारतः ॥ ५६ ॥

अर्थ-सत्य. त्रेता और द्वापरयुगमें कुलधर्मके अनुसार जिसप्रकार सुरापानका नियम था, कलियुगमेंभी यह नियम अन्यथा नहीं होगा ॥ ५६ ॥

येकुर्वन्तिकुलाचारंसत्यपूताजितेन्द्रियाः ।

व्यक्ताचारादयाशीलानहितान्वाधतेकलिः ॥ ५७ ॥

अर्थ-सत्यकी महिमासे जो लोग पवित्र और जितेन्द्रिय हो कुलाचारकी मर्यादाकी रक्षा करेंगे उनके आचार सर्वत्र प्रकाशित होजायेंगे सर्व प्राणियोंमें दया करनेका जिनको अभ्यास है उनकेलिये विरुद्ध हो कलियुग कुछ नहीं कर सकेगा ॥ ५७ ॥

गुरुशुश्रूषणयुक्ताभक्तामातृपदाम्बुजे ।

अनुरक्ताःस्वदारेपुनहितान्वाधतेकलिः ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो लोग गुरुकी सेवा करते हैं, पिता माताके चरणोंमें भक्ति करते हैं, अपनी स्त्रीमें अनुरागी हैं । उनपर कलियुग अपना प्रभाव प्रगट नहीं करसकेगा ॥ ५८ ॥

सत्यव्रताःसत्यनिष्ठाःसत्यधर्मपरायणाः ।

कुलसाधनसत्यायेनहितान्वाधतेकलिः ॥ ५९ ॥

अर्थ-जो लोग सत्यव्रत, सत्यनिष्ठ, सत्यधर्मपरायण और कुलसाधनमें रत हैं उनके विरुद्ध कलियुग आचरण नहीं कर सकेगा ॥ ५९ ॥

कुलमार्गेणतत्त्वानिशोधितानिचयोगिने ।

येदद्युःसत्यवचसेनहितान्वाधतेकलिः ॥ ६० ॥

अर्थ-जो लोग कुलधर्मके अनुसार शोधित मत्स्यमांसादि सत्यवादी योगीको देते हैं उनपर कलियुग आक्रमण नहीं करसक्ता ॥ ६० ॥

हिंसामात्सर्ग्यरहितादम्भद्वेषविवर्जिताः ।

कुलधर्मेषुनिष्ठायेनहितान्वाधतेकलिः ॥ ६१ ॥

अर्थ-जो लोग हिंसा, दम्भ, द्वेष व मात्सर्य हीन हैं और जिनकी निष्ठा कुलधर्ममें है उनके विरुद्ध कलियुग आचरण नहीं करसक्ता ॥ ६१ ॥

कौलिकैःसहसंसर्गवसतिकुलसाधुषु ।

कुर्वन्तिकौलसेवायेनहितान्वाधतेकलिः ॥ ६२ ॥

अर्थ-जो लोग कौलिकोंके साथ रहते हैं, उनके निकट वसते हैं और उनकी सेवा करते हैं, उनके प्रति कलियुग अपनी सामर्थ्य प्रकाशित नहीं करेगा ॥ ६२ ॥

नानावेषधराःकौलाःकुलाचारेषुनिश्चलाः ।

सेवन्तेत्वांकुलाचारैर्नहितान्वाधतेकलिः ॥ ६३ ॥

अर्थ-जो कुलाचारपरायण मनुष्य कुलमें रहकर अनेक वेष धारण करके कुलाचारसे तुम्हारी पूजा करते हैं कलियुग उनके विरुद्ध आचरण नहीं करसक्ता ॥ ६३ ॥

स्नानदानंतपस्तीर्थव्रततर्पणमेवच ।

येकुर्वन्तिकुलाचारैर्नहितान्वाधतेकलिः ॥ ६४ ॥

अर्थ-जो लोग कुलाचारके मतसे, दान, तप, तीर्थ, दर्शन, व्रत और तर्पणादि करते हैं उनपर कलियुग अपना आचरण नहीं करसक्ता ॥ ६४ ॥

जीवसेकादिसंस्काराःपितृश्राद्धादिकाःक्रियाः ।

येकुर्वन्तिकुलाचारैर्नहितान्वाधतेकलिः ॥ ६५ ॥

अर्थ-जो लोग कुलाचारके मतसे गर्भाधानादि संस्कार और पितृश्राद्धादि करते हैं, उनका कलियुग कुछ नहीं करसक्ता ॥ ६५ ॥

कुलतत्त्वंकुलद्रव्यंकुलयोगिनमेवच ।

नमस्कुर्वन्तियेभक्त्यानहितान्धाधतेकलिः ॥ ६६ ॥

अर्थ-जो लोग भक्तिभावसे कुलद्रव्य कुलतत्त्व और कुल-योगीकी पूजा करते हैं उनपर कलियुग चढ़ाई नहीं कर-सक्ता ॥ ६६ ॥

कौटिल्यानृतहीनानांस्वच्छानांकुलमार्गिणाम् ।

परोपकारव्रतिनांसाधूनांकिङ्करःकलिः ॥ ६७ ॥

अर्थ-जो लोग कुटिलता और मिथ्याचारसे रहित हैं, जो लोग परोपकार करते हैं, साधु हैं, जो लोग निर्मलस्वभाव हैं और कुलधर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं कलियुग उनका किङ्कर होजाता है ॥ ६७ ॥

कलेर्दोषसमूहस्यमहानेकोगुणःप्रिये ।।

सत्यप्रतिज्ञकौलानांश्रेयःसङ्कल्पमात्रतः ॥ ६८ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! यद्यपि कलियुग समस्त दोषोंका आकर है; परन्तु इसमें विशेष एक गुण यह है कि, जो लोग सत्यप्रतिज्ञ और कुलाचारपरायण हैं, वह लोग संकल्पमात्रसेही 'मंगल' लाभ करसक्ते हैं ॥ ६८ ॥

अपरेतुयुगेदेवि ! पुण्यंपापञ्चमानसम् ।

नृणामासीत्कलौपुण्यंकेवलंनतुदुष्कृतम् ॥ ६९ ॥

अर्थ-हे देवि ! दूसरे युगोंमें पापपुण्य मनके संकल्पसेही होता था; परन्तु इस युगमें संकल्प करनेसे पुण्यही प्रकाशित होता है पाप नहीं ॥ ६९ ॥

कुलाचारैर्विहीनायेततासत्यभाषिणः ।

परद्रोहपरायेचतेनराःकलिकिंकराः ॥ ७० ॥

अर्थ-जो लोग मिथ्यावादी कुलाचाररहित और पराया अनिष्ट करनेवाले हैं वही कलियुगके किंकर हैं ॥ ७० ॥

कुलवर्त्मस्वभक्तायेपरयोपित्सुकामुकाः ।

द्वेषारःकुलनिष्ठानातिज्ञेयाःकलिकिंकराः ॥ ७१ ॥

अर्थ-जो लोग कुलमार्गसे घृणा करते हैं जो लोग पराई स्त्रीके हरण करनेमें लोलुप हैं जो लोग कुलाचारपरायण मनुष्योंसे द्वेष करते हैं वही कलियुगके किंकर कहलाते हैं ॥ ७१ ॥

युगाचारप्रसंगेनकलेःप्रबल्यलक्षणम् ।

संक्षेपात्कथितंभद्रे ! प्रीतयेतवपार्वति ! ॥ ७२ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! मैंने युगाचारके प्रसंगसे तुम्हारी प्रीतिके लिये संक्षेपसे कलियुगकी प्रबलताके लक्षण वर्णन किये ॥ ७२ ॥

प्रकटेऽत्रकलौदेवि ! सर्वधर्माश्चदुर्बलाः ।

स्थास्यत्येकंसत्यमात्रंतस्मात्सत्यमयोभवेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-हे देवि ! कलियुगके आनेपर समस्त धर्म दुर्बल हो जायेंगे उस कालमें केवल एक सत्यही रहेगा इस कारण सबको सत्यमय होना चाहिये ॥ ७३ ॥

सत्यधर्मसमाश्रित्ययत्कर्मकुरुतेनरः ।

तदेवसफलंकर्मसत्यंजानीहिसुव्रते ! ॥ ७४ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! मनुष्यगण इसकालमें सत्यधर्मके आश्रयसे जो कर्म करेंगे वह अवश्य सिद्ध होंगे ॥ ७४ ॥

नहिसत्यात्परोधर्मो न पापममृतात्परम् ।

तस्मात्सर्वात्मनामर्त्यःसत्यमेकंसमाश्रयेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ-सत्यकी समान श्रेष्ठधर्म और मिथ्याकी समान कोई

पाप नहीं है इस कारण सत्यका अवलम्बन करना सब मनुष्योंका कर्तव्य है ॥ ७५ ॥

सत्यहीनावृथापूजासत्यहीनोवृथाजपः ।

सत्यहीनंतपोव्यर्थमूपरेवपनंतथा ॥ ७६ ॥

अर्थ-सत्यरहित पूजा वृथा है, सत्यहीन जप वृथा है, सत्यहीन, तपभी ऊपरमें बीज बोलनेकी समान व्यर्थ है ॥ ७६ ॥

सत्यरूपंपरंब्रह्मसत्यंहिपरमंतपः ।

सत्यमूलाःक्रियाःसर्वाःसत्यात्परतरोनहि ॥ ७७ ॥

अर्थ-सत्यही परमब्रह्म है और सत्यही प्रधान तपस्या है समस्त क्रिया सत्यमूलक हैं सत्यसे अधिक कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है ॥ ७७ ॥

अतएवमयाप्रोक्तंदुष्कृतेप्रवलेकलौ ।

कुलाचारोऽपिसत्येनकर्तव्योव्यक्तभावतः ॥ ७८ ॥

अर्थ-मैं इसी कारण तुमसे कहता हूँ कि, अजीत कलियुगके अधिकारमें सत्यका अनुगमनकर कुलाचरणका अनुष्ठान करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है ॥ ७८ ॥

गोपनाद्दीयतेसत्यंनगुप्तिरनृतंविना ।

तस्मात्प्रकाशतःकुर्व्यात्कौलिकःकुलसाधनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-छिपानेसे सत्यकाभी अपलाप होजाता है, मिथ्याचारके सिवाय किसी बातका छिपाना सम्भव नहीं है अतएव कौलिकोंको चाहिये कि वह प्रगटभावसे कुलसाधन करें ॥ ७९ ॥

कुलधर्मस्यगुह्यर्थनानृतंस्याज्जगुप्सितम् ।

यदुक्तंकुलतन्त्रेपुनश्चांस्तंप्रवलेकलौ ॥ ८० ॥

अर्थ-मैंने कुलतंत्रमें लिखा है कि, कुलधर्मकी रक्षाके लिये तिसको छिपानेके लिये झूठ बोलना मिथ्या आचार नहीं

होता ऐसा होनेपर भी प्रबल कलियुगके अधिकारमें यह उपदेश ठीक नहीं है ॥ ८० ॥

कृतेधर्मश्चतुष्पादस्त्रेतायां पादहीनकः ।

(द्विपादोद्वापरेदेवि ! पादमात्रं कलौ युगे ॥ ८१ ॥

अर्थ-सतयुगमें धर्मके चार चरण थे, त्रेतामें एक चरण हीन हुआ है देवि ! द्वापरमें केवल धर्मके दो चरण बचे रहते हैं कलियुगमें धर्मका केवल एक चरण है ॥ ८१ ॥

तत्रापि सत्यं बलवत्तपः खञ्जं दयापि च ।

सत्यपादे कृते लोपे धर्मलोपः प्रजायते ॥ ८२ ॥

अर्थ-(आश्चर्य है) उस एक चरण धर्ममेंसे भी तपस्या और दयाका अंश लैगडा हो गया है, इस समय केवल सत्यही बलवान् है, यदि यह सत्यरूप चरण तोड़ दिया जाय तो फिर धर्मका चिह्न भी न रहे ॥ ८२ ॥

तस्मात् सत्यं समाश्रित्य सर्वकर्मणि साधयेत् ।

कुलाचारं विना यत्र नास्त्युपायः कुलेश्वरि ! ॥ ८३ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! मैं इसी लिये कहता हूँ कि सत्यका आश्रय ग्रहण करके सब कर्मोंको साधन करना चाहिये कलियुगमें कुलाचारके सिवाय और कुछ भी नहीं है ॥ ८३ ॥

तत्रानृतप्रवेशश्चेत्कुतोनिःश्रेयसं भवेत् ।

सर्वथा सत्यपूतात्मा मन्मुखेरितवर्त्मना ॥ ८४ ॥

सर्वकर्मनरः कुर्व्यात्स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।

दीक्षां पूजां जपं होमं पुरश्चरणतर्पणम् ॥ ८५ ॥

अर्थ-जो इसमें भी मिथ्याभाव प्रवेश कर जाय तो फिर किस प्रकारसे मोक्ष होसक्ता है ? इस कारण सदा सत्यके

आश्रयसे पवित्र आत्मा होकर मेरे कहनेके अनुसार अपने २
वर्णाश्रमके योग्य दीक्षा, पूजा, जप, होम, पुरश्चरण और
तर्पण करना सबको उचित है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

व्रतोद्गाहौपुंसवनंसीमन्तोन्नयनन्तथा ।

जातकर्मतथानामचूडाकरणमेवच ॥ ८६ ॥

अर्थ-विशेषकरके व्रत, विवाह, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन,
जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण ॥ ८६ ॥

मृतक्रियांपितृश्राद्धंकुर्यादागमसम्मतम् ।

तीर्थश्राद्धंवृषोत्सर्गेशारदोत्सवमेवच ॥ ८७ ॥

अर्थ-अन्त्येष्टि, पितृश्राद्ध, आगमसम्मत तीर्थश्राद्ध, वृषो-
त्सर्ग, शारदीया पूजा ॥ ८७ ॥

यात्रागृहप्रवेशश्चनववस्त्रादिधारणम् ।

वापीकूपतडागानांसंस्कारंतीर्थकर्मच ॥ ८८ ॥

अर्थ-यात्रा, गृहप्रवेश, नववस्त्रधारण, वापी, कूप और
तडागादिका खोदना व संस्कार तीर्थकृत्य ॥ ८८ ॥

गृहारंभप्रतिष्ठाञ्चदेवानांस्थापनन्तथा ।

दिवाकृत्यंनिशाकृत्यंपर्वकृत्यंतथैवच ॥ ८९ ॥

ऋतुमासवर्षकृत्यंनित्यंनैमित्तिकञ्चयत् ।

कर्त्तव्यंयदकर्त्तव्यंत्याज्यंग्राह्यञ्चयद्रवेत् ॥ ९० ॥

मयोक्तेनविधानेनतत्सर्वसाधयेन्नरः ॥ ९१ ॥

अर्थ-गृहारम्भ और प्रतिष्ठा दिनरातके कर्त्तव्य, पर्वकृत्य,
ऋतुकृत्य, मासकृत्य, वर्षकृत्य, नित्यनैमित्तिक जो कुछ करना
चाहिये, विचारके अनुसार विधिके क्रमसे तिन सबको
साधन करना और न करना कर्त्तव्य है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

नकुर्व्याद्यदिमोहेनदुर्मन्त्र्याश्रद्धयापिवा ।

विनष्टःसर्वकर्मभ्योविष्टायांसभवेत्कुमिः ॥ ९२ ॥

अर्थ—यदि मोह दुर्बुद्धि वा अश्रद्धासे कोई इस साधनाको न करे तो उसको सर्व कर्मोंके बाहर हो विनष्ट और विष्टाके कुण्डमें कीड़ा बनकर रहना पड़ेगा ॥ ९२ ॥

यदिमन्मतमुत्सृज्यमहेशि । प्रवलेकलौ ।

यदायत्क्रियतेकर्मविपरीतायतद्रवेत् ॥ ९३ ॥

अर्थ—हे महेश्वर ! कलियुगके प्रबल अधिकार कालमें यदि कोई मेरे मतकी उपेक्षा करके और मतको ग्रहण करके कोई कार्य करेगा, तो वह विपरीत होजायगा ॥ ९३ ॥

मन्मतासम्मतदीक्षासाधकप्राणवातिनी ।

पूजापिविफलादेवि ! हुतंभस्मार्पणंतथा ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो दीक्षा मेरे मतका विरोध करती है, उसके ग्रहण करनेसे साधकका प्राण नष्ट होजाता है। हे देवि! भस्ममें आहुति देनेकी समान उसकी वह पूजा भी विफल होजाती है ॥ ९४ ॥

देवताकुपितातस्यविघ्नस्तस्यपदेपदे ॥ ९५ ॥

अर्थ—(अधिक क्या कहा जाय) देवता उसके ऊपर कोप होजाते हैं और पग २ पर उसको विघ्न होता है ॥ ९५ ॥

कलिकालेप्रवृद्धेतुज्ञात्वामच्छास्त्रमम्बिके ! ।

योऽन्यमार्गैःक्रियांकुर्व्यात्समहापातकीभवेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! प्रबल कलियुगके आनेपर मेरे कहेहुए शास्त्रको जानकर भी जो पुरुष और किसी मार्गका अवलम्बन करके क्रिया सिद्ध करेगा वह पुरुष महापातकी होगा ॥ ९६ ॥

व्रतोद्वाहौ प्रकुर्व्वाणोयोऽन्यमार्गेणमानवः ।

सयातिनरकंघोरंयावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो और मार्गका अवलम्बन करके कृत्य या विवाह करेगा तो जबतक सूर्यचन्द्रमा रहेंगे; तबतक उसका वास नरकमें होगा ॥ ९७ ॥

व्रतेब्रह्मवधः प्रोक्तो ब्राह्मणवको भवेत् ।

केवलं सूत्रवाहोऽसौ चाण्डालादधमोऽपि सः ॥ ९८ ॥

अर्थ—भेरामत छोड़ मतान्तरसे व्रत करनेपर ब्रह्महत्याका पाप होगा, इसप्रकार उपनयन करनेवाला भी पतित होगा। वह केवल सूत्रधारी होकर चाण्डालसे भी अधिक नीच होगा ॥ ९८ ॥

उद्धाहितापियानारीजानीयात्सातुर्गहिता ।

उद्धोढापि भवेत्पापी संसर्गात्कुलनायिके ! ॥ ९९ ॥

अर्थ—हे कुलनायिके! यदि कोई स्त्री दूसरे नियमसे व्याही जायगी तो उसको निन्दनीय समझना । उसका संग करनेसे पातकी होना पड़ेगा ॥ ९९ ॥

वेद्यागमनजं पापं तस्य पुंसो दिनेदिने !

तद्धस्तं दत्ततोयादि नैव गृह्णन्ति देवताः ॥ १०० ॥

अर्थ—वेद्यागमन करनेसे जो पाप होता है उस पातकिनीके संगसे भी वही पाप होता है; यदि यह नारी अपने हाथसे अन्न और जलादि दे तो उसको देवतालोक ग्रहण नहीं करते ॥ १०० ॥

पितरोऽपि न चाश्रन्ति यतस्तन्मलपूयवत् ।

तयोरपत्यं कानीनः सर्वधर्मवाहिष्कृतः ॥ १०१ ॥

अर्थ—पितृलोग मल व राद समझकर उसको नहीं छते। यदि ऐसीके गर्भसे पुत्र होवे तो वह कानीन और सर्वधर्मोंके बाहर होगा ॥ १०१ ॥

दैवैपैत्रकुलाचारेनाधिकारोऽस्यजायते ।

अशाम्भवेनमार्गेणदेवतास्थापनञ्चरेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-जो पुरुष शिवके नियतकिये हुए मार्गको छोड़कर और मतसे देवता स्थापन करता है उसका अधिकार देव-कर्म, पितृकार्य और कुलाचारमें नहीं रहेगा ॥ १०२ ॥

नसान्निध्यंभवेत्तत्रदेवतायाःकथञ्चन ।

इहामुत्रफलंनास्तिकायक्लेशोधनक्षयः ॥ १०३ ॥

अर्थ-उसकी करीबुई देवप्रतिष्ठामें देवताकी स्थिति नहीं होगी और उसको इसलोक व परलोकमें किसी प्रकारका फल नहीं होगा । उसको केवल काया क्लेश होगा, या वृथा धन खर्च होगा ॥ १०३ ॥

आगमोक्तविधिंहित्वायःश्राद्धंकुरुतेनरः ।

श्राद्धंतद्विफलंसोऽपिपितृभिर्नरकंव्रजेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ-जो पुरुष आगमकी कहीहुई विधिको छोड़कर श्राद्ध करता है, तिसका वह श्राद्ध निष्फल होजाता है और श्राद्ध कर्ता भी पितृपुरुषोंके साथ नरकगामी होता है ॥ १०४ ॥

तत्तोयंशोणितसमंपिण्डोमलमयोभवेत् ।

तस्मान्मर्त्यःप्रयत्नेनशाङ्करमतमाश्रयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ-उसका दियाहुआ जल रुधिरके समान और पिण्ड मलमय होजाता है, इसकारण सर्वयत्नोंसे महादेवजीके मतको अनुसरण करना अनुप्यका कर्तव्य है ॥ १०५ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनसत्यंसत्यंमयोच्यते ।

अशाम्भवंकृतंकर्मसर्वदेवि ! निरर्थकम् ॥ १०६ ॥

अर्थ-मैं अधिक न कहकर सत्य २ ही कहता हूं. हे देवि ! जो लोक शम्भुकी उक्तिकी अवहेला करके कार्य करते हैं उनका वह कार्य निष्फल होजाता है ॥ १०६ ॥

अस्तुतावत्परोधर्मःपूर्वधर्मोऽपिनश्यति ।

शाम्भवाचारहीनस्यनरकात्रैवनिष्कृतिः ॥ १०७ ॥

अर्थ-दूसरे मतमें धर्मका संचय तो दूर रहै, वरन् संचित धर्म भी नाशको प्राप्त हो जाता है, जो पुरुष शैवाचारसे हीन है उसके लिये नरकसे निकलनेका कोई उपाय नहीं है ॥ १०७ ॥

मदुदीरितमार्गेणनित्यनैमित्तिकर्मणाम् ।

साधनंयन्महेशानि ! तदेवतवसाधनम् ॥ १०८ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! मैं जिस मार्गका वर्णन किया है, उसके अनुसार नित्यनैमित्तिक कर्मका साधन करनेसे वह तुम्हारा ही साधन होता है ॥ १०८ ॥

विशेषाराधनंतत्त्वमंत्रयंत्रादिसंयुतम् ।

भेषजंकलिरोगाणांश्रूयताङ्गदत्तोमम् ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनि-
स्तारोपायप्रश्ने परामृष्टिसाधनोपक्रमो
नाम चतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

अर्थ-जो आराधना कलिरोगके लिये महोपधिकी सम। है जिसमें बहुतसे मन्त्रयन्त्रादिकोंका विधान है तुम मुझसे उस श्रेष्ठ आराधनाकी कथाको श्रवण करो ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्ने पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटी-
कायां परामृष्टिसाधनोपक्रमोनाम चतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽष्टासः ५.

श्रीसदाशिव उवाच ।

त्वमाद्यापरमाशक्तिःसर्वशक्तिस्वरूपिणी ।

तवशक्त्यावयंशक्ताःसृष्टिस्थितिलयादिषु ॥ १ ॥

अर्थ-सदाशिवजी बोले कि, तुम आद्य परमाशक्ति हो व सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो, तुम्हारे शक्तिकी सहायतासे हम सृष्टि, स्थिति और लयकार्यमें समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

तवरूपाण्यनन्तानिनानावर्णाकृतीनिच ।

नानाप्रयाससाध्यानिवर्णितुंकेनशक्यते ॥ २ ॥

अर्थ-तुम्हारा रूप अनन्त है और वर्ण व आकार अनेक हैं सब रूपोंकी साधनाभी बहुत श्रमसे होती है कौन पुरुष इसके विशेष वर्णन करनेकी सामर्थ्य रखता है ॥ २ ॥

तवकारुण्यलेशेनकुलनन्त्रागमादिषु ।

तेपामर्चासाधनानिकथितानियथायति ॥ ३ ॥

अर्थ-तौ भी तुम्हारे करुणाप्रभावसे कुलतंत्र व दूसरे आगमोंमें तुम्हारे समस्त रूप और पूजा साधनादिका यथा-साध्य वर्णन किया है ॥ ३ ॥

गुप्तसाधनमेतत्तुनकुत्रापिप्रकाशितम् ।

अस्यप्रसादात्कल्याणि ! मयितेकरुणेदृशी ॥ ४ ॥

अर्थ-मैंने किसीस्थानमेंभी गुप्तसाधन विषयको प्रकाशित नहीं किया । हे कल्याणि ! इस साधनके प्रसादसे मेरेप्राति तुम्हारी ऐसी करुणा है ॥ ४ ॥

त्वयापृष्टमिदानींतन्नाहंगोपयितुंक्षमः ।

कथयामितवप्रीत्यैममप्राणाधिकंप्रिये ! ॥ ५ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! इससमय तुम मुझसे पूँछती हो इसकारण तुमसे यह गुप्तसाधन मैं छिपा नहीं सकता. यह मुझको भाणोंसे भी अधिक प्यारा है, तुम्हारी प्रीतिके लिये कहता हूँ ॥५॥

सर्वदुःखप्रशमनं सर्वपापद्विनिवारकम् ।

त्वत्प्राप्तिमूलमचिरात्तवसन्तोषकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—इसके द्वारा सर्वदुःख निवारित होजाते हैं; सब आपत्तियें दब जाती हैं । यह तुम्हारे संतोषका मूल है और इसकी ही सहायतासे तुमको पाया जासکتा है ॥ ६ ॥

कलिकल्मषहीनानां नृणां स्वल्पायुषां प्रिये ! ।

बहुप्रयासासक्तानामेते देवपरं धनम् ॥ ७ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! कलिकालके जीव पापके भारसे दबने और दीनभावसे युक्त हो अत्यन्त अल्पायु होंगे, उनपर बहुतसा परिश्रम नहोसकेगा वस उनके लिये यह साधनही परम विधि है ॥ ७ ॥

नचात्रन्यासबाहुल्यं नोपवासादिसंयमः ।

सुखसाध्यमबाहुल्यं भक्तानां फलदं महत् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसमें बहुतसे न्यास वा उपासनादिकी संयमविधि नहीं है यह अतिशय संक्षिप्त और श्रमसाध्य है विशेषकरके यह साधन भक्तोंको बहुतसा फल देनेवाला है ॥ ८ ॥

तत्रादौ शृणु देवेशि ! मन्त्रोद्धारक्रमं शिवे ! ।

यस्य श्रवणमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥ ९ ॥

अर्थ—हे देवेशि ! प्रथम इसके मन्त्रोद्धारका क्रम बतलाता हूँ श्रवण करो इसके सुनतेही जीव जीवन्मुक्त होजाता है ॥९॥

प्राणेशस्तैजसारूढो भेरुण्डाव्योमविन्दुमान् ।

वीजमेतत्समुद्धृत्य द्वितीयमुद्धरेत्प्रिये ! ॥ १० ॥

सन्ध्यारक्तसमारूढावामनेत्रेन्दुसंहिता ।

तृतीयं शृणुकल्याणि ! दीपसंस्थः प्रजापतिः ॥ ११ ॥

अर्थ-प्राणेश (ह) तेजस (र) में आरोहण करनेसे तिसमें भेरुण्डा (ई) मिलाय व्योम बिन्दु (०) मिलावै । हे प्रिये ! इस प्रकार “ह्रीं” बीजोद्धार करके सन्ध्या (श) रक्तके (र) के ऊपर आरोहण करके तिसमें वामनेत्र (ई) बिन्दु अनुस्वार मिलानेसे दूसरा मंत्र “श्रीं” होगा हे कल्याणि ! अब तीसरा मंत्र कहता हूँ श्रवण करो । प्रजापति अर्थात् “क” दीप अर्थात् “र” ऊपर है ॥ १० ॥ ११ ॥

गोविन्दविन्दुसंयुक्तः साधकानां सुखावहः ।

बीजत्रयन्ते परमेश्वरि ! सम्बोधनं पदम् ॥ १२ ॥

अर्थ-इसमें गोविन्द अर्थात् “ई” और अनुस्वारमें संयोग करे यह “क्रीं” बीज साधकोंके लिये सुखदाई है इन तीन बीजोंके पीछे “परमेश्वरि” पदका प्रयोग करे ॥ १२ ॥

वह्निकान्तावधिः प्रोक्तो दशाणोऽयं मनुः शिवे !

सर्वविद्यामयी देवी विद्येयं परमेश्वरि ! ॥ १३ ॥

अर्थ-इस मंत्रके अन्तमें “वह्निकान्ता” अर्थात् “स्वाहा” पद बोला जायगा. हे शिवे ! इससे “ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा” यह दशाक्षर मंत्र होगा. यही सर्वविद्यामयी देवी परमेश्वरी विद्या है ॥ १३ ॥

आद्यत्रयाणां बीजानां प्रत्येकं त्रयमेव वा ।

प्रजपेत्साधकाधीशः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १४ ॥

अर्थ-साधकोंमें उत्तम सर्व कामनासिद्धिके लिये प्रथमके तीन बीजोंके मध्यमें सबका या एकका जप करता रहै ॥ १४ ॥

बीजमाद्यत्रयंहित्वा सप्तार्णपि दशाक्षरी ।

कामवाग्भवताराद्या सप्तार्णपि दशाक्षरी त्रिधा ॥ १५ ॥

अर्थ-दशाक्षर मंत्रके “ह्रीं श्रीं क्रीं” यह तीन प्रथम बीज छोड़ देनेसे “परमेश्वरि स्वाहा” यह सप्ताक्षर मंत्र होता है इसके पहले “ह्रीं” कामबीज “ऐं” वाग्बीज और प्रणवयुक्त करनेसे “ह्रीं” परमेश्वरि स्वाहा,, “ऐं परमेश्वरि स्वाहा” “ओं परमेश्वरि स्वाहा” यह अष्टाक्षरयुक्त तीन मंत्र होते हैं ॥ १५ ॥

दशार्णामन्त्रणपदात्कालिकेपदमुच्चेत् ।

पुनराद्यत्रयंबीजंवाह्निजायांततोवदेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-दशाक्षर मंत्रके सम्बोधन पदके अन्तमें “कालिके” पद उच्चारण करना चाहिये फिर “ह्रीं श्रीं ह्रीं” यह प्रथमके तीन अर्णदि बीज उच्चारण करके वह्निवधू अर्थात् “स्वाहा” पद उच्चारण करे ॥ १६ ॥

षोडशीयंसमाख्यातांसर्वतन्त्रेषुगोपिता ।

वध्वाद्याप्रणवाद्याचेदेपासप्तदशीद्विधा ॥ १७ ॥

अर्थ-तब “ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा” यह षोडशाक्षर मंत्र हो जायगा. यह सब तंत्रोंमें गुप्त है मैंने तुमसे कहा । यदि इस मंत्रके प्रथममें “श्रीं” प्रणव “ओं” मिल जाय तो दो सप्तदशाक्षर मंत्र होजाँयगे ॥ १७ ॥

तवमन्त्राह्यसंख्याताःकोटिकोत्थवृंदास्तथा ।

संक्षेपादत्रकथितामन्त्राणांद्वादशप्रिये ! ॥ १८ ॥

अर्थ-हे देवि ! तुम्हारे कोटि २ अर्बुद २ अथवा असंख्य मंत्र हैं, संक्षेपसे यहाँपर बारह मंत्रोंका वर्णन किया ॥ १८ ॥

येपुयेपुचतन्त्रेषुयेयेमन्त्राःप्रकीर्तिताः ।

तेसर्वेतवमन्त्राःस्युस्त्वमाद्याप्रकृतिर्यतः ॥ १९ ॥

अर्थ-जिस २ तंत्रमें जिस २ मंत्रका वर्णन है, वह सबही तुम्हारे मंत्र हैं क्योंकि तुम आद्या प्रकृति हो ॥ १९ ॥

एतेपांसर्वमन्त्राणामेकमेवहि साधनम् ।

कथयामितवप्रीत्यैतथालोकहितायच ॥ २० ॥

अर्थ-सब मंत्रोंकी साधना इस प्रकारसे है मैं लोकके हितार्थ और तुम्हारी प्रीतिके लिये उस साधनाका वर्णन करता हूँ ॥ २० ॥

कुलाचारंविनादेवि ! शक्तिमन्त्रो नसिद्धिदः ।

तस्मात्कुलाचारतोवैसाधयेच्छक्तिसाधनम् ॥ २१ ॥

अर्थ-हे देवि ! कुलाचारके बिना शक्तिमंत्र सिद्धिदायक नहीं होता । इस कुलाचारमें रत रहकर शक्तिका साधन करना चाहिये ॥ २१ ॥

मद्यंमांसंतथामत्स्यंमुद्रामैथुनमेवच ।

शक्तिपूजाविधावाद्येष्वतत्त्वंप्रकीर्तितम् ॥ २२ ॥

अर्थ-हे आद्ये ! शक्तिपूजाप्रकरणमें मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, और मैथुन यह पांच तत्व साधनरूपमें कहे जाते हैं ॥ २२ ॥

पञ्चतत्त्वंविनापूजाअभिचारायकल्पते ।

शिलायांशस्यवापेचयथानैवांकुरोभवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-बिना पंचतत्वके पूजा करनेसे पूजा प्राणनाशकारिणी होती है इससे साधकका अभीष्ट सिद्ध होना तो दूर रहै वरन् उसको पग २ पर भयानक विघ्न होते हैं ॥ २३ ॥

पञ्चतत्त्वविहीनायांपूजायांनफलोद्भवः ।

प्रातःकृत्यंविनादेवि ! नाधिकारीतुकर्मसु ॥ २४ ॥

अर्थ-जिसप्रकार शिलापर बीज बोनेसे अंकुर नहीं निकलता, वैसेही पंचतत्वके बिना पूजासे कोई फल नहीं निकलता ॥ २४ ॥

१ तव मन्त्राणाम् इति कचिदपाठः ।

तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि प्रातःकृत्यं यथोचितम् ।

रजनीशेषयामस्य शेषार्द्धमरुणोदयः ॥ २५ ॥

अर्थ-हे देवि ! बिना प्रातःकृत्य किये कार्यका अधिकार नहीं होता इसकारण प्रथम यथोचित प्रातःकृत्यकी विधि कहता हूँ ॥ २५ ॥

तदा साधक उत्थाय मुक्तस्वापः कृतासनः ।

ध्यायेच्छिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ॥ २६ ॥

अर्थ-रातके पिछले पहरके शेषद्विकालमें अरुणोदयके समय निद्रा त्यागकर उठै । आसनपर बैठ मस्तकपर श्वेतकमलमें द्विभुज द्विनेत्र गुरु बैठे हैं, ऐसा ध्यान शिष्यको चाहिये ॥ २६ ॥

श्वेताम्बरपरीधानं श्वेतमाल्यानुलेपनम् ।

वराभयकरं शान्तकरुणामयविग्रहम् ॥ २७ ॥

अर्थ-वह श्वेतवस्त्र पहिरे हैं, शरीर श्वेतमाला और श्वेतचन्दनसे चर्चित है, वह शास्त्र और करुणाके आधार हैं, हाथमें वर और अभय हैं ॥ २७ ॥

वामेनोत्पलधारिण्याशक्त्यालिंगितविग्रहम् ।

स्मेराननं सुप्रसन्नं साधकाभीष्टदायकम् ॥ २८ ॥

अर्थ-वामभागमें कमलफूल धारण किये, शक्ति उनको आलिंगन करती है उनका मुखमंडल मुसकानयुक्त और प्रसन्नतासे परिपूर्ण है वह साधकके अभीष्टदायक हैं ॥ २८ ॥

एवं ध्यात्वा कुलेशानि ! मानसैरुपचारकैः ।

पूजयित्वा जपेन्मन्त्रीवाग्भवं दीजमुत्तमम् ॥ २९ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! मंत्रका जाननेवाला पुरुष इसप्रकार ध्यानकर मानसोपचारसे अर्चना करके (पूँ) दिव्यमंत्रका जप करे ॥ २९ ॥

यथाशक्तिजपंकृत्वासमर्प्यदक्षिणेकरे ।

ततस्तुप्रणमेद्धीमान्मंत्रेणानेनसद्गुरुम् ॥ ३० ॥

अर्थ-इसके उपरान्त यथाशक्ति जपकर देवीजीके दाहिने हाथमें जप समर्पणकर वक्ष्यमाण मंत्रसे सद्गुरुके चरणमें प्रणाम करे ॥ ३० ॥

भवपाशाविनाशायज्ञानदृष्टिप्रदर्शने ।

नमःसद्गुरवेतुभ्यंभुक्तिसुक्तिप्रदायिने ॥ ३१ ॥

अर्थ-हे गुरुदेव ! आप सबके फंदोंका नाश करनेवाले हैं आप ज्ञानदृष्टिके दिखलानेवाले हैं । आपसे भोग मोक्ष प्राप्त होती है, इस कारण आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

नराकृतिपरब्रह्मरूपायाज्ञानहारिणे ! ।

कुलधर्मप्रकाशायतस्मैश्रीगुरवेनमः ॥ ३२ ॥

अर्थ-आप नरदेहधारी हैं, परन्तु अज्ञानहारी परब्रह्म-मूर्ति हैं । आपसे कुलधर्ममें प्रकाश पाया है इस कारण हे श्रीगुरुदेव ! आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

प्रणम्यैवंगुरुंतत्रचिन्तयेन्निजदेवताम् ।

पूर्ववत्पूजयित्वातामूलमंत्रजपञ्चरेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-गुरुजीको इसप्रकासे नमस्कार करके फिर अपने इष्ट देवताका ध्यान करे पहलेकी समान पूजा करके तिस पूजाके अन्तमें फिर मूलमंत्रका जपकरे ॥ ३३ ॥

यथाशक्तिजपंकृत्वादेव्यावापकरेऽर्पयेत् ।

मंत्रेणानेनमतिमान्प्रणमेदिष्टदेवताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-यथाशक्ति जप पूराकर देवीके बाँयें हाथमें उसको अर्पणकर वक्ष्यमाण मंत्रसे इष्टदेवताको प्रणाम करे ॥ ३४ ॥

नमःसर्वस्वरूपिण्यैजगद्धात्र्यैनमोनमः ।

आद्यायैकालिकायैतेकर्यैहत्र्यैनमोनमः ॥ ३५ ॥

अर्थ-आप सर्वस्वरूपिणी जगद्धात्री आदिशक्ति और कालिका हैं आप जगत्को उत्पन्न करती पालनकरती हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ३५ ॥

नमस्कृत्यवहिर्गच्छेद्भामपादपुरःसरम् ।

त्यक्त्वामृतपुरीपञ्चदन्तधावनमाचरेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-नमस्कारके अन्तमें आगे बौया पाँच रखके बाहर आवे फिर मलमूत्र त्यागकर दंतौन करे ॥ ३६ ॥

ततोगत्वाजलाभ्यांशेस्नानंकृत्वायथाविधि^१ ।

आदावपउपस्पृश्यप्रविशेत्सलिलेततः ॥ ३७ ॥

अर्थ-फिर जलाशय अर्थात् बापी कूप तडागादिके निकट जाय यथाविधिसे स्नान करे, पहले आचमन करके फिर स्नान करे ॥ ३७ ॥

नाभिमात्रजलेस्थित्वामलानामपनुत्तये ।

सकृत्स्नात्वातथोन्मज्ज्यमान्त्रमाचमनञ्चरेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त नाभितक जलमें खड़ाहो शरीरके मेलको दूरकर केवल एकबार स्नानकरे फिर गोता लगाय तांत्रिक मतसे आचमन करे ॥ ३८ ॥

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैःस्वाहान्तैःसाधकाग्रणीः ।

त्रिःप्राश्यापोद्धिरुन्मृज्यत्वाचमेत्कुलसाधकः ॥ ३९ ॥

अर्थ-कुलसाधकको चाहिये कि, वह आत्मतत्त्व, विद्या-तत्त्व और शिवतत्त्वाय स्वाहा इसमंत्रको उच्चारण करके

१ कर्त्ये हर्त्ये नमोस्तुते इति पाठान्तरम् । २ स्नानंकुर्याद्यथाविधि इति वा पाठः ।

तीनवार जलपान करें फिर दोबार आचमन करनेके उपरान्त आचमन करना उचित है ॥ ३९ ॥

कुलयंत्रमन्त्रगर्भविलिख्यसलिलेसुधीः ।

मूलमन्त्रं द्वादशधा तस्योपरि जपेत्प्रिये ! ॥ ४० ॥

अर्थ-इसके अनन्तर जानीपुरुष जलके ऊपरीभागमें कुलयंत्र लिखकर तिसमें मूलमन्त्र लिखें । हे प्रिये ! तिसके ऊपर बारह अक्षरवाला मूलमन्त्र जप करना चाहिये ॥ ४० ॥

तेजोरूपं जलं ध्यात्वा सूर्यमुद्दिश्य देशिकः ।

तत्तौयैर्यज्ञलीन्दत्त्वा तेनैव पाथसा त्रिधा ।

अभिपिच्य स्वमूर्द्धानं सप्तच्छिद्राणि रोधयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ-फिर साधकको चाहिये कि, उस जलको तेजरूप समझकर सूर्यके लिये तीन अंजलि जलदे उसजलको तीन-बार अपने मस्तकपर छिड़के और मुख, नासिका, कान, व नेत्र इन सात छिद्रोंको रोकें ॥ ४१ ॥

ततस्तु देवता प्रीत्यै त्रिनिमज्ज्य जलान्तरे ।

उत्थाय गात्रं सम्मार्ज्यं पिदध्याच्छुद्धवाससी ॥ ४२ ॥

अर्थ-फिर देवताकी प्रसन्नताके लिये जलमें तीनबार गोता मारें फिर उठकर शरीर मार्जन करनेके अन्तमें शुद्ध-वस्त्र पहरे ॥ ४२ ॥

मृत्स्नया भस्मना वापि त्रिपुण्ड्रं विन्दुसंयुतम् ।

ललाटे तिलकं कुर्याद्वायव्यावद्धकुन्तलः ॥ ४३ ॥

अर्थ-अनन्तर गायत्री पठ केशचांध शुद्धमट्टी अथवा भस्मका माथेपर विन्दुयुक्त तिलक लगावें और त्रिपुण्ड्र धारण करें ॥ ४३ ॥

वैदिकीं तान्त्रिकीं चैव यथानुक्रमयोगतः ।

सन्ध्यां समाचरेन्मन्त्री तान्त्रिकीं शृणुकथ्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—फिर क्रमानुसार वैदिकी और तान्त्रिकी संध्याका अनुष्ठान करे अब मैं तान्त्रिकी संध्याविधि कहता हूँ श्रवण करो ॥ ४४ ॥

आचम्य पूर्ववत् तोयैस्तीर्थान्यावाहयेच्छिवे ! ॥ ४५ ॥

अर्थ—हे शिवे ! जलग्रहण कर पहिली कही हुई विधिके अनुसार तीर्थादिमें स्नान करे ॥ ४५ ॥

गङ्गे ! च यमुने ! चैव गोदावरि ! सरस्वति ! ।

नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! जलेऽस्मिन्सन्निधिकुरु ॥ ४६ ॥

अर्थ—साधक प्रार्थना करे कि, गङ्गे ! यमुने ! गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! तुम इस जलमें अधिष्ठान करो ॥ ४६ ॥

मन्त्रेणानेनमतिमान्मुद्रयांकुशसंज्ञया ।

आवाह्यतीर्थसलिले मूलं द्वादशधा जपेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष इस मंत्रको पढ़कर अंकुशमुद्रासे जलमें सब तीर्थोंका आवाहन करके उसके ऊपर बारंबार मूलमंत्र-जपे ॥ ४७ ॥

ततस्तत्तोयतो विन्दूंस्त्रिधा भूमौ विनिक्षिपेत् ।

मध्यमानामिका योगान्मूलोच्चारणपूर्वकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—फिर मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलीको मिलाय मूलमंत्रका उच्चारण कर इस जलसे लेकर तीनबार थोड़ा २ जल पृथ्वीपर छोड़े ॥ ४८ ॥

सप्तवारं स्वमूर्द्धानमभिपिच्यत तोजलम् ।

वामहस्ते समादाय छदश्चक्षुषाणिना ॥ ४९ ॥

ईशानवायुवरुणवह्नीन्द्रबीजपञ्चकम् ।

प्रजप्यवेदधातोयंदक्षहस्तेसमानयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ-मूलमंत्र उच्चारण करनेके समय ऐसेही इन दोनों उंगलियोंके संयोगसे इसजलकी बूँदे सातबार अपने मस्तकपर छिड़के फिर बाँयेहाथमें कुछ जल ग्रहणकर दाँये हाथसे उसको द्रक चारबार ईशान, वायु, वरुण, वह्नि और इन्द्र बीज जपकर दाहिने हाथमें ग्रहणकरे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वीक्ष्यतेजोमयं ध्यात्वा चेडया कृप्यसाधकः ।

देहान्तःकलुषं तेन रेचयेत्पिङ्गलाख्यया ॥ ५१ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त इस जलकी ओर निहार उसको तेजयुक्त रूपविचार इडानामक नाडीसे आकर्षण करके तिससे शरीरके पापको धोय तिसपापको कृष्णवर्ण विचार पिंगला नाडीकेद्वारा त्याग करदे ॥ ५१ ॥

निष्कृप्य पुरतो वज्रशिलायामस्त्रमुच्चरन् ।

त्रिवारं ताडयन्मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥ ५२ ॥

आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-अनन्तर (फट्) मंत्रको उच्चारणकर सन्मुख स्थित हुई कल्पित वज्रशिलाके ऊपरके भागमें उसजलको तीन-बार मारे और हाथ धो आचमन करके वक्ष्यमाण मंत्रसे सूर्य भगवान्को अर्घ्य दे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

तारमायाहंस इति घृणिसूर्य्ये । ततः परम् ।

इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात्स्वाहेत्युदीरयन् ॥ ५४ ॥

अर्थ-सूर्य भगवान्को अर्घ्य देनेका यह मंत्र है "ओं ह्रीं हंस घृणि सूर्य इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा" ॥ ५४ ॥

१ वज्रशिलायां मन्त्रमुच्चरन् इति वा पाठः ।

ततो ध्यायेन्महादेवीं गायत्रीं परदेवताम् ।

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपां गुणभेदतः ॥ ५५ ॥

अर्थ—फिर प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें गुणभेदके अनुसार परमदेवता गायत्रीकी त्रिविध मूर्तिका ध्यान करना उचित है ॥ ५५ ॥

प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णीं द्विभुजाञ्च कुमारिकाम् ।

कमण्डलुं तीर्थपर्णमच्छमालाञ्च विभ्रतीम् ।

कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रातःकालही ब्रह्मशक्तिका ध्यान करना चाहिये यह रक्तवर्ण, दो भुजा और कुमारी हैं, इनके हाथमें तीर्थके जलसे भरा हुआ कमण्डलु है, निर्मलमाला शोभायमान है, कृष्ण वस्त्र पहिर रखे हैं, यह हंसपर सवार हैं, पवित्र सुसकान युक्त मुख है ॥ ५६ ॥

मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीञ्च चतुर्भुजाम् ।

शंखचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—मध्याह्नकालमें सूर्यमण्डलमें स्थित हुई वैष्णवी शक्ति गायत्रीका ध्यान करना उचित है । यह शक्ति श्यामा और चतुर्भुजा है, गरुड़के आसनपर बैठी हुई हाथमें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए हैं ॥ ५७ ॥

पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वान्नमालाविभूषिताम् ।

युवतिं सततं ध्यायेन्मध्येमात्तण्डमण्डले ॥ ५८ ॥

अर्थ—यह वनमालासे शोभायमान है इनका वक्षस्थल (पीन) उठेहुए कुचोंसे शोभित है, यह शक्ति गौवनशालिनी है सूर्यभगवान्के मध्यभागमें आनेपर सदा इसप्रकार युवतीका ध्यान करे ॥ ५८ ॥

सायाह्नेवरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः ।

ईशानवायुवरुणवह्निन्द्रवीजपञ्चकम् ।

प्रजप्यवेदधातोयंदक्षहस्तेसमानयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ—मूलमंत्र उच्चारण करनेके समय ऐसेही इन दोनों उंगलियोंके संयोगसे इसजलकी बूँदे सातवार अपने मस्तकपर छिड़के फिर बाँयेहाथमें कुछ जल ग्रहणकर दाँये हाथसे उसको द्रक चारवार ईशान, वायु, वरुण, वह्नि और इन्द्र बीज जपकर दाहिने हाथमें ग्रहणकरे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वीक्ष्यतेजोमयं ध्यात्वा चेडया कृप्यसाधकः ।

देहान्तःकलुषं तेन रेचयेत्पिङ्गलाख्यया ॥ ५१ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त इस जलकी ओर निहार उसको तेजयुक्त रूपविचार डडानामक नाडीसे आकर्षण करके तिससे शरीरके पापको धोय तिसपापको कृष्णवर्ण विचार पिङ्गला नाडीकेद्वारा त्याग करदे ॥ ५१ ॥

निष्कृप्य पुरतो वज्रशिलायामस्त्रमुच्चरन् ।

त्रिवारं ताडयन्मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥ ५२ ॥

आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्यागार्यं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—अनन्तर (फट्) मंत्रको उच्चारणकर सन्मुख स्थित हुई कल्पित वज्रशिलाके ऊपरके भागमें उसजलको तीन-वार मारे और हाथ धो आचमन करके वक्ष्यमाण मंत्रसे सूर्य भगवान्को अर्घ्य दे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

तारमायाहंस इति घृणिसूर्य्यं । ततः परम् ।

इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात्स्वाहेत्युदीरयन् ॥ ५४ ॥

अर्थ—सूर्य भगवान्को अर्घ्य देनेका यह मंत्र है “ओं ह्रीं हंस घृणि सूर्य इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा” ॥ ५४ ॥

ततो ध्यायेन्महादेवीं गायत्रीं परदेवताम् ।

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपां गुणभेदतः ॥ ५५ ॥

अर्थ—फिर प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें गुणभेदके अनुसार परमदेवता गायत्रीकी त्रिविध मूर्तिका ध्यान करना उचित है ॥ ५५ ॥

प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजां कुमारिकाम् ।

कमण्डलुं तीर्थपर्णमच्छमालां विभ्रतीम् ।

कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रातःकालही ब्रह्मशक्तिका ध्यान करना चाहिये यह रक्तवर्ण, दो भुजा और कुमारी हैं, इनके हाथमें तीर्थके जलसे भरा हुआ कमण्डलु है, निर्मलमाला शोभायमान है, कृष्ण वस्त्र पहिर रक्खे हैं, यह हंसपर सवार हैं, पवित्र सुसकान युक्त मुख है ॥ ५६ ॥

मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीं चतुर्भुजाम् ।

शंखचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—मध्याह्नकालमें सूर्यमण्डलमें स्थित हुई वैष्णवी शक्ति गायत्रीका ध्यान करना उचित है । यह शक्ति श्यामा और चतुर्भुजा है, गरुड़के आसनपर बैठी हुई हाथमें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए हैं ॥ ५७ ॥

पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वान्वनमालाविभूषिताम् ।

युवतिं सततं ध्यायेन्मध्येमार्त्तण्डमण्डले ॥ ५८ ॥

अर्थ—यह वनमालासे शोभायमान है इनका वक्षस्थल (पीन) ठठेहुए कुचोंसे शोभित है, यह शक्ति गौवनशालिनी है सूर्यभगवान्के मध्यभागमें आनेपर सदा इसप्रकार युवतीका ध्यान करे ॥ ५८ ॥

सायाह्नेवरदादेवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः ।

शुक्लांशुकाम्बरधरांवृषासनकृताश्रयाम् ॥ ५९ ॥

— अर्थ—यतीके लिये गायत्रीकी सायाह्म मूर्तिका ध्यान करना चाहिये यह शक्ति वरकां देनेवाली, शुक्लवर्ण, श्वेतवस्त्रको धारण करनेवाली और वृषभपर सवार है ॥ ५९ ॥

त्रिनेत्रांवरदांपाशंशूलश्चनृकरोटिकाम् ।

विभ्रतींकरपद्मैश्वर्यवृद्धांगलितयौवनाम् ॥ ६० ॥

अर्थ—इनके तीन नेत्र हैं, करकमलमें पाश है. शूल और नरकपाल है यह गलितयौवना और वृद्धा हैं ॥ ६० ॥

एवंध्यात्वामहादेव्यैजलानामञ्जलित्रयम् ।

दत्त्वाजपेक्षुगायत्रीं दशधाशतधापि वा ॥ ६१ ॥

अर्थ—इसप्रकार ध्यान करनेके अन्तमें महादेवीको तीन बार जलकी अञ्जलि देकर सातबार या दशबार गायत्रीका जप करे ॥ ६१ ॥

गायत्रीं शृणु देवेशि ! वदामितवभावतः ।

आद्यायै पदमुच्चार्य विद्महेतदनन्तरम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—हे देवि ! मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये गायत्री कह-
ताहूँ तुम श्रवणकरो पहले “आद्यायै” यह उच्चारण करके
अन्तमें “विद्महे” पद उच्चारण करें ॥ ६२ ॥

परमेश्वर्यै धीमहितन्नः काली प्रचोदयात् ।

एपातुतवगायत्रीमहापापप्रणाशिनी ॥ ६३ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त “परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली
प्रचोदयात्” यह पद उच्चारण करे—यही गायत्री है । “आ-
द्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि । तन्नः काली प्रचोदयात्” ।
यह गायत्री महापापका नाश करनेवाली है ॥ ६३ ॥

१ महापापविनाशिनी इति पाठान्तरम् ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अर्थ-जो त्रिसन्ध्यामें इस गायत्रीका जप करते हैं वह अनु-
रूप फल पाते हैं. हे भद्रे ! इसके उपरान्त देवता ऋषि और पितृ-
गणोंका तर्पण करे ॥ ६४ ॥

प्रणवं सद्वितीयाख्यान्तर्पयामि नमः पदम् ।

शक्तौ तु प्रणवे मायां नमः स्थाने द्विठं वदेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ-प्रथमही प्रणवका उच्चारण कर शेषमें “तर्पयामि नमः”
इस पदका उच्चारण करना चाहिये, शक्तिकी साधनामें प्रण-
वके स्थानपर माया बीज लगाय, नमः स्थानमें द्विठ अर्थात्
स्वाहा लगावे ॥ ६५ ॥

मूलान्ते सर्वभूतान्ते निवासिन्यै पदं वदेत् ।

सर्वस्वरूपाङ्गैः युक्तां सायुधा पितथा पठेत् ॥ ६६ ॥

अर्थ-प्रथम मूलमंत्र पढ़कर फिर “सर्वभूत” पदके पीछे
“निवासिन्यै” पद उच्चारण करे, फिर “सर्वस्वरूपाङ्गैः”
पदका उच्चारण करके अन्तमें “सायुधायै” पदको पढ़ना
चाहिये ॥ ६६ ॥

सावरणां सचतुर्थी तद्देव परात्परायाम् ।

आद्यायै कालिकायै च इदमर्घ्यं ततो द्विठः ॥ ६७ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त “सावरणायै परात्परायै, आद्यायै,
कालिकायै” उच्चारण करके “इदमर्घ्यं स्वाहा” पद पाठ
करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अनेनार्घ्यमहादेव्यै दत्त्वा मूलं जपेत्सुधीः ।

यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् ॥ ६८ ॥

१ ततस्तु तर्पयेद्देवि इति च पाठ । २ आद्यायै कालिकायै इत्यपि समीचीनः ।

अर्थ—ज्ञानी पुरुष महादेवीको अर्घ्य देकर यथाशक्तिमूल-
मंत्र जप करके देवीके वामकरमें समर्पण करे ॥ ६८ ॥

प्रणम्यदेवींपूजार्थंजलमादायसाधकः ।

नत्वातीर्थपठन्स्तोत्रं देवताध्यानतत्परः ॥ ६९ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त देवीको प्रणाम करके पूजाके लिये जल-
ले तीर्थको नमस्कार करे, फिर स्तोत्र पढ़कर देवताकी आरा-
धना करने लगे ॥ ६९ ॥

यागमण्डपमागत्यपाणिपादौविशोधयेत् ।

ततोद्वारस्यपुरतःसामान्यार्घ्यंप्रकल्पयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ—यज्ञस्थलमें आयकर साधकको चाहिये कि. हाथ पांव
धोवाले और द्वारके संमुखभागमें साधारण अर्घ्य स्थापित
करे ॥ ७० ॥

त्रिकोणवृत्तभूविम्बंमण्डलंरचयेत्सुधीः ।

आधारशक्तिसम्पूज्यतत्राधारंनियोजयेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—फिर एक त्रिकोण वृत्त खेंचे तिसके बाहर गोलाकार
तिसके बाहर चौकोन मण्डल बनायकर आधारशक्तिकी पूजा
करता हुआ आधारमें स्थापित करे ॥ ७१ ॥

अस्त्रेणपात्रंप्रक्षाल्यहृन्मन्त्रेणप्रपूज्यच ।

निक्षिप्यगन्धंपुष्पञ्चतीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥ ७२ ॥

अर्थ—पीछे "अस्त्रायफट्" इसमंत्रसे पात्रको उसमें जल
भरे, फिर उसमें गंध पुष्प देकर तीर्थादिका आवाहन
करे ॥ ७२ ॥

आधारपात्रतोयेषुबह्वर्कशशिमण्डलम् ।

पूजयित्वातद्दशधामायावीजेनमन्त्रयेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त आधारमें वह्नि, पात्रमें सूर्यमंडल और जलमें चन्द्रमण्डलकी पूजाकर "ह्रीं" शब्दसे उसजलको अभिमंत्रित करे ॥ ७३ ॥

प्रदर्शयेद्धेनुयोनिंसामान्यार्घ्यमिदंस्मृतम् ।

ततस्तज्जलपुष्पैश्चपूजयेद्भारदेवताः ॥ ७४ ॥

अर्थ-फिर उसके ऊपर "धेनु" व योनिमुद्रा दिखावे । पश्चात् उस जल और उन फूलोंसे द्वारदेवताकी पूजा करे (१) ॥ ७४ ॥

गणेशक्षेत्रपालश्वटुकयोगिनीतथा ।

गङ्गाश्वयमुनाशैवलक्ष्मीवाणीततोयजेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ-गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक, योगिनी, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा करे ॥ ७५ ॥

किञ्चित्पृश्नवामशाखावामपादपुरःसरम् ।

स्मरन्देव्याःपदाम्भोजंमण्डपंप्रविशेत्सुधीः ॥ ७६ ॥

अर्थ-फिर बायाँ पाँव आगे बढ़ाय बाईं शाखा स्पर्शकर देवीके चरणकमलका स्मरणकरे तब मण्डपमें प्रवेश करे ॥ ७६ ॥

नैर्ऋत्यांदिशिवास्त्वीशं ब्रह्माणश्चसमर्चयन् ।

सामान्यार्घ्यस्यतोयेनप्रोक्षयेद्यागमन्दिरम् ॥ ७७ ॥

(१) धेनुमुद्रा यथा:-अग्न्योन्माभिमुखश्छिष्टा वनिष्ठानामिकापुनः । तथाच तर्जनी मध्या धेनुमुद्रामृतपदा ॥ अर्धात्- दाहिने हाथकी वनिष्ठाके अग्रभागसे बायें हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिलावे । ऐसेही बायें हाथकी वनिष्ठाके अग्रभागसे दाहिने हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिलावे । दाहिने हाथकी तर्जनीके अग्रभागसे बायें हाथकी मध्यमाका अग्रभाग मिलावे । ऐसेही बायें हाथकी तर्जनीके अग्रभागसे दाहिने हाथकी मध्यमाके अग्रभागको मिलावे । अनामिकामूलेके साथ अनामिकामूल और मध्यमामूलेके साथ मध्यमाका मूल, व अंगुठके साथ अंगुठा मिलावे, **सुधा** नाम "धेनुमुद्रा" है ।

अर्थ-नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुपुरुष और ब्रह्माकी अर्चना करके कहे हुये अर्घ्य जलको छिड़ककर यज्ञमंदिरको प्रोक्षित करें ॥ ७७ ॥

अनन्तरं साधकैर्द्रोदिव्यदृष्ट्यवलोकनैः ।

दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानन्नाद्रिश्चान्तरिक्षगान् ॥ ७८ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधकचूडामणि दिव्यदृष्टिसे दर्शन कर सब दिव्यविघ्नोंको दूर करता हुआ जल छिड़ककर अंतरिक्षके सब विघ्नोंको दूर करें ॥ ७८ ॥

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान्निवारयेत् ।

चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैर्यागमण्डपम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त तीनबार पोंवके आघातसे भूमिके विघ्नोंको दूरकर चन्दन अगर कस्तूरी और कपूरसे यागमण्डपको गन्धयुक्त करें ॥ ७९ ॥

धूपयेत्स्वोपवेशार्थं चतुरस्रं त्रिकोणकम् ।

विलिख्य पूजयेत्तत्र कामरूपाय हन्मनुः ॥ ८० ॥

अर्थ-तदनन्तर अपने बैठनेके लिये बाहिरी चबूतरमें त्रिकोणाकार मण्डल खँच अधिष्ठात्री देवता कामरूपाकी पूजा करे ॥ ८० ॥

तत्रासनं समास्तीर्य काममाधारशक्तिः ।

कमलासनाय नमो मन्त्रेणैवासनं यजेत् ॥ ८१ ॥

अर्थ-फिर मण्डलके ऊपर आसन फैलाय कामबीज "क्लीं" उच्चारण करके "आधारशक्तये कमलासनाय नमः" इस मंत्रसे आसनकी पूजा करे ॥ ८१ ॥

उपविश्यासने विद्वान् प्राङ्मुखो वाप्यदङ्मुखः ।

वद्धवीरासनो मन्त्री विजयां, परिशोधयेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त विद्वान् साधक पूर्वको या उत्तरको मुखकर वीरासनपर बैठ विजयाका शोधन करे ॥ ८२ ॥

तारं मायां समुच्चार्य्य अमृते ! अमृतोद्भवे ।

अमृतवर्षिणि ! ततोऽमृतमाकर्षयद्विधा ॥ ८३ ॥

सिद्धिं देहि ततो ब्रूयात् कालिकां मे ततः परम् ।

वशमानय ठद्वद्वं संविदाशोधने मनुः ॥ ८४ ॥

अर्थ-प्रथम “प्रणव” और “माया” बीज उच्चारण करके तिसके अन्तमें “ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयार्कषय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय स्वाहा” इसमंत्रसे शोधन करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मूलमन्त्रं सप्तवारं प्रजप्य विजयोपरि ।

आवाहन्यादिमुद्राश्च धेनुयोनं प्रदर्शयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त विजयाके ऊपर सातवार मूलमन्त्र जपकर आवाहनी, स्थापनी, संनिधापनी, सन्निरोधिनी धेनु व योनिमुद्रा दिखावै (१) ॥ ८५ ॥

(१) दक्षिणामूर्तिसंहितामें कहा है:-पुटालिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत् । इयन्तु विपरितेन तदा वै स्थापनी भवेत् । उभयोर्द्विगुणकमुष्टिभ्यां तदेवं सन्निधापनी । अन्ताद्द्विगुणकमुष्टिभ्यां तदेवं सन्निरोधिनी । इसका अर्थ:-अञ्जलिपुट ऊँचे नीचेमें मिलाकर रखनेसे आवाहनी मुद्रा होगी । यह मुद्रा विपरीत होनेमें अर्थात् ऊपर संश्लिष्ट और नीचे विश्लिष्ट होनेसे स्थापनीमुद्रा होगी । दोनों हाथके अँगुओंको ऊपर ठठाव मधी-मुट्टी मिलातेसे सन्निधापनी मुद्रा होगी । दोनों अँगुठके बीचमें रखकर ऐसेही दोनों हाथोंकी मुट्टी बांधनेसे सन्निरोधिनीमुद्रा होगी । दोनों अँगुओंको मिलाकर दोनों मध्यमाओंके साथ दोनों तर्जानियोंके मिलानेसे और दोनों अनामिकाओंके साथ दोनों कन अँगुलियोंके मिलानेसे धेनुमुद्रा होगी । अञ्जलिपुटके ऊपर विश्लिष्ट और नीचे संश्लिष्ट करके दोनों हाथोंकी अनामिकाके साथ तर्जानियोंको परस्परमिलाप दोनों मध्यम अँगुलियोंके अग्रभागसे मिलानेपर योनिमुद्रा होगी । दहिने हाथकी अनामिकाके साथ पृष्ठाङ्गुष्ठको मिलानेसे तत्त्वमुद्रा होगी ।

गुरुं पद्मे सहस्रारे यथा सङ्केतमुद्रया ।

त्रिधैव तर्पयेद्देवीं हृदि मूलं समुच्चरन् ॥ ८६ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त तत्वमुद्राकी सहायतासे सहस्रदल-
कमलमें विजयाके द्वारा गुरुकेलिये तीनवार तर्पण करे
अनन्तर हृदयमें मूलमंत्र जपे ॥ ८६ ॥

वाग्भवंवदयुग्मञ्चवाग्वादिनि ! पदंततः ।

ममजिह्वाग्रेस्थिरीभवसर्वसत्त्ववशङ्करि ! ।

स्वाहान्तैनैवमनुनाजुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥ ८७ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् प्रथम 'ऐ' उच्चारणकर "वद" शब्दको दो बार
उच्चारण करना चाहिये, पीछे वाग्वादिनि पद उच्चारण करके
"मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि स्वाहा" इसमंत्रका
उच्चारणकरे इसमंत्रसे कुण्डलीके मुखमें विजयाके द्वारा
आहुति देवे ॥ ८७ ॥

स्वीकृत्यसंविदां वामकर्णोर्द्ध्वं श्रीगुरुं नमेत् ।

दक्षिणे च गणेशानमाद्यां मध्ये सनातनीम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-इसप्रकार भंगका सेवनकर बाँये कानके ऊपर "श्रीगु-
रवे नमः" यह मंत्र पढ़ गुरुको नमस्कार करे; दाँये कानके
ऊपर "गणेशाय नमः" कह गणेशजीको नमस्कारकर लला-
टमें सनातनी कालिकाको नमस्कार करे ॥ ८८ ॥

कृताञ्जलिपुटोभूत्वा देवीध्यानपरायणः ।

पूजाद्रव्याणिसर्वाणि दक्षिणे स्थापयेत्सुधीः ।

वामे मुवासितं तोयं कुलद्रव्याणियानि च ॥ ८९ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुष दाहिनी ओर समस्त पूजाकी साम-
ग्री रखकर बाँई ओर सुगन्धित जल व कुलसामग्री रखकर
हाथ जोड़ देवीका ध्यान करे ॥ ८९ ॥

अस्त्रान्तमूलमन्त्रेणसामान्याध्यौदकेनच ।

सम्प्रोक्ष्यसर्ववस्तूनिवेष्टयेज्जलधारया ।

वह्निवीजेनदेवेशि ! वह्नेःप्राकारमाचरेत् ॥ ९० ॥

अर्थ—इसके उपरान्त मूलमंत्रके अन्तमें “फट्” संयोगकर द्रव्यादिपर अर्घ्यका जल छिड़कै और उनको जलसे वेष्टित करै फिर वह्नीबीज “रं” से वह्नीको आवरण करै ॥ ९० ॥

पुष्पंचन्दनसंयुक्तमादायकरयोर्द्वयोः ।

अस्त्रेणवर्षयित्वातत्प्रक्षिपेत्करशुद्धये ॥ ९१ ॥

अर्थ—पश्चात् करशुद्धिकेलिये चन्दन व कुसुम ग्रहण करके मूलमंत्रका उच्चारण करनेके पीछे हाथोंको रगड़कर धोडालै ९१

तर्जनीमध्यमाभ्याञ्चवामपाणितलेशिवे ! ।

ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रितयंदत्त्वादिग्वन्धनंततः ।

अस्त्रेणछोटिकाभिश्चभूतशुद्धिमथाचरेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—फिर दाहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमासे “फट्” मंत्रके द्वारा बाँये करतलसे ऊँचेसे ऊँचेपर तीन तालियाँ बजाय दिग्वन्धन करै ॥ ९२ ॥

स्वांकेनिधायचकरावुत्तानौसाधकोत्तमः ।

मनोनिवेश्यमूलेचहुङ्कारेणैवकुण्डलीम् ॥ ९३ ॥

उत्थाप्यहंसमन्त्रेणपृथिव्यासहितान्तुताम् ।

स्वाधिष्ठानंसमानीयतत्त्वंतत्त्वेनियोजयेत् ॥ ९४ ॥

अर्थ—फिर भूतशुद्धि करै। साधकश्रेष्ठको चाहिये कि, अपनी गोदमें उठेहुए दोनोंहाथ स्थापित कर हुंकारसे कुण्डलिनीको बठावै और मनकी रक्षा मूलाधारचक्रमें कर “हंस” इस मंत्रसे

पृथ्वीके सहित उस कुण्डलिनीको अपने अधिष्ठानमें स्थापित-
कर पृथिव्यादि समस्त तत्त्वोंको जलादि तत्त्वमें लीन
करे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

गन्धादिघ्राणसंयुक्तांपृथिवीमप्सुसंहरेत् ।

रसादिजिह्वासार्वजलमग्नौविलापयेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ- गन्धादि घ्राणके साथ समस्त पृथ्वीको जलमें लीनकरे
फिर रसनाके साथ रस जल अग्निमें लीनकरे ॥ ९५ ॥

रूपादिचक्षुषासार्वमग्निंवायौविलाप्यच ।

स्पर्शादित्वग्युतंवायुमाकाशेप्रविलापयेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ- फिर रूपादि और दर्शनेन्द्रियोंके साथ अग्निको वायु-
में लीनकरे फिर त्वगिन्द्रियके साथ स्पर्शादि-वायुको आका-
शमें लीन करे ॥ ९६ ॥

अहंकारेहरेद्योमसशब्दतन्महत्यपि ।

महत्तत्त्वञ्चप्रकृतौतांत्रह्मणिविलापयेत् ॥ ९७ ॥

१ अर्थ- फिर शब्द आकाशको अहंकारतत्त्वमें लीनकरके
उसको बुद्धितत्त्वमें लीनकरे फिर बुद्धितत्त्व और प्रकृतिमें लय
करके ब्रह्ममें प्रकृतिका लय करे ॥ ९७ ॥

इत्थं विलाप्यमतिमान्वाभकुक्षौषिचिन्तयेत् ।

पुरुषंकृष्णवर्णश्चरत्तश्मश्रुविलोचनम् ॥ ९८ ॥

अर्थ- ज्ञानी पुरुष इसप्रकार चौबीस तत्त्वका लय करके
चिन्ता करे कि, बाई कुक्षिमें लालनेत्र लाल श्मश्रु कृष्णवर्ण
एक पुरुष अवस्थान करता है ॥ ९८ ॥

रक्तचर्मधरंकुद्धमंगुष्ठपरिमाणकम् ।

सर्वपापस्वरूपञ्चसर्वदाधोमुखस्थितम् ॥ ९९ ॥

१ खड्गचर्म धरम् इति मुद्रित पाठः ।

अर्थ-इस पुरुषके हाथमें लाल चर्म है स्वभाव अत्यन्त कुपित है, आकार अंगुष्ठकी समान है, यह पापस्वरूप और सदा नीचेको सुख कियेहै ॥ ९९ ॥

ततस्तुवामनासायांयंवीजंधूमवर्णकम् ।

सञ्चिन्त्यपूरयेत्तेनवायुंषोडशमात्रया ॥

तेनपापात्मकंदेहंशोधयेत्साधकाग्रणीः ॥ १०० ॥

अर्थ-इसके उपरान्त वामनासिकामें “यं” इस धूमवर्ण बीजका ध्यानकरके उसको सोलहवार जपें और बाई नासिकासे पवन खेंचे फिर साधकको चाहिये कि, इस वायुसे पापात्मक शरीरको शुद्ध करें ॥ १०० ॥

नाभौरंरक्तवर्णञ्चध्यात्वातज्जातवह्निना ।

चतुःषष्ट्याकुम्भकेनदहेत्पापरतान्तिनुम् ॥ १०१ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त नाभिमें रक्तवर्ण वह्निके बीज (रं) का ध्यान कर कुम्भक करके चौंसठवार जप करते २ तिससे उत्पन्न अग्निमें अपने पापमय शरीरको दग्ध करें ॥ १०१ ॥

ललाटेवारुणंवीजंशुक्लवर्णंविचिन्त्यच ।

द्वात्रिंशतारेचकेनप्लावयेदमृताम्भसा ॥ १०२ ॥

अर्थ-फिर ललाटमें शुक्लवर्ण वरुणबीजकी चिन्ता करके श्वासको छोड़ बत्तीसवार जपकर वरुणबीजसे उत्पन्नहुए अमृतवारिसे दग्धदेहको आप्लावित करें ॥ १०२ ॥

आपादशीर्षिपर्यन्तमाप्लाव्यतदनन्तरम् ।

उत्पन्नंभावयेद्देहंनवीनंदेवतामयम् ॥ १०३ ॥

अर्थ-इसप्रकार चरणसे लेकर मस्तकतक अमृतवारिसे

छिड़ककर ऐसी चिन्ता करे कि, नूतन देवतामयशरीर उत्पन्न हुआ है ॥ १०३ ॥

पृथ्वीबीजं पीतवर्णमूलाधारे विचिन्तयन् ।

तेन दिव्यावलोकेन दृढीकुर्यान्निजान्ततूम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—फिर मूलाधारमें पीतवर्ण पृथ्वीबीज “लं” यह चिन्ता करके दिव्यदृष्टिसे अपनी देहको दृढ़करे ॥ १०४ ॥

हृदये हस्तमादाय आं ह्रीं क्रौं हंसमुच्चरन् ।

सोऽहं मन्त्रेण तद्देहे देव्याः प्राणा निधापयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त हृदयमें हाथकी रक्षाकर “आं ह्रीं क्रौं हंसः सो हं” यह मंत्र पढ़कर अपने शरीरमें देवीके प्राणकी प्रतिष्ठा करे ॥ १०५ ॥

भूतशुद्धिविधायेत्यं देवीभावपरायणः ।

समाहितमनाः कुर्यान्मातृकान्यासमम्बिके ॥ १०६ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! इसप्रकार भूतशुद्धि समाप्त करके देवी-भावका आश्रय करके मातृकान्यास करे ॥ १०६ ॥

मातृकाया ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री च्छन्द ईरितम् ।

देवता मातृका देवी बीजं व्यञ्जनसंज्ञकम् ॥ १०७ ॥

अर्थ—मातृकाका, ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता, मातृका सरस्वती, व्यञ्जन, वर्ण, बीज (१) ॥ १०७ ॥

(१) मातृकान्यासके ऋष्यादिप्रयोग यथा—अस्याः मातृकायाः ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दो मातृका सरस्वती देवी देवता, इत्ये बीजं, स्वराः शक्तयः, विसर्गः कीलकं, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः । शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदये मातृकायै सरस्वतये देव्यै देवतायै नमः । गुह्ये व्यञ्जनाय बीजाय नमः । पादयोः स्पर्शेऽप्यः शक्तिभ्यो नमः । सर्वान्नेषु विसर्गाय कीलकाय नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः ॥

स्वराश्चशक्तयःसर्गःकीलकंपरिकीर्तितम् ।

लिपिन्यासेमहादेवि ! विनियोगप्रयोगिता ।

ऋषिन्यासंविधायैवंकराङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १०८ ॥

अर्थ-स्वर, वर्णशक्ति, विसर्गकीलक लिपिन्याससे विनियोग कीर्तनकरे महादेवी ! इसप्रकारसे 'ऋषिन्यास' समाप्त करके 'कराङ्गन्यास' करे ॥ १०८ ॥

अंआंमध्येकवर्गञ्चइंई मध्येचवर्गकम् ।

उंउंमध्येटवर्गन्तुएँऐं-मध्येतवर्गकम् ॥ १०९ ॥

ओंऔं मध्येपवर्गन्तुयादिकान्तवरानने ! ।

विन्दुसर्गान्तरालेचपडङ्गेमन्त्रैरितः ॥ ११० ॥

अर्थ-हे सुन्दरि ! तिसके बाद अं आं इन दोनों वर्णोंके मध्यमें कवर्ग, "इं ईं" इन दो वर्णोंके मध्यमें चवर्ग, "उं ऊं" इन वर्णोंके बीचमें टवर्ग, "एँ ऐं" इन दो वर्णोंमें तवर्ग "ओं औं" इन दो वर्णोंमें पवर्ग, विन्दु और विसर्गके बीचमें 'य' से लेकर 'क्ष' तक इन कई वर्णोंका षडङ्गमें विन्यास करे (१) १०९॥११०॥

विन्यस्यन्यासविधिनाध्यायेन्मातृसरस्वतीम् ॥ १११ ॥

अर्थ-इस प्रकारसे न्यासविधि समाप्तकर मातृकासरस्वती देवीका ध्यानकरे ॥ १११ ॥

(१) प्रयोगः यथा-अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । एं तं पं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम् । ओं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं ईं क्षं अः परतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् (अंगन्यासेः) यथा-अं कं खं गं घं ङं आं हृदयापनमः । इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसेस्वाहा । उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् । एं तं पं दं धं नं ऐं पत्राय हुं । ओं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । अं यं रं लं वं शं षं सं ईं क्षं अः परतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् ।

छिड़ककर ऐसी चिन्ता करे कि, नूतन देवतात्मयशरीर उत्पन्न हुआ है ॥ १०३ ॥

पृथ्वीबीजं पीतवर्णमूलाधारे विचिन्तयन् ।

तेन दिव्यावलोकेन दृढीकुर्यान्निजान्तनूम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—फिर मूलाधारमें पीतवर्ण पृथ्वीबीज “लं” यह चिन्ता करके दिव्यदृष्टिसे अपनी देहको दृढ़करे ॥ १०४ ॥

हृदये हस्तमादाय आं ह्रीं कौं हंसमुच्चरन् ।

सोऽहं मन्त्रेण तदेहे देव्याः प्राणान्निधापयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त हृदयमें हाथकी रक्षाकर “आं ह्रीं कौं हंसः सोऽहं” यह मंत्र पढ़कर अपने शरीरमें देवीके प्राणकी प्रतिष्ठा करे ॥ १०५ ॥

भूतशुद्धिविधायेत्यं देवीभावपरायणः ।

समाहितमनाः कुर्यान्मातृकान्यासमम्बिके ॥ १०६ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! इसप्रकार भूतशुद्धि समाप्त करके देवी-भावका आश्रय करके मातृकान्यास करे ॥ १०६ ॥

मातृकाया ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।

देवतामातृका देवीबीजं व्यञ्जनसंज्ञकम् ॥ १०७ ॥

अर्थ—मातृकाका, ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता, मातृका सरस्वती, व्यञ्जन, वर्ण, बीज (१) ॥ १०७ ॥

(१) मातृकान्यासके ऋषादिप्रयोग यथा—अस्याः मातृकायाः ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दो मातृका सरस्वती देवी देवता; इत्ये नोमं, स्वराः क्तवः, स्तिसर्गः कीलकं, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः । शिरसे ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदये मातृकायै सरस्वत्यै देव्यै देवतायै नमः । गुह्ये व्यञ्जनाय बीजाय नमः । पादयोः स्पर्शाय शक्तिभ्यो नमः । सर्वोद्देशे विसर्गाय कीलकाय नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः ॥

स्वराश्चशक्तयःसर्गःकीलकंपरिकीर्तितम् ।

लिपिन्यासेमहादेवि ! विनियोगप्रयोगिता ।

ऋषिन्यासंविधायैवंकराङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १०८ ॥

अर्थ-स्वर, वर्णशक्ति, विसर्गकीलक लिपिन्याससे विनियोग कीर्तनकरे महादेवी ! इसप्रकारसे (ऋषिन्यास) समाप्त करके (कराङ्गन्यास) करे ॥ १०८ ॥

अंआंमध्येकवर्गश्चइंई मध्येचवर्गकम् ।

उंऊंमध्येटवर्गन्तुएंऐं-मध्येतवर्गकम् ॥ १०९ ॥

ओंओं मध्येपवर्गन्तुयादिक्षान्तवरानने ।।

बिन्दुसर्गान्तरालेचपडङ्गे-मन्त्रैरितः ॥ ११० ॥

अर्थ-हे सुन्दरि ! तिसके बाद अं आं इन दोनों वर्णोंके मध्यमें कवर्ग, “इं ईं ” इन दो वर्णोंके मध्यमें चवर्ग, “उं ऊं” इन वर्णोंके बीचमें टवर्ग, “एं ऐं ” इन दो वर्णोंमें तवर्ग “ओं ओं” इन दो वर्णोंमें पवर्ग, बिन्दु और विसर्गके बीचमें ‘य’से लेकर ‘क्ष’तक इन कई वर्णोंका षडङ्गमें विन्यास करे (१) १०९ ॥ ११० ॥

विन्यस्यन्यासविधिनाध्यायेन्मातृसरस्वतीम् ॥ १११ ॥

अर्थ-इस प्रकारसे न्यासविधि समाप्तकर मातृकासरस्वती देवीका ध्यानकरे ॥ १११ ॥

(१) प्रयोगः यथा-अं क रां ग घ ङ० आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इ चं छं जं झं झं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । लं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । एं तं थं दं धं नं रं अनामिकाभ्यां हुम् । ओं पं फं बं भं मं औं त्रिष्ठाभ्यां वौषट् । अं यं रं लं वं शं वं सं हं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय षट् (अंगन्यासेः) यथा-अं कं खं गं घं ङं आं ह्रस्वपापनमः । इ चं छं जं झं झं ईं शिरसेस्वाहा । लं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् । एं तं थं दं धं नं रं कवचाय हुं । ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । अं यं रं लं वं शं वं सं हं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय षट् ।

पञ्चाशल्लिपिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिवद्धचन्द्रशकलामपीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणसुधाव्यकलशंविद्याञ्चहस्ताम्बुजै-
विभ्राणांविशदप्रभांतिनयनांवाग्देवतामाश्रये ॥ ११२ ॥

अर्थ-मातृकाका ध्यान यह है-जिसके हस्त, पद, मुख और छाती पचास वर्णोंमें विभक्त हैं तिसके मस्तकपर चन्द्रकला विराजित रहकर शोभा पारही है, जिसके दोनों स्तन पीन और अति ऊँचे हैं, जिसके चारों हाथोंमें मुद्रा, अक्षमाला सुधापूर्ण कलश और विद्या शोभायमान होरही है ॥ ११२ ॥

ध्यात्वैवमातृकादेवीपटसुचक्रेपुविन्यसेत् ।
हक्षौभ्रमध्यगेष्वेकण्ठेचपोडशस्वरान् ॥ ११३ ॥

अर्थ-इसप्रकार मातृकादेवीका ध्यान करके पटचक्रमें मातृ-
कान्यास करे, तिनमें प्रथमही भोंहोंके बीचमें दिलमें
“ह” और “क्ष” इन दोनों वर्णोंका न्यासकरके कण्ठमें
स्थित हुए पोडशदलमें (रवरवर्ण न्यास) करे ॥ ११३ ॥

हृदम्बुजेकादिठान्तान्विन्यस्यकुलसाधकः ।
डादिफान्तान्नाभिदेशेवादिलान्तांश्चलिङ्गके ॥ ११४ ॥

अर्थ-फिर हृदयस्थित द्वादशदलमें “क” से लेकर “ठ”
तकद्वादश वर्णविन्यास करे और नाभिदेशमें स्थितहुए दश-
दलमें “ड” से लेकर “फ” तक दशवर्ण विन्यास करके लिङ्ग
मूलमें षड्दलके मध्य “ब” से लेकर “ल” तक छः वर्णविन्यास
करे ॥ ११४ ॥

मूलाधारेचतुःपदेवादिसान्तान्प्रविन्यसेत् ।
इत्यन्तर्मनसान्यस्यमातृकार्णान्विहिन्यसेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त मूलाधारमें चतुर्दलके मध्य “व” से लेकर “स” तक चार वर्णविन्यास करे, फिर मनहीमनमें मातृका वर्णन्यास करके बहिन्यास करे (१) ॥ ११५ ॥

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेप्रगण्डयोः ।

ओष्टदन्तोत्तमाङ्गस्य दोःपत्सन्व्यग्रगेषु च ॥ ११६ ॥

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयांसयोः ।

ककुब्धंसेचहृत्पूर्वपाणिपादयुगेततः ॥ ११७ ॥

जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान्यथाक्रमम् ।

इत्थंलिपिंप्रविन्यस्यप्राणायामंसमाचरेत् ॥११८॥

अर्थ-माथा, मुख, नेत्र, कान, नासिका, गाल, अधर, दांत, उत्तमांग, मुखविवर, बाहोंके जोड़ और अग्रभागमें पाँवकी संधि और अग्रस्थान, बगल, पृष्ठ, नाभि, जठर, हृदय, दाया और बाया कन्धा, ककुद, हृदयसे आरम्भ करके बायाँदायाँ हाथपाँव इस प्रकार जठर और मुखपर क्रमानुसार समस्त

(१) षट्चक्रमे मातृव्यामका क्रम यथा—ध्रुवे धीन दो दल पञ्चमे हुनमः ।
 संनमः । कठस्थित आजारय सोलहदलवाले नमलके सोलह दलोंमें अंनमः । आंनमः ।
 ईनमः । ईनमः । लनमः । ऊनमः । ननमः । ननमः । लनमः । लनमः । ऐनमः ॥
 ऐनमः । ओनमः । औनमः । अन्नमः । अ. नमः । हृदयके अनाहत नामक चार
 दलवाले पञ्चके चारदलमें कंनमः । सनमः । गनमः । घनमः । ठनमः । चनमः ।
 छनमः । जंनमः । झनमः । ञनमः । टनमः । ठनमः । फिर नाभिके मणिपुर नामक
 पञ्चके दशदलमें डनमः । दनमः । णनमः । तनमः । पनमः । दनमः । धंनमः ।
 नंनमः । पनमः । फनमः । लिङ्गमूर्तमें स्थित स्वाधिष्ठाननामक छेः दलवाले पञ्चके
 मत्पेक दलमें बंनमः । भनमः । भंनमः । रंनमः । रनमः । लनमः । फिर मूलाधारमें
 स्थित चार दलवाले पञ्चके चार दलमें वनमः । शनमः । वंनमः । संनमः । इस प्रकार
 षट्चक्रमे मातृव्यामका व्यास करे ।

मातृकावर्णोंपर न्यास करे, इसप्रकार लिपिन्यास करके प्राणायाम करे (१) ११६ । ११७ । ११८ ।

मायावीजं षोडशधा जप्त्वा वामेन वायुना ।

पूरयेदात्मनो देहं चतुःषष्ट्या तु कुम्भयेत् ॥ ११९ ॥

(१) मातृकान्यासका प्रयोग मथाः—अनामिका और मध्यमाङ्गुलिसे ललाटमें अंनमः । अनामिकातर्जनी और मध्यमाङ्गुलिसे मुखविवरमें बाएँ और अंनमः । अनामिका और अँगूठेको मिलाकर दाहिने नेत्रमें ईनमः । ऐसेही बायनेत्रमें ईनमः । अँगूठेकी पीठसे दाहिने कानमें छनमः । ऐसेही बाँये कानमें छनमः । कन उँगली-और अँगूठेको मिलाकर दाहिनीनासिकामें कंनमः । ऐसेही वामनासिकामें । कंनमः । तर्जनी, मध्यमा और अनामिकासे दक्षिणगालमें छनमः । ऐसेही बायें गालमें छनमः । मध्यमासे होठमें एनमः । ऐसेही अधरमें एनमः । ऐसेही अनामिकासे ऊपरके दाँतोंकी पंक्तिमें ओनमः । ऐसेही अधरदन्तपंक्तिमें ओनमः । मध्यम उँगलिसे ठसमाङ्गमें अंनमः । अनामिकासे मुखविवरमें अंनमः । मुठी पाँचकर मध्यमाङ्गुलिसे बाँहोंके मूलसे तीनों सन्धिषोंमें कंनमः । छनमः । गंनमः । ऐसेही उँगलीके मूलमें और उँगलीके अग्रभागमें घनमः । डनमः । ऐसेही बायें हाथके चार स्थानोंमें और उँगलीके अग्रभागमें धंनमः । छनमः । जंनमः । क्षनमः । अंनमः । ऐसेही दायें पाँवकी तीन सन्धिषोंमें उँगलियोंकी जड़में और उँगलियोंके पोरुओंमें टंनमः । छनमः । छनमः । टंनमः । गंनमः । ऐसेही बायें पाँवके तीन स्थानोंमें धंनमः । दाहिने पार्श्वमें मध्यमा, अनामिका और कनउँगलीसे धंनमः । ऐसेही वाम-पार्श्वमें कंनमः । ऐसेही पीठमें घनमः । नाभिमें अँगूठे और कनको मिलाकर भंनमः । जठरमें सब उँगलियोंको मिलाकर भंनमः । हृदयमें, इषेलिसे रं त्वगात्मनेनमः । हाँये कंधेमें कन और अँगूठेको मिलाकर रं असृगात्मनेनमः । ऐसेही ककुदमे छं मेदआत्मनेनमः । ऐसेही वामकन्धेमें धं मांसात्मनेनमः । इषेली करके हृदयसे लगाकर दाहिने हाथतक, हाँ असृगात्मनेनमः । ऐसेही हृदयसे बायें हाथतक रं मज्जात्मनेनमः । हृदयसे लेकर दाहिने चरणतक ऐसेही सं शुक्रात्मनेनमः । हृदयसे लेकर बायें पाँवतक ऐसेही इं प्राणात्मनेनमः । हृदयसे उत्तरतक छं जीवात्मनेनमः । हृदयसे मुखतक ऐसेही धं परमात्मनेनमः । इसप्रकार सब मातृकावर्णोंका बहिन्यास करे । जो इस मुद्राके करनेमें असमर्थ हो तो शूलसे भी इन सब स्थानोंमें मातृकान्यास हो सक्ता है ।

अर्थ-इसप्रकार मायाबीजका सोलहवार जप करते २ बाई नासिकामें खेंचकर अपनी देहको पूर्ण करें, फिर चौंसठवार जप करते २ कुम्भक करें ॥ ११९ ॥

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्धृतवानासाद्वयंसुधीः ।

द्वात्रिंशताजपन्वीजं वायुदक्षेण रेचयेत् ॥ १२० ॥

अर्थ-फिर अंगुष्ठद्वारा दक्षिणनासिका अवरोधकर बत्तीसवार मायाबीजका जप करके क्रमसे वायु छोड़े इसप्रकार दक्षिण नासिकामेंभी पूरक, कुम्भक और रेचक करें ॥ १२० ॥

पुनः पुनस्त्रिरावृत्त्या प्राणायाम इति स्मृतः ।

प्राणायामं विधायेत्थमृषि न्यासं समाचरेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ-बार २ तीनवार ऐसा करें इसकाही नाम प्राणायाम है । प्राणायामके अन्तमें ऋषि न्यास करें ॥ १२१ ॥

अस्य मन्त्रस्य रूपयो ब्रह्मा ब्रह्मर्षयस्तथा ।

गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्या काली तु देवता ॥ १२२ ॥

अर्थ-इसमन्त्रके ऋषि ब्रह्मा और समस्त ब्रह्मर्षि हैं गायत्री इत्यादि इसके-छन्द हैं आद्या काली इसकी देवता है ॥ १२२ ॥

आद्या बीजं बीजमिति शक्तिर्माया प्रकीर्तिता ।

कमला कीलकं प्रोक्तं स्थानेष्वेतेषु वैन्यसेत् ।

शिरो वदनं हृद्ब्रह्मपादसर्वाङ्गकेषु च ॥ १२३ ॥

अर्थ-इसका बीज “क्रीं” शक्ति “ह्रीं” कीलक “श्रीं” इन-मंत्रोंसे शिरपर मुखसे हृदयमें गुह्य, चरण और सर्वाङ्गमें न्यास करें (१) ॥ १२३ ॥

१ पुनः पुनस्त्रिराचम्य इति वा पाठः ।

(१) ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, इस मन्त्रका ऋष्यादि न्यासप्रयोग यथा-“अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्च ऋषयः, गायत्र्यादीनि छन्दांसि, आद्या काली देवता क्रीं बीजं

मूलमन्त्रेणहस्ताभ्यामापादमस्तकावधि ।

मस्तकात्पादपर्यन्तंसप्तधावात्रिधान्यसेत् ।

अयन्तुव्यापकन्यासोयथोक्तफलसिद्धिदः ॥ १२४ ॥

अर्थ-तिसके उपरान्त मूलमंत्र पढ़कर दोनों हाथोंसे चरणोंसे मस्तक और मस्तकसे, चरणतक सात या तीन बार जैसा फल चाहै वैसा न्यास करे ॥ १२४ ॥

यद्वीजाद्याभवेद्विद्यातद्वीजेनाङ्गकल्पना ।

अथवामूलमन्त्रेणपङ्कदीर्घेणविनाप्रिये ! ॥ १२५ ॥

अङ्गुष्ठाभ्यांतर्जनीभ्यामध्यमाभ्यांतथैवच ।

अनामिकाभ्यांकनिष्ठाभ्यांकरयोस्तलपृष्ठयोः ।

नमःस्वाहावषट्कृच्चवौषट्कृत्क्रमशःसुधीः ॥ १२६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जिस मूलमंत्रके आदि अक्षरमें जो बीज होगा तिसमें क्रमानुसार छैः दीर्घस्वरमें मिलायकर अथवा तिनके सिवाय दो अंगुष्ठ दो तर्जनी, दो मध्यमा दो अनामिका, दो कनिष्ठा और करतलपृष्ठमें यथाक्रमसे "नमः" "स्वाहा" "वषट्" "हूं" "वौषट्" "कट्" इसमंत्रसे करन्यास करे (१) ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

हा शक्ति. श्रीं कीलक धर्मोर्ध्वाममोक्षावाप्तये कृपिन्यासे विनियोग । शिरसि ब्रह्मणे ब्रह्मविम्पश्च कृपिन्यासेनमः । मुखे गायत्र्यादिभ्य उत्तमोभ्योनमः । हृदये आद्यायै कार्त्तये देवतायै नमः । गुह्ये श्रीं बीजाय नमः । पादयो. ह्रीं शक्तये नमः । सर्वाङ्गेषु श्रीं कीलकाय नमः । धर्मोर्ध्वाममोक्षावाप्तये अपे विनियोग ॥

(१) करन्यासका प्रयोग यथा-ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रीं मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रीं अनामिकाभ्यां हूं । ह्रीं कनिष्ठायां वौषट् । ह्रीं करतलपृष्ठाभ्यां कट् । अंगुल्या ह्रीं श्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । श्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रीं श्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रीं श्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा अनामिकाभ्यां हूं । ह्रीं श्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् । श्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा । करतलपृष्ठाभ्यां कट् ।

हृदयाय नमः पूर्वमस्तकेवद्विवल्लभा ।

शिखायैवपडित्युक्तंकवचाय हुमीरितम् ॥ १२७ ॥

नेत्रत्रयाय वौपट्च आस्त्राय फडितिक्रमात् ।

पडङ्गानिविधायेत्यं पीठन्यासं समाचरेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त "हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखा-
यै वषट् और "कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वौपट्, अस्त्राय
फट्" इसप्रकार पडङ्गन्यास करके पीठन्यासे करे (१)
॥ १२७ ॥ १२८ ॥

आधारशक्तिकूर्मश्च शेषं पृथ्वीतथैव च ।

सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं पारिजाततरुं ततः ॥ १२९ ॥

चिन्तामणिगृहश्चैव मणिमाणिक्यवेदिकाम् ।

तत्र पद्मासनं वीरो विन्यसेद्धृदयाम्बुजे ॥ १३० ॥

अर्थ-इसके उपरान्त वीर हृदयपद्ममें आधारशक्ति, कूर्म,
शेष, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, पारिजातवृक्ष, चिन्तामणि
गृह, मणिमाणिक्यवेदि और पद्मासनका न्यास करे (२)
॥ १२९ ॥ १३० ॥

(१) पडङ्गन्यासप्रयोगो यथा-हृदयाय नमः । शिरसे स्वाहा । हुं शिखायै वषट्
हं कवचाय हुं । हुं नेत्रत्रयाय वौपट् । हुं अस्त्राय फट् । अपरा हौं श्रीं श्रीं परमेश्वरे
स्वाहा हृदयाय नमः । हौं श्रीं श्रीं परमेश्वरे स्वाहा शिखायै वषट् । ॐ श्रीं श्रीं परमेश्वरे
स्वाहा शिखायै वषट् । हौं श्रीं श्रीं परमेश्वरे स्वाहा कवचाय हुं । हौं श्रीं श्रीं परम-
ेश्वरे स्वाहा नेत्रत्रयाय वौपट् हौं श्रीं श्रीं परमेश्वरे स्वाहा अस्त्राय फट् । इसप्रकार
पडङ्गन्यास करे ।

(२) प्रयोगः यथा-हृदयाय नमः । आधारशक्तये नमः । कूर्माय नमः । शेषाय नमः ।
पृथ्वीयै नमः । सुधाम्बुधये नमः । मणिद्वीपाय नमः । पारिजाततरोयै नमः । चिन्तामणिगृ-
हाय नमः । मणिमाणिक्यवेदिकायै नमः । पद्मासनाय नमः ।

दक्षवामांसयोर्वामकटीदक्षकटीतथा ।

धर्मज्ञानतथैश्वर्यवैराग्यक्रमतो न्यसेत् ॥ १३१ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त दक्षिणस्कन्धमें, वामस्कन्धमें वामकटि और दक्षिणकटिमें धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्यका क्रमशः न्यास करे ॥ १३१ ॥

मुखपार्श्वेनाभिदक्षपार्श्वेसाधकसत्तमः ।

नङ्गपूर्वाणिचतान्येवधर्मादीनियथाक्रमम् ॥ १३२ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठ मुख, वामपार्श्व, नाभि और दक्षिण-पार्श्वमें यथाक्रमसे नङ्गपूर्वक इस सबका न्यास करे (१) १३२ ॥

आनन्दकन्दं हृदये सूर्यसोमं हुताशनम् ।

सत्त्वरजस्तमश्चैव विन्दुयुक्तादिमाक्षरैः ।

केसरान्कर्णिकाश्चैव पत्रेषु पीठनायिकाः ॥ १३३ ॥

अर्थ-फिर हृदयमें आनन्दकन्द सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वर्णमें अनुस्वार मिलाकर सत्, रज और तम व केसर कर्णिका और समस्त पत्रोंमें पीठनायिकाओंका न्यास करे (२) ॥ १३३ ॥

मङ्गलाविजयाभद्राजयन्तीचापराजिता ।

नन्दिनी नारसिंही चैव षण्णवीत्यष्टनायिकाः ॥ १३४ ॥

अर्थ-अष्टनायिका-मङ्गला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही और षण्णवी (३) ॥ १३४ ॥

(१) प्रयोगो यथा-दक्षस्कन्धे धर्मायनमः । वामस्कन्धे ज्ञानायनमः । वामकटी-
रेश्वर्यायनमः । दक्षकटीवैराग्यायनमः । मुक्तेऽथ र्थायनमः । वायपार्श्वे प्रज्ञायनमः ।
मामौष्मेनेश्वर्यायनमः । दक्षपार्श्वे अवैराग्यायनमः ।

(२) प्रयोगो यथा-हृदये आनन्दकन्दायनमः । सूर्यायनमः । सोमायनमः । अग्नये-
नमः । संसत्त्वायनमः । रजसेनमः । तमसेनमः । केसरेभ्योनमः । कर्णिकायैनमः ।

(३) प्रयोगो यथा-पीठपत्रके पत्रोंमें क्रमानुसार मङ्गलायैनमः । विजयायैनमः ।
भद्रायैनमः । जयन्तयेनमः । अपराजितायैनमः । नन्दिन्यैनमः । नारसिंहेनमः ।
षण्णव्यैनमः ।

असिताङ्गोरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तोभयंकरः ।

कपालीभीषणश्चैवसंहारीत्यष्टभैरवाः ।

दलाग्रेषुन्यसेदेतान्प्राणायामंततश्चरेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त अष्टदलके आगे असिताङ्ग, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहारी इन आठ भैरवोंका न्यास करे फिर प्राणायाम विधि करे (१) ॥ १३५ ॥

गन्धपुष्पे समादायकरकच्छपमुद्रया ।

हृदिहस्तौसमाधायध्यायेद्देवींसनातनीम् ॥ १३६ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् गन्ध पुष्प ग्रहण करके कच्छपमुद्रामें धारण करके उसका हाथ हृदयमें स्थापन करके सनातनी देवीका ध्यान करे (२) ॥ १३६ ॥

ध्यानन्तुद्विविधंप्रोक्तंसरूपारूपभेदतः ।

अरूपंतवयद्वयानमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १३७ ॥

अर्थ-ध्यान यह है ध्यान साकार और निराकार दो प्रकारका है तिसमें निराकारका ध्यान वाक्य और मनके अगोचर है ॥ १३७ ॥

अव्यक्तंसर्वतोव्याप्तमिदमित्थंविवर्जितम् ।

अगम्ययोगिभिर्गम्यंकृच्छ्रैर्वहुसमाधिभिः ॥ १३८ ॥

१ क्रोधोन्मत्ताख्यकस्तथा इति ममादविजृम्भितोमुद्रितःपाठः ।

(१) प्रयोगः यथा-अष्टात्रपत्रके अष्टभागमें क्रमानुसारअसिताङ्गायभैरवायनमः । रुखे भैरवायनमः । चण्डायभैरवायनमः । क्रोधोन्मत्तायभैरवायनमः । भयङ्करायभैरवायनमः । कपालिनेभैरवायनमः । भीषणायभैरवायनमः । संहारिणेभैरवायनमः । इस प्रकार पीठन्यासकरके प्राणायाम करे ।

(२) कच्छपमुद्रा यथा:-बायें करतलके ठीकर दायां हाथ स्थापित करके बायें हाथके अंगूठेके साथ-दायें हाथकी तर्जनीको मिलाय, बायें हाथकी तर्जनीके साथ दायें हाथकी कनिष्ठाको मिलाय, बायीं सब अंगुलियें दोनों करतलोंके बीचमें बंधी हुई मुठ्ठीकी समान रोके रहें ॥

अर्थ-यह अव्यक्त और सर्वव्यापी है, यह ऐसा ऐसा नहीं कहा जाता साधारणको वह अगम्य है, परन्तु योगीलोक दीर्घकालतक समाधिका आश्रय करके बहुतसे कष्टसे इसको हृदयमें लाते हैं ॥ १३८ ॥

मनसोधारणार्थाय शीघ्रं स्वाभीष्टसिद्धये ।

सूक्ष्मध्यानप्रबोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते ॥ १३९ ॥

अर्थ-इस समय मनकी धारण शीघ्र अभीष्टसिद्धि होनेको और सूक्ष्मध्यानका बोध होनेको तुमसे स्थूलध्यानका तत्त्व कहता हूँ ॥ १३९ ॥

अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः ।

गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना ॥ १४० ॥

अर्थ-अरूपा और कालमाता महाप्रकाशवती कालिका देवीके गुण और क्रियाके अनुसार रूपकी कल्पना करते हैं ॥ १४० ॥

मेघार्द्धांशिशेखरां त्रिनयनारक्ताम्बरं विभ्रतौ

पाणिभ्यामभयं वरश्च विलसद्भक्तारविन्दास्थिताम् ॥

नृत्यन्तं पुरतो निपीयमधुरं माध्वीकमद्यं महा-

कालं विक्ष्य विकासिताननवरामाद्यां भजे कालिकाम् ॥ १४१ ॥

अर्थ-जिनका वर्ण मेघतुल्य है, माथेपर चन्द्रमाकी रेखा जगमगा रही है, तीन नेत्र हैं, लालवस्त्र पहिरे हैं, जिनके दो हाथोंमें वर और अभय है, जो फूलेहुये कमलपर बैठी हैं, जिनके सामने माध्वीक फूलसे उत्पन्न हुआ मधुर मदपान कर महाकाल नृत्य करता है इस महाकालको दर्शन कर जिनका मुखकमल विकसित हुआ है, ऐसी आदिकालिकाका भजन करता हूँ ॥ १४१ ॥

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा तु साधकः ।

पूजयेत्परया भक्त्या मानसैरुपचारकैः ॥ १४२ ॥

अर्थ-साधक अपने मस्तकपर फूल चढ़ाय इस प्रकार ध्यान कर परमभक्तिके सहित मानसोपचारसे पूजा करे ॥ १४२ ॥

हृत्पद्ममासनंदद्यात्सहस्रारच्युतामृतैः ।

पाद्यंचरणयोर्दद्यान्मनस्त्वर्घ्यनिवेदयेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ-(मानसपूजामें) हृदयरूपी पद्मका आसन देवै सहस्रारच्युत अमृतसे देवीके दोनों चरणोंमें पाद्य देवे मनको अर्घ्य स्वरूपमें निवेदन करे ॥ १४३ ॥

तेनामृतेनाचमनंस्नानीयमपिकल्पयेत् ।

आकाशतत्त्ववसनंगन्धन्तुगन्धतत्त्वकम् ॥ १४४ ॥

अर्थ-पहले कहे हुए सहस्रारच्युत अमृतसेही आचमनीय और स्नानीय जल कल्पित होगा । आकाशतत्त्व वस्त्र और गन्धतत्त्व गंधरूपमें दिया जायगा ॥ १४४ ॥

चित्तंप्रकल्पयेत्पुष्पंधूपंप्राणान्प्रकल्पयेत् ।

तेजस्तत्त्वन्तुदीपार्थे नैवेद्यश्चसुधाम्बुधिम् ॥ १४५ ॥

अर्थ-मनको पुष्प और प्राणको धूप बनाये तेजतत्त्वको दीप और सुधांबुधिको नैवेद्यार्थ देवे ॥ १४५ ॥

अनाहतध्वनिघण्टांवायुतत्त्वञ्चामरम् ।

नृत्यामिन्द्रियकर्माणिचाञ्चल्यमनसस्तथा ॥ १४६ ॥

अर्थ-हृदयमध्यकी अनाहत ध्वनिको घंटा और वायुतत्त्वको चामर कल्पित करे, फिर इन्द्रियोंके समस्त कार्य और मनकी चंचलताको तृप्त कल्पना करे ॥ १४६ ॥

पुष्पेनानाविधंदद्यादात्मनोभावसिद्धये ।

अमायमनहंकारमरागमदन्तथा ॥ १४७ ॥

अमोहकमदम्भंचअद्वेपाक्षोभेकेतथा ।

अमात्सर्यमलोभञ्चदशपुष्पंप्रकीर्तितम् ॥ १४८ ॥

अर्थ-अपनी भावशुद्धिके लिये अनेक प्रकारके फूल देवे ।
अमायिकता, निरहंकार, रोषशून्यता, मदशून्यता, दंभशून्यता, द्वेषहीनता, क्षोभरहितता, मत्सरहीनता और निर्लोभता मानसपूजाके लिये यह दश प्रकारके फूल अच्छे हैं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

अहिंसापरमंपुष्पंपुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।

दयाक्षमाज्ञानपुष्पंपञ्चपुष्पंततःपरम् ॥ १४९ ॥

अर्थ-फिर अहिंसास्वरूप परमपुष्प, दयारूप पुष्प, इन्द्रियनिग्रह, क्षमा और ज्ञान यह पंचपुष्प देवे ॥ १४९ ॥

इतिपञ्चदशैःपुष्पैर्भावरूपैःप्रपूजयेत् ।

सुधाशुद्धिमांसशैलभर्जितमीनपर्वतम् ॥ १५० ॥

मुद्राराशिमुभक्तधृतार्कपायसंतथा ।

कुलामृतञ्चतत्पुष्पंपीठक्षालनवारिच ॥ १५१ ॥

अर्थ-इसप्रकार पंद्रह प्रकारके भावरूपी फूलोंसे पूजा करके फिर मनमें सुधासमुद्र मांसशैल भर्जितमत्स्यपर्वत मुद्राराशि सुन्दर घृतकी पायस, कुलामृत, कुलपुष्प, पीठक्षालन वारि यह समस्त देवीको देवे ॥ १५० ॥ १५१ ॥

कामक्रोधौविघ्नकृतौबलिंदत्वाजपंचरेत् ।

मालावर्णमयीप्रोक्ताकुण्डलीसूत्रयन्त्रिता ॥ १५२ ॥

अर्थ-फिर विघ्नकर्ता काम और क्रोधको बलि देकर जप करना आरंभ करे इस प्रकार कुण्डलीसूत्रमें गुंथीहुई वर्णमालाही श्रेष्ठ है ॥ १५२ ॥

सविन्दुमन्त्रमुच्चार्यमूलमन्त्रंसमुच्चरेत् ।

अकारादिलकारान्तमनुलोमइतिस्मृतः ॥ १५३ ॥

पुनर्लकारमारभ्यश्रीकण्ठान्तंमनुजपेत् ।

विलोमइतिविख्यातःक्षकारोमेरुरुच्यते ॥ १५४ ॥

अर्थ—पहले विन्दुके सहित अकारादिसे उच्चारण करके, तिसके पीछे मूलमन्त्र उच्चारण करे. इस प्रकारकारसे आरम्भ करके अन्त्य “ळ” कारतक अनुलोम क्रमसे जप करके पुनर्-वार “ळ” से “क” तक विलोमक्रमसे जप करे “क्ष” इसका मेरु होगा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

अष्टवर्गान्तिमैर्वर्णैःसहमूलमथाष्टकम् ।

एवमष्टोत्तरशतंजप्तवानेनसमर्पयेत् ॥ १५५ ॥

अर्थ—तिसके पीछे आठवर्गके आठ संख्यक शेष वर्णके सहित मूलमन्त्र मिलाय साकल्यमें १०८ एकसौ आठ जप करे, इस नियमसे एकशत आठवार जप करके देवीके हाथमें समर्पण करे (१) ॥ १५५ ॥

सर्वान्तरात्मनिलयेस्वान्तज्योतिःस्वरूपिणी ।

गृहाणान्तर्जपमातराद्ये । कालि ! नमोऽस्तुते ॥ १५६ ॥

अर्थ—जप समर्पण करनेका मंत्र यह है—हे आद्यकालिके !

(१) वर्णमयी माला यथाः—अं आं ईं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं गं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं मं यं रं कं घं शं षं संहं लं (हं) ३ ० लं इं स्रं यं शं वं लं रं यं मं भं वं फं यं नं धं दं थं तं पे तं डं ठं टं अं झं जं छं चं गं गं खं कं अः अं औं औं ऐं एं लं लं ऋं ॠं उं इं ईं आं अं अनुलोम और विलोम इस एकशत वर्णरूप मालामें एक शतवार जप करके फिर अष्टवर्गके आठ पिछे अक्षरोंमें आठ बार जपकरे । अष्ट अक्षर यथाः—अं उं अं नं नं मं यं लं । इस सारी वर्णमालाके प्रत्येक वर्णके सहित धीजमंत्रका जप करना चाहिये । यथाः—अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरिस्वाहा । इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरिस्वाहा इत्यादि वर्णमयी मालामें बिना अनुस्वार मिलान भी काम चल सक्ता है ।

तुम सबकी आत्मामें विराजमान हो, तुम अन्तरात्माकी जननीस्वरूपहो. हे जननि ! हमारा यह जप ग्रहण करो ॥ १५६ ॥

समर्प्यजपमेतेनसाष्टांगप्रणमेद्धिया ।

इत्यन्तर्यजनंकृत्वावहिः पूजांसमारभेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ-इस प्रकार देवीके हस्तमें जप समर्पण करनेके मानससे साष्टांग प्रणाम करे इस प्रकार मानसपूजा करके बाहरी पूजा आरम्भ करे ॥ १५७ ॥

विशेषार्घ्यस्यसंस्कारस्तत्रादौकथ्यतेशृणु ।

यस्यस्थापनमात्रेणदेवतामुपसीदति ॥ १५८ ॥

अर्थ-प्रथम तो विशेष प्रकारसे अर्घ्यका संस्कार कहता हूं सो तुम श्रवण करो. इसके स्थापित करतेही देवतागण प्रसन्नहो जाते हैं ॥ १५८ ॥

दृष्ट्वा र्घ्यपात्रं योगिन्यो ब्रह्माद्या देवतागणाः ।

भैरवा अपि नृत्यन्ति प्रीत्या सिद्धिं ददत्यपि ॥ १५९ ॥

अर्थ-ब्रह्मादि देवगण और योगिनी व भैरवगण अर्घ्यका पात्र देखकर नृत्य करते हैं और प्रसन्नहो सिद्धि देते हैं ॥ १५९ ॥

स्ववामे पुरतो भूमौ सामान्यार्घ्यस्य वारिणा ।

मायागर्भे त्रिकोणश्च वृत्तश्च चतुरस्रकम् ॥ १६० ॥

अर्थ-इसके उपरान्त अपनी बाईं ओर सामनेकी भूमिमें अर्घ्यके जलसे एक गोलाकार मंडप बनावे, तिसके बाहर एक चौकोन मण्डल लिखे ॥ १६० ॥

विलिख्य पूजयेत्तत्र मायावीजपुरःसरम् ।

डेन्तामाधारशक्तिश्च नमः शब्दावसानिकाम् ॥ १६१ ॥

अर्थ-तिसमें “ द्वीं आधारशक्तये नमः ” इसमंत्रसे आधारशक्तिकी पूजा करे ॥ १६१ ॥

ततःप्रक्षालिताधारंविन्यस्यमण्डलोपरि ।

मंवह्निमण्डलंडेन्तंदशकलात्मनेततः ॥ १६२ ॥

अर्थ-फिर उस मण्डलके ऊपर प्रक्षालित पात्र स्थापन करके तिसमें मंवह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः ॥ १६२ ॥

नमोन्तेनचसम्पूज्यक्षालयेदध्यपात्रकम् ।

अस्त्रेणस्थापयेत्तत्रआधारोपरिसाधकः ॥ १६३ ॥

अर्थ-इसमंत्रसे वह्निमण्डलकी पूजा करके फद्मन्त्रका उच्चारण करके अध्यपात्र प्रक्षालित करे फिर आधारपर धरे ॥ १६३ ॥

अमर्कमण्डलायोक्त्वाद्वादशान्तकलात्मने ।

नमोऽन्तेनयजेत्पात्रंमूलेनैवप्रपूरयेत् ॥ १६४ ॥

अर्थ-फिर ‘अं अर्कमण्डलाय नमः’ । इसमंत्रसे अर्कमण्डलकी अचना करके मूलमंत्रके उच्चारणसे अध्यपात्र पूर्ण करे ॥ १६४ ॥

त्रिभागमलिनापूर्य्यशेषंतोयेनसाधकः ।

गन्धपुष्पेतत्रदत्त्वापूजयेदमुनांविके ! ॥ १६५ ॥

अर्थ-इससमय साधक तीन भाग मद्य और एक भाग जल देकर तिनमें गंधपुष्प दान करे, हे अम्बिके ! वक्ष्यमाणमंत्रसे तिसमें पूजा करे ॥ १६५ ॥

पष्ठस्वरंविन्दुयुक्तंडेन्तंवैचन्द्रमण्डलम् ।

षोडशांतिकलाशब्दादात्मनेनमइत्यपि ॥ १६६ ॥

अर्थ-पष्ठस्वर ‘ऊ’ में विन्दु मिलाय “षोडशकलात्मनेनमः” इसमंत्रसे पूजा कर ॥ १६६ ॥

ततस्तुत्रैफलेपत्रैरक्तचंदनचर्चितम् ।

दूर्वापुष्पंसाक्षतञ्चकृत्वातत्रनिधापयेत् ॥ १६७ ॥

अर्थ-फिर बेलपत्र लालचंदन दूर्वादल अक्षत इनसबको अर्घ्यके विशेष भागमें स्थापित करे ॥ १६७ ॥

मूलेनतीर्थमावाह्यतत्रदेवींविभाव्यच ।

पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यामूलंद्वादशधाजपेत् ॥ १६८ ॥

अर्थ-फिर मूलमंत्रके द्वारा तीर्थ आवाहन करके तिसमें देवीका ध्यान करे और गंधपुष्पद्वारा पूजा करके बारहवार मूलमंत्र जपे ॥ १६८ ॥

धेनुयोनीदर्शयित्वाधूपदीपौप्रदर्शयेत् ।

तदम्बुप्रोक्षणीपात्रेकिञ्चिन्निक्षिप्यसाधकः ॥ १६९ ॥

अर्थ-फिर अर्घ्यविशेषके ऊपर धेनु व योनिसुद्रा दिखाय धूपदीप दिखावे ॥ १६९ ॥

आत्मानंदेयवस्तूनिप्रोक्षयेत्तेनमंत्रवित् ।

पूजासमाप्तिपर्य्यंतमर्घ्यपात्रंनचालयेत् ॥ १७० ॥

अर्थ-इसके उपरांत मंत्रका जपनेवाला साधक अर्घ्यविशेषका थोडासा जल प्रोक्षणीपात्रमें डालकर उसजलसे अपनेको और पूजाके समस्त द्रव्यको प्रोक्षित करे । जबतक पूजा समाप्त न हो एक साथ अर्घ्यविशेषको दूसरे स्थानपर न ले जाय ॥ १७० ॥

विशेषार्घ्यस्यसंस्कारःकथितोयंशुचिस्मिते ।।

यंत्रराजंप्रवक्ष्यामिसमस्तपुरुषार्थदम् ॥ १७१ ॥

अर्थ-हे सुन्दरि ! तुमसे विशेषार्घ्यका संस्कार वर्णन किया, अब समस्त पुरुषार्थके देनेवाले यंत्रराजके लिखनेकी रीति कहताहूं ॥ १७१ ॥



मायागर्भत्रिकोणञ्चतद्वाद्येवृत्तयुग्मकम् ।
तयोर्मध्येयुग्मयुग्मक्रमात्पोडशकेसरान् ॥ १७२ ॥

अर्थ—प्रथम एक त्रिकोणमण्डल खेंच उसमें मायाबीज लिखे उसके बाहर गोलाकार दो मण्डल खेंचे तिसके बाहर दो केसर लिखे ॥ १७२ ॥

तद्वाद्येऽष्टदलपद्मंतद्बहिर्भूपुरंलिखेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तंसुरेखंसुमनोहरम् ॥ १७३ ॥

अर्थ—इस गोल मण्डलके बाहर अष्टदल पद्म बनावे उसके बाहर चारद्वारयुक्त सरल रेखामय मनोहर भूपुर लिखे ॥ १७३ ॥

स्वर्णेवाराजतेताम्रेकुण्डगोलविलेपिते ।
स्वयम्भूकुसुमैर्युक्तेचन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ १७४ ॥
कुशीदेनाथवालितेस्वर्णमय्याशलाकया ।
मालूरकण्टकेनापिमूलमन्त्रंसमुच्चरन् ॥ १७५ ॥

अर्थ—कुंड गोलविलेपितचंदन. अगर, कुसुम अथवा केवल लालचन्दन लगा हुआ सुवर्ण, चांदी या ताम्रपात्रमें स्वर्ण शलाका अथवा बिल्वकंटकसे मूलमन्त्र उच्चारण करे ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

विलिखेद्यन्त्रराजन्तुदेवताभावसिद्धये ।
अथवोत्कीलरेखाभिःस्फाटिकेविद्रुमेऽपिवा ॥ १७६ ॥
वैदूर्य्यंकारयेद्यन्त्रंकारुकेणसुशिलिपना
शुभप्रतिष्ठितंकृत्वास्थापयेद्भवान्तरे ॥ १७७ ॥
नश्यन्तिदुष्टभूतानिग्रहरोगभयानिच ।
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्य्यंमौदतेतस्यमन्दिरम् ॥
दाताभर्तायशस्वीचभवेद्यन्त्रप्रसादतः ॥ १७८ ॥

अर्थ-भावशुद्धिकेलिये यंत्रराज लिखे अथवा स्फटिक, प्रवाल या वैदूर्यके बने हुए पात्रमें चतुर कारीगरसे यंत्रको खुदवाय प्रतिष्ठा करके गृहमें स्थापित करे। इससे ग्रह, रोग, भूत और दुष्ट भूतोपद्रव शान्त होजाते हैं। साधकका गृहभी पुत्र पौत्र और ऐश्वर्यसे पूर्ण होजाता है। अधिक क्या कहें इसके प्रसादसे साधक दाता और यशवान् हो जाता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

एवंयन्त्रंसमालिख्यरत्नसिंहासनेपुरः ।

संस्थाप्यपीठन्यासोक्तविधिनापीठदेवताः ।

सम्पूज्यकर्णिकामध्येपूजयेन्मूलदेवताम् ॥ १७९ ॥

अर्थ-इसप्रकार मंत्र लिखकर पुरस्थित रत्नमय सिंहासनपर स्थापित करे और पीठदेवताओंकी व उनके आवर्त्तमानकर्णिकामूलमें देवताओंकी पूजा करे ॥ १७९ ॥

कलशस्थापनंवक्ष्येचक्रानुष्ठानमेवच ।

येनानुष्ठानमात्रेणदेवतासुप्रसीदति ।

मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नूनमिच्छासिद्धिःप्रजायते ॥ १८० ॥

अर्थ-इस समय कलश स्थापन और मंत्रानुष्ठानका वर्णन करता हूं, इससे निश्चयही इच्छासिद्ध, मंत्रसिद्ध होता है और देवताभी प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १८० ॥

कलांकलांगृहीत्वातुदेवानांविश्वकर्मणा ।

निर्मितोऽयंसवैयस्मात्कलशस्तेनकथ्यते ॥ १८१ ॥

अर्थ-विश्वकर्माने देवताओंकी एक २ कला लेकर इसको बनाया है, इसी कारणसे इसका नाम कलश हुआ ॥ १८१ ॥

पद्त्रिंशद्दुलायामपौडशाद्दुलमुच्चकैः ।

चतुरद्दुलकंकणंमुखान्तस्यपडद्दुलम् ।

पञ्चाद्दुलिमितंमूलंविधानंघटनिर्मितौ ॥ १८२ ॥

अर्थ-इसकलशका विस्तार डेढ़ हाथका, सोलह अंगुल ऊंचा, गल चार अंगुल, मुख विस्तारमें छैः अंगुल, तलपरिमाणमें पांच अंगुल ॥ १८२ ॥

सौवर्णराजतंताम्रकांस्यजंमृत्तिकोद्भवम् ।

पापाणंकाचजंवापिघटमक्षतमव्रणम् ।

कारयेद्देवताप्रीत्यैवित्तशाब्दंविजयेत् ॥ १८३ ॥

अर्थ-यह सुवर्ण, चांदी, कांसी, मट्टी वा कांचका बनाहो, कहींसे टूटा नहो, न कोई छिद्रहो, देवताओंकी प्रीतिके लिये सुधाकलश बनानेमें किसी प्रकारकी कृपणता नहो ॥ १८३ ॥

सौवर्णभोगदंप्रोक्तराजतंमोक्षदायकम् ।

ताम्रंप्रीतिकरंज्ञेयंकांस्यजंपुष्टिर्वर्द्धनम् ।

काचंवश्यकरंप्रोक्तंपापाणंस्तम्भकर्मणि ।

मृन्मयंसर्वकार्येषुसुदृश्यंसुपरिष्कृतम् ॥ १८४ ॥

अर्थ-सुवर्णकलश भोगदायक, चांदीका मोक्षदायक, ताम्रका प्रीतिकर, कांसेका पुष्टिवर्द्धक, कांचपात्र वशीकरणकारक, पापाणपात्र स्तम्भनोद्दीपक, मट्टीका पात्र सुदृश्य और स्वच्छ होनेसे सर्व कार्यमें श्रेष्ठ है ॥ १८४ ॥

स्ववामभागेपट्कोणंतन्मध्येत्रह्मरन्ध्रकम् ।

तद्ग्रहिर्वृत्तमालिख्यचतुरस्रन्ततोवहिः ॥ १८५ ॥

अर्थ-अपनी बाईं ओर एक पट्कोण मंडल लिखकर तिसमें एक शून्य लगावें, उसके बाहर एक गोलाकार मंडल खेंचकर तिसके बाहर एक चौकोन मंडल खेंचे ॥ १८५ ॥

सिन्दूररजसावापिरक्तचन्दनकेनवा ।

निर्मायमण्डलंतत्रयजेदाधारदेवताम् ॥ १८६ ॥

अर्थ-उस मंडलको रज, सिंदूर, या लालचंदनसे लिखकर तिसमें दूसरे देवताकी पूजा करे ॥ १८६ ॥

मायामाधारशक्तिञ्छेनमोऽन्तांसमुद्धरेत् ॥ १८७ ॥

अर्थ-“ह्रीं आधारशक्तये नमः” इस मंत्रसे पूजा करे ॥ १८७ ॥

नमसाक्षालिताधारंस्थापयेन्मण्डलोपरि ।

अस्त्रेणक्षालितकुम्भंतत्राधारेनिवेशयेत् ॥ १८८ ॥

अर्थ-फिर “अनंताय नमः” इस मंत्रसे प्रक्षालित आधार उक्त मंडलपर स्थापन करके “फट्” मंत्रसे प्रक्षालित कुंभ आधारपर स्थापित करे ॥ १८८ ॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्विन्दुसमायुतैः ।

मूलंसमुच्चरन्मन्त्रीकारणेनप्रपूरयेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ-इसके उपरांत मंत्रका जाननेवाला साधक “क्ष” से आरंभ करके “अ” कारत्तक वर्णपर बिंदु लगाय मूलमंत्र पढ़ते २ मद्यसे कुंभको पूर्ण करे ॥ १८९ ॥

आधारकुम्भतीर्थैपुवह्मचर्कशशिमण्डलम् ।

पूर्ववत्पूजयेद्विद्वान्देवीभावपरायणः ॥ १९० ॥

अर्थ-फिर देवीभावसे स्थिरमन हो आधार कुंभ और उसमें रक्खे हुए मद्यके ऊपर पूर्वानुसार वह्निमंडल अर्कमंडल और चंद्रमंडलकी पूजाकरे ॥ १९० ॥

रक्तचन्दनसिन्दूररक्तमाल्यानुलेपनैः ।

भूषयित्वातुक्लृप्तपञ्चीकरणमाचरेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ-इसके उपरांत लालचंदन, सिंदूर, लालमाला और अबलेपनसे चंदनको विभूषितकर पंचीकरण करे ॥ १९१ ॥

फटादर्भेणसन्ताड्यहुंजीजेनावगुण्ठयेत् ।

ह्रीं दिव्यदृष्ट्या संवीक्ष्य नमसाभ्युक्षणं चरेत् ।

मूलेन गन्धं त्रिर्दद्यात्पञ्चीकरणमीरितम् ॥ १९२ ॥

अर्थ—“फट्” मंत्रसे कुशद्वारा कलशको ताडना करे। ‘ह्रीं’ मंत्रका उच्चारण कर अवगुण्ठनमुद्रासे कलशको अवगुंठित करे “ह्रीं” मंत्रसे दिव्यदृष्टिद्वारा दर्शन कर “नमः” मंत्रसे जल लेकर कलशपर छिड़के। मूलमंत्रसे तीनबार कलशपर चंदन लगावे ॥ १९२ ॥

प्रणम्य कलशं रक्तपुष्पं दत्त्वा विशोधयेत् ॥ १९३ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त कलशको प्रणाम कर उसपर लाल चंदन चढ़ावे और मंत्रसे सुधाको शुद्ध करे ॥ १९३ ॥

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।

कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तिनतेनाशयाम्यहम् ॥ १९४ ॥

अर्थ—परमब्रह्म स्थूल और सूक्ष्म है, वह अद्वितीय और अचल है, मैं उनके शुभागमनसे कचसे उत्पन्न हुई ब्रह्महत्याका नाश करता हूँ ॥ १९४ ॥

सूर्य्यमण्डलमध्यस्थे ! वरुणालयसम्भवे ! ।

अमावीजमये देवि ! शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ १९५ ॥

अर्थ—हे देवि सुरे ! समुद्रके गर्भमेंसे तुम्हारी उत्पत्ति है, तुम सूर्यमंडलमें विराजमान हो, तुम अमावीज स्वरूपिणी हो, तुम शुक्रके शापसे छूटो ॥ १९५ ॥

वेदानां प्रणवो वीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।

तेन सत्येन ते देवि ! ब्रह्महत्याव्यपोहतु ॥ १९६ ॥

अर्थ-प्रणव देवताका बीजरूप हो ! और ब्रह्मानन्दमय हो,
हे देवि ! उस सत्यसे तुम्हारी ब्रह्महत्या दूर होवे ॥ १९६ ॥

ह्रीं हंसः शुचिपद्मसुरन्तरिक्षसद्बोता

वेदिपदतिथिर्दुरोणसत् । नृपद्मरसद्वतस-

द्रोजा अवजाऋतजा अद्रिजाऋतं बृहत् ॥ १९७ ॥

वारुणेन च बीजेन पङ्क्तिर्दीर्घस्वरभाजिना ।

ब्रह्मशापविशब्दान्ते मोचिता यै पदं वदेत् ।

सुधादेव्यै नमः पश्चात्सप्तधा ब्रह्मशापनुत् ॥ १९८ ॥

अर्थ-इसके उपरांत वरुणबीजमें क्रमानुसार छैः दीर्घस्वर
मिलाय पश्चात् “ब्रह्मशापविमोचितायै” पद उच्चारण करे,
फिर “सुधादेव्यै नमः” पदका प्रयोग करे ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

अङ्कुशं दीर्घघट्केन युतं श्रीमायया युतम् ।

सुधापश्चाद्ब्रह्मशापं मोचयेति पदन्ततः ।

अमृतं प्रावयेद्द्वन्द्वं द्विष्टान्तो मनुरीरितः ॥ १९९ ॥

अर्थ-और इस पदमें छैः दीर्घस्वर मिलाय फिर “श्रीं”
और मायाबीज मिलावे, तिसके पश्चात् सुधाशब्द प्रयोग
करके ‘ब्रह्मशापं मोचय’ शब्द उच्चारण करे (१) ॥ १९९ ॥

एवं शापान् मोचयित्वा यजेत्तत्र समाहितः ।

आनन्दभैरवं देवमानन्दभैरवीन्तथा ॥ २०० ॥

(१) मंत्रोद्धारः ययः-का के के के के का आ ह्रीं तथा कृष्णशापं मे क्षयामृतं
सावय सावय-वा. । कृष्णशापमोच-मंत्र दृष्टेरे पश्चात् यथा-ओं ह्रीं श्रीं कां कीं कूं
कैं कौं कः । कृष्णशापं विमोचय अमृतं सावय सावय इति दशधा जपेत् । शुकशापमो-
चनमंत्र दूसरे तंत्रमें यथाः-ओं शां शीं शूं शैं शौं शीं शं शः शुकशापात् विमोचितायै
सुधादेव्यै नमः ।

अर्थ-इसप्रकार शापमोचन करके सावधान हृदयसे आनन्दभैरवीकी पूजा करे ॥ २०० ॥

सहस्रमलशब्दान्तेवरयुंमिलितंवेदेत् ।

आनन्दभैरवंडेऽन्तं वपुःकान्तोमनुर्मतः ॥ २०१ ॥

अस्यास्थं विपरीतञ्च श्रवणेषामलोचना ।

सुधादेव्यैवौषडन्तोमनुरस्याः प्रपूजने ॥ २०२ ॥

अर्थ-“हस क्षमलवरयुं” इसके प्रथमके दो अक्षर अलग करके कर्णस्थलमें वामचक्षु और दीर्घ “ऊ” के स्थानमें दीर्घ “ई” धरे, फिर “सुधादेव्यै वौषट्” इस पदको प्रयोग करे ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

सामरस्यंतयोस्तत्रध्यात्वा तदमृतप्लुतम् ।

द्रव्यं विभाव्यतस्योद्धे मूलं द्वादशधा जपेत् ॥ २०३ ॥

अर्थ-उसके उपरांत कलशमें उक्त दोनों देवी देवताओंका सामरस्य ओं ऐक्य ध्यान करके यह भावना करे कि, अमृतमें सुरासंस्मृत होगई है। तिसमें बाहर २ मूलमंत्र जपे (१) ॥ २०३ ॥

मूलेन देवता बुद्ध्या दत्त्वा पुष्पाञ्जलिततः ।

दर्शयेद्धूपदीपौ च घण्टावादनपूर्वकम् ॥ २०४ ॥

(१) आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका ध्यान करते तत्रमें यथाः-मूर्धकोटिपती काशं चन्द्रकोटिसुशान्तम् । अष्टादशभुजं देवपञ्चवक्त्रं त्रिशेखरम् । अमृताण्यमृतस्थं ब्रह्म श्रोत्रस्थितम् । वृष रुद्र नीलकण्ठ मर्माभरणभूषितम् ॥ कपलघटद्वयं घण्टा-ढमरुप दिनम् । पाशकुशसं देवं गदमुमलपाणिम् ॥ खट्वखेटकट्टाशुभ्रशूलदण्ड-धृक् । विचित्रं खेटकं पुण्ड्रं वामाभयपाणिनम् । लोहितं देवदेश भावयेत्साधकोत्तमः । भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोटयुगलमाश्रिताम् ॥ त्रिमूर्तेर्दुधवती पञ्चवक्त्रा त्रिशेखनाम् । अष्टादशभुजैर्पुक्तां सर्वाभ्युपकरोद्यताम् । महसन्ती विशालाक्षी देवदेशासम्पत्तीमिति । इति ।

अर्थ-फिर देवबुद्धिसे मूलमंत्रके द्वारा मद्यके ऊपर तीन-
वार पुष्पाञ्जलि दें, फिर घंटा बजाय धूप दिखावे ॥ २०४ ॥

इत्थंतीर्थस्यसंस्कारः सर्वदादेवपूजने ।

व्रतेहोमविवाहेचतथैवोत्सवकर्मणि ॥ २०५ ॥

अर्थ-देवार्चना, व्रत, होम विवाह और उत्सवोंमें भी
पूर्वानुसार सुराका संस्कार करे ॥ २०५ ॥

मांसमानीयपुरतस्त्रिकोणमण्डलोपरि ।

फटाभुज्यवायुवह्निबीजाभ्यामन्त्रयेत्रिधा ॥ २०६ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त मांस लाकर सामने त्रिकोण मंडलके
ऊपरके भागमें स्थापित करे “ फट् ” मंत्रसे अभ्युक्षित करके
फिर वायुबीजसे उसको अभिमिश्रित करे ॥ २०६ ॥

कवचेनावगुण्ठ्याथसरक्षेत्रास्त्रमन्त्रतः ।

धेन्वावममृतीकृत्यमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २०७ ॥

अर्थ-फिर कवचमें अवगुंठित करके “ फट् ” मंत्रसे रक्षाकरे
फिर “ वं ” मंत्रोच्चारण कर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके
फिर इस मन्त्रका पाठ करे ॥ २०७ ॥

विष्णोर्वक्षसियादेवीयदेवीशङ्करस्यच ।

मांसंलेपवित्रकुरुकुरुतद्विष्णोः परमंपदम् ॥ २०८ ॥

अर्थ-जो देवीजी विष्णुजीके वक्षस्थलमें विराजमान हैं
जो शंकरजीकी छातीमें विराजमान हैं वह मेरे दिये हुए मां-
सको पवित्र करे और मुझको विष्णुजीके पदपर स्थापित
करे ॥ २०८ ॥

इत्थंमीनंसमानीयप्रोक्तमन्त्रेणसंस्कृतम् ।

मन्त्रणाननमतिमास्तंमीनमभिमन्त्रयेत् ॥ २०९ ॥

अर्थ—बुद्धिमान पुरुष इसप्रकारसे मत्स्य लाय उनको संशोधन कर इस मंत्रसे मंत्रपूत करे ॥ २०९ ॥

व्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ २१० ॥

अर्थ—हम शिवजीकी आराधना करते हैं उनके प्रसादसे यह मत्स्य गन्धयुक्त और पुष्टिशाली होवे यह हमको मृत्युके बन्धनसे छुटाय मोक्षके मार्गमें प्रेरित हो ॥ २१० ॥

तथैव मुद्रामादाय शोधयेदमुना प्रिये ! ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीवचक्षुराततम् ॥

ओं तद्विप्रासो विपण्यवोजागृवांसः समिन्धते ।

विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २११ ॥

अथ वा सर्वतत्त्वानि मूलेनैव विशोधयेत् ।

मूले तु श्रद्धधानो यः किन्तस्य दलशाखया ॥ २१२ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! फिर मुद्रा लाकर “तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः” इस मंत्रसे अथवा केवल मूलमंत्रसे पंचतत्त्व शोधन करे, जिनकी मूलमंत्रमें श्रद्धा है उनको शाखा और पत्तोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २११ ॥ २१२ ॥

केवलं मूलमन्त्रेण यद्द्रव्यं शोधितं भवेत् ।

तदेव देवताप्रीत्यै सुप्रशस्तं मयोच्यते ॥ २१३ ॥

अर्थ—मैं कहता हूँ कि, केवल मूलमंत्रसे जो द्रव्य शोधित होता है देवताकी प्रसन्नताके लिये वही श्रेष्ठ है ॥ २१३ ॥

यथाकालस्य संक्षेपात्साधकानवकाशतः ॥

सर्वमूलेन संशोध्य महादेव्यै निवेदयेत् ॥ २१४ ॥

अर्थ—जब कालके संक्षेपसे साधकको अनवकाश हो तबही मूलमंत्रसे पंचतत्त्व शोधन करके देवीको निवेदन करे ॥२१४॥

नचात्रप्रत्यवायोस्तिऽनाङ्गवैगुण्यदूषणम् ।

सत्यंसत्यंपुनः सत्यमितिऽङ्कुरशासनम् ॥ २१५ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्ण-
यसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मन्त्रोद्धारकलश-
स्थापनतत्त्वसंस्कारो नाम पञ्चमोऽष्टासः ॥ ५ ॥

अर्थ—इससेभी कोई प्रत्यवाय या अंगहानि नहीं होगी, मैं यह त्रिसत्य कहता हूँ और यही महादेवकी आज्ञा है ॥२१५॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां मन्त्रोद्धारकलश-
स्थापनतत्त्वसंस्कारो नाम पंचमोऽष्टासः ॥ ५ ॥

पष्ठोऽष्टासः ६.

श्रीदेव्युवाच ।

यत्त्वयाकथितंपञ्चतत्त्वंपूजादिकर्मणि ।

विशिष्यकथ्यतानाथ ! यदितेऽस्तिकृपामयि ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजीने पूछा—हे नाथ ! पूजा इत्यादिके समय जिसप्रकारसे पंचतत्त्व निवेदन करना चाहिये, वह आपने सब कहा, अब यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हो तो सबको भलीभांति विशेषतासे कहिये ॥ १ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

गौडीपैष्टीतथामाध्वीतिविधाचोत्तमासुरा ।

सैवनानाविधाप्रोक्तातालखर्जूरसम्भवा ।

तथोद्देशविभेदनानाद्रव्यविभेदतः ।

बहुधेयंसमाख्याताप्रशस्तदेवतार्चने ॥ २ ॥

अर्थ-श्रीमहादेवजीने कहा, गौडी, पैष्टी और माधवी यह तीन प्रकारकी उत्तम सुरा हैं । यह सुरा तालसे उत्पन्न होती हैं, खजूरसे उत्पन्न होती हैं व और वस्तुओंसे उत्पन्न होनेके कारण अनेक प्रकारकी होती हैं । इस कारण देशभेद और द्रव्यनाम-भेदसे यह सुरा अनेक प्रकारकी कही गई हैं । यह सब सुरा देवपूजामें श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

येनकेनसमुत्पन्नायेनकेनाहतापिवा ।

नात्रजातिविभेदोऽस्तिशोधितासर्वसिद्धिदा ॥ ३ ॥

अर्थ-यह सुरा जिस किसी प्रकारसे उत्पन्न हों, चाहे जिस देशसे चाहे कोई पुरुष लाया हो, शोधित होनेपर सब भौतिकी सिद्धियोंको देती हैं । सुराके विषयमें जातिका विचार नहीं है ॥ ३ ॥

मांसन्तुत्रिविधंप्रोक्तंजलभूचरखेचरम् ।

यस्मात्तस्मात्समानीतंयेनतेनविवातितम् ।

तत्सर्वदेवताप्रीत्यैभवेदेवनसंशयः ॥ ४ ॥

अर्थ-जलचर (मच्छली इत्यादि) थलचर (हरिणादि) आकाशचर (जंगली कपोतादि) यह तीन प्रकारका मांस है । यह मांस चाहे जिस स्थानसे आया हो चाहे जो कोई पुरुष लाया हो, तिससे अवश्य देवता प्रसन्न होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ४ ॥

साधकेच्छावलवतीदेयेवस्तुनिदवते ।

यद्यदात्मप्रियंद्रव्यंतत्तदिष्टायकल्पयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-देवताको कोई मांस या किसी वस्तुके देनेमें साधककी

इच्छाही बलवती है, जो जो मांस या जो जो वस्तु अपनी प्यारी हो वही इष्टदेवताको देनी उचित है ॥ ५ ॥

बलिदानविधौदेवि ! विहितः पुरुषः पशुः ।

स्त्रीपशुर्नचहन्तव्यस्तवशाम्भवशासनात् ॥ ६ ॥

अर्थ-हे देवि ! बलिदानके समय पुरुषपशुही (नर) शास्त्रमें कहा गया है । महादेवकी आज्ञा है कि, स्त्रीपशु (मादा) का बलिदान नहीं करे ॥ ६ ॥

उत्तमास्त्रिविधामत्स्याः शालपाठीनरोहिताः ॥ ७ ॥

अर्थ-शाल, पाठीन, व रोहित यह तीन प्रकार मत्स्यके उत्तम हैं ॥ ७ ॥

मध्यमाः कण्टकैर्हीना अधमा बहुकण्टकाः ।

तेऽपि देव्यै प्रदातव्या यदि सुष्ठु विभजिताः ॥ ८ ॥

अर्थ-दूसरे मत्स्यभी, जिनमें कांटे नहीं हो-उत्तमोत्तम हैं । शाल आदि कि, जिनमें कांटे अधिकईसे होते हैं-अधम हैं । परंतु बहुतसे कांटेवाला मत्स्यभी भलीभाँतिसे भँजकर देवीको दिया जासکتा है ॥ ८ ॥

मुद्रापित्रिविधा प्रोक्ता उत्तमादिविभेदतः ।

चन्द्रविम्बनिभं शुभ्रं शालितण्डुलसम्भवम् ।

यवगोधूमजं वापि घृतपक्वं मनोरमम् ॥ ९ ॥

अर्थ-उत्तम, मध्यम, अधम यह तीन प्रकारकी मुद्राभी होती हैं । जो चंद्रमाके विम्बकी समान शुभ्र हो, शालिके चावलसे हो, अथवा जो गेहूँके आटेकी बनी हो और जो घीमें पकी व मनोहर हो ॥ ९ ॥

मुद्रेयमुत्तमामध्याभृष्टधान्यादिसम्भवा ।

भजितान्यन्यवीजानि अधमा परिकीर्तिता ॥ १० ॥

अर्थ-तैसी मुद्राही उत्तम है । जो भृष्टधान्य अर्थात् खील इत्यादिकी बनी हो वह मध्यम है । जो और प्रकारके नाजको भूँजकर बनाई जाय सो अधम कहलाती है ॥ १० ॥

मांसमीनश्चमुद्राचफलमूलानियानिच ।

मुधादानेदेवतायैसंज्ञैपांशुद्धिरीरिता ॥ ११ ॥

अर्थ-देवीको सुरादान करनेके समय जो मांस, मत्स्य, मुद्रा, फल इत्यादि देनाहो उस सबका ही शुद्ध नाम होगा ॥ ११ ॥

विनाशुद्ध्याहेतुदानं पूजनन्तर्पणन्तथा ।

निष्फलं जायते देवि ! देवतान् प्रसीदति ॥ १२ ॥

अर्थ-विना इन शुद्धियोंके देवीजीको सुरादान करना, पूजा करना या तर्पण करना निष्फल होजायगा और तिससे देवताभी प्रसन्न नहीं होगा ॥ १२ ॥

शुद्धिं विना मद्यपानं केवलं विषभक्षणम् ।

चिररोगी भवेन्मन्त्री स्वल्पायुर्भ्रियतेऽचिरात् ॥ १३ ॥

अर्थ-विना शुद्धिके सुरापान करना विष खानेकी समान होता है, विशेष करके शुद्धिके विना सुरापान करनेसे सदा रोगी और अल्पायु होकर शीघ्रही कालको कौल होना पडता है ॥ १३ ॥

शेषतत्त्वं महेशानि ! निर्वीजं प्रवलेकलौ ।

स्वकीयाकेवलज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता ॥ १४ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! निर्वीज कलियुगके प्रवल होनेपर शेष-तत्त्वके केवल सर्वदोषरहित अपनी स्त्रीसेही सिद्ध होगा ॥ १४ ॥

अथवा त्रस्वयम्भवादिकुसुमं प्राणवल्लभे ! ।

कथितं न तत्प्रतिनिधौ कुसुमं पङ्क्तिर्कीर्तितम् ॥ १५ ॥

अर्थ-हे देवि ! अथवा मैंने जो स्वयंभुषुष्पका वर्णन किया है, तिसके बदलेमें लालचंदन देना चाहिये ॥ १५ ॥

अशोधितानितत्त्वानिपत्रपुष्पफलानिच ।

नैवदद्यान्महादेव्यैदत्वावैनारकीभवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-उक्त पंचतत्त्व और फल, मूल, पत्र विना शोधन किये देवीको निवेदन न करे. करनेसे नरकगामी होना पड़ता है ॥ १६ ॥

श्रीपात्रस्थापनंकुर्यात्स्वीयगुणशीलया ।

अभिपिञ्चेत्कारणेनसामान्याध्योदकेनवा ॥ १७ ॥

अर्थ-अपनी गुणशीलापत्नीसे श्रीपात्र स्थापन करावे और इस पत्नीके कारणद्वारा और साधारण अर्घ्यजलके द्वारा अभिषेक करे ॥ १७ ॥

आदौवालांसमुच्चार्यन्त्रिपुरायैततोवदेत् ।

नमःशब्दावसानेचइमांशक्तिमुदीरयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ-(अभिषेकके समय जो मंत्र उच्चारण करना चाहिये उसका उद्धार किया जाता है) पहले “ऐं ह्रीं सौः” उच्चारण करके, फिर “त्रिपुरायै नमः” उच्चारण करनेके अनंतर “इमां शक्ति” पद कहै ॥ १८ ॥

पवित्रीकुरुशब्दान्तेममशक्तिकुरुद्विठः ॥ १९ ॥

अर्थ-फिर “पवित्रीकुरु” शब्दके अन्तमें “मम शक्तिकुरु स्वाहा” यह पद उच्चारण करना चाहिये । सबको मिलाकर यह मंत्रोद्धार हुआ “ऐं ह्रीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरु स्वाहा” ॥ १९ ॥

अदीक्षितायदानारीकरणेमायांसमुच्चेत् ।

शक्तयोऽन्याः पूजनीयानार्यस्ताडनकर्मणि ॥ २० ॥

अर्थ—यदि नारी दीक्षित न हुई हो, उसके कानमें माया-बीज उच्चारण करे । उस स्थानमें मैथुनतत्त्वको पूर्ण करनेके लिये और जो परकीया शक्तिरहे उनकी पूजा की जाय ॥ २० ॥

अथात्मयन्त्रयोर्मध्येमायागर्भत्रिकोणकम् ।

वृत्तं पट्कोणमालिख्य चतुरस्रं लिखेद्ब्रह्मिः ॥ २१ ॥

अर्थ—फिर अपने और पहले कहे हुए यन्त्रके बीचमें एक त्रिकोण मण्डल खेंचकर उसके बीचमें मायाबीज लिखे, तदनंतर इस त्रिकोणमंडलके बाहर एक पट्कोण मण्डल खेंचे तिसके बाहर एक और चतुष्कोण मण्डल बनावे ॥ २१ ॥

अस्रकोणे पूर्णशैलमुड्डीयानन्तथैव च ।

जालन्धरं कामरूपं सचतुर्थी नमोऽन्तकम् ।

निजनामादिवीजाद्यं पूजयेत्साधकोत्तमः ॥ २२ ॥

अर्थ—फिर साधकश्रेष्ठ इस चतुष्कोणमण्डलके चारों कोनों में “पू पूर्णशैलाय पीठाय नमः ऊं उड्डीयानाय पीठाय नमः जां जालंधराय पीठाय नमः कां कामरूपाय पीठाय नमः” इन चार मंत्रोंका पाठ करके “पूर्णशैल उड्डीयान जालंधर कामरूप” इन चार पीठोंकी पूजा करे ॥ २२ ॥

पट्कोणे पुपडङ्गानिमृलेनैव त्रिकोणकम् ।

मायामाधारशक्तिश्च नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ—फिर पट्कोणमण्डलके छैः कोणमें ॥ ह्रीं नमः ह्रीं नमः हूं नमः ह्वे नमः ह्रौं नमः ह्रः नमः” इन छैः मंत्रोंसे पट्कोणके अधिदेवताका पूजा करे फिर त्रिकोणमंडलमें “ह्रीं आधारशक्तये नमः” यह मन्त्र पढ़कर आधारदेवताकी पूजा करे ॥ २३ ॥

नमसाक्षालिताधारसंस्थाप्यतत्रपूर्ववत् ।

वृत्तोपरियजेद्भुक्तेः कलाः स्वस्वादिमाक्षरैः ॥ २४ ॥

अर्थ-अनन्तर "नमः" पढ़कर पहलेकी समान उस मंडलके ऊपर धिया हुआ आधार स्थापित करके उसमें अपना पहला अक्षर उच्चारणकर अग्निकी दशकलाका पूजन करे ॥ २४ ॥

धूम्राच्चिज्ज्वलिनीसूक्ष्माज्ज्वालिनोविस्फुलिंगिनी ।

सुश्रीःसुरूपाकपिलाहव्यकव्यवहातथा ॥ २५ ॥

अर्थ-दशकलाओंकी नाम-धूमा, अचिः, ज्वलिनी, सूक्ष्मा, ज्ज्वालिनो, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा और हव्यकव्य-वहा ॥ २५ ॥

सचतुर्थीनमोऽन्तेन पूज्यावह्नेः कलादश ॥ २६ ॥

अर्थ-इन शब्दोंमें चतुर्थीविभक्तिकी प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' शब्द लगाय अग्निकी ऊपर कही दश कलाका पूजन करे (१) ॥ २६ ॥

मंवह्निमण्डलायेतिदशान्तेचकलात्मने ॥

अवसानेनमोदत्त्वापूजयेद्भवह्निमण्डलम् ॥ २७ ॥

अर्थ-फिर "मं वह्निमंडलाय दशकलात्मने नमः" यह मंत्र पढ़कर आधारमें अग्निमंडलकी पूजा करे ॥ २७ ॥

ततोऽर्घ्यपात्रमानीयफट्कारेणविशोधितम् ।

आधारेस्थापयित्वातुकलाःसूर्य्यस्यद्वादश ।

कभादिवर्णवीजेनउडान्तेनप्रपूजयेत् ॥ २८ ॥

(१) प्रयोगी यथा "धूं धूमाये नमः अं अचिपे नमः ज्ज्वलिन्ये नमः, सू सूक्ष्मायै नमः, व्ज्ज्वालिन्यै नमः विं विस्फुलिंगिन्यै नमः सुं सुश्रीयै नमः सुं सुरूपायै नमः कं कपिलायै नमः हं हव्यकव्यवहायै नमः" ॥

अर्थ—इसके उपरांत फटकारद्वारा शोधित किया हुआ पात्र लाकर आधारमें स्थापन करके “कभ” आदि “ठड” तक वर्णबीज पहले उच्चारण करके सूर्यकी बारह कलाओंको पूजे ॥ २८ ॥

तपिनीतापिनीधूम्रामरीचिज्वालिनीरुचिः ।

सुधूम्राभोगदाविश्वाबोधिनीधारिणीक्षमा ॥ २९ ॥

अर्थ—बारह कलाओंके नाम—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगप्रदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा हैं (१) ॥ २९ ॥

अंसूर्यमण्डलायेतिद्वादशान्तिकलात्मने ।

नमोऽन्तेनार्घ्यपात्रेतुपूजयेत्सूर्यमण्डलम् ॥ ३० ॥

अर्थ—फिर अर्घ्यपात्रमें “अंसूर्यमण्डलायद्वादशकलात्मने नमः” यह मंत्र पढ़कर सूर्यमंडलकी पूजा करे ॥ ३० ॥

विलोममातृकांतद्गन्मूलमन्त्रंसमुच्चरन् ।

त्रिभागंपूरयेन्मन्त्रीकलशस्थेनहेतुना ॥ ३१ ॥

अर्थ—इसके उपरांत मंत्रका जाननेवाला पुरुष क्षकारसे अकारतक विलोममातृकावर्ण और तिसके अंतमें मूलमंत्र उच्चारण करते २ कलशमें रक्खी हुई सुरासे अर्घ्यपात्रके तीनों भाग पूर्ण करे (२) ॥ ३१ ॥

(१) प्रयोगो यथाः—अंभंतपिन्यैनमः खंभंतापिन्यैनमः, गंभं धूम्रायैनमः, धंभं मरीच्यैनमः, ङंभं ज्वालिन्यैनमः, बंभं रुच्यैनमः, उंभं सुधूम्रायैनमः, जंभं भोगदायैनमः, झंभं विश्वायैनमः, ञंभं बोधिन्यैनमः, टंभं धारिण्यैनमः, थंभं क्षमायैनमः ।

(२) मंत्र मथा—हं ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा, छं ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा, हं ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा, इममन्त्रारसं ये ह्रीं छं लं रं ये मे भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ठं डं उं ञं झं जं छं चं टं थं यं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लृं लृं ऋं ॠं ॡं ईं औं अं इनमेंसे प्रत्येक वर्णक अन्तमें ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा । यह षण्ठी उच्चारण करना चादिये ।

विशेषार्घ्यजलैःशेषंपूरयित्वासमाहितः ।

पोडशस्वरबीजेननाममन्त्रेणपूजयेत् ।

सचतुर्थीनमोऽन्तेनकलाःसोमस्यपोडश ॥ ३२ ॥

अर्थ-फिर चित्तको सावधानकर अर्घ्यविशेषके जलसे अर्घ्यपात्रके पिछले अंशको पूर्ण करके, सोलह स्वर बीजोंके अन्तमें चतुर्थ्यन्त नाम उच्चारण करके, अन्ते “नमः” शब्द लगाय चंद्रमाकी सोलह कलाओंको पूजे ॥ ३२ ॥

अमृतामानदापूजातुष्टिःपुष्टीरतिधृतिः ।

शशिनीचन्द्रिकाकान्तिज्योत्स्नाश्रीःप्रीतिरङ्गदा ।

पूर्णापूर्णामृताकामदायिन्यःशशिनःकलाः ॥ ३३ ॥

अर्थ-सोलह कलाओंके नाम-अमृता, मानदा, पूजा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता यह सोलह कला कामदायिनी हैं (१) ॥ ३३ ॥

उंसोममण्डलायेतिपोडशान्तेकलात्मने ।

नमोऽन्तेनयजेन्मन्त्रीपूर्ववत्सोममण्डलम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-फिर इस अर्घ्यपात्रके जलसे “उं सोममण्डलाय पोडशकलात्मने नमः” यह मंत्र पढ़कर सोममण्डलकी पूजा करे ॥ ३४ ॥

दूर्वाक्षतरक्तपुष्पंवर्वरामपराजिताम् ।

माययाप्रक्षिपेत्पालेतीर्थमावाहयेदपि ॥ ३५ ॥

(१) नमो गो यथा:-अं अमृतायै नमः, क्लीं मानदायै नमः, इ पूजायै नमः, ईं तुष्टये नमः, उं पुष्टये नमः, ऊं रतये नमः, ऋ धृतये नमः, एं शशिनीयै नमः, ऐं चन्द्रिकायै नमः, औं कान्तियै नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ईं श्रीयै नमः, औं प्रीतियै नमः, औं अंगदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, ऐं पूर्णामृतायै नमः ।

अर्थ-तिसके उपरांत दूब, अक्षत, लालफूल, वर्वरापत्र (इयामाघास) अपराजिताके फूल, इन सबको ग्रहण करके “ह्रौं” मंत्रसे पात्रमें डालकर तीर्थ आवाहन करे ॥ ३५ ॥

कवचेनावगुण्यस्त्रमुद्रयारक्षणश्चरेत् ।

धेन्वाचैवामृतीकृत्यच्छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥ ३६ ॥

अर्थ-फिर “ह्रौं” बीज पढ़कर अवगुण्ठन मुद्राके द्वारा अर्घ्यपात्रकी सुरा अवगुण्ठित करके अस्त्रमुद्रासे रक्षाकरे । फिर धेनुमुद्राद्वारा अमृतीकृत करके उसको मत्स्यमुद्रासे आच्छादन करे ॥ ३६ ॥

मूलं सञ्जप्य दशधा देवतावाहनश्चरेत् ।

आवाह्यपुष्पाञ्जलिना पूजयेदिष्टदेवताम् ।

अखण्डाद्यैः पञ्चमन्त्रैर्नमन्त्रयेत्तदनन्तरम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-तदनन्तर अर्घ्यपात्रमें रखी हुई सुराके ऊपर दशवार मूलमंत्र जपे, तिसमें इष्टदेवताका आवाहन करके पुष्पाञ्जलि देवे ॥ फिर अखंडादि पांच मंत्रोंसे सुराको अभिमन्त्रित करे ॥ ३७ ॥

अखण्डैकरसानन्दाकरे परसुधात्मनि ।

स्वच्छन्दस्फुरणामन्त्रनिधेहि कुलरूपिणि ! ॥ ३८ ॥

अर्थ-(पांच मंत्रोंके यह अर्थ हैं) हे कुलरूपिणि ! तुम इस परमसुधामयी वस्तुमें केवल अखंड सान्द्ररस और सान्द्रानन्द देनेवाली हो । तुम स्वार्थीनस्फूर्ति दो ॥ ३८ ॥

अनङ्गस्थामृताकारे ! शुद्धज्ञानकलेवरे ! ।

अमृतत्वं निधेह्यस्मिन्वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥ ३९ ॥

अर्थ-तुम अनङ्गकी अमृतस्वरूप हो, शुद्ध ज्ञानही तुम्हारा शरीर है । तुम क्लिन्नरूप इस वस्तुमें अमृतफल प्राप्त करो ॥ ३९ ॥

तद्रूपेणैकरस्यञ्चकृत्वाघ्यैतत्स्वरूपिणि ।।

भूत्वाकुलामृताकारमपिबिस्फुरणंकुरु ॥ ४० ॥

अर्थ-हे सुगास्वरूपिणि ! तুম प्रधान मधुरताईके रसरूपमें इस मद्य एकरस्य अर्थात् प्रधान माधुर्ययुक्त करके कलामृत स्वरूपहो, हमें स्फूर्ति देवो ॥ ४० ॥

ब्रह्माण्डरससम्भृतमशेषरससम्भवम् ।

आपृगितंमहापात्रंपीयूषरसमावह ॥ ४१ ॥

अर्थ-सुरासे पृग्नि हुए इस महापात्रको ब्रह्माईके रससे युक्त और अनेनगरसका आकार करो ॥ ४१ ॥

अहन्तापात्रभग्निमिदन्तापग्गमामृतम् ।

पगाहन्तामयेवह्नाह्नामस्वीकारलक्षणम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-मैं आत्मभावस्वरूप पात्रमें पृग्नि हुए इदम्भावस्वरूप परम अमृतका पगात्मरूप अग्निमें ह्नाम कदंगा ॥ ४२ ॥

इत्यामंत्र्यतनस्तस्मिञ्छिवयोःसामगस्यकम् ।

विभाव्यपूजयेद्भूपदीपावपिचदशयेन ॥ ४३ ॥

अर्थ-इन पाँच मंत्रोंमें सुराको पदकर तिसमें मदाशिव और भगवतीकी समरसताका ध्यान करनेके उपरान्त पूजा करके भूप दीप दिशायें ॥ ४३ ॥

घटश्रीपात्रयोर्मध्येपात्राणिस्थापयेद्बुधः ।

गुरुपात्रंभोगपात्रंशक्तिपात्रमतःपरम् ॥ ४५ ॥

अर्थ-घट और श्रीपात्रके बीचमें गुरुपात्र, भोगपात्र और शक्तिपात्र, यह तीन पात्र ॥ ४५ ॥

योगिनीवीरपात्रेचबलिपात्रंततःपरम् ।

पाद्याचमनयोःपात्रंश्रीपात्रेणनवक्रमात् ।

सामान्यार्घ्यस्यविधिनापात्राणांस्थापनञ्चरेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-और योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, आचमन-पात्र, पाद्यपात्र, श्रीपात्रके सहित यह नौ पात्र, साधारण अर्घ्य स्थापन करनेकी विधिके अनुसार स्थापन करे ॥ ४६ ॥

कलशस्थामृतैर्नैवत्रिभागंपरिपूर्य्यच ।

मापप्रमाणंपात्रेषुशुद्धिखण्डंनियोजयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-फिर इन सब पात्रोंके तीन अंश कलशमें रक्खी हुई सुधासे पूरित करके इन सब पात्रोंमें भासे २ भर मांसादि डाले ॥ ४७ ॥

वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्याममृतंपात्रसंस्थितम् ।

गृहीत्वाशुद्धिखण्डेनदक्षयातत्त्वमुद्रया ।

सर्वत्रतर्पणं कुर्याद्विधिरेपप्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥

अर्थ-अनंतर बाँए हाथके अँगुठे और अनामिकाके द्वारा पात्रमें रक्खा हुआ अमृत और मांसादि ग्रहण करके दाहिने हाथसे तन्वमुद्राके द्वारा सबपात्रोंमें तर्पण करे तर्पणकी विधि आगे कही जातीहै ॥ ४८ ॥

श्रीपात्रात्परमंविन्दुंगृहीत्वाशुद्धिसंयुतम् ।

आनन्दभैरवंदेवंभैरवीञ्चप्रतर्पयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-पहले श्रीपात्रसे मांसादिसहित एक बिन्दु लुथा ले “हसक्षमलवरयं आनन्दभैरवाय वषट् आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः” इस मंत्रसे आनन्दभैरवका तर्पण करे और “सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वौषट् आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा” इस मंत्रसे आनन्दभैरवीका तर्पण करे ॥ ४९ ॥

गुरुपात्रामृतैवतर्पयेद्गुरुसन्तातिम् ।

सहस्रारेनिजगुरुंसपत्नीकंप्रतर्प्य च ।

वाग्भवाद्यंस्वस्वनाम्नातद्गुरुचतुष्टयम् ॥ ५० ॥

अर्थ-फिर गुरुपात्रमें रक्खेहुए अमृतको ग्रहण करके गुरु परम्पराका तर्पण करे । पहले ब्रह्मरंध्रमें स्थित सहस्रदलकमलमें धीके साथ अपने गुरुका तर्पण करके, फिर परमगुरु पुरेसे पुरे गुरु और परमेष्ठी गुरुका तर्पण करे (?) इन चार गुरुओंका तर्पण करनेके समय पहले “ॐ” बीज और पीछे चारों गुरुओंका नाम लेवे ॥ ५० ॥

ततःस्वहृदयाम्भोजेभोगपात्रामृतैव च ।

आद्यां कालीं तर्पयामिनिजबीजपुरःसरम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-इसके उपरांत अपने हृदयकमलमें भोगपात्रके अमृतसे अपना बीज उच्चारण करके “आद्यां कालीं तर्पयामि” इस मंत्रको पढ़ ॥ ५१ ॥

स्वाहान्तेन त्रिधामन्त्रीतर्पयेदिष्टदेवताम् ।

शक्तिपात्रामृतैस्तद्गद्गावरणतर्पणम् ॥ ५२ ॥

(?) गुरुतर्पणके मन्त्र-“ ॐ सपत्नीकममुकानन्दनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः । ॐ सपत्नीकममुकानन्दनाथं परमगुरुं तर्पयामि नमः । ॐ सपत्नीकममुकानन्दनाथं परमेश्वरगुरुं तर्पयामि नमः । ॐ सपत्नीकममुकानन्दनाथं परमेश्वरगुरुं तर्पयामि नमः । ”

अर्थ-अन्तमें “स्वाहा” यह मंत्र उच्चारण करके मंत्रजान-
नेवाला पुरुष तीनवार इष्टदेवताका तर्पण करे । फिर इस
शक्तिपात्रके अमृतसे अंगदेवता और आवरणदेवताका तर्पण
करे (१) ॥ ५२ ॥

योगिनीपात्रसंस्थेनसायुधांसपरीकराम् ।

सन्तर्प्यकालिकामाद्यांवटुकेभ्योवलिहरेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-अनंतर योगिनीपात्रमें रखे हुए अमृतसे शस्त्रांसे
शोभायमान, परिकर बांधे भगवती आदि कालिकाका तर्पण
करके बटुकोंको बलि देना चाहिये (२) ॥ ५३ ॥

स्ववामभागेसामान्यमण्डलंरचयेत्सुधीः ।

सम्पूज्यस्थापयेत्तत्रसामिपात्रंसुधान्वितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ-ज्ञानी पुरुष अपने वामभागमें एक साधारण चौकोन
मंडल खेचकर, उसमें मद्यमांसादिसहित अन्न स्थापन करे ॥ ५४ ॥

वाङ्मायाकमलावश्वटुकायनमःपदम् ।

सम्पूज्यपूर्वभागेचवटुकस्यवलिहरेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-पहले “वाङ्माया कमला” और “वं” उच्चारण करके
“वटुकायनमः” यह पद उच्चारण करे । और मंडलके पूर्व-
भागमें इस मंत्रसे वटुककी पूजा करे (३) ॥ ५५ ॥

(१) आदिक । लका तर्पणमन्त्र यथा:-ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । आद्यां पाठो
तर्पयामि स्वाहा । अंगदेवता तर्पणमन्त्र यथा:-अंगदेवतास्तर्पयामि स्वाहा । आव-
रणदेवताका तर्पणमन्त्र यथा:-आवरणदेवतास्तर्पयामि स्वाहा ।

(२) ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । सायुधां सपरिकरामाद्यां कार्शो तर्पयामि
स्वाहा । इस मन्त्रको पठकर कार्शका तर्पण करे ॥

(३) मन्त्रोद्धार यथा:-“एष सुषामिषान्वितबालि” ऐ ह्रीं श्रीं वं वटुकाय नमः”

ततस्तुयांयोगिनीभ्यःस्वाहायाम्यांहरेद्रलिम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर (एष सुधामिषान्वितान्नबलिः यां योगिनीभ्यः स्वाहा) इस मंत्रसे मंडलकी दाई ओर योगिनीयोंको बलि देवे ॥ ५६ ॥

पङ्दीर्घयुक्तं संवर्तं क्षेत्रपालाय हन्मनुः ।

अनेन क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्तु पश्चिमे ॥ ५७ ॥

अर्थ-फिर छँः दीर्घस्वरयुक्त संवर्त अर्थात् “क्ष” उच्चारण करके (क्षेत्रपालाय नमः) यह शब्द कहकर जो मंत्र उद्धृत होगा उस मंत्रसे मंडलके पश्चिम ओर क्षेत्रपालको बलि देवे (१) ॥ ५७ ॥

खान्तवीजं समुद्धृत्य पङ्दीर्घस्वरसंयुतम् ।

डेऽन्तं गणपतिं चोक्ता वह्निजायान्ततो वदेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ-अन्तर “ख” वर्णका अन्त्यबीज उच्चारण करके तिसमें छँः दीर्घस्वर मिलाय चतुर्थीका एकवचनान्त गणपतिशब्द पढ़कर तिसके अन्तमें वह्निजाया अर्थात् “स्वाहा” पद उच्चारण करके (२) ॥ ५८ ॥

उत्तरस्यां गणेशाय बलिमेतेन कल्पयेत् ।

मध्ये तथा सर्वभूतबलिं दद्याद्यथाविधि ॥ ५९ ॥

अर्थ-इस मन्त्रसे मंडलकी उत्तर ओर गणेशजीके अर्थ बलि देना चाहिये । और मंडलके मध्यमें यथाविधानसं सर्व भूतोंको बलि देवे ॥ ५९ ॥

(१) मन्त्रोद्धार यथा:-“एष सुधामिषान्वितान्नबलिः सां क्षीं क्षूं क्षँं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः” ।

(२) मन्त्रोद्धार यथा:-“ एष सुधामिषान्वितं न्नबलिः गो गों गूं गँं गौं गः गणपतये स्वाहा” ।

ह्रीं श्रीं सर्वपदञ्चोक्त्वा विघ्नकृद्भ्यस्ततो वंदत् ।

सर्वभूतेभ्य इत्युक्त्वा हूं फट् स्वाहा मनुर्मतः ॥ ६० ॥

अर्थ—(सर्वभूतोंको बलि देनेका मंत्र कहा जाता है) पहले “ह्रीं श्रीं सर्व” पद उच्चारण करके फिर “विघ्नकृद्भ्यः” शब्द पाठ करना उचित है । अनंतर “सर्वभूतेभ्यः” उच्चारण करके “हूं फट् स्वाहा” ऐसा उच्चारण करनेसे मंत्रोद्धार होजायगा (१) ६० ॥

ततः शिवायै विधिवद्बलिमेकं प्रकल्पयेत् ।

गृह्ण देवि ! महाभागे ! शिवे ! कालाग्निरूपिणि ! ॥ ६१ ॥

अर्थ—अनंतर (फलकारिका) शिवाको विधिविधानसे एक बलि देवे । यह शिवाबलि देनेके समय इस मंत्रका पाठ करे । हे देवि ! हे महाभागे ! हे कालाग्निरूपिणि ! यह बलि ग्रहण करो ॥ ६१ ॥

शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलितव ।

मूलमेपबलिः पश्चाच्छिवायै नम इत्यपि ।

चक्रानुष्ठानमेतत्तु तवाग्रे कथितं शिवे ! ॥ ६२ ॥

अर्थ—हमारे होनहार शुभ व अशुभ फलको व्यक्तरूपसे कहो । यह मूलमंत्र पढ़कर पीछे “एष बलिः शिवायै नमः” यह मंत्र कहकर शिवाबली देवे । हे शिवे ! यह चक्रका अनुष्ठान मैंने तुमसे कहा (२) ॥ ६२ ॥

(१) मंत्रोद्धार यथा—“एष सुधामिषान्वितान्नवक्तिः ह्रीं श्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं पट् स्वाहा” ॥

(२) शिवाबलि देनेका मंत्र यथा—“गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि । शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलि तव ॥ ह्रीं श्रीं क्रीं १२मेधारि स्वाहा १५ बलिः शिवायै नमः ॥ ”

चन्दनागुरुकस्तूरीवासितंसुमनोहरम् ।

पुष्पंगृहीत्वापाणिभ्यांकरकच्छपमुद्रया ॥ ६३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत चंदन, अगर कस्तूरीसे सुगंधित मनो-हर पुष्प दोनों हाथोंकी कच्छपमुद्रामें ग्रहण करके ॥ ६३ ॥

नीत्वास्वहृदयाम्भोजेध्यायेदाद्यांपरात्पराम् ॥ ६४ ॥

अर्थ-उसे अपने हृदयकमलमें स्थापन करे फिर परात्परा आदिकालीका ध्यान करना चाहिये ॥ ६४ ॥

सहस्रारमहापद्मेसुपुम्नाब्रह्मवर्त्मना ।

नीत्वासानन्दितांकृत्वाबृहन्निः श्वासवर्त्मना ।

दीपादीपान्तरमिवतत्रपुष्पेनियोज्यच ॥ ६५ ॥

अर्थ-फिर सुपुम्नानाडीरूप ब्रह्ममार्गद्वारा हृदयकमलमें स्थित भगवतीको सहस्रारनामक सहस्रदलमहापद्ममें लेजा-कर निर्मल सुधासे उनको सन्तर्पित और आनन्दमयी करके नासिकके पुटमें स्थित श्वासरूप मार्गसे एक दीपकसे जले-हुए दूसरे दीपककी समान भगवतीजीके हाथमें रखे हुये उन पुष्पोंमें संस्थापन करके ॥ ६५ ॥

यन्त्रेनिधापयेन्मन्त्रादृढभक्तिसमन्वितः ।

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेदिष्टदेवताम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-दृढभक्तिके साथ यंत्रमें स्थापन करे । मंत्र जानने-वाला पुरुष फिर हाथ जोड़कर देवतासे प्रार्थना करे कि ॥ ६६ ॥

देवेशि ! भक्तिसुलभे ! परिवारसमन्विते ! !

यावत्त्वांपूजयिष्यामितावत्त्वंसुस्थिराभव ॥ ६७ ॥

अर्थ-हे देवदेवि ! हे भक्तिसुलभे ! मैं जबतक तुम्हारी पूजा करूँ तबतक तुम परिवारके सहित स्थित होकर रहो ॥ ६७ ॥

क्रीमाद्ये ! कालिके ! देवि ! परिवारादिभिः सह ।

इहागच्छद्विधाप्रोक्ताइहतिष्ठाद्विधापुनः ॥ ६८ ॥

अर्थ-पहले “क्रीं” बीज उच्चारण करके “आद्ये कालिके देवि ! परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ” यह उच्चारण करके “इह तिष्ठ इह तिष्ठ” पाठ करे ॥ ६८ ॥

इहशब्दात्सन्निधेहिइहसन्निपदात्ततः ।

रुध्यस्वपदमाभाष्यममपूजांगृहाणच ॥ ६९ ॥

अर्थ-फिर “इह सन्निधेहि” यह पढ़कर “इह सन्निरुध्य-स्व यह पद पाठ कर “मम पूजां गृहाण” यह पद पाठ करना चाहिये (१) ॥ ६९ ॥

इत्थमावाहनंकृत्वादेव्याः प्राणान्प्रतिष्ठयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ-इसप्रकारसे देवीका आवाहन कर प्राणप्रतिष्ठा करे ॥ ७० ॥

आंर्ह्रींक्रौंश्रींवह्निजायाप्रतिष्ठामन्त्रैरितः ।

अमुप्यादेवतायाश्चप्राणाइहततः परम् ।

प्राणाडतिततः पञ्चबीजानितदनन्तरम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र कहा जाता है । “श्रीं ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः” यह उच्चारण करके पीछे ऊपर कहे हुए पाँच बीज उच्चारण करे ॥ ७१ ॥

अमुप्याजीवइहचस्थितइत्युच्चैरेत्पुनः ।

पञ्चबीजान्यमुप्याश्चसर्वेन्द्रियाणिकीर्त्तयेत् ॥ ७२ ॥

(१) “क्रीं आद्ये कालिके देवि परिवारादिभिः सह इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ-इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजांगृहाण” इस मंत्रमें भगवतीका आवाहन करे ।

अर्थ-इसके उपरान्त “आद्याकालीदेवतायाः जीव इह-स्थितः” यह उच्चारण करके पांच बीजोंका उच्चारण करे “आद्याकालीदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि” यह शब्द उच्चारण करे ॥ ७२ ॥

पुनस्तत्पञ्चबीजानिअमुप्यावचनन्ततः ।

वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पदतोवेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-फिर पंचबीज उच्चारणपूर्वक “आद्याकालीदेवताया वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्” यह पाठ करे ॥ ७३ ॥

प्राणाइहागत्यसुखंचिरन्तिष्ठन्तुद्वयम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-फिर “प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा” पाठ करे (१) ॥ ७४ ॥

इतित्रिधायन्तमध्येलेलिहानाख्यमुद्रयां ।

संस्थाप्यविधिवत्प्राणान्कृताञ्जलिपुटोवेदेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ-यन्त्रमें यह प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र तीनवार पढ़कर लेलिहान मुद्रासे (जीभ बाहर निकाल) उसमें देवीको प्राणप्रतिष्ठित कर हाथ जोड़के कहे ॥ ७५ ॥

आद्ये ! कालि ! स्वागतन्तेमुखागतमिदन्तव ।

आसनञ्चेदमवत्वयास्यतांपरमेश्वरि ! ॥ ७६ ॥

अर्थ-हे आद्ये काली ! तुम्हारा स्वागत, यहांपर यह आसन है, परमेश्वरि ! तुम विराजमान होवो ॥ ७६ ॥

(१) प्राणप्रतिष्ठाका मंत्र यथा: “ओं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः ओं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः जीव इह स्थितः ओं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि ओं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पदाणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा ” तीनवार यह मंत्र पढ़कर मंत्रमें प्राणप्रतिष्ठा करे ।

ततोविशेषार्घ्यजलैस्त्रिधामूलंसमुच्चरन् ।

प्रोक्षयेद्देवशुद्धचर्यपङ्क्तैः सकलीकृतिः ।

देवताऽङ्गेपङ्क्तानान्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।

ततः सम्पूजयेद्देवीं षोडशैरुपचारकैः ॥ ७७ ॥

अर्थ—फिर देवताशुद्धिके लिये मूलमंत्र पढ़ते २ अर्घ्यविशेषके जलसे तीनवार देवीको स्नान करावे, फिर देवीके अंगमें सकलीकरण करे देवताके अंगमें षडङ्गन्यास करनेका नाम सकलीकरण है । अनंतर सोलह उपचारसे भगवतीकी पूजा करे (१) ॥ ७७ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयञ्चस्नानं वसनभूषणे ।

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्याचमने तथा ॥ ७८ ॥

अर्थ—(षोडश उपचार कहे जाते हैं) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य पुनराचमनीय ॥ ७८ ॥

अमृतञ्चैव ताम्बूलं तर्पणञ्च नतिक्रिया ।

प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांश्च षोडश ॥ ७९ ॥

अर्थ—अमृत, पान, तर्पण, नमस्कार, देवीकी पूजा करनेके समय यह षोडशोपचार चाहिये ॥ ७९ ॥

आद्या बीजमिदं पाद्यं देवतायै नमः पदम् ।

पाद्यञ्चरणयोर्दद्याच्छिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ—पहले “आद्या” बीज उच्चारण करके फिर “इदं पाद्यमाद्या कालीदेवतायै नमः” यह मंत्र पढ़कर देवीके दोनों

(१) षडङ्गन्यासके मंत्र। “ह्रीं हृदयाय नमः ह्रीं शिरसे स्वाहा, हूं शिखायै वषट्” है कवचाय हूं, ह्रीं नेत्रत्रयाय वीषट्, हूं करतलद्वयान्याम् अस्त्राय फट् ।

चरणोंमें पाद्यप्रदान करे फिर ऐसे स्वाहान्त मंत्रसे मस्तकपर अर्घ्य निवेदन करे ॥ ८० ॥

स्वाहापदेनमतिमान्स्वधेत्याचमनीयकम् ।

मुखेनियोजयेन्मन्त्रमिधुपर्कमुखाम्बुजे ।

वंस्वधेतिसमुच्चार्य्यपुनराचमनीयकम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-फिर ऐसे स्वधान्त मंत्रसे मुखमें आचमनीय देवे । अनन्तर उक्त मंत्रसे देवीके मुखमें मधुपर्क दे, फिर इस मंत्रके अन्तमें “वं स्वधा” उच्चारण करके देवीके मुखमें पुनराचमनीय देवे ॥ ८१ ॥

स्नानीयंसर्वगात्रेषुवसनंभूषणानिच ।

निवेदयामिमनुनादद्यादेतानिदेशिकः ॥ ८२ ॥

अर्थ-अनन्तर साधक “निवेदयामि” मंत्रके द्वारा देवीके सर्वशरीरमें स्नान करनेके योग्य वसन भूषण पहिरावे ॥ ८२ ॥

मध्यमानामिकाभ्यामगन्धन्ध्याद्धृदम्बुजे ।

नमोऽन्तेनचमन्त्रेणवौषडन्तनेपुष्पकम् ॥ ८३ ॥

अर्थ-फिर मंत्रके अन्तमें “नमः” पद मिलाय मध्यमा और अनामिकासे देवीके हृदयकमलमें गंध देवे । फिर मंत्रके अन्तमें “वौषट्” पद उच्चारण करके पुष्प चढ़ावे ॥ ८३ ॥

धूपदीपौचपुरतःसंस्थाप्यप्रोक्षणादिभिः ।

निवेदयामिमन्त्रेणउत्सृज्यतदनन्तरम् ॥ ८४ ॥

अर्थ-तिसके उपरांत सन्मुख धूप, दीप जलाय सामने स्थापित कर प्रोक्षणादिसे शुद्ध कर मंत्रके अन्तमें “निवेदयामि” पद उच्चारण कर उत्सर्ग करे ॥ ८४ ॥

जयध्वनिमन्त्रमातःस्वाहेतिमन्त्रपूर्वकम् ।

सम्पूज्यघण्टांवामेनवादयन्दक्षिणेनतु ॥ ८५ ॥

अर्थ—फिर “जय ध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा” यह मन्त्र पढ़ घंटेकी पूजा करे उसको बाँये हाथमें ग्रहण कर बजाते २ दाहिने हाथमें ॥ ८५ ॥

धूपंगृहीत्वामतिमान्नासिकाधोनियोजयेत् ।

दीपन्तुदृष्टिपर्यन्तं दशधा भ्रामयेत्पुरः ॥ ८६ ॥

ततः पात्रञ्च शुद्धिञ्च समादाय करद्वये ।

मूलं समुच्चर मन्त्रीयन्त्रमध्ये निवेदयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—धूप लेकर साधक पुरुष देवीकी नासिकाके नीचे निवेदन करे और दीप ग्रहण करके देवीके सन्मुख चरणसे लेकर नेत्रतक दशवार घुमावे (१) फिर पानपात्र और शुद्धि

(१) प्रयोगो यथा:—“ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पाद्यमाद्या कालिकायै नमः” इस मंत्रसे देवीके चरणकमलमें पाद्य देवे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा इदमर्घ्यमाद्यायै काल्यै स्वाहा” इस मंत्रसे देवीके मस्तकपर अर्घ्य देवे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा इदमाचमनीयमाद्यायै काल्यै स्वाहा” इस मंत्रसे देवीके मुखमें आचमनीय निवेदन करे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा एष मधुपर्कः आद्यायै काल्यै स्वाहा” इस मंत्रसे देवीके मुखकमलमें मधुपर्कप्रदानकरे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा पुनराचमनीयमाद्यायै काल्यै स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर देवीके मुखमें पुनराचमनीय देवे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा इदं स्नानापाद्यायै कालिकायै निवेदयामि” इस मंत्रसे देवीके सव शरीरमें स्नानीय जल छिड़के । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा इदं वसनमाद्यायै कालिकायै निवेदयामि” इस मंत्रसे देवीके सर्वाङ्गमें वस्त्र पहिरावे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा एतानि भूषणानि आद्यायै कालिकायै निवेदयामि” इस मंत्रसे देवीके सर्वेद्रम गढ़ने पहिरावे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा एष गन्धः आद्यायै काल्यै नमः” यह मंत्र पढ़कर मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे देवीके हृदयकमलमें गन्ध देवे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पुष्पमाद्यायै कालिकायै स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर देवीके ऊपर फूल चढ़ावे । “ह्रीं श्रीं क्लीं परमेश्वरि स्वाहा एतौ धूपदीपो आद्यायै कालिकायै निवेदयामि” इस मंत्रसे उत्तम करके देवीके धूप दीप समर्पण करे ॥ फिर इसमें गन्ध पुष्पसे “जय ध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा” यह मंत्र पढ़ घंटा पूजकर बाए हाथसे घंटा बजाते २ दाहिने हाथमें धूप ले देवीकी नासिकाके नीचे समर्पण करे । और दीप ले चरणसे नेत्रतक दशवार भ्रमण करावे ।

अर्थात् मांसादि दोनों हाथोंमें ग्रहण करके मूलमन्त्र उच्चारण कर यन्त्रमें देवी कालीको वह निवेदन करे (१) ॥८६॥८७॥

परमवारुणीकल्पंकोटिकल्पान्तकारिणि ।

गृहाणशुद्धिसहितं देहि मे मोक्षमव्ययम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—(फिर इस प्रकारसे प्रार्थना करे कि) मातः तुम कोटि २ कल्पोंका अन्त करती हो । तुमको यह परम वारुणी-रूप कल्प अर्थात् मद्य शुद्धिके साथ अर्पण करता हूं ग्रहण करके मुझको अक्षय सुक्ति दो ॥ ८८ ॥

ततः सामान्यविधिना पुरतो मण्डलं लिखेत् ।

तस्योपरिन्यसेत्पात्रं नैवेद्यपरिपूरितम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—फिर साधारण विधानके अनुसार सामने चौकोन या त्रिकोण मण्डल खेंच तिसके ऊपर नैवेद्यपूरित पात्र स्थापित करे ॥ ८९ ॥

प्रोक्षणञ्चावगुण्ठञ्चरक्षणञ्चाभृतीकृतम् ।

मूलेन सप्तधामन्त्र्य अध्याङ्गिर्विनिवेदयेत् ॥ ९० ॥

अर्थ—फिर “ फट् ” मन्त्रसे नैवेद्य प्रोक्षित कर “ हूं ” बीजसे अवगुण्ठित करे, अनंतर “ फट् ” मन्त्रके द्वारा उसकी रक्षा करे “ वं ” बीज पढ़े । और धेनुमुद्रासे उसका अभृतीकरण करे । फिर उसको मूलमन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर अर्घ्य जलसे वह देवीजीको निवेदन करे ॥ ९० ॥

(१) मंत्रोपपा.—ह्रीं श्रीं क्लीं परमेवारी स्वाहा इहं मद्य इमां शुद्धिं न आयाये कालिकायै निवेदयामि ।

मूलमेतत्तुसिद्धान्नसर्वोपकरणानि

निवेदयामीष्टदेव्यैजुपाणेदंहविः शि

हविषिका
१६॥

अर्थ-निवेदनका यह मन्त्र है कि, पहले
“सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेद
करे फिर “शिवे हविरिदं जुपाण” यह पाठ करे ॥ ९१ ॥

ततःप्राणादिमुद्राभिः पञ्चभिः प्राशयेद्धविः ॥ ९२ ॥

अर्थ-अनंतर-(प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समा-
नाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और व्यानाय स्वाहा इत्यादि
मन्त्रोच्चारण करे) प्राणादि पांच मुद्रा दिखाय देवीजीको
हवि देवे ॥ ९२ ॥

वामनैवेद्यमुद्राञ्चविकचोत्पलसन्निभाम् ।

दर्शयेन्मूलमन्त्रेणपानार्थतीर्थप्ररितम् ॥ ९३ ॥

अर्थ-फिर बांये हाथसे प्रफुल्लकमलकी समान नैवेद्यमुद्रा
दिखाय मूलमन्त्रका उच्चारण कर पान करनेके अर्थ मद्यसे
भरा ॥ ९३ ॥

कलशंविनिवेद्याथपुनराचमनीयकम् ।

ततः श्रीपात्रसंस्थेनामृतेनतर्पयेद्विधा ॥ ९४ ॥

अर्थ-कलश निवेदन करके देवीको पुनराचमनीय जल
देवे । फिर श्रीपात्रमें रखे हुए अमृतसे तीनवार तर्पण
करे ॥ ९४ ॥

उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गकेपुच ।

पञ्चपुष्पाञ्जलीन्दत्त्वामूलमेन्द्रणदेशिकः ॥ ९५ ॥

(१) मन्त्रो यथा - “हो श्री क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतत्सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्न
मिष्टदेवतायै निवेदयामि शिवे हविरिदं जुपाण” अमात्रस्थले “ओ सिद्धान्न” यह १६
प्रयोग करना चाहिये ।

अर्थात् मंत्र-इसके उपरान्त साधकपुरुष मूलमन्त्रका उच्चारण करके देवीके शिरपर हृदयके आधारमें, दोनों चरणोंमें और सब अंगोंमें पांच पुष्पांजलि देवे ॥ ९५ ॥

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।

तवावरणदेवांश्च पूजयामि नमो वदेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ-हाथ जोड़कर “इष्टदेवते ! तव आवरणदेवान् पूजयामि नमः” (अर्थात् तुम्हारे आवरण देवताओंकी पूजा करता हूँ) यह वाक्य उच्चारण करके प्रार्थना करे ॥ ९६ ॥

अग्निर्निर्ऋतिवाय्वीशपुरतः पृष्ठतः क्रमात् ।

षडङ्गानि च सम्पूज्य गुरुपङ्क्तिः समर्चयेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ-यन्त्रके अग्निकोण नैऋतवायु और ईशानकोण और सम्मुखदेश व पश्चाद्भागमें क्रमानुसार चन्द्राकारमें (ह्रीं नमः ह्रीं नमः ह्रूं नमः ह्रूं नमः ह्रः नमः) इत्यादि मन्त्रोंसे षडङ्गदेवताकी पूजाविधि समाप्तकरके गुरुपङ्क्तिकी पूजा करे ॥ ९७ ॥

गुरुश्च परमादिश्च परात्परगुरुन्तथा ।

परमेष्ठिगुरुश्चैव यजेत्कुलगुरुनिमान् ॥ ९८ ॥

अर्थ-(ओं गुरुवे नमः ओं परमगुरुवे नमः इत्यादि मंत्र उच्चारण करके) गंध पुष्पादिके द्वारा क्रमानुसार गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु और परमेष्ठिगुरु आदि कुलगुरुकी पूजा करे ॥ ९८ ॥

गुरुपात्रमृतेनैवाग्निहोत्रस्तपणमाचरेत् ।

ततोऽष्टदलमध्ये तु पूजयेदष्टनायिकाः ॥ ९९ ॥

मंगलाविजयाभद्राजयन्तीचापराजिता ।

नन्दिनी नारसिंही च कौमारीत्यष्टमातरः ॥ १०० ॥

अर्थ-फिर पात्रमें रखेहुए अमृतसे नमः" इत्यादि मंत्रोंसे तीनवार तर्पण दलमें "ओं मङ्गलायै नमः, ओं विजया मंत्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे मंगला, जयन्ती, अपराजिता, नंदिनी, नारसिंही इन आठ नायिकाओंकी पूजा करे ॥ ९९ ॥ १

दलाग्रेषुयजेदष्टभैरवान्साधकोत्तमः ॥ १०१ ॥

असिताङ्गोरुरुश्चण्डःक्रोधोन्मत्तोभयङ्करः ।

कपालीभीषणश्चैवसंहारोऽष्टौचभैरवाः ॥ १०२ ॥

अर्थ-और प्रणवादि तमोन्त मंत्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहार. इन आठ भैरवोंकी पूजा करे(१) ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

इन्द्रादिदशदिक्पालान्भूपुरान्तःप्रपूजयेत् ।

तेषामस्त्राणितद्वाह्येपूजयेत्तर्पयेत्ततः ॥ १०३ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त प्रणवादि तमोन्त मंत्रोंके द्वारा भूपुरमें इन्द्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करके उक्तप्रकारसेही तिसके बाहिरी भागमें दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजाकर "ओं इन्द्रं तर्पयामि नमः" इस प्रकार दिक्पालोंका तर्पण करे ॥ १०३ ॥

सर्वोपचारैःसम्पूज्यबलिदद्यात्समाहितः ॥ १०४ ॥

अर्थ-इसप्रकार पाद्यादिक सर्वोपचारसे देवीकी पूजा समाप्त कर सावधान हो बलिदान करे ॥ १०४ ॥

(१) मंत्रः- "आ असित द्वाय भैरवाय नमः, ओं रुवे भैरवाय नमः, ओं चण्डाय भैरवाय नमः, ओं क्रोधोन्मत्ताय भैरवाय नमः, ओं भयंकराय भैरवाय नमः, ओं कपालिने भैरवाय नमः, ओं भीषणाय भैरवाय नमः, ओं संहाराय भैरवाय नमः ।"

अर्थात् मंत्र-इसके उपरान्त साधकपुरुष मूलमन्त्रका उच्चारण करके देवीके शिरपर हृदयके आधारमें, दोनों चरणोंमें और सब अंगोंमें पांच पुष्पांजलि देवे ॥ ९५ ॥

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।

तवावरणदेवांश्चपूजयामिनमोवेदेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ-हाथ जोड़कर “इष्टदेवते ! तव आवरणदेवान् पूजयामि नमः” (अर्थात् तुम्हारे आवरणदेवताओंकी पूजा करता हूँ) यह वाक्य उच्चारण करके प्रार्थना करे ॥ ९६ ॥

अग्निर्निर्ऋतिवाय्वीशपुरतः पृष्टतः क्रमात् ।

पङ्कजानिचसम्पूज्यगुरुपङ्क्तीः समर्चयेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ-यन्त्रके अग्निकोण नैऋतवायु और ईशानकोण और सम्मुखदेश व पश्चाद्भागमें क्रमानुसार चन्द्राकारमें (ह्रीं नमः ह्रीं नमः ह्रीं नमः ह्रीं नमः ह्रीं नमः) इत्यादि मन्त्रोंसे पङ्कजदेवताकी पूजाविधि समाप्तकरके गुरुपङ्क्तिकी पूजा करे ॥ ९७ ॥

गुरुश्चपरमादिश्चपरात्परगुरुन्तथा ।

परमेष्ठिगुरुश्चैवयजेत्कुलगुरुनिमान् ॥ ९८ ॥

अर्थ-(ओं गुरुवेनमः ओं परमगुरुवेनमः इत्यादि मंत्र उच्चारण करके) गंध पुष्पादिके द्वारा क्रमानुसार गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु और परमेष्ठेगुरु आदि कुलगुरुकी पूजा करे ॥ ९८ ॥

गुरुपात्रमृतेनैवत्रिह्विस्तपेणमाचरेत् ।

ततोऽष्टदलमध्येतुपूजयेदष्टनायिकाः ॥ ९९ ॥

मंगलाविजयाभद्राजयन्तीचापराजिता ।

नन्दिनीनारसिंहीचकौमारीत्यष्टमातरः ॥ १०० ॥

अर्थ-फिर पात्रमें रखेहुए अमृतस
नमः" इत्यादि मंत्रोंसे तीनवार तर्पण
दलमें "ओं मङ्गलायै नमः, ओं विजया
मंत्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे मंगला,
जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही
इन आठ नायिकाओंकी पूजा करे ॥ ९९ ॥ १ ॥

दलाग्रेषु जेदष्टभैरवान्साधकोत्तमः ॥ १०१ ॥

असिताङ्गोरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।

कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥ १०२ ॥

अर्थ-और प्रणवादि नमोन्त मंत्र उच्चारण करके गंध
पुष्पादिसे असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर,
कपाली, भीषण और संहार, इन आठ भैरवोंकी पूजा
करे (१) ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

इन्द्रादिदशदिक्पालान्भूपुरान्तःप्रपूजयेत् ।

तेषामस्त्राणितद्राह्ये पूजयेत्तर्पयेत्ततः ॥ १०३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत प्रणवादि नमोन्त मंत्रोंके द्वारा भूपुरमें
इन्द्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करके उक्तप्रकारसेही तिसके
बाहिरी भागमें दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजा कर "ओं
इन्द्रं तर्पयामि नमः" इस प्रकार दिक्पालोंका तर्पण करे ॥ १०३ ॥

सर्वोपचारैः सम्पूज्य बलिं दद्यात्समाहितः ॥ १०४ ॥

अर्थ-इसप्रकार पाद्यादिक सर्वोपचारसे देवीकी पूजा
समाप्त कर सावधान हो बलिदान करे ॥ १०४ ॥

(१) मंत्रः- "आ असित द्वाय भैरवाय नमः, ओं रुरु भैरवाय नमः, ओं चण्डाय
भैरवाय नमः, ओं क्रोधोन्मत्ताय भैरवाय नमः, ओं भयंकराय भैरवाय नमः, ओं कपालिने
भैरवाय नमः, ओं भीषणाय भैरवाय नमः, ओं संहाराय भैरवाय नमः ।"

(१२६)

तत्किं उपरांत महावाक्य (१) उच्चारण कर पशुको अर्थात्, गंकरके देवीको समर्पण कर और हाथ जोड़ "यथोक्तेन विधिना तुभ्यमस्तु समर्पितम्" इसका पाठ करे ॥ ११४ ॥

इत्थं निवेद्य च पशुभूमि संस्थान्तुं कारयेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-इसप्रकार विधिके अंतुसर निवेदन करके पशुका बलिदान करे ॥ ११५ ॥

॥ देवीभावपरो भूत्वा हन्यात्तीव्रप्रहारतः ।

स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा भ्राता वा सुहृद्देववा ।

स पिण्डेनाथवाच्छेद्यो नारिपक्षं नियोजयेत् ॥ ११६ ॥

अर्थ-देवीकी भक्तिमें परायण हो तीव्रप्रहारसे पशुका वध करे भ्राता, भर्ताजे, सुहृद् अथवा सपिण्ड पुरुषसे पशुका वध करावे या अपने आप करे शत्रुपक्षसे कदापि पशुका वध न करावे ॥ ११६ ॥

ततः कवोष्णरुधिरं बटुकेभ्यो बलिहरेत् ।

स प्रदीपशीर्षबलिर्नमो देव्यै निवेद्येत् ॥ ११७ ॥

अर्थ-फिर "एष कवोष्णरुधिरबलिः ओं बटुकेभ्यो नमः" यह मंत्र पढ़कर बटुकजनोंको किंचित् गरम रुधिर बलि देवे और "एष सप्रदीपशीर्षबलिः ओं ह्रीं देव्यै नमः" यह कहकर देवीको शीर्ष बलिप्रदान करे ॥ ११७ ॥

एवं बलिविधिः प्रोक्तः कौलिकानां कुलाच्चेत् ।

अन्यथा देवताप्रीतिर्जायते न कदाचन ॥ ११८ ॥

अर्थ-इसप्रकारसे कौलिकोंके कुलदेवताका पूजाबुझान

(१) महावाक्य यथा विष्णुस्मृतौ तत् सर्वं ओं अघासु कमासि अमुकपक्षे अमुक तिथौ अमुकराशिस्थिते भास्करे समस्ताभीष्टितप्रदार्पणसिद्धिकामः अमुक गोत्रः अमुक समौहमिष्टदेवताये इमं पशु समर्पये ॥

उल्लास ६.] भाषाटीकासमेतम् । (१६३)

और बलिकी विधि कही गई, अथवा अन्यथा (बलिविधिका अनुष्ठान न करनेसे) देवता कदापि प्रसन्न नहीं होती है ॥ ११८ ॥

ततो होमं प्रकुर्वीत तद्विधानं शृणुमिये ॥ ११९ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! इसके उपरांत होम करे होमका नियम कहता हूं श्रवण करो ॥ ११९ ॥

स्वदक्षिणेवा लुकाभिर्मण्डलं चतुरस्रकम् ॥ १२० ॥

चतुर्हस्तपरिमितं कृत्वा मूलेन वीक्षणम् ॥ १२१ ॥

अक्षेण ताडयित्वा च तेनैव प्रोक्षणं चरेत् ॥ १२० ॥

अर्थ—साधकको चाहिये कि वह अपने दाहिने हाथके चारहाथके प्रमाणका मंडल चतुरस्रकृत करे । और “फट्” मंत्र पढ़कर कुशासे ताड़ना करके उस मंत्रसे ही प्रोक्षित करे ॥ १२० ॥

कूर्चबीजेनावगुण्य देवतानाम् पूर्वकम् ॥ १२१ ॥

स्थण्डिलाय नम इति यजेत् साधकः सत्तमः ॥ १२१ ॥

अर्थ—साधकश्रेष्ठ “हुं” इस कूर्चबीजसे मंडलको घेर देव-
ताओंको नाम ले “स्थण्डिलाय नमः” यह मंत्र पढ़कर गंधपुष्पसे
स्थण्डिलकी पूजा करे ॥ १२१ ॥

प्रागग्रः उग्रग्रः शोभग्रः प्राग्शोभग्रः ॥ १२२ ॥

निग्नग्निन्द्राग्निः पानग्न्याग्निः शोभग्न्याग्निः ॥ १२२ ॥

और तीन उदग्र रेखा खेचकर तिसके ऊपर पाँछे लिखे हुए
देवताओंकी पूजा करे ॥ १२२ ॥

प्रागग्रः सुचरेखा सुमुकुन्देशः पुरन्दरान् ॥ १२३ ॥

ब्रह्मवैवस्वते दूँश्च उत्तराग्रः सुपूजयेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ—प्रागग्र तीन रेखाओंपर क्रमानुसार विष्णु ।

और इन्द्रकी और तीन उदगग्रेखाओंपर ब्रह्मा, यम व चंद्रमाकी पूजा करे ॥ १२३ ॥

ततःस्थण्डिलमध्येतुहसौर्गभैत्रिकोणकम् ।

पट्कोणंतद्वहिर्वृत्तंततोष्टदलपङ्कजम् ।

भूपुरन्तद्वहिर्विद्वान्विलिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥ १२४ ॥

अर्थ-फिर उसस्थण्डिलमें त्रिकोणमंडल रचना करे उस त्रिकोणमंडलमें “हसौः” शब्द लिखे । फिर त्रिकोणमंडलके बाहिरे पट्कोण और पट्कोणके आगे बाहिरे वृत्त खेचकर तिसके बाहिरे अष्टदलपत्र खेचे और सबके बाहिरे चौकोर भूपुर लिखे, इसप्रकार बुद्धिमान साथक उत्तम यंत्र बनावे ॥ १२४ ॥

मूलेनपुष्पाञ्जलिनासंपूज्यप्रणवेनतु ।

होमद्रव्याणिसंप्रोक्ष्यकर्णिकायांयजेत्सुधीः ।

मायामाधारशक्त्यादीन्प्रत्येकंवाप्रपूजयेत् ॥ १२५ ॥

अर्थ-फिर मूलमंत्र पढ़कर लिखेहुए यंत्रकी पूजा करके प्रणवके उच्चारणसे होमद्रव्यको प्रोक्षित करे और अष्टदल पत्रके बीजकोशपर मायाबीज उच्चारण करके आधारशक्तियोंकी एकही साथ या प्रत्येककी अलग २ पूजा करे(१) ॥ १२५ ॥

अग्न्यादिकोणेधर्मअज्ञानंवैराग्यमेवच ।

ऐश्वर्य्यपूजयित्वातुपूर्वादिषुदिशांक्रमात् ॥ १२६ ॥

अधर्ममज्ञानमितिअवैराग्यमनन्तरम् ।

अनैश्वर्य्ययजेन्मन्त्रीमध्येऽनन्तश्चपद्मकम् ॥ १२७ ॥

अर्थ-और यंत्रके अग्निकोणसे क्रमानुसार चारों कोनोंमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्यकी पूजा करे और पूर्वसे क्रमानुसार चारों ओर अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और

अनैश्वर्यकी पूजा करके मध्यस्थलमें अनंत और पद्मकी पूजा करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

कलासहितसूर्यस्य तथा सोमस्य मण्डलम् ।

प्रागादिके सरेष्वेपु मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ॥ १२८ ॥

पीताश्वेतारुणाकृष्णाधूम्रातीव्रातथैव च ।

स्फुलिङ्गिनी च रुचिरा ज्वलिनी तितथा क्रमात् ॥ १२९ ॥

अर्थ—और “ओं सूर्यमंडलाय द्वादशकलात्मने नमः ओं सोममंडलाय षोडशकलात्मने नमः” इस प्रकार मन्त्र पढ़कर यन्त्रमें कलासहित सूर्य और सोममण्डलकी पूजा करके प्रागादिकेसरमें क्रमानुसार पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूमा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा और ज्वलिनीकी पूजा करे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

प्रणवादिनमोऽन्तेन सर्वत्र पूजनं चरेत् ।

रंवह्नेरासनायेति नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ॥ १३० ॥

अर्थ—सब जगह पूजापद्धतिमें देवदेवीके नाम उच्चारण करनेमें आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः शब्द मिलावे बस इस नियमके अनुसारही यन्त्रमें “ओं रं वह्नेरासनाय नमः” यह मन्त्र पढ़कर अग्निके आसनकी पूजा करे ॥ १३० ॥

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलन्दीवरलोचनाम् ।

वागीश्वरेण संयुक्तां ध्यात्वा मन्त्री तदा सने ॥ १३१ ॥

मायया तौ प्रपूज्याथ विधिवद्ब्रह्मि मानयेत् ।

मूलेन वीक्षणं कृत्वा फटावाहनमाचरेत् ॥ १३२ ॥

अर्थ—फिर साधक ब्रह्मयुक्त कमलदलके समान नेत्रवाली ऋतुस्नाता वागीश्वरीका ध्यान करके पहली कही हुई ब्रह्मिपीठमें उन दोनोंकी पूजा करे । पूजाके समय देवदेवीके नाम मन्त्रका आदिमें “ह्रीं” मायाबीज और अन्तमें “नमः”

शब्द मिलावे अर्थात् “ओं ह्रीं ब्रह्मणे नमः ओं ह्रीं वागी-
श्वर्ये नमः” इसप्रकार मन्त्र पढ़कर ‘पूजा’ करनी चाहिये
फिर विधानके अनुसार (सरैयां अथवा कांस्यके पात्रमें करके)
अग्नि लाय मूलमन्त्र पढ़कर “अग्निवीक्षण” और “फट्” मन्त्र
पढ़ आवाहनक्रिया करे ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

प्रणवंचततोवह्नेर्योगपीठायहन्मनुः ।

यन्त्रेपीठपूजयित्वादिक्षुचैताःप्रपूजयेत् ।

वामाज्येष्टातथारौद्रीअम्बिकेतियथाक्रमात् ॥ १३३ ॥

अर्थ-आवाहनके अन्तमें प्रणवका उच्चारण करके “वह्ने-
र्योगपीठायनमः” यह मन्त्र पढ़कर वह्निपीठकी पूजा करे ।
तिसके उपरात पीठकी पूर्व ओरसे क्रमानुसार चारों ओर
वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिकाकी पूजा करे ॥ १३३ ॥

ततोऽअमुक्यादेवताया स्थण्डिलायनमः प्रदम् ।

इतिस्थण्डिलमापूज्यतन्मध्येमूलरूपिणीम् ॥ १३४ ॥

अर्थ-फिर “अमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः” इस
मंत्रसे स्थण्डिलकी पूजा करके तिसमें मूलदेवतारूपिणी ॥ १३४ ॥

ध्यात्वावागिद्विर्देवीवह्निबीजपुरःसरम् ।

वह्निमुद्धृत्यमूलान्तेकूर्चमन्त्रंसमुच्चरन् ॥ १३५ ॥

अर्थ-वागीश्वरी देवीका ध्यान करके “र” वह्निबीज उच्चा-
रण करे और अग्निका उद्धार करे । फिर मूलमन्त्र पढ़नेके अन्तमें
“हूं” कूर्च बीज और “फट्” यह अंतबीज पढ़कर ॥ १३५ ॥

कव्यादेभ्यो वह्निजायांकव्यादां गौपरित्यजेत् ।

अध्वेणवह्निसंवीक्ष्यकूचेनैवावगुण्ठयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ-“कव्यादेभ्यः” उच्चारण करके फिर वह्निजायां अर्थात्
“स्वाहा” उच्चारण करके जो मन्त्र उद्धृत होवे उसको पढ़कर

राक्षसोंका देने योग्य अंश दक्षिणओरको फेंकदे (१) फिर
अस्त्रबीजसे अग्निबीक्षण कर कूर्चबीजसे वह्नि वेष्टनकरे ॥ १३६ ॥

क्षेत्राच्चैवामृतीकृत्यहस्ताभ्यामग्निमुद्धरेत् ।
प्रादक्षिण्यक्रमेणाग्निभ्रामयन्स्थण्डिलोपरि ॥ १३७ ॥

त्रिधागातुस्पृष्टभूमिःशिवबीजंविचिन्तयन् ।
॥ १३८ ॥

अर्थ ... हाथोंसे
अग्निको उठावे और प्रादक्षिणाके क्रमसे स्थण्डिलके ऊपर-
भागमें तीनवार घुमावे, 'व' शब्दके 'वीर्यरूप' अग्निका ध्यान-
करे फिर जातुसे पृथ्वीको छू-उसे अपने मुखकी ओर करके
योनियंत्रके ऊपर-स्थापन करे ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

ततोमायांसमुच्चार्यवह्निमूर्तिञ्चडेयुताम् ।
नमोऽन्तेनप्रपूज्याथरंवह्निपरतःसुधीः ।
॥ १३९ ॥

... उच्चा-
विभक्तिका
एकवर्धनान्त "वह्निमूर्ति" शब्दका उच्चारण करके, वह्नि
मूर्तिकी पूजा करे (२) और "रंवह्नि" उच्चारण करके
"चैतन्यायनमः" अर्थात् "रंवह्निचैतन्याय नमः" इस मंत्रसे
वह्निचैतन्यकी पूजा करे ॥ १३९ ॥

नमसावह्निमूर्तिञ्चैतन्यपरिकल्प्यच ।
प्रज्वालयेत्ततोवह्निमन्त्रेणानेनमंत्रवित् ॥ १४० ॥

(१) मंत्रो यथाः—“ह्रीं श्रीं परमेश्वरि स्वाहा हूं षट् कण्ठादिभ्यः स्वाहा”
(२) “ह्रीं वह्निमूर्तये नमः ।”

अर्थ-इसके उपरांत मंत्रका जाननेवाला साधक मनहीमनमें “नमो” मंत्रसे “वह्निमूर्ति” और वह्निचैतन्यकी परिकल्पना करके यह (वक्ष्यमाण) मंत्र पढ़कर अग्नि जलावे ॥ १४० ॥

प्रणवंपूर्वमुद्धृत्यचित्पिगलपदन्तथा ।

हनद्वयंदहदहपचपचेतिततोवदेत् ॥ १४१ ॥

अर्थ-प्रथमही प्रणवका उच्चारण करके “चित् पिगल” पद फिर “हनहन” तिसके अंतमें “दहदह” और फिर “पचपच” पाठ करे ॥ १४१ ॥

सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहावह्निप्रज्वालनेमनुः ।

ततःकृताञ्जलिर्भूत्वाप्रकुर्व्यादग्निवन्दनम् ॥ १४२ ॥

अर्थ-तदनंतर “सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहा” उच्चारण करके इस प्रकार अग्नि जलानेका मंत्र कहा है (१) फिर हाथ जोड़कर अग्निकी वंदना करे ॥ १४२ ॥

अग्निप्रज्वलितंवन्दे जातवेदं हुताशनम् ।

सुवर्णवर्णममलंसमिद्धं सर्वतोमुखम् ॥ १४३ ॥

अर्थ-(यह कहकर अग्निकी वंदना करे कि) “अग्नि प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलंसमिद्धं सर्वतोमुखम्” अर्थात् प्रज्वलित, सुवर्णतुल्य, निर्मल, प्रदीप्त और सर्वतोमुख, जातवेद, हुताशनका वंदन करता हूँ ॥ १४३ ॥

इत्युपस्थाप्यदहनं छादयेत्स्थण्डिलं कुशैः ।

स्वेष्टनाम्नावह्निनामकृत्वाभ्यर्चनमाचरेत् ॥ १४४ ॥

अर्थ-इसप्रकार अग्निकी वंदना करके कुशासे स्थण्डिल ढाकके फिर अपने इष्टदेवताका नाम ले वह्निनाम उच्चारण करके अभ्यर्चना करे ॥ १४४ ॥

(-१) “ओचित्पिगल हनहन दहदह पचपच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर अग्नि जलावे ।

तारोवैश्वानरपदाजातवेदपदंवदेत् ।

इहावहावहेत्युक्तालोहिताक्षपदान्तरम् ॥ १४५ ॥

अर्थ—(मंत्रका नियम यह है कि) प्रथममें प्रणव, तिसके अंतमें “वैश्वानर” पद फिर “जातवेद” पद उच्चारण करे । अनंतर “इहावहावह” कह फिर “लोहिताक्ष” पदका उच्चारण करे ॥ १४५ ॥

सर्वकर्माणिपदतःसाधयान्तेऽग्निवल्हभा ।

इत्यभ्यर्च्यहिरण्यादिसप्तजिह्वाःप्रपूजयेत् ॥ १४६ ॥

अर्थ—फिर “सर्वकर्माणि” पदके अंतमें “साधय” पाठ करके अग्निवल्हभा “स्वाहा” का नाम लेंवै (१) इसप्रकार मंत्र पढ़कर अग्निकी अभ्यर्चनाकर हिरण्यादि सप्तजिह्वाकी पूजा करे (२) ॥ १४६ ॥

सहस्रार्चिःपदंडेऽन्तंहृदयायनमोवदेत् ।

पडङ्गंपूजयेद्बह्वेस्ततोमूर्तीर्यजेत्सुधीः ॥ १४७ ॥

अर्थ—फिर श्रेष्ठबुद्धिवाला साधक चतुर्थीविभक्तिका एकवचनान्त “सहस्रार्चिः” शब्द उच्चारण करके “हृदयायनमः” कह अग्निके हृदयकी पूजा करे फिर पडंग और बह्निमूर्तिकी पूजा करे (३) ॥ १४७ ॥

(१) मंत्रो यथाः—“ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर अग्निकी पूजा करे ।

(२) मंत्रो यथाः—“ओ बह्वेहिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्योनमः” इसमंत्रसे अग्निकी हिरण्यादि सप्त जिह्वाकी पूजा करे । सप्तजिह्वाके नाम यथाः—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंमिनी और विश्वरूपिणी ।

(३) “ओं सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः” इसमंत्रसे बह्निहृदयकी पूजा करे । “ओं बह्वेः षडङ्गेभ्योनमः” इसमंत्रसे अग्निके षडङ्गकी पूजा और “ओं बह्निमूर्तिभ्योनमः” इसमंत्रसे अग्निमूर्तिकी पूजा करे ।

जातवेदप्रभृतयोमूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ १४८ ॥

अर्थ-“जातवेद” इत्यादि अष्टौ मूर्त्तिसंज्ञा पह-
लेही कह आये हैं ॥ १४८ ॥

ततोयजेदष्टशक्तीर्ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ॥

पद्माद्यष्टनिधीनिष्ठा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ॥ १४९ ॥

अर्थ-फिर ब्राह्मी इत्यादि अष्टशक्तिकी पूजा करे और
पद्मादि अष्टनिधिकी पूजा करके इन्द्रादि दिक्पालोंकी
पूजा करे (१) ॥ १४९ ॥

वज्राद्यस्त्राणिसम्पूज्य प्रादेशपरिमाणकम् ।

कुशपत्रद्वयं नीत्वा घृतमध्ये निधापयेत् ॥ १५० ॥

अर्थ-और दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजा करके (२)
प्रादेशके परिमाणवाले कुशके दो पत्र ग्रहण कर धीमें (एक
वामभागमें दूसरा दक्षिणभागमें) स्थापित करे ॥ १५० ॥

वामे ध्यायेदिडां नाडीदक्षिणेऽपि गलान्तथा ।

मध्ये सुपुत्रांसंश्रित्य दक्षभागात्समाहितः ॥ १५१ ॥

अर्थ-घृतके बाँये भागमें इडा, दाहिनेमें पिगला और
मध्यमें सुपुत्रा नाडीका ध्यान करे । फिर सावधानचित्तहो
दक्षिणभागसे ॥ १५१ ॥

आज्यंगृहीत्वामतिमान्दक्षनेत्रे हुताशितुः ।

मन्त्रेणानेन जुहुयात्प्रणवान्तेऽग्नयेऽपदम् ॥ १५२ ॥

अर्थ-घृत ले सुसिद्ध साधक अग्निके दाहिने नेत्रमें इसमंत्रको

(१) ‘ओ वज्रादिभ्यो अष्टशक्तिभ्यो नमः’ इसमंत्रम अष्टशक्तिकी और ‘ओ
पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः’ यह मंत्र १८११ गणपुत्रादिसे आठनिधिकी पूजा करे ।

(२) अस्त्राक नाम यथा, - “वज्र, शक्ति, ऋषि, सङ्ग, पाश, अकुश, मदा, विशूल,
चक्र और १३ ।

पढ़कर आहुति देवे । (मंत्रका नियम यह है कि) प्रथम प्रणव उच्चारण करके “अग्नये” पदको उच्चारण करे ॥ १५२ ॥

स्वाहान्तोमनुराख्यातोवामभागाद्धविर्हरेत् ।

वामनेत्रेहुनेद्वहेरोसोमायद्विष्टोमनुः ॥ १५३ ॥

अर्थ—फिर “स्वाहा” शब्द उच्चारण करे । (१) अनन्तर वामभागसे हविको ग्रहण करके “ओं सोमाय स्वाहा” इस मंत्रको उच्चारण कर अग्निके वामनेत्रमें आहुति देवे ॥ १५३ ॥

॥ १५४ ॥

॥ १५४ ॥

स्वाहान्तोऽयमनुः प्रोक्तः पुनर्दक्षिणतो हविः ।

गृहीत्वानमसामन्त्रीप्रणवंपूर्वमुद्धरेत् ॥ १५५ ॥

अर्थ—फिर ध्यानसे आज्य ग्रहण करके अग्निके ललाटमें आहुति देवे (ललाटमें आहुति देनेका मंत्र ऐसा कहा है कि) आकारसहित चतुर्थी विभक्तीका द्विवचनात् “अग्निसोम” शब्द उच्चारण करके “स्वाहा” शब्द उच्चारण करे (२) फिर साधक “नमः” शब्द उच्चारण करके पुनर्वार दक्षिण भागसे घृत लेकर प्रथम प्रणवका उच्चारण करे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

अग्नये च स्विष्टकृते वाह्निकान्तांततो वदेत् ।

अनेन वाह्निवदने जुहुयात्साधकोत्तमः ।

॥ १५६ ॥

अर्थ—... और तिसके उपरान्त वाह्निजाया अर्थात् “स्वाहा” शब्द उच्चारण करे

(१) “आ अग्नये स्वाहा”

(२) मंत्रः—ओं अग्निसोमभ्याम् स्वाहा

(१) यह मंत्र उच्चारण करके साधक अग्निके मुखमें आहुति देवे । फिर प्रणवादि और स्वाहान्त करके क्रमानुसार "भूः भुवः और स्वः" यह तीन पद उच्चारण करके होम करे (२) ॥ १५६ ॥

तां वैश्वानरपदाज्जातवेद इहावह ।

पहलोहिपदान्ते च ताक्षसर्वपदं वदेत् ।

कर्माणि साधय स्वाहा त्रिधानेनाहुतीर्हरेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ-अनन्तर प्रथम प्रणव उच्चारण करके "वैश्वानर" पद उच्चारण करके तदुपरान्त "जातवेद इहावहावहलोहि" तिसके अन्तमें "ताक्षसर्व" यह पद उच्चारण करे फिर "कर्माणि साधय स्वाहा" उच्चारण करे । इसप्रकार मंत्र पढ़कर तीनवार आहुति देवे (३) ॥ १५७ ॥

ततोऽग्नौ स्वेष्टमावाह्य पीठाद्यैः सह पूजनम् ।

कृत्वा स्वाहान्तमनुनामृलेन पञ्चविंशतीः ॥ १५८ ॥

अर्थ-अनन्तर अग्निमें अपने दृष्टदेवताका आवाहन करके (पहला कहाहुआ मंत्र पढ़कर) पीठादिके साथ उसकी पूजा करे फिर मूलमंत्र पढ़कर तिसके अन्तमें "स्वाहा" शब्द उच्चारण करके अग्निमें पचीस ॥ १५८ ॥

हुत्वा बह्व्यात्मनो देव्याण्येक्यं सम्भाषयन्धिया ।

एकादशाहुती हुत्वा मृलेन वांगदेवताः ॥ १५९ ॥

(१) मंत्र:- "ओं अग्ने सिष्टशूने स्वाहा । "

(२) मंत्र:- "ओं भूः रगहा, ओं भुवः स्वाहा ओं स्वः स्वाहा । "

(३) मंत्रोच्चारण यथा:- "ओं वैश्वानर जातो दे इहावहावह लोहि ताक्षस सर्वकर्माणि साधय स्वाहा " यह मंत्र पढ़कर तीन बार आहुति देवे ।

अर्थ-आहुति देकर मनही मनमें अग्नि, देवी और अपनी आत्मा, इन तीनोंकी एकताकी चिन्ता करे । फिर मूलमंत्रसे ग्यारह आहुति देकर “ओं अंगदेवताभ्यः स्वाहा” इसमंत्रसे अंगदेवताके अर्थ ॥ १६२ ॥

हुत्वास्वकाममुद्दिश्यतिलाज्यमधुमिश्रितैः ॥ १६० ॥

अर्थ-होम करे । फिर अपनी कामनाके लिये (१) मूलमंत्र पढ़कर तिसके अन्तमें “स्वाहा” मिलाय (जो मन्त्रोद्धार होगा) तिसको पढ़ता हुआ तिल, आज्य और मधु मिलावे ॥ १६० ॥

पुष्पैर्विल्वदलैर्वापियथाविहितवस्तुभिः ।

यथाशक्त्याहुतिं दद्यान्नाप्यन्यूनांप्रकल्पयेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ-फूल अथवा बेलपत्र वा यथाविहित वस्तुसे शक्तिके अनुसार आहुति देवे । आठसे कम आहुति न दे ॥ १६१ ॥

ततः पूर्णाहुतिं दद्यात्फलपत्रसमन्विताम् ।

स्वाहान्तमूलमन्त्रेण ततः संहारमुद्रया ।

तस्माद्देवीं समानीयस्थापयेद्धृदयाम्बुजे ॥ १६२ ॥

अर्थ-फिर अन्तमें “स्वाहा” पद मिलाय मूलमंत्र पढ़कर अग्निमें फल और पानयुक्त पूर्णाहुति देवे । फिर संहारमुद्राके द्वारा देवीको अग्निसे लायकर हृदयकमलमें स्थापन करे ॥ १६२ ॥

क्षमस्वेति च मन्त्रेण विसृजेत्तं हुताशनम् ।

कृतदक्षिणकोमन्त्री अच्छिद्रमवधारयेत् ॥ १६३ ॥

अर्थ-फिर मन्त्री “अग्नये क्षमस्व” मंत्र पढ़कर अग्निका

(१) कामनावाक्य यथाः—“विष्णुतोम तसत् ओं अघामुकमास्यमुकपक्षे अमुक-
तिथावमुकराशिरपिपते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीअमुकशर्मा तिला-
ज्यादिभिः पुष्पैर्विल्वपत्रादिभिर्वा सार्द्धं वा यथावाहुतिमहं ददे ।”

विसर्जन करे । फिर दक्षिणाविधि समाधान करके “कृतमिदं होमकर्मच्छिद्रमस्तु” यह कहकर अच्छिद्रावधारण करे ॥ १६३ ॥

हुतशेषं भुवोर्मध्ये धारयेत्साधकोत्तमः ॥ १६४ ॥

अर्थ—फिर साधकश्रेष्ठ होमसे बची हुई सामग्री भूयुगलके मध्यमध्यमें धारण करे । अर्थात् होमसे बची हुई भस्मका माथेमें तिलक लगावे ॥ १६४ ॥

एष होमविधिः प्रोक्तः सर्वत्रागमकर्मणि ।

होमकर्मसमाप्त्यैव साधको जपमाचरेत् ॥ १६५ ॥

अर्थ—सर्वत्र आगमकर्ममें जिसप्रकारसे होमका अनुष्ठान होता है तिसकी विधि कही । इसप्रकार साधक होमको करके जपका अनुष्ठान करे ॥ १६५ ॥

विधानं शृणु देवेशि ! येन विद्या प्रसीदति ।

देवता गुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयेद्विद्या ॥ १६६ ॥

अर्थ—हे देवेशि ! जिससे विद्या प्रसन्न होती है तिस जपके अनुष्ठानकी विधि कहता हूं श्रवण करो । मनहीमनमें देवता गुरु और मनकी एकता चिंतन करे ॥ १६६ ॥

गन्तांतां नानाप्रोक्तानि नानाविधानि ।

नानाविधानानि नानाविधानि नानाविधानि ॥ १६७ ॥

अर्थ—मंत्रवर्णदेवता, स्वरूपदेवता, गुरुरूपिणी, जो पुरुष देवतास्वरूप विचारकर मंत्रवर्णकी पूजा करे उसकोही सिद्धि मिलती है ॥ १६७ ॥

गुरुं शिरसि संविन्त्य देवतां हृदयो भुजे ।

रसनायामूलविद्यां तैजोरूपां विचिन्त्य च ।

त्रयाणाम् तैजसात्मानमेकाभूतं विचिन्त्येत् ॥ १६८ ॥

अर्थ-शिरमें गुरुका ध्यान करे हृदयकमूलमें देवताको और रसनामें तेजरूप मूलमंत्रात्मिका विद्याका ध्यान करे । फिर गुरु देवता और मंत्र इन, तीनके तेजसे एकहुई आत्मा को चिन्ता करे ॥ १६८ ॥

तारणसम्पुटीकृत्यमूलमन्त्रश्चसतथा ।

जप्त्वातुसाधकः पश्चान्मातृकापुटितं स्मरेत् ॥ १६९ ॥

अर्थ-फिर प्रणवके द्वारों संपुटित करके सातवार मूलमंत्रका जप करे फिर मातृका पुटित करके सातवार स्मरण करे (१) १६९

मायाबीजं स्वशिरसि दशधा प्रजपेत्सुधीः ।

बुद्धेने प्रणवं तद्वत्पुनर्मायां हृदम्बुजे ।

प्रजप्य सप्तधामन्त्री प्राणायामं समाचरेत् ॥ १७० ॥

अर्थ-फिर साधक अपने शिरमें “ही” मायाबीजका दश-वार जप करे फिर अपने मुखमें दशवार प्रणवका जप करे फिर हृदयपद्ममें सातवार मायाबीजका जप करके पहलके अनुसार प्राणायामका अनुष्ठान करे ॥ १७० ॥

ततो मालां समादाय प्रवालादिसमुद्भवाम् ।

माले माले महोभागे ! सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।

चतुर्वर्गस्त्वयिन्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ १७१ ॥

(१) प्रणवसे मूलमंत्रका संपुटीकरण यथा—“ओं हा श्रीं क्रीं आघे कालिके स्वाहा । ओं मातृकापुटितं यथा—मूलमंत्रके आदि वा अन्तमें क्रमानुसार अकारादिसे लेकर झकारान्ततक इक्यावन वर्ण मिलानेका नाम मातृकापुटितकरण है । जैसे ओं आं ईं ईं ऊं ऊं ऋं ऋं एं एं आं औं अं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं णं तं पं दं धं नं फं बं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं शं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, झं लं हं सं षं शं वं लं रं थं मं भं षं फं पं नं घं दं थं तं णं टं ठं डं जं झं जं छं चं डं धं गं खं कं अं अं औं आं ऐं एं ऐं लं ऋं ऋं ऊं उं ईं इं अं अं ॥

२ महामाल इति पाठान्तरम् ।

अर्थ-इसके उपरान्त प्रवालादिकी माला ग्रहण करके “हे माले ! हे महामाले !” तुम सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार वर्गही तुमको अर्पण करता हूँ; तुम हमको सिद्धि देओ (१) ॥ १७१ ॥

इतिसम्पूज्यमालान्तांश्रीपात्रस्थामृतेनच ।

त्रिधामूलेनसन्तर्प्यस्थिरचित्तोजपंश्चरेत् ।

अष्टोत्तरसहस्रवाप्यथवाष्टोत्तरंशतम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-यह मंत्र पढ़कर मालाकी पूजा करे । फिर मूलमंत्र पढ़कर श्रीपात्रमें रक्खेहुए अमृतसे तीनवार मालाका तर्पण करे (२) फिर साधक चित्तको स्थिर करके एक सहस्र आठ (१००८ अथवा एक शत आठ १०८) वार मूलमंत्रका जप करे ॥ १७२ ॥

प्राणायामन्ततःकृत्वाश्रीपात्रजलपुष्पकैः ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वगृहाणास्मत्कृतंजपम् ॥ १७३ ॥

सिद्धिर्भवतुमेदेवि ! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ! ।

इतिमन्त्रेणमतिमान्देव्यावामकराम्बुजे ॥ १७४ ॥

तेजोरूपंजपफलंसमर्प्यप्रणमेद्भुवि ।

ततःकृताञ्जलिर्भूत्वास्तोत्रञ्चकवचंपठेत् ॥ १७५ ॥

अर्थ-फिर प्राणायाम करके मतिमान् साधक श्रीपात्रमें रक्खे हुए जल और पुष्पादिसे देवीके कमलम्पी बाँये हाथमें

(१) “माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥”

(२) तर्पणमंत्रः-प्रथम मूलमंत्रका द्वावाराण करके “मालां सन्तर्पयाभि स्वाहा” यह कहकर तर्पण करे ।

तेजरूप फल समर्पण करे। जप समर्पण करनेका मंत्र यह है किः—“हे देवि! हे महेश्वरि!” तुम गुह्या, अतिगुह्या और रक्षा करनेवाली हो तुम अस्मत्कृत जप ग्रहण करो तुम्हारे प्रसादसे मुझको सिद्धि प्राप्त हो (१) इसप्रकारसे जप समाप्त कर पृथ्वीमें दंडकी समान हो प्रणाम करे फिर हाथ जोड़ स्तुतिवाक्य पढ़े ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

ततःप्रदक्षिणीकृत्यविशेषार्घ्येणसाधकः ।

विलोमार्घ्यप्रदानेनकुर्व्यादात्मसमर्पणम् ॥ १७६ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त साधक प्रदक्षिणा करके विलोममंत्रसे अर्घ्यविशेष देकर देवीको आत्मसमर्पण करे ॥ १७६ ॥

इतःपूर्वप्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः ।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेष्ववस्थासुप्रकीर्तयेत् ॥ १७७ ॥

अर्थ—आत्मसमर्पण करनेका मंत्र कहा जाता है पहले “इतः पूर्व प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति” यह पद उच्चारण करके “अवस्थासु” पद उच्चारण करे ॥ १७७ ॥

मनसान्तेवदेद्वाचाकर्मणातदनन्तरम् ।

हस्ताभ्यांपदतःपद्भ्यामुदरेणततःपरम् ॥ १७८ ॥

अर्थ—फिर “मनसा” तिसके अन्तमें “वाचा” तदनन्तर “कर्मणा” तदुपरान्त “हस्ताभ्यां” शब्दका उच्चारण करे। अनन्तर “पद्भ्यां” तदुपरान्त “उदरेण” पद पाठ करे ॥ १७८ ॥

शिस्त्रग्रायत्कृतञ्चोक्तायत्स्मृतंपदतोवदेत् ।

यदुक्ततत्सर्वमितिब्रह्मार्पणमुदीरयेत् ।

भवत्वन्तेमामदीयंसकलंतदनन्तरम् ॥ १७९ ॥

(१) “गुह्यातिगुह्यगोप्यीत्वं गृह्णाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि” ।

(१७८)

महानिर्वाणतन्त्रम् ।

[५४-

अर्थ-फिर "शिरसा यत्कृतं" पद उच्चारण करके "यत्स्मृतं" कहें । फिर "यदुक्तं तत्सर्वं" पद पढ़ें । अनन्तर "ब्रह्मार्पणं" शब्द उच्चारण करें । फिर "भवतु" तिसके अन्तमें "मां मदीयं सकलं" इस शब्दका उच्चारण करें ॥ १७९ ॥

आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि पदं वदेत् ।

प्रणवं तत्सदित्युक्त्वा कुर्व्यादात्मसमर्पणम् ॥ १८० ॥

अर्थ-तदुपरान्त "आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि" पद पढ़ें तदनन्तर "प्रणव" तिसके अन्तमें "तत्सत्" उच्चारण करके कालीदेवीको आत्मसमर्पण करें (१) ॥ १८० ॥

ततः कृत्वा अंलिभूत्वा प्रार्थयेद् इष्टदेवताम् ।

मायावीजसंमुच्चार्य श्रीं आद्ये कालिके । वदेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त मंत्री हाथ जोड़कर इष्टदेवतासे प्रार्थना करें । प्रथम "मायावीज" अर्थात् "ह्रीं" उच्चारण करके "श्रीं आद्ये कालिके" पद उच्चारण करें ॥ १८१ ॥

पूजितासि यथाशक्त्या क्षमस्व इति विमुञ्चय च ।

संहारमुद्रया पुष्पमाग्रायस्थापयेद्बुद्धिं ॥ १८२ ॥

अर्थ-फिर "यथाशक्त्या पूजितासि क्षमस्व" पद उच्चारण करके प्रार्थना करें इसप्रकार इष्टदेवताको विसर्जनकर-संहार-मुद्रासे फूलसे सँघे और अपने हृदयमें स्थापन करें ॥ १८२ ॥

(१) मंत्रोद्धार रूपां- "इतः पूर्वं श्रीं उद्दिष्टदेवताधिकारतो जायते स्वतन्त्रपुष्प-स्थापु मगसा याचा कर्मणा इत्याम्भोजे पदचामुदरेण शिरसा यत्कृतं यत् स्मृतं यत् उक्तं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मां मदीयं सकलमाद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि अतस्मत्" यह मंत्र पढ़कर देवीको आत्मसमर्पण करें । प्रार्थना पढ़ें "श्रीं आद्ये कालिके यथाशक्त्या पूजितासि क्षमस्व" ।

अर्थ-वा नारियलसे उत्पन्न हुआ अथवा कांचका पात्रही श्रेष्ठ है । पानपात्र शुद्धिपात्रके दाहिनी ओर आधारपर स्थापन करके ॥ १८७ ॥

महाप्रसादमानीयपात्रेषुपरिवेपयेत् ।

स्वयंवाभ्रातृपुत्रैर्वाज्येष्ठानुक्रमतःसुधीः ॥ १८८ ॥

अर्थ-महाप्रसादको लाय साधक अपने आप वा भानृपुत्र (भतीजा) के द्वारा ज्येष्ठानुक्रमसे पात्रमें परशवावे (१) ॥ १८८ ॥

पानपात्रेषुधादेयाशौद्ध्येशुद्ध्यादिकानिच ।

ततःसामयिकैःसार्द्धंपानभोजनमाचरेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ-पानपात्रमें मदिरा और शुद्धिपात्रमें मांसमत्स्यादि देवे फिर देवीजीकी पूजा प्रारम्भ विधिमें सब आयेहुए मनुष्योंके साथ पान भोजनकी क्रियाको करे ॥ १८९ ॥

आदावास्तारणार्थायगृहीयाच्छुद्धिमुत्तमाम् ।

ततोऽतिहृष्टमनसासमस्तःकुलसाधकः ॥ १९० ॥

अर्थ-पहले मद्य आस्तरणके लिये उत्तम शुद्धि (मांसादि) ग्रहण करे फिर समस्त कुलसाधक आनन्दित चित्तसे ॥ १९० ॥

स्वस्वपात्रं समादाय परमामृतपूरितम् ।

मूलाधारादिजिह्वान्तांचिद्रूपां कुलकुण्डलीम् ॥ १९१ ॥

अर्थ-उत्तम मद्यसे भरे अपने २ पात्रको ग्रहण कर मूलाधारसे जिह्वान्तव्यापिनी चैतन्यरूप कुलकुण्डलिनीका ॥ १९१ ॥

विभाव्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।

परस्परज्ञामादाय जुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥ १९२ ॥

(१) यहांपर जन्मग्रहण अथवा वयसके अनुसार श्रेष्ठपन याव्य नहीं है अभिवेकके अनुसारही ज्येष्ठपन अनुमानित होता है ।

अर्थ--ध्यान करके तिसके मुखपद्ममें मूलमंत्र उच्चारण करके परस्पर आज्ञाले कुण्डलीमुखमें परमामृत दान करे ॥ १९२ ॥

अलिपानं कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणम् ।

साधकानां गृहस्थानां पञ्चपात्रं प्रकीर्तितम् ॥ १९३ ॥

अथ--कुलस्त्रियोंके लिये मद्यसम्बन्धि गंधाङ्गीकरणस्वरूप मद्यपानही कहा है । अर्थात् कुलस्त्रियें केवल मद्यकी गंधको ग्रहण करे, उसे पिये नहीं । और गृहस्थ साधकोंके लिये पंचपात्र परिमित मद्यपान कहा है ॥ १९३ ॥

अतिपानात्कुलीनानां सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ १९४ ॥

अर्थ--अधिक पान करनेसे सिद्धिकी हानि होती है ॥ १९४ ॥

यावन्न चालयेद्वाष्टिं यावन्न चालयेन्मनः ।

तावत्पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ॥ १९५ ॥

अथ--(यदि पंचपात्रसे अधिक पान करे तो) जबतक दृष्टि न धूमे, जबतक मन चलायमान नहो, तबतक पिये । इससे अधिक पान करना पशुपानके तुल्य है ॥ १९५ ॥

पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणो च शक्तिसाधके ।

स पापिष्ठः कथं ब्रूयादाद्यां कालीं भजाम्यहम् ॥ १९६ ॥

अर्थ--जिसको पीते २ भ्रांति होजाय और जो शक्तिसाधककी निंदा करे वह पापी ऐसा कदापि नहीं कह सकता कि, मैं आदि कालिकाका भजन करता हूं ॥ १९६ ॥

यथा ब्रह्मर्षितेऽन्नादौ स्पृष्टदोषो न विद्यते ।

तथा तव प्रसादेऽपि जातिभेदं विवर्जयेत् ॥ १९७ ॥

अर्थ--ब्रह्मसमर्पित अन्नादिमें जिसप्रकार स्पर्शदोष नहीं है, वैसेही तुम्हारे प्रसादमें जातिभेदको छोड़ देना चाहिये ॥ १९७ ॥

देनेवाला ब्रह्मज्ञानलाभका कारणस्वरूप, महाफलका देने-
वाला आदि कालिकोदेवीका मंत्रोद्धार सुनकर ॥ १ ॥

प्रातःकृत्यंतथास्नानं सन्ध्यासंविद्विशोधनम् ।

न्यासपूजाविधानञ्च बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ २ ॥

अर्थ—और प्रातःकृत्य स्नान, सन्ध्या, संवित्शोधन, बाह्य
व अन्तः

महाप्रसादस्वाकारं पावताहृष्टमानसा ।

विनयावतता देवीप्रोवाच शंकरं प्रति ॥ ३ ॥

अर्थ—बलिदान, होम, चक्रानुष्ठान और महाप्रसादग्रह-
णादि क्रियाओंके मंत्र और नियमावली सुनकर देवी पार्व-
तीजी आनन्दित व विनयावतत होकर महादेवजीसे पूछती-
हुई ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

सदाशिव ! जगन्नाथ ! जगतांहितकारक ! ।

कृपया कथितं देव ! पराप्रकृतिसाधनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—हे सदाशिव ! तुम जगत्के नाथ,
जगत्के हितकारी हो, तुमने कृपायुक्त होकर मुझसे परात्परा
प्रकृतिका साधन कहा ॥ ४ ॥

सर्वप्राणिहितकरं भोगमोक्षैककारणम् ।

विशेषतः कलियुगे जीवानामाशुसिद्धिदम् ॥ ५ ॥

अर्थ—यह प्रकृतिका साधन प्राणियोंका हितकरनेवाला
और भोगमोक्षका कारण है विशेषकरके कलियुगके जीव इस
साधनसे ही शीघ्र सिद्धिको प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥

जान सकती है तुम कृशालु, कपिला, कृष्णा और कृष्णानन्दविषादिनी हो ॥ १४ ॥

कालरात्रिः कामरूपा कामपाशविमोचनी ।

कादम्बिनी कलाधारा कलिकल्मषनाशिनी ॥ १५ ॥

अर्थ-तुम कालरात्री, कामरूपा और कामपाशविमोचिनी हो तुम कादम्बिनी, कलाधारा और कलिकल्मषनाशिनी अर्थात् तुमही कलिपुगके पापका नाश करती हो ॥ १५ ॥

कुमारीपूजनप्रीता कुमारीपूजकालया ।

कुमारीभोजनानन्दा कुमारीरूपधारिणी ॥ १६ ॥

अर्थ-तुम कुमारीपूजनप्रीता, कुमारीपूजकालया, कुमारीभोजनानन्दा और कुमारीरूपधारिणी हो अर्थात् कुमारीपूजा करनेसे तुमको प्रसन्नता होती है जिस स्थानमें कुमारीकी पूजा होती है तहाँ तुम रहती हो, कुमारीभोजन करनेसे तुमको आनन्द होता है और तुमही कुमारीरूपसे अवतीर्णा हो ॥ १६ ॥

कदम्बवनसञ्चारा कदम्बवनवासिनी ।

कदम्बपुष्पसन्तोषा कदम्बपुष्पमालिनी ॥ १७ ॥

अर्थ-तुम कदम्बवनसञ्चारा, कदम्बवनवासिनी, कदम्बपुष्पसन्तोषा और कदम्बपुष्पमालिनी हो अर्थात् तुम कदम्बवनमें भ्रमण करती हो, कदम्बवनमें वास करती हो, कदम्बके फूलसे तुमको संतोष होता है और तुम कदम्बके फूलोंकी माला धारण करती हो ॥ १७ ॥

किशोरीकलकण्ठा च कलनादनिनादिनी ।

कदम्बरीपानरता तथा कदम्बरीप्रिया ॥ १८ ॥

अर्थ-तुम किशोरी, तुम कलकण्ठा अर्थात् तुम्हारे कंठ

स्वर अतीव गंभीर है. तुम कलनादनिनादिनी, कादम्बरी-
पानमें रत और कादम्बरीप्रिया हो अर्थात् गौड़ी मदिरा
तुमको अत्यन्त, प्योरी है ॥ १८ ॥

कपालपात्रनिरताकङ्कालमाल्यधारिणी ।

कमलासनसन्तुष्टाकमलासनवासिनी ॥ १९ ॥

अर्थ-तुम कपालपात्रनिरता और कपालमालाधारिणी
अर्थात् शरीरकी हड्डियोंकी माला धारण करतीहो, तुम
कमलासनसन्तुष्टा और कमलासनवासिनी हो ॥ १९ ॥

कमलालयमध्यस्थाकमलामोदमोदिनी ।

कलहंसगतिःकैव्यनाशिनीकामरूपिणी ॥ २० ॥

अर्थ-तुम कमलालयमध्यस्था और कमलामोदमोदिनी
अर्थात् कमलगन्धसे तुमको आनन्द होता है । तुम कलहंस
गति (कलहंसकी समानमंथरगामिनी) हो तुम कैव्यना-
शिनी (भक्तोंका दुःख दूर करतीहो) तुम कामरूपिणी
हो ॥ २० ॥

कामरूपकृतावासाकामपीठविलासिनी ।

कमनीयाकल्पलताकमनीयविभूषणा ॥ २१ ॥

अर्थ-तुम कामरूपकृतावासा, कामपीठविलासिनी, कम-
नीया कल्पलता और कमनीयविभूषणा हो ॥ २१ ॥

कमनीयगुणाराध्याकोमलाङ्गीकृशोदरी ।

कारणामृतसन्तोषाकारणानन्दसिद्धिदा ॥ २२ ॥

अर्थ-तुम कमनीयगुणाराध्या अर्थात् कमनीयगुणोंके
द्वाराही तुम्हारी आराधना की जाती है । तुम कोमलाङ्गी,
कृशोदरी और कारणामृतसन्तोषा अर्थात् मद्यसुधाद्वारा
तुमको प्रसन्नता होती है तुम कारणानन्दसिद्धिदा (कार-

णद्वारा जिसको आनन्द होता है) उसको सिद्धि देती हो ॥ २२ ॥

कारणानन्दजापेष्टाकारणार्चनहर्षिता ।

कारणार्णवसम्भवाकारणव्रतपालिनी ॥ २३ ॥

अर्थ-तुम कारणानन्दजापेष्टा और कारणार्चनहर्षिता हो, जो तुमको कारणसे पूजता है तिसपर तुम प्रसन्न होती हो तुम कारणरूपी समुद्रमें मग्न हो और कारणव्रतपालिनी हो ॥ २३ ॥

कस्तूरीसौरभामोदाकस्तूरीतिलकोज्ज्वला ।

कस्तूरीपूजनरताकस्तूरीपूजकप्रिया ॥ २४ ॥

अर्थ-तुम कस्तूरीसौरभामोदा (कस्तूरीकी गन्धसे तुम आनन्दित होती हो) तुम कस्तूरीतिलकोज्ज्वला हो (कस्तूरीका तिलक धारण करनेसे अपूर्व दीप्ति प्राप्त करती हो) तुम कस्तूरीपूजनरता और कस्तूरीपूजकप्रिया हो अर्थात् जो कस्तूरीसे तुम्हारी पूजा करता है वह तुमको अत्यन्त प्यारा है ॥ २४ ॥

कस्तूरीदाहजननीकस्तूरीमृगतोषिणी ।

कस्तूरीभोजनप्रीताकर्पूरचन्दनोक्षिता ॥ २५ ॥

अर्थ-तुम कस्तूरीदाहजननी, कस्तूरीमृगतोषिणी, कस्तूरी भोजनसे प्रसन्न, कर्पूरकी सुगन्धसे मुदित होती हो तुम कर्पूरकी माला धारण करती हो और कर्पूरचन्दनोक्षिता अर्थात् तुम्हारे अंगमें सदा कर्पूरसे मिलाहुआ चन्दन लगा रहता है ॥ २५ ॥

कर्पूरकारणाद्वादाकर्पूरामृतपायिनी ।

कर्पूरसागरस्नाताकर्पूरसागरालया ॥ २६ ॥

अर्थ-तुम कामबीजजपानंदा अर्थात् "क्री" बीजरूपसे तुमको प्रसन्नता होती है तुम कामबीजस्वरूपिणी हो। तुम कुमति और कुलीनार्तिकी नाशिनी हो अर्थात् तुम्हारे प्रसादसे ही कुमतिकी विनाश और कुलीनोंका दुःख दूर होता है तुमही कुलकामिनी हो ॥ ३१ ॥

१ । कीर्त्तीश्रीमन्त्रवर्णनकालकण्टकघातिनी ।

इत्याद्याकालिकादेव्याः शतनामप्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥

ककारकूटवटितंकालीरूपस्वरूपकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-क्री, ह्रीं श्री, यह तीन वर्ण तुम्हारे स्वरूप हैं । इससे तुम कालकण्टकघातिनी हो । हे देवि, ककारराशिसम्मिलित कालीरूपस्वरूप आदिकालिका देवीका शतनामस्तोत्र तुमसे कहा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पूजाकाले पठेद्यस्तु कालिकाकृतमानसः ।

मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशुतस्य कालीप्रसीदति ॥ ३४ ॥

अर्थ-जो पुरुष पूजाके समय कालिकादेवीमें चित्त लगाय इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसका मन्त्र शीघ्र सिद्ध हो जायगा और कालिका उसपर प्रसन्न हो जाती है ॥ ३४ ॥

बुद्धिविद्याश्च लभते गुरोरादेशमात्रतः ।

धनवान् कीर्त्तिमान् भूयाद्दानशीलो दयान्वितः ॥ ३५ ॥

अर्थ-गुरुके आदेशसे उसको विद्या बुद्धिकी प्राप्ति होती है वह धनी, कीर्त्तिमान्, दाता और दयावान् होता है ॥ ३५ ॥

पुत्रपौत्रमुखैश्चर्य्यैर्मादते साधको भुवि ॥ ३६ ॥

अर्थ-वह साधक हो पृथ्वीपर पुत्र, पौत्रादिक साथ सुख स्वच्छन्दतासे आनन्दभोग करता रहता है ॥ ३६ ॥

भौमावास्यानिशाभागेमपञ्चकसमन्वितः ।

पूजयित्वामहाकालीमाद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो पुरुष मंगलवारी अमावस तिथिमें महारात्रिके समय मद्यादि पंचतत्त्वयुक्त होकर त्रिभुवनेश्वरी आदिकालिकाकी पूजा करके ॥ ३७ ॥

पठित्वा शतनामानि साक्षात्कालीमयो भवेत् ।

नासाध्यं विद्यते तस्य त्रिपुल्लोके पुकिञ्चन ॥ ३८ ॥

अर्थ—इस शतनाम स्तोत्रका पाठ करता है, वह निस्सन्देह कालीमय होजाता है, त्रिभुवनमें उसकी कोई बात असाध्य नहीं रहती ॥ ३८ ॥

विद्यायां वाक्पतिः साक्षाद् धनपतिर्भवेत् ।

समुद्र इव गाम्भीर्ये बले च पवनोपमः ॥ ३९ ॥

अर्थ—वह पुरुष विद्याके प्रभावमें साक्षात् वाक्पति, धनमें धनपति, गभीरतामें समुद्र और बलमें पवनकी समान होजाता है ॥ ३९ ॥

तिग्मांशुरिव दुष्प्रेक्ष्यः शशिवच्छुभदर्शनः ।

रूपे मूर्तिधरः कामो योऽपि तां हृदयङ्गमः ॥ ४० ॥

अर्थ—उसका तेज सूर्यके समान तीक्ष्ण और चंद्रमाके समान सौम्य होजाता है वह मूर्तिमान् कामदेवकी समान रूपवान् हो कामिनियोंके हृदयको हरण करता है ॥ ४० ॥

सर्वत्र जयमाप्नोति स्तवस्यास्य प्रसादतः ।

यं यं कामं पुरस्कृत्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ-तुम कामबीजजपानेदा अर्थात् " ह्रीं " बीजरूपसे तुमको प्रसन्नता होती है तुम कामबीजस्वरूपिणी हो । तुम कुमति और कुलीनार्तिकी नाशिनी हो अर्थात् तुम्हारे प्रसादसे ही कुमतिकी विनाश और कुलीनोंका दुःख दूर होता है तुमही कुलकामिनी हो ॥ ३१ ॥

॥ ३१ ॥ क्रीं ह्रीं श्रीं मन्त्रवर्णेन कालकण्टकघातिनी ।

इत्याद्या कालिका देव्याः शतनाम प्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥

ककारकूटघटितं कालीरूपस्वरूपकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-क्रीं, ह्रीं, श्रीं, यह तीन वर्ण तुम्हारे स्वरूप हैं । इससे तुम कालकण्टकघातिनी हो । हे देवि ! ककारराशिसम्मिलित कालीरूपस्वरूप आदिकालिका देवीका शतनामस्तोत्र तुमसे कहा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

॥ पूजाकाले पठेद्यस्तु कालिकाकृतमानसः ।

मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशुतस्य कालीप्रसीदति ॥ ३४ ॥

अर्थ-जो पुरुष पूजाके समय कालिकादेवीमें चित्त लगाय इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसका मन्त्र शीघ्र सिद्ध हो जायगा और कालिका उसपर प्रसन्न हो जाती है ॥ ३४ ॥

॥ बुद्धिविद्याञ्चलभते गुरोरादेशमाव्रतः ।

धनवान्कीर्तिमान्भूयादानशीलो दयान्विताः ॥ ३५ ॥

अर्थ-गुरुके आदेशसे उसको विद्या बुद्धिकी प्राप्ति होती है वह धनी, कीर्तिमान्, दाता और दयावान् होता है ॥ ३५ ॥

पुत्रपौत्रसुखैश्चर्य्यमोदते साधको भुवि ॥ ३६ ॥

अर्थ-वह साधक ही पृथ्वीपर पुत्र पौत्रादिक साथ सुख स्वच्छन्दतासे आनन्दभोग करता रहता है ॥ ३६ ॥

भौमावास्यानिशाभागेमपञ्चकसमन्वितः ।

पूजयित्वा महाकालीमाद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-जो पुरुष मंगलवारी अमावस तिथिमें महारात्रिके समय मेधादि पंचतत्त्वयुक्त होकर त्रिभुवनेश्वरी आदिकालिकाकी पूजा करके ॥ ३७ ॥

पठित्वा शतनामानि साक्षात्कालीमयो भवेत् ।

नासाध्यं विद्यते तस्य त्रिपुलोके पुकिञ्चन ॥ ३८ ॥

अर्थ-इस शतनाम स्तोत्रका पाठ करता है, वह निस्सन्देह कालीमय हो जाता है, त्रिभुवनमें उसकी कोई बात असाध्य नहीं रहती ॥ ३८ ॥

विद्यायां वाक्पतिः साक्षाद् धने धनपतिर्भवेत् ।

समुद्र इव गाम्भीर्ये बले च पवनोपमः ॥ ३९ ॥

अर्थ-वह पुरुष विद्याके प्रभावमें साक्षात् वाक्पति, धनमें धनपति, गंभीरतामें समुद्र और बलमें पवनकी समान हो जाता है ॥ ३९ ॥

तिग्मांशुरिव दुष्प्रेक्ष्यः शशिवच्छुभदर्शनः ।

रूपे मूर्तिधरः कामो योऽपि तां हृदये द्रुमः ॥ ४० ॥

अर्थ-उसका तेज सूर्यके समान तीक्ष्ण और चंद्रमाके समान सौम्य हो जाता है वह मूर्तिमान् कामदेवकी समान रूपवान् हो कामिनियोंके हृदयको हरण करता है ॥ ४० ॥

सर्वत्र जयमाप्नोति स्तवस्यास्य प्रसादतः ।

यं यं कामं पुरस्कृत्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ-इस स्तुतिके प्रसादसे वह सब जगह विजयको प्राप्त करसकता है । जिस २ कामना करके इस स्तुतिका पाठ किया जाता है ॥ ४१ ॥

तंतंकाममवाप्नोतिश्रीमदाद्याप्रसादतः ।

रणेराजकुलेद्यूतेविवादेप्राणसङ्कटे ॥ ४२ ॥

अर्थ-श्रीआदि कालिकाके प्रसादसे उसको वह सब काम-नायें फलवती होती हैं । संग्राममें राजाके समीपमें, जुआ खेलनेमें, झगड़ेमें, प्राणसंकटमें ॥ ४२ ॥

दस्युग्रस्तेग्रामदाहेसिंहव्याघ्रावृतेतथा ॥ ४३ ॥

अर्थ-चोरके आक्रमणमें ग्रामके दाहमें, सिंहव्याघ्रादि हिंसकजन्तुओंसे पूर्ण ॥ ४३ ॥

अरण्येग्रान्तरेदुर्गेग्रहराजभयेऽपिवा ।

ज्वरदाहेचिरव्याधौमहारोगादिसङ्कुले ॥ ४४ ॥

अर्थ-वनमें वृक्ष, लतादिसे रहित मयदानमें, दुर्गमें ग्रह और राजभयमें, ज्वरदाहमें, सदाके रोगमें, महारोगादिके घेर लेनेमें ॥ ४४ ॥

बालग्रहादिरोगेपतथादुःस्वप्नदर्शने ।

दुस्तरेसालिलवापिपौतेवातविपद्गत ॥ ४५ ॥

अर्थ-बालग्रहादिरोगमें बुरे स्वप्न देखनेमें, दुष्पार समुद्रमें अथवा प्रबल ओंधीसे टकराईहुई नावपर ॥ ४५ ॥

विचिन्त्यपरमांमायामाद्यांकालीं परात्पराम् ।

यःपठेच्छतनामानिदृढभक्तिसमान्वितः ॥ ४६ ॥

अर्थ-इत्यादि विषयोंमें जो पुरुष परात्परा परमामाया आदि

कालिकाका ध्यान करके आन्तरिक भक्तिके साथ इस शत-
नामस्तोत्रका पाठ करता रहै ॥ ४६ ॥

सर्वापद्रव्योविमुच्येतदेवि । सत्यंनसंशयः ।

नपापेभ्योभयन्तस्यनरोगेभ्योभयंकचित् ॥ ४७ ॥

अर्थ-हे देवि! वह सत्य २ ही सब विपत्तियोंसे छूटजाती
है इसमें कोई सन्देह नहीं । उसको न पापका भय रहता
और न रोगका भय रहता ॥ ४७ ॥

सर्वत्रविजयस्तस्यनकुत्रापिपराभवः ।

तस्यदर्शनमात्रेणपलायन्तेविपद्गणाः ॥ ४८ ॥

अर्थ-पराभवको शंकाभी दूर होजाती है वह सर्वत्र वि-
जय प्राप्त करता है । उसका दर्शन करतेही विपत्तियें दूर
होजाती हैं ॥ ४८ ॥

सवक्तासर्वशास्त्राणांसभोक्तासर्वसम्पदाम् ।

सकर्त्ताजातिधर्माणांज्ञातीनांप्रभुरेवसः ॥ ४९ ॥

अर्थ-इस (स्तुतिके प्रसादसे) वह पुरुष सर्वशास्त्रका वक्ता
होताहै सर्व सम्पत्तियोंको भोगता है वह जातिधर्मका कर्त्ता
और जातीवालोंके ऊपर प्रभुता प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥

वाणीतस्यवसेद्रक्तेकमलानिश्चलगृहे ।

तन्नाम्नामानवाः सर्वेप्रणमन्तिसम्भ्रमाः ॥ ५० ॥

अर्थ-सरस्वतीजी सदा उसके मुखमें रहती हैं लक्ष्मीजी
अचल होकर उसके गृहमें वास करती हैं । मनुष्यगण उसका
नाम सुनतेही सम्भ्रमसे प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

दृष्ट्यातस्यतृणायन्तेह्यणिमाद्यसिद्धयः ।

आद्याकालीस्वरूपाख्यंशतनामप्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-अणिमादि आठ सिद्धियें उसका दर्शन करतेही

तिनकेकी समान जान पड़ती हैं । हे देवि ! यह तुमसे आदिकालिकाका स्वरूपरूपी शतनामस्तोत्र कीर्तन किया ॥५१॥

अष्टोत्तरह्यतावृत्त्यापुरश्चर्यास्यगीयते ।

पुरस्क्रियान्वितस्तोत्रं सर्वभीष्टफलप्रदम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-इस स्तोत्रका पुरश्चरण करनेमें (१०८) एक शत आठ बार इसका पाठ करना चाहिये । ऐसी विधि कही है । यह स्तोत्र पुरस्क्रियान्वित होनेसे अंभीष्ट फल देता है ॥५२॥

शतनामस्तुतिमिमामाद्याकालीस्वरूपिणीम् ।

पठेद्वापाठयेद्वापिशृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥ ५३ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तोत्रद्वसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

अर्थ-जो पुरुष आद्या कालीस्वरूपिणी शतनामस्तुति अपने आप पढ़ता है वा और किसीको पढ़ाता है, स्वर्य सुनता है अथवा और किसीको सुनाता है वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मतुल्य होजाता है (इसमें संदेह नहीं) ॥५३॥५४॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

कथितं परमं ब्रह्मप्रकृतेः स्तवनं महत् ।

आद्यायाः श्रीकालिकायाः कवचं शृणु साम्प्रतम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा, हे देवि ! तुमसे परम ब्रह्मस्वरूप प्रकृतिका स्तोत्र प्रकाशित किया । अब आदिकालिकाका कवच कहता हूँ, श्रवण करो ॥ ५५ ॥

त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।

छन्दोऽनुष्टुप् देवता च आद्या काली प्रकीर्तिता ॥ ५६ ॥

अर्थ-इस त्रिलोकविजय करनेवाले कवचके ऋषि शिव छंद अनुष्टुप् और देवता आदि कालिका हैं ॥ ५६ ॥

मायाबीजं बीजमिति रमाशक्तिरुदाहृता ।

क्रीं कीलकं काम्यसिद्धौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ५७ ॥

अर्थ—“ह्रीं” इसका बीज है “श्रीं” इसकी शक्ति है “क्रीं” इसका कीलक और कामसिद्धिमें इसका विनियोग कीर्तन करना पड़ता है (१) ॥ ५७ ॥

द्वीमाद्यामेशिरः पातु श्रीं काली वदनं मम ।

हृदयं क्रीं पराशक्तिः पायात् कण्ठं परात्परा ॥ ५८ ॥

अर्थ—(अब कवच कहा जाता है) “ह्रीं” स्वरूपा आद्या मेरे शिरकी और “श्रीं” स्वरूपिणी काली मेरे वदनकी रक्षा करे । “क्रीं” स्वरूपा पराशक्ति मेरे हृदय और परात्परा मेरे कंठकी रक्षा करे ॥ ५८ ॥

नेत्रे पातु जगद्धात्री कर्णौ रक्षतु शंकरा ।

घ्राणं पातु महामाया रसनां सर्वमङ्गला ॥ ५९ ॥

अर्थ—जगद्धात्री मेरे दोनों नेत्रोंकी और शंकरा मेरे दोनों कानोंकी रक्षा करें । महामाया मेरी नासिकाकी रक्षा और सर्वमङ्गला मेरी रसनाकी रक्षा करें ॥ ५९ ॥

दन्तात्रक्षतु कौमारी कपोलौ कमलालया ।

ओष्ठाधरौ क्षमारक्षेच्चिबुकं चारुहासिनी ॥ ६० ॥

अर्थ—कौमारी दन्तपंक्ति और कमलालया मेरे दोनों कपोलोंकी रक्षा करें, क्षमा मेरे ओष्ठ व अधर और चारुहासिनी ठोड़ीकी रक्षा करें ॥ ६० ॥

(१) ऋषिन्पासः यथाः—अस्य कवचस्य सदाशिवः प्रापिः अनुष्टुप्छन्दः आद्या काली देवता ह्रीं बीज श्रीं शक्तिः क्रीं कीलकं काम्यसिद्धयर्थे कवचाष्टे विनियोगः शिरसि ओ सदाशिवाय ऋषये नमः मुखे ओ अनुष्टुप्छन्दसे नमः हृदि ओ अद्याद्यात्रे-काय देवतायै नमः गुह्ये ओ ह्रीं बीजाय नमः पादयोः ओ श्रीशक्तये नमः सर्वांग ओ क्रीं कीलकायै नमः काम्यसिद्धयर्थे कवचाष्टे विनियोगः ॥

श्रीवांपायात्कुलेशानीककुत्पातुकृपामयी ।

दौवाहूवाहुदारक्षेत्करौकैवल्यदायिनी ॥ ६१ ॥

अर्थ-कुलेशानी मेरी गर्दनकी और कृपामयी ककुदकी रक्षा करें । बाहुदा दोनों बाहोंकी और कैवल्यदायिनी मेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करें ॥ ६१ ॥

स्कन्धौकपर्दिनीपातुपृष्ठं त्रैलोक्यतारिणी ।

पार्श्वेपायादपर्णामेकटिमेकमठासना ॥ ६२ ॥

अर्थ-कपर्दिनी दोनों कंधोंकी और त्रैलोक्यतारिणी मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें । अपर्णा मेरे दोनों पार्श्वोंकी और कमठासना मेरी कटिकी रक्षा करें ॥ ६२ ॥

नाभौपातुविशालाक्षीप्रजास्थानं प्रभावती ।

ऊरुरक्षतुकल्याणीपादौमेपातुपार्वती ॥ ६३ ॥

अर्थ-विशालाक्षी मेरी नाभिकी और प्रभावती मेरे प्रजास्थानकी रक्षा करें । कल्याणी दोनों ऊरुकी और पार्वती मेरे दोनों पादोंकी रक्षा करें ॥ ६३ ॥

जयदुर्गावतुप्राणान्सर्वाङ्गं सर्वसिद्धिदा ।

रक्षाहीनन्तुयत्स्थानं वर्जितं कवचेन च ॥ ६४ ॥

अर्थ-जयदुर्गा मेरे पंचप्राणकी और सर्वसिद्धिदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करें । जो जो स्थान कवचमें नहीं कहे हैं ॥ ६४ ॥

तत्सर्वमेसदारक्षेदाद्याकालीसनातनी ।

इतितेकथितं दिव्यं त्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥ ६५ ॥

अर्थ-उन मेरे सब अंगोंकी सनातना आद्याकाली रक्षा करें । हे देवि ! तुमसे त्रैलोक्यविजयनामक आद्याकालिका देवीका दिव्य कवच कहा ॥ ६५ ॥

कवचंकालिकादेव्याआद्यायाःपरमाद्भुतम् ।

पूजाकालेपठेद्यस्तुआद्याधिकृतमानसः ॥ ६६ ॥

अर्थ-जो पुरुष पूजाके समय देवीमें चित्त लगाय आदि-कालिकाके इस परम अद्भुत कवचका पाठ करता है ॥ ६६ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोतितस्याद्यासुप्रसीदति ।

मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशुकिंकराःक्षुद्रसिद्धयः ॥ ६७ ॥

अर्थ-उसकी सब कामनायें पूरी होती हैं और उसपर आदि कालिकाजी प्रसन्न हो जाती हैं । वह शीघ्र मन्त्रसिद्धि प्राप्त करलेता है छोटी सिद्धियें उसकी किंकर होजाती हैं ॥ ६७ ॥

अपुत्रोलभतेपुत्रं धनार्थीप्राप्नुयाद्धनम् ।

विद्यार्थीलभतेविद्यांकामीकामानवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥

अर्थ-इसकवचके प्रसादसे अपुत्रक पुत्र धनार्थी धन और विद्यार्थी विद्या प्राप्त करनेमें समर्थ होताहै कामीकी कामना पूर्ण होती है ॥ ६८ ॥

सहस्रावृत्तपठेनवर्मणोऽस्यपुरस्क्रिया ।

पुरश्चरणसंपन्नं यथोक्तफलदं भवेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ-पुरश्चरण करनेमें सहस्रवार इस कवचका पाठ करना पडता है । जो इस कवचका पुरश्चरण होजाता है तो यह यथोक्त फल देता है ॥ ६९ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैरुक्तचन्दनैः ।

भूर्जेविलिख्यगुटिकांस्वर्णस्थांधारयेद्यदि ॥ ७० ॥

शिखायां दक्षिणेवाहौ कण्ठे वा साधकः कटौ ।

तस्याद्याकालिकावश्यावाञ्छितार्थप्रयच्छति ॥ ७१ ॥

अर्थ-जो साधक अगर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम अथवा लाल चंदनसे भोजपत्रपर यह कवच लिखकर सुवर्णकी गुट्टिका में रख चोटीमें, दाहिनी भुजा में, कंठ में या कमर में धारण करता है, आदिकालिका उसके निरन्तर वश होकर वांछित फल देती हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

नकुत्रापिभयंतस्यसर्वत्रविजयीकविः ।

अरोगीचिरजीवीस्याद्रलवान्धारणक्षमः ॥ ७२ ॥

अर्थ-उसको भयकी शंका कहीं नहीं रहती, वह सब जगह विजय पाता और अरोगी बलवान्, धारणक्षम और चिरंजीवी होकर समय बिताता है ॥ ७२ ॥

सर्वविद्यासुनिपुणः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

वशेतस्यमहीपालाभोगमोक्षौकरस्थितौ ॥ ७३ ॥

अर्थ-वह सर्वविद्याओंमें प्रवीणता और सर्व शास्त्रोंके अर्थको जान जाता है, राजालोग उसके वशमें रहते हैं, भोग मोक्ष उसकी हथेलीपर विद्यमान रहती है ॥ ७३ ॥

कलिकल्मषयुक्तानानिःश्रेयसकरंपरम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-निःसन्देह यह कवच कलिके पापसे कलुषित मनुष्योंका मुक्ति देनेवाला है ॥ ७४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथितंकृपयानाथ ! स्तोत्रंकवचमेवच ।

अधुनाश्रोतुमिच्छामिपुरश्चर्याविधिविभो ॥ ७५ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा है नाथ ! आपने कृपा करके मुझसे यह स्तोत्र व कवच कहा, हे प्रभो ! अब पुरश्चरणकी विधि श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ ७५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

योविधिर्ब्रह्ममन्त्राणां पुरश्चरणकर्मणि ।

स एवाद्याकालिकायामन्त्राणां विधिरिष्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहा, ब्रह्ममंत्रके पुरश्चरणकर्ममें जो विधि है, वही आदिकालिकाके मंत्रकी विधि कही जाती है (१) ॥ ७६ ॥

अरुणो साधके देवि ! जपपूजाहुतादिषु ।

पूजां संक्षेपतः कुर्यात्पुरश्चरणमेव च ॥ ७७ ॥

अर्थ—हे देवी ! जो साधकमें जप, पूजा, व होमादि अनुष्ठान करनेकी सामर्थ्य न हो तो संक्षेपसे पूजा और पुरश्चरण करे ॥ ७७ ॥

यतो हि निरनुष्ठानात्स्वलपानुष्ठानमुत्तमम् ।

संक्षेपपूजनं भद्रे ! तत्रादौ शृणु कथ्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ—क्योंकि बिलकुल अनुष्ठान न करनेकी अपेक्षा थोड़ाही अनुष्ठान करना उत्तम है। हे भद्रे ! पहले संक्षेपपूजाकी विधि कहता हूँ श्रवण करो ॥ ७८ ॥

आचम्य मूलमन्त्रेण ऋपिन्यासं समाचरेत् ।

करशुद्धिं ततः कुर्यान्न्यासञ्च करदेहयोः ॥ ७९ ॥

अर्थ—पहले तो मूलमंत्रके द्वारा आचमन करके ऋपि-न्यास करे । फिर करशुद्धि करके करन्यास और अंगन्यास करे ॥ ७९ ॥

(१) आदिकालिकामंत्रके पुरश्चरणमें ३२००० जप, जपका दशगो अंश होम, होमका दशगो अंश तर्पण, तर्पणका दशगो अंश अभिषेक और अभिषेकका दशगो अंश ब्राह्मणभोजन कराये। होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मणभोजन जो इन चारोंमें अक्षमर्ष हो तो नियत सख्यासे दूना जाय करे।

अर्थ-जो साधक अगर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम अथवा लाल चंदनसे भोजपत्रपर यह कवच लिखकर सुवर्णकी गुट्टिका में रख चोटीमें, दाहिनी भुजा में, कंठ में या कमर में धारण करता है, आदिकालिका उसके निरन्तर वश होकर वांछित फल देती हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

नकुत्रापिभयंतस्यसर्वत्रविजयीकविः ।

अरोगीचिरजीवीस्याद्रलवान्धारणक्षमः ॥ ७२ ॥

अर्थ-उसको भयकी शंका कहीं नहीं रहती, वह सब जगह विजय पाता और अरोगी बलवान्, धारणक्षम और चिरंजीवी होकर समय बिताता है ॥ ७२ ॥

सर्वविद्यामुनिपुणः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

वशेतस्यमहीपालाभोगमोक्षौकरस्थितौ ॥ ७३ ॥

अर्थ-वह सर्वविद्याओं में प्रवीणता और सर्व शास्त्रों के अर्थको जान जाता है, राजालोग उसके वश में रहते हैं, भोग मोक्ष उसकी हथेली पर विद्यमान रहती है ॥ ७३ ॥

कलिकल्मषयुक्तानानिःश्रेयसकरं परम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-निःसन्देह यह कवच कलिके पापसे कलुषित मनुष्योंका मुक्ति देनेवाला है ॥ ७४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथितंकृपयानाथ ! स्तोत्रंकवचमेवच ।

अधुनाश्रोतुमिच्छामिपुरश्चर्याविधिंविभो ॥ ७५ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा है नाथ ! आपने कृपा करके मुझसे यह स्तोत्र व कवच कहा, हे प्रभो ! अब पुरश्चर्य की विधि श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ ७५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

योविधिर्व्रह्ममन्त्राणांपुरश्चरणकर्मणि ।

स एवाद्याकालिकायामन्त्राणां विधिरिष्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा, ब्रह्ममंत्रके पुरश्चरणकर्ममें जो विधि है, वही आदिकालिकाके मंत्रकी विधि कही जाती है (१) ॥ ७६ ॥

अरुते साधके देवि ! जपपूजाहुतादिषु ।

पूजां संक्षेपतः कुर्यात्पुरश्चरणमेव च ॥ ७७ ॥

अर्थ-हे देवी ! जो साधकमें जप, पूजा, व होमादि अनुष्ठान करनेकी सामर्थ्य न हो तो संक्षेपसे पूजा और पुरश्चरण करे ॥ ७७ ॥

यतो हि निरनुष्ठानात्स्वल्पानुष्ठानमुत्तमम् ।

संक्षेपपूजनं भद्रे ! तत्रादौ शृणु कथ्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ-क्योंकि बिल्कुल अनुष्ठान न करनेकी अपेक्षा थोड़ाही अनुष्ठान करना उत्तम है। हे भद्रे ! पहले संक्षेपपूजाकी विधि कहता हूँ श्रवण करो ॥ ७८ ॥

आचम्य मूलमन्त्रेण ऋपिन्यासं समाचरेत् ।

करशुद्धिं ततः कुर्यान्न्यासञ्च करदेहयोः ॥ ७९ ॥

अर्थ-पहले तो मूलमंत्रके द्वारा आचमन करके ऋपिन्यास करे । फिर करशुद्धि करके करन्यास और अंगन्यास करे ॥ ७९ ॥

(१) आदिकालिकामंत्रके पुरश्चरणमें ३२००० जप, जपना दशार्थ अंश होम, होमका दशार्थ अंश तर्पण, तर्पणका दशार्थ अंश अभिषेक और अभिषेकका दशार्थ अंश प्राद्वणभोजन करावे । होम, तर्पण, अभिषेक और प्राद्वणभोजन जो इन चारोंमें असमर्थ हो तो नियत संख्यासे दूना जन करे ।

सर्वाङ्गव्यापकं कृत्वा प्राणायामं चरेत्सुधीः । -

ध्यानं पूजां जपञ्चेति संक्षेपः पूजने विधिः ॥ ८० ॥

अर्थ-फिर बुद्धिमान् साधक सर्वाङ्गव्यापक न्यास करके प्राणायामका आचरण करे । फिर ध्यान तिसके अन्तमें पूजा और तिसके पीछे जप करे । यह संक्षेपसे पूजाकी विधि कही ॥ ८० ॥

पुरस्क्रियायां मन्त्राणां यत्त यो विहितो जपः ।

तस्माच्चतुर्गुणजपात्पुरश्चर्याविधीयते ॥ ८१ ॥

अर्थ-मंत्रके पुरश्चरण करनेमें जिस मंत्रका जितना जप कहा है (होमादि न करके) उसका चौगुना जप करकेही पुरश्चरणकी विधि दिखाई जाती है ॥ ८१ ॥

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।

कृष्णांचतुर्दशीं प्राप्य कौजे वा शनिवासरे ।

पञ्चतत्त्वं समानीय पूजयित्वा जगन्मयीम् ॥ ८२ ॥

महानिशायामयुतं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।

भोजयित्वा ब्रह्मनिष्ठान् पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ-अथवा और प्रकारसे पुरश्चरणके अनुष्ठानकी विधि कहता हूँ । कृष्णपक्षमें मंगलवारी या शनिवारी अमावसको रातके समय पञ्चतत्त्व संग्रह करके जगन्मयीकी पूजा करे । और स्थिरचित्तसे महानिशाके भागमें दश हजार बार मंत्रका जप करे फिर ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये पुरश्चरण कर्म समाप्त करे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुजवासरमारभ्य यावन्मङ्गलवासरम् ।

प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥

अर्थ—(हे देवि ! तीसरे प्रकारका पुरश्चरण कर्म कहता हूं सुनो) एक मंगल वारसे आरम्भ करके दूसरे मंगलवारतक प्रतिदिन एक सहस्र मन्त्रका जप करे ॥ ८४ ॥

वसुसंख्याजपेनैव भवेन्मन्त्रपुरस्क्रिया ॥ ८५ ॥

अर्थ—इस प्रकारसे आठ दिनमें आठ हजार मंत्रके जपसे मन्त्रकी पुरस्क्रिया होती है ॥ ८५ ॥

श्रीआद्याकालिकामन्त्राः सिद्धमन्त्राः सुसिद्धिदाः ।

सदा सर्वयुगे देवि ! कलिकाले विशेषतः ॥ ८६ ॥

अर्थ—हे देवि ! आदिकालिकाका मंत्र सर्वप्रकारसे सिद्ध-मन्त्र है । सब युगमें सिद्धिका देनेवाला है । विशेष करके कलियुगमें (शीघ्र) फलदाई होता है ॥ ८६ ॥

कालीरूपाणिवहुधाकलौजाग्रतिपार्वति ! ।

प्रवलेकलिकालेतुरूपमेतजगद्धितम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—हे पार्वति ! कलिकालमें कालीरूप अनेक प्रकारके देखे जाँयगे सब रूपोंमें देवीजी जागरित रहेंगी विशेष करके जब कलियुगकी अच्चाई होगी, तब यह कालीरूपही जगतको कल्याणका देनेवाला होगा ॥ ८७ ॥

नात्रसिद्धाद्यपेक्षास्तिनारिमित्रादिदूषणम् ।

नियमानियमेनापिजपन्नाद्यांप्रसादयेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ—इस मंत्रमें सिद्ध असिद्धकी अपेक्षा नहीं है, यह मंत्र अरि मित्रादि दोषसे दूषित नहीं होता । इस मंत्रमें (तिथि, नक्षत्र राशि, गणना, कुल अकुलादि) नियमानियमकी आवश्यकता नहीं है । साधक इस मंत्रका जप करके आदिकालिकाको प्रसन्न करे ॥ ८८ ॥

सर्वाङ्गव्यापकं कृत्वा प्राणायामं चरेत्सुधीः ।

ध्यानं पूजां जपञ्चेति संक्षेपः पूजने विधिः ॥ ८० ॥

अर्थ-फिर बुद्धिमान् साधक सर्वाङ्गव्यापक न्यास करके प्राणायामका आचरण करे । फिर ध्यान तिसके अन्तमें पूजा और तिसके पीछे जप करे । यह संक्षेप पूजाकी विधि कही ॥ ८० ॥

पुरस्क्रियायां मन्त्राणां यत्त यो विहितो जपः ।

तस्माच्चतुर्गुणजपात्पुरश्चर्याविधीयते ॥ ८१ ॥

अर्थ-मंत्रके पुरश्चरण करनेमें जिस मंत्रका जितना जप कहा है (होमादि न करके) उसका चतुर्गुण जप करकेही पुरश्चरणकी विधि दिखाई जाती है ॥ ८१ ॥

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।

कृष्णांचतुर्दशीं प्राप्य कौजे वा शनिवासरे ।

पञ्चतत्त्वं समानीय पूजयित्वा जगन्मयीम् ॥ ८२ ॥

महानिशायां युतं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।

भोजयित्वा ब्रह्मनिष्ठान् पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ-अथवा और प्रकारसे पुरश्चरणके अनुष्ठानकी विधि कहता हूँ । कृष्णपक्षमें मंगलवारी या शनिवारी अमावसको रातके समय पंचतत्त्व संग्रह करके जगन्मयीकी पूजा करे । और स्थिरचित्तसे महानिशाके भागमें दश हजार बार मंत्रका जप करे फिर ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये पुरश्चरण कर्म समाप्त करे ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुजवासरमारभ्य यावन्मङ्गलवासरम् ।

प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥

चित्ते शुद्धे महेशानि ! ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने कृत्याकृत्यं न विद्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ-तिसके उपरान्त प्रातःकृत्यादि नियमानुष्ठान करके पुरश्चरण करै । हे महेशानि ! चित्तके शुद्ध होनेसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, इस कारण जब ब्रह्मज्ञान होता है तब फिर कृत्याकृत्यकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ ९४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

कुलं किं परमेशान ! कुलाचारश्च किं विभो ! !

लक्षणं पञ्चतत्त्वस्य त्र्योतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ९५ ॥

अर्थ-पार्वतीजीने कहा है परमेश्वर ! कुल क्या है कुलाचार किसको कहते हैं ? और पञ्चतत्त्वके लक्षण कैसे हैं ? इन सब बातोंको जाननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ९५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

सम्यक्पृष्टं कुलेशानि ! साधकानां हितैषिणि ।

कथयामि तव प्रीत्यै यथावदवधारय ॥ ९६ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा है कुलेश्वर ! तुम साधक लोगोंका हित करनेवाली हो; तुमने श्रेष्ठ विषय पृछा है । तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं सब बातें प्रकाशित करता हूँ तुम सुनो ॥ ९६ ॥

जीवः प्रकृतितत्त्वश्च दिक्कालाकाशमेव च ।

क्षित्यप्तेजोवायवश्च कुलमित्यभिधीयते ॥ ९७ ॥

अर्थ-जीव, प्रकृतितत्त्व, दिक्, काल, आकाश, पृथ्वी, अप (जल) तेज और वायु यह नव कुल कहे जाते हैं ॥ ९७ ॥

ब्रह्मबुद्ध्यानिर्विकल्पमेतेष्वारण्यं यत ।

कुलाचारः स एवाद्ये धर्मकामार्थमोक्षदः ॥ ९८ ॥

ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः ।

ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्या जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ ८९ ॥

— अर्थ—इस मन्त्रका जप करनेपर आदिकालिकाके प्रसादसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होजाता है । इसकारण ब्रह्मज्ञानी मनुष्यके जीवन्मुक्त होनेमें कोई संदेह नहीं ॥ ८९ ॥

न च प्रयासबाहुल्यं कायक्लेशोऽपि न प्रिये ! ।

आद्याकालीसाधकानां साधनं सुखसाधनम् ॥ ९० ॥

अर्थ—साधकलोग इस मन्त्रको सुखसे साधन कर सकते हैं । हे प्रिये ! न इस मन्त्रके साधनमें परिश्रम है न कायाक्लेश है ९०

चित्तसंशुद्धिरेवात्र मन्त्रिणां फलदायिनी ॥ ९१ ॥

अर्थ—इस आदिकालिकाके मंत्रमें चित्तकी शुद्धि होतेही साधक कभीष्ट फलको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ९१ ॥

यावन्नचित्तकलिलं हातुमुत्सहते व्रती ।

तावत्कर्मप्रकुर्वीत कुलभक्तिसमन्वितः ॥ ९२ ॥

अर्थ—जबतक चित्तकी कलुषता निवारण करनेमें सामर्थ्य न रखता हो तितने दिनतक साधक कुलभक्तिसे युक्त हो कर्मका अनुष्ठान करे ॥ ९२ ॥

यथाविहितं कर्म चित्तशुद्धेर्द्विकारणम् ।

आदौ मन्त्रं गुरोर्वक्त्रा दृष्ट्वा द्रष्टव्यमन्त्रवत् ॥ ९३ ॥

अर्थ—क्योंकि यथाविधिसे कहाहुआ कर्मानुष्ठानही चित्तकी शुद्धिका कारण है । पहले ब्रह्ममन्त्रके समान यह मंत्रभी गुरुके मुखसे श्रवण करे ॥ ९३ ॥

प्रातः कृत्यादिनियमान्कृत्वा कुर्व्यात् पुरस्क्रियाम् ।

चित्तेशुद्धेमहेशानि ! ब्रह्मज्ञानप्रजायते ।

ब्रह्मज्ञानेसमुत्पन्नेकृत्याकृत्यंनविद्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ-तिसके उपरान्त प्रातःकृत्यादि नियमानुष्ठान करके पुरश्चरण करै । हे महेशानि ! चित्तके शुद्ध होनेसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, इस कारण जब ब्रह्मज्ञान होता है तब फिर कृत्याकृत्यकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ ९४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

कुलंकिंपरमेशान । कुलाचारश्चकिंविभो ।।

लक्षणंपञ्चतत्त्वस्यश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ९५ ॥

अर्थ-पार्वतीजीने कहा हे परमेश्वर ! कुल क्या है कुलाचार किसको कहते हैं ? और पञ्चतत्त्वके लक्षण कैसे हैं ? इन सब बातोंको जाननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ९५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

सम्यक्पृष्टंकुलेशानि ! साधकानांहितैपिणि ।

कथयामितवप्रीत्यैयथावदवधारय ॥ ९६ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा हे कुलेश्वर ! तुम साधक लोगोंका हित करनेवाली हो; तुमने श्रेष्ठ विषय पूछा है । तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं सब बातें प्रकाशित करता हूँ तुम सुनो ॥ ९६ ॥

जीवःप्रकृतितत्त्वश्चदिक्कालाकाशमेव च ।

क्षित्येतजोवायुश्चकुलमित्प्रभिधीयते ॥ ९७ ॥

अर्थ-जीव, प्रकृतितत्त्व, दिक्, काल, आकाश, पृथ्वी, अप (जल) तेज और वायु यह नव कुल कहे जाते हैं ॥ ९७ ॥

ब्रह्मबुद्ध्यानिर्विकल्पमेतेज्वावरणञ्च यत ।

कुलाचारःस एवाद्ये धर्मकामार्थमोक्षदः ॥ ९८ ॥

अर्थ-हे आद्ये ! इन जीवादि नव कुलोंमें ब्रह्मविषयिणी बुद्धिसे नानाविध कल्पनाशून्य जो आवरण हैं, वही कुलाचार कहा जाता है । इस कुलाचारसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, यह चारों फल मिलते हैं ॥ ९८ ॥

बहुजन्माजितैःपुण्यैस्तपोदानदृढव्रतैः ।

क्षोणाधानांसाधकानांकुलाचारेमतिर्भवेत् ॥ ९९ ॥

अर्थ-जिन्होंने तप, दान और दृढव्रतादि करके जन्म जन्मान्तरमें बहुतसा पुण्य इकट्ठा किया है, उन्हीं सब पाप-रहित साधकोंके कुलाचारमें मति उत्पन्न होती है ॥ ९९ ॥

कुलाचारगताबुद्धिर्भवेदाशुसुनिर्मला ।

तदाद्याचरणाम्भोजेमतिस्तेषांप्रजायते ॥ १०० ॥

अर्थ-कुलाचारमें लगनेपर बुद्धि अतिशीघ्र विमल हो जाती है । बुद्धिकी विमलता होनेपर आदिदेवीके चरणकमलमें मन लगजाता है ॥ १०० ॥

सद्गुरोःसेवयाप्राप्यविद्यामेनांपरात्पराम् ।

कुलाचाररताभूत्वापञ्चतत्त्वैःकुलेश्वरीम् ॥ १०१ ॥

अर्थ-जो सद्गुरुकी सेवा करके परेसे परे मंत्ररूपी विद्याको प्राप्त करके कुलाचारमें निरत होकर पञ्चतत्त्वसे कुलेश्वरी ॥ १०१ ॥

यजन्तःकालिकामाद्यांकुलज्ञाःसाधकोत्तमाः ।

इहभुक्त्वाखिलान्भोगान्ब्रजन्त्यन्तेनिरामयम् ॥ १०२ ॥

अर्थ-आदिकालिकाकी पूजा करता है वही कुलज्ञ है । वही साधकोंमें श्रेष्ठ है वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तकालमें मोक्षपदको पाता है ॥ १०२ ॥

महौपधंयजीवानांदुःखविस्मारकंमहत् ।

आनन्दजनकंयच्चतदाद्यतत्त्वलक्षणम् ॥ १०३ ॥

अर्थ—आदितत्त्वके लक्षण इसप्रकार कहे हैं कि, यह महौष-
धिकी समान रूपवाले हैं (इस तत्त्वको जानकर अपने दुःखोंको
भूल जाते हैं) और यह अत्यन्त आनन्ददायक हैं ॥ १०३ ॥

असंस्कृतश्चयतत्त्वंमोहदंभ्रमकारणम् ।

विवादरोगजननन्त्याज्यंकौलैः सदाप्रिये ! ॥ १०४ ॥

अर्थ—परंतु आदितत्त्व शुद्ध न होनेपर केवल मोह और
भ्रमका कारण हो उठता है विवाद और रोगका कारण हो-
जाता है अतएव हे प्रिये ! कौलिकगण संस्कार न किये हुए
तत्त्वको सदा छोड़ दें ॥ १०४ ॥

ग्राम्यवायव्यवन्यानामुद्भूतंपुष्टिर्द्धनम् ।

बुद्धितेजोबलकरंद्वितीयंतत्त्वलक्षणम् ॥ १०५ ॥

अर्थ—ग्राम्य छायादि. वायव्य—तिज्जिरी (तीतर) आदि
पक्षी वन्य—भृगादि, इनकी देहसे उत्पन्न पुष्टिकर और बुद्धि,
तेज और बलदाता, यही दूसरे तत्त्वका लक्षण है ॥ १०५ ॥

जलोद्भवंयत्कल्याणि ! कमनीयंसुखप्रदम् ।

प्रजावृद्धिकरश्चापितृतीयंतत्त्वलक्षणम् ॥ १०६ ॥

अर्थ—हे कल्याणि ! तीसरा तत्त्व,—प्रजाकी वृद्धि करनेवाला
जलपर उत्पन्न हुआ और सुखदाई है ॥ १०६ ॥

सुलभंभूमिजातश्चजीवानांजीवनश्चयत् ।

आयुर्मूलं त्रिजगतांचतुर्थंतत्त्वलक्षणम् ॥ १०७ ॥

अर्थ—चौथा तत्त्व पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ जीवका जीवनस्व-
रूप त्रिलोकी आयुका मूल कारण है ॥ १०७ ॥

महानन्दकरंदेवि ! प्राणिनांसृष्टिकारणम् ।

अनाद्यन्तजगन्मूलंशेषतत्त्वस्यलक्षणम् ॥ १०८ ॥

अर्थ-हे देवि ! अत्यंत आनंदका करनेवाला, प्राणियोंकी उत्पत्तिका हेतु आदि और अंतरहित जगत्का मूलकारण है । इसप्रकार पिछले तत्त्वके लक्षण कहे हैं ॥ १०८ ॥

आद्यतत्त्वंविद्धितेजोद्वितीयंपवनंप्रिये ! ।

अपस्तृतीयंजानीहिचतुर्थं पृथिवींशिवे ! ॥ १०९ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! तेजही आदितत्त्व है, पवन दूसरा तत्त्व तीसरा जल और चौथा तत्त्व पृथ्वीको जानो ॥ १०९ ॥

पञ्चमंजगदाधारं वियद्विद्विवरानने ! ॥ ११० ॥

अर्थ-हे वरानने ! यह जगदाधार आकाशमण्डलही पांचवाँ तत्त्व है ॥ ११० ॥

इत्थंज्ञात्वाकुलेशानि ! कुलन्तत्त्वानिपञ्च ।

आचारंकुलधर्मस्यजीवन्मुक्तोभवेन्नरः ॥ १११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्व-
धर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे
स्तोत्रकवचकुलतत्त्वलक्षणकथनं नाम
सप्तमोऽष्टासः ॥ ७ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! जो मनुष्य इसप्रकारसे नव कुल पंच-
तत्त्व और कुलधर्मके आचारको जानकर (कर्मातुष्टान करता
है) उसके जीवन्मुक्त होनेमें संदेह नहीं ॥ १११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिवसंवादे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां स्तोत्रकव-
चकुलतत्त्वलक्षणकथनं नाम सप्तमोऽष्टासः ॥ ७ ॥

अष्टमोद्भासः ८.

श्रुत्वाधर्मान्वहुविधान्भवानीभवमोचिनी ।

हितायजगतांमाताभूयःशङ्करमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त भवपाशविमोचिनी जननी पार्वती-जीने इसप्रकार बहुविध धर्मविषय श्रवण करके जगत्के हि-तका अनुष्ठान करनेकी वासनासे फिर महादेवजीसे पूछा ॥ १ ॥

श्रीदेवुवाच ।

श्रुतंवहुविधंधर्ममिहामुत्रसुखप्रदम् ।

धर्मार्थकामदंविघ्नहरंनिर्वाणकारणम् ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजीने कहा—हे नाथ ! जो इस लोक और परलोकमें भी सुखका देनेवाला है, जिसके द्वारा धर्म, अर्थ और काम प्राप्त होता है । विघ्नोंका नाश करनेवाले और मुक्तिप्राप्तिके कारणस्वरूप बहुतसे धर्मविषय तुमसे सुने ॥ २ ॥

साम्प्रतंश्रोतुमिच्छामिब्रूहि वर्णाश्रमान्विभो ।

तत्रयेविहिताचाराःकृपयावदतानपि ॥ ३ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! अब वर्ण और आश्रमके विषयको जान-नेका अभिलाष करती हूं । आप कृपा करके वह सब आर-वर्णोंमें जैसा आचार विचार कहा गया है वह भलीभाँतिसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

चत्वारःकथितावर्णाश्रमाअपिमुव्रते ।।

आचाराश्चापिवर्णानामाश्रमाणांपृथक्पृथक् ॥ ४ ॥

कृतादौकलिकालेतुवर्णाः पञ्चप्रकीर्तिताः ।

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रःसामान्यएवच ॥ ५ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिव कहने लगे-हे सुव्रते ! सत युगादिमें चारों वर्ण और आश्रम और चारों वर्ण और आश्रमोंके आचार अलग २ कहेंगये हैं; परन्तु कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधारण यह पाँच प्रकारके वर्ण कहे हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतेपांसर्ववर्णानामाश्रमौद्भौमहेश्वरि ! ।

तेपामाचारधर्माश्चशृणुष्याद्ये ! वदामिते ॥ ६ ॥

अर्थ-इन समुदाय ब्राह्मणादि वर्णोंके आश्रम दो प्रकार हैं। हे आद्ये महेश्वरि ! तुमसे उन धर्म और आश्रमोंके आचार धर्मका वर्णन करता हूँ । श्रवण करो ॥ ६ ॥

पुरैवकथितंतावत्कलिसम्भवचेष्टितम् ।

तपःस्वाध्यायहीनानानृणामल्पायुपामपि ।

क्लेशप्रयासाशक्तानांकुतोदेहपरिश्रमः ॥ ७ ॥

अर्थ-हे देवि ! कलिकालके मनुष्योंका विषय पहलेही तुमसे कह आया हूँ वह तपरहित और वेदपाठसे विरत होंगे । वह दुर्बलताके मारे क्लेश परिश्रम करनेको असमर्थ होंगे । वह अल्पायु होंगे, इसकारण उनसे दैहिक परिश्रमका होना किस प्रकारसे सम्भव है ? ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्याश्रमोनास्तिवानप्रस्थोऽपिनाप्रिये ! ।

गार्हस्थ्योभैक्षुकश्चैवआश्रमौद्भौकलयुगे ॥ ८ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! कलियुगमें ब्रह्मचर्याश्रम नहीं है, वानप्रस्थाश्रमभी नहीं है । कलिकालमें मनुष्योंके गार्हस्थ्य और भैक्षुक नामक यह दो आश्रम निरूपित हुए हैं ॥ ८ ॥

गृहस्थस्यक्रियाःसर्वाआगमोक्ताःकलौशिवे ! ।

नान्यमार्गैःक्रियासिद्धिःकदापिगृहमोधिनाम् ॥ ९ ॥

अर्थ-हे शिवे ! कलिकालमें गृहस्थलोग आगममें कही हुई विधिके अनुसार कर्मानुष्ठान करेंगे और किसी प्रकारकी विधिका सहारा ले क्रियानुष्ठान करनेसे गृहस्थगण किसी प्रकारसे सिद्धि प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ ९ ॥

भैक्षुकेऽप्याश्रमेदेवि । वेदोक्तदण्डधारणम् ।

कलौनास्त्येवतत्त्वज्ञे ! यतस्तच्छ्रौतसंस्कृतिः ॥ १० ॥

अर्थ-हे देवि ! हे तत्त्वके जाननेवालि ! कलियुगके विषय भैक्षुकाश्रममेंभी वेदोक्त दण्डधारण करनेकी विधि नहीं है । क्योंकि वह वैदिक संस्कार है ॥ १० ॥

शैवसंस्कारविधिनाऽवधूताश्रमधारणम् ।

तदेवकथितंभद्रे ! संन्यासग्रहणंकलौ ॥ ११ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! कलिकालमें शैवसंस्कारकी विधिके अनुसार अवधूताश्रम धारण करनेकोही संन्यास ग्रहण करना कहते हैं ॥ ११ ॥

विप्राणामितरेपाञ्चवर्णानांप्रचलेकलौ ।

उभयत्राश्रमेदेवि ! सर्वेषामधिकारिता ॥ १२ ॥

अर्थ-हे देवि ! प्रचल कलियुगमें ब्राह्मणादि सब वर्णही इन दोनों आश्रमोंके अधिकारी होंगे ॥ १२ ॥

सर्वेषामेवसंस्काराः कर्माणिशैववर्त्मना ।

विप्राणामितरेपाञ्चकर्मलिङ्गं पृथक्पृथक् ॥ १३ ॥

अर्थ-ब्राह्मणादि सर्व वर्णही शैवविधिके अनुसारसे संस्कार और दूसरे कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे । परन्तु ब्राह्मण व और वर्णोंके कर्म चिह्न अलग २ सम्पादिन होंगे ॥ १३ ॥

जातमात्रोगृहस्थः स्यात्संस्कारादाश्रमीभवेत् ।

गार्हस्थ्यं प्रथमं कुर्व्याद्यथाविधि महेश्वरि ! ॥ १४ ॥

अर्थ-मनुष्यगण जन्म लेतेही गृहस्थ होते हैं फिर संस्कार होनेपर आश्रमी होते हैं । हे महेश्वरि ! कलियुगमें प्रथमही यथाविधानसे गृहस्थाश्रमका अवलम्बन करे ॥ ११४ ॥

तत्त्वज्ञानेसमुत्पन्नेवैराग्यं जायते यदा ।

तदा सर्वपरित्यज्य संन्यासाश्रममाचरेत् ॥ १५ ॥

अर्थ-फिर तत्त्वज्ञान हो जानेपर जब हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होजाय, तब सबको छोड़कर संन्यासाश्रमको धारण करे ॥ १५ ॥

विद्यामुपार्जयेद्बाल्ये धनं दारांश्च यौवने ।

प्रौढे धर्म्याणिकर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत् सुधीः ॥ १६ ॥

अर्थ-बालकपनमें विद्या पढ़े जवानीमें धन उपार्जन करे और विवाह करे । प्रौढ़ समयमें धर्मकर्मका अनुष्ठान करे और बुढ़ापेमें संन्यास आश्रमको ग्रहण करे ॥ १६ ॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्याञ्चैव पतिव्रताम् ।

शिशुञ्च तनयं हित्वानावधूताश्रमं व्रजेत् ॥ १७ ॥

अर्थ-वृद्ध पिता-माता, पतिव्रता भार्या, शिशु पुत्र इनको छोड़कर कभी अवधूताश्रमको ग्रहण न करे ॥ १७ ॥

मातृः पितृश्चिशून् दारान् स्वजनान् बान्धवानपि ।

यः प्रव्रजति हित्वैतान्समहापातकी भवेत् ॥ १८ ॥

अर्थ-जो पुरुष माता, पिता, शिशु पुत्र भार्या और सगे-बन्धु बान्धवादिको, छोड़कर संन्यासको ग्रहण करता, वह महापातकी होता है ॥ १८ ॥

मातृहापितृहासस्यात्स्त्रीविधीत्रह्मघातकः ।

असन्तप्यस्वपित्रादीन्योगच्छेद्विक्षुकाश्रमे ॥ १९ ॥

अर्थ-जो पुरुष विना अपने माता पिताको संतुष्ट किया भिक्षुकाश्रममें गमन करता है । उसको माता पिता और स्त्रीहत्याका पाप लगता है और वह निःसन्देह ब्रह्महत्याके पापसे कलुषित होगा ॥ १९ ॥

ब्राह्मणोविप्रभिन्नश्चस्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रियाम् ।

शैवेनवर्त्मनाकुर्यादेषधर्मःकलौयुगे ॥ २० ॥

अर्थ-ब्राह्मणवर्ण और दूसरे वर्ण शैवमार्गके अनुसारही अपने वर्णकी क्रियाका अनुष्ठान करे । यह कलियुगका सनातन धर्म है ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कोवाधर्म्मोऽगृहस्थस्यभिक्षुकस्यचार्कविभो ! ।

विप्रस्यविप्रभिन्नानांसंस्कारादीनिमेवद ॥ २१ ॥

अर्थ-श्राद्धविजीने कहा-हे विभो ! गृहस्थोंका धर्म क्या है ? भिक्षुकोंका धर्म किसप्रकारका है ? ब्राह्मण व दूसरे वर्णोंके संस्कारादि क्या हैं ? वह सब मुझसे भलीभाँति कहिये ॥ २१ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

गार्हस्थ्यं प्रथमं धर्म्यं सर्वेषां मनुजन्मनाम् ।

तदेव कथयाम्यादौ शृणुकौलि नितत्त्वतः ॥ २२ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा-हे कौलिनि ! गृहस्थधर्मही मनुष्योंका प्रथम धर्म कहा जाता है, अब पहले गृहस्थधर्मका वर्णन किया जाता है; तिसको सुन ॥ २२ ॥

ब्रह्मनिष्ठो गृहस्थः स्याद्ब्रह्मज्ञानपरायणः ।

यद्यत्कर्म प्रकुर्वीत तद्ब्रह्मणिसमर्पयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-गृहस्थोंको चाहिये ब्रह्मनिष्ठ हों, ब्रह्मज्ञानमें निरत हों, वह जिस ० कर्मका अनुष्ठान करेंगे वह समस्त ब्रह्ममें समर्पण करे ॥ २३ ॥

नमिथ्याभाषणंकुर्यान्निचशाठ्यंसमाचरेत् ।

देवतातिथिपूजासुगृहस्थोनिरतोभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ-गृहस्थोंको मिथ्या वाक्य नहीं कहना चाहिये कप-टाचरणका छोड़ना और देवता व अतिथिका सत्कार करना चाहिये ॥ २४ ॥

मातरंपितरञ्चैवसाक्षात्प्रत्यक्षदेवताम् ।

मत्वागृहीनिपेवेतसदासर्वप्रयत्नतः ॥ २५ ॥

अर्थ-अपने मातापिताको साक्षात् देवतास्वरूप जानकर गृहस्थोंको सदा उनकी सेवाका यत्न करना चाहिये ॥ २५ ॥

तुष्टायांमातरिशिवे ! तुष्टेपितरिपार्वति ! ।

तवप्रीतिर्भवेद्देवि ! परब्रह्मप्रसीदति ॥ २६ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जो पुरुष मातापिताको संतुष्ट करता है । हे पार्वति ! तुम उसपर प्रसन्न होती हो । हे देवि ! परब्रह्मभी उसपर प्रसन्न हो जाता है ॥ २६ ॥

त्वमाद्येजगतांमातापिताब्रह्मपरात्परम् ।

युवयोःप्रीणनंयस्मात्तस्मात्किंगृहिणान्तपः ॥ २७ ॥

अर्थ-हे आद्ये ! तुम्हीं जगत्की माता और परात्पर ब्रह्महीं जगत्के पिता हैं । इस कारण जो-गृहस्थलोग मातापितारूप तुमको संतुष्ट करते हैं उनको तप करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ २७ ॥

आसनंशयनंवस्त्रंपानम्भोजनमेव च ।

तत्तत्समयमाज्ञायमात्रेपित्रेनियोजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-सुअवसर देखकर मातापिताको आसन, शयन, वस्त्र पानी और भोजनादि दें ॥ २८ ॥

श्रावयेन्मृदुलांवाणींसर्वदाप्रियमाचरेत् ।

पित्रोराज्ञानुसारीस्यात्सत्पुत्रःकुलपावनः ॥ २९ ॥

अर्थ—कुलका पवित्र करनेवाला सुपुत्र उनसे मीठे २ वचन कहै । सदा वह काम करे जो उनको अच्छा लगे । सदा उनकी आज्ञामें रहै ॥ २९ ॥

औद्धत्यं परिहासश्च तर्जनं परिभाषणम् ।

पित्रोरग्रेन कुर्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो अपना हित चाहता वह कदापि मातापिताके आगे ऊधम न मचावे वा परिहास नहीं करे उनके निकट (सेवकादि किसीको) डांटे या बुरे वचन कहै नहीं ॥ ३० ॥

मातरं पितरं वीक्ष्य न त्वोत्तिष्ठेत्संभ्रमः ।

विनाज्ञयानोपविशेत्संस्थितः पितृशासने ॥ ३१ ॥

अर्थ—मातापिताको देखते ही साधक प्रणाम करके उठ बैठे विना उनकी आज्ञा लिये आसनपर नहीं बैठे; उनकी आज्ञाके वशमें रहे ॥ ३१ ॥

विद्याधनमदोन्मत्तोयः कुर्व्यात्पितृहेलनम् ।

संयाति नरकं चोरं सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो पुरुष विद्या और धनके मदसे मत्त होकर माता-पिताको कुछ नहीं समझता वह सब धर्मोंके बाहर होकर घोर नरकमें जाता है ॥ ३२ ॥

मातरं पितरं पुत्रंदारानतिथिसोदरान् ।

हित्वा गृहीन भुञ्जीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ३३ ॥

अर्थ—यदि प्राण कण्ठमें आजँय तौ भी गृहस्थोंको चाहिये कि—माता, पिता, पुत्र, भाई, अतिथि और सहोदर विना इनको दिये कदापि भोजन न करे ॥ ३३ ॥

वञ्चयित्यागुरुन्वन्धून् यो भुङ्क्ते स्वादरम्भरः ।

इहैव लोके गर्ह्योऽसौ परत्वनारकी भवेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ-जो पुरुष माता, पिता, भ्राता, बन्धु बान्धवादि स्वजनोको न देकर अपनाही पेट भरनेको भोजन करता है, वह इसलोकमें महानिन्दित और परलोकके बीच घोर नरकमें पड़ता है ॥ ३४ ॥

गृहस्थोगोपयेद्वारान्विद्यामभ्यासयेत्सुतान् ।

पोषयेत्स्वजनान्वन्धूनेषधर्मःसनातनः ॥ ३५ ॥

अर्थ-गृहस्थोको अपनी भार्याकी रक्षा करनी चाहिये । पुत्रोंको विद्या पढ़ानी चाहिये स्वजन और बन्धु बान्धवोंका भरण पोषण करना चाहिये । यही उनका सनातन धर्म है ३५

जनन्यार्वाद्धितोदेहोजनकेनप्रयोजितः ।

स्वजनैःशिक्षितः प्रीत्यासोऽधमस्तान्परित्यजेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-मातासे अपने शरीरकी पुष्टि होती है जन्मदाता पितासे देहकी उत्पत्ति होतीहै । अपने सगे प्रीतिके कारण शिक्षा देते हैं बस उन सबका त्याग करदेनेवाला नराधम होताहै (इसमें सन्देह नहीं है) ॥ ३६ ॥

एषामर्थमहेशानि ! कृत्वाकष्टशतान्यपि ।

प्रीणयेत्सततंशक्त्याधर्मोह्येपसनातनः ॥ ३७ ॥

अर्थ-हे महेशानि ! शत २ कष्ट स्वीकार करके भी इन लोगोंको सन्तुष्ट करे, यही सनातन धर्म है ॥ ३७ ॥

सधन्यःपुरुषोलोकेसकृतीपरमार्थवित् ।

ब्रह्मनिष्ठःसत्यसन्धोयोभवेद्भुविमानवः ॥ ३८ ॥

अर्थ-जो पुरुष, ब्रह्मनिष्ठ और सत्यप्रतिज्ञ होकर कर्मानुष्ठान करता है पृथ्वीमें वही महापुरुष धन्य है और वही पुरुष परमार्थज्ञानको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३८ ॥

नभार्यान्ताडयेत्कापिमातृवत्पालयेत्सदा ।

नत्यजेद्धोरकष्टेऽपियदिसाध्वीपतिव्रता ॥ ३९ ॥

अर्थ—गृहस्थोंको चाहिये कि, वहभी अपनी भार्याको ताड़ना नहीं करे. सदा माताकी समान पालन करे । चाहे जैसा घोर कष्ट पडनेपरभी साध्वी भार्याको नहीं छोड़े ॥ ३९ ॥

स्थितेषुस्वीयदारेषुस्त्रियमन्यान्संस्पृशेत् ।

दुष्टेनचेतसाविद्वानन्यथानारकीभवेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—अपनी भार्याके रहते कदापि दूसरी स्त्रीको नहीं स्पर्श करे । मनहीं मनमें पराई स्त्रीके स्पर्शकी कल्पना कर-लेनेसे मन विकारको प्राप्त होजाताहै । बुद्धिमान्को चाहिये कि, मन २ में भी पराई स्त्रीकी कामना न करे । क्योंकि ऐसा करनेसे घोरनरकमें गिरना पडता है ॥ ४० ॥

विरलेशयनंवासंत्यजेत्प्राज्ञःपरस्त्रिया ।

अयुक्तभाषणञ्चैवस्त्रियंशौर्य्यन्नदर्शयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ—बुद्धिमान्मनुष्योंको उचित है कि, पराई स्त्रीके साथ एकान्तमें शयन या एकान्तमें वास नहीं करे । किसी स्त्रीसे अनुचित बात न कहे और शूरता न दिखावै ॥ ४१ ॥

धनेनवाससाप्रेम्णाश्रद्धयामृदुभाषणैः ।

सततंतोपयेदारात्रापियंकचिदाचरेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ—धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा, अमृतवचनादिसे सदा अपनी भार्याको संतुष्ट करे, कभी उसको बुरा लगनेवाला आचरण न करे ॥ ४२ ॥

उत्सवेलोकयात्रायांतीर्थेष्वन्यनिकेतने ।

नपत्नीप्रेपयेत्प्राज्ञःपुत्रामात्यविवर्जिताम् ॥ ४३ ॥

अर्थ-श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुषको चाहिये कि, उत्सवमें लोक-यात्रामें तीर्थमें पराये घरमें पुत्र अथवा और किसी सगेको विना साथ किये अकेला अपनी स्त्रीको कहीं न भेजे ॥४३॥

यस्मिन्नेमहेशानि ! तुष्टाभार्यापतिव्रता ।

सर्वो धर्मः कृतस्तेन भवति प्रिय एव सः ॥ ४४ ॥

अर्थ-हे महेशानि ! जिस पुरुष पर पतिव्रता भार्या संतुष्ट रहती है वह सब धर्मोंसे उत्पन्न हुए फलको प्राप्त करता है और वह तुम्हारा प्रीतिपात्र होता है ॥ ४४ ॥

चतुर्वर्षावधिसुतान् लालयेत्पालयेत्पिता ।

ततः षोडशपर्यन्तं गुणान्विद्याश्च शिक्षयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-पिताको चार वर्षतक पुत्रका लालन पालन करना चाहिये सोलह वर्षतक विद्या और गुण सिद्धाने चाहिये ॥४५॥

विंशत्यन्दाधिकान् पुत्रान् प्रेरयेद्बृहत्कर्मसु ।

ततस्तांस्तुल्यभावेन मत्वा स्नेहं प्रदर्शयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-फिर बीसवर्षकी आयुतक गृहकार्यमें लगावे तदनन्तर अपनी समान जानकर स्नेह दिखावे ॥ ४६ ॥

कन्याप्येवंपालनीया शिक्षणीया तियत्नतः ।

देयावराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ॥ ४७ ॥

अर्थ-इसप्रकार कन्याका भी यत्नसे पालन करके उसको यत्नके साथ शिक्षा दे । फिर धनरत्नसे शोभायमान करके ज्ञानवान् वरको दान करदेना चाहिये ॥ ४७ ॥

एवंक्रमेण भ्रातृंश्च स्वसृभ्रातृसुतानपि ।

ज्ञातीन् मित्राणि भृत्यांश्च पालयेत्तोपयेद्बही ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकारसे गृहस्थोंको बन्धु, बान्धव, भानजा, भतीजा, जातिवाले मित्र और सेवकोंका भरण पोषण करना उचित है । और इनको संतुष्टभी करना चाहिये ॥ ४८ ॥

ततःस्वधर्मनिरतानेकग्रामनिवासिनः ।

अभ्यागतानुदासीनान्गृहस्थःपरिपालयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ—फिर गृहस्थके (समर्थ होनेपर) अपने धर्मके मनुष्योंका, एक ग्रामवासी, अभ्यागत पाहुने व उदासियोंका प्रतिपालन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

यद्येवंनाचरेद्देवि ! गृहस्थोविभवेसति ।

पशुरेवसविज्ञेयःसपापीलोकगर्हितः ॥ ५० ॥

अर्थ—हे देवि ! विभव होनेपरभी गृहस्थ यदि ऐसा आचरण न करे तो उसको घोरपापमें लिप्त लोकनिन्दित और पशुकी समान मानना चाहिये ॥ ५० ॥

निद्रालस्यंदेहयत्नकेशविन्यसमेव च ।

आसक्तिमशनेवस्त्रेनातिरिक्तंसमाचरेत् ॥ ५१ ॥

अर्थ—निद्रा, आलस्य, शरीरका यत्न, बाल काटना, खाने पहननेमें आसक्ति, इन बातोंको अधिकाईसे न करे ॥ ५१ ॥

युक्ताहारोयुक्तनिद्रोमितवाङ्मितमैथुनः ।

स्वच्छोनम्रःशुचिर्दक्षोयुक्तःस्यात्सर्वकर्मसु ॥ ५२ ॥

शूरःशत्रौविनतिःस्याद्रान्धवेगुरुसन्निधौ ।

जुगुप्सितान्नमन्येतनावमन्येतमानिनः ॥ ५३ ॥

अर्थ—गृहस्थोंको परिमित भोजन और परिमित निद्राका सेवन करना चाहिये । परिमाणसे बोलना चाहिये, परिमाणसे मैथुन करना चाहिये । कपट छोड़ देना चाहिये । सदा शुद्ध

सब कर्ममें निरालस्य और नम्र होकर समय बिताना चाहिये शत्रुके निकट शरता और बन्धु बान्धव व गुरुके समीप विनयका दिखाना योग्य है निन्दितजनोंका आदर करना योग्य नहीं मानीजनोंका सन्मान करना चाहिये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

सौहार्दव्यवहारांश्चप्रवृत्तिप्रकृतिनृणाम् ।

सहवासेनतर्कैश्चविदित्वाविश्वसेत्ततः ॥ ५४ ॥

अर्थ—साथ रहके और भलीभाँति शोच विचारके मनुष्यका स्वभाव, सौहार्द, व्यवहारादि और स्वभाव व प्रवृत्ति जानकर उसका विश्वास करना चाहिये ॥ ५४ ॥

तसेद्वेष्टुरपिशुद्रात्समयंवीक्ष्यबुद्धिमान् ।

प्रदर्शयेदात्मभावान्नैवधर्मविलंघयेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् पुरुषको लघु शत्रुसेभी भय करना चाहिये और समयानुसार अपना प्रभाव दिखावे कदापि धर्ममार्गको नहीं छोड़े ॥ ५५ ॥

स्वीयंयशःपौरुषञ्चगुणयेकथितञ्चयत् ।

कृत्यंदुपकारायधर्मज्ञानप्रकाशयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—धर्मवान् पुरुषको चाहिये कि, पराया उपकार करके उसको प्रकाशित नहीं करे, अपने यश और पौरुषका बखानभी न करे। पराई गुण बातभी किसीसे न कहे ॥ ५६ ॥

जुगुप्सितप्रवृत्तौचनिश्चितेऽपिपराजये ।

गुरुणालघुनाचापियशस्वीनविवादयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ—यशवान् पुरुषको उचित है कि, निश्चय पराजयकी सम्भावना होनेपरभी कभी लोकगर्हित कार्य नहीं करे और छोटे या बड़े पुरुषके साथ कभी लड़ाई झगडा नहीं करे ॥ ५७ ॥

विद्याधनयशोधर्मान्यतमानउपार्जयेत् ।

व्यसनश्चासतांसङ्गमिथ्याद्रोहंपरित्यजेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—यत्नसे विद्या, धन, यश और धर्मको उपार्जन करे ।
व्यसन असज्जनसंसर्ग, मिथ्यावचन, क्लेशादि छोड़ देवे ॥ ५८ ॥

अवस्थानुगताश्चेष्टाः समयानुगताः क्रियाः ।

तस्मादवस्थांसमयंवीक्ष्यकर्मसमाचरेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ—चेष्टा अवस्थाकी अनुगामिनी है, क्रिया समयकी
अनुगामिनी है, अतएव अवस्था और समयके अनुसारही
कर्मानुष्ठान करे ॥ ५९ ॥

योगक्षेमरतोदक्षो धार्मिकः प्रियवान्धवः ।

मितवाङ्मितहासः स्यान्मान्यायेतुविशेषतः ॥ ६० ॥

अर्थ—गृहस्थोंको योग और क्षेममें अनुरागी होना चाहिये
दास और धार्मिककी समान न्यायका आचरण करे । बन्धु-
ओंपर सौहार्दता दिखावे (सबको सामने) विशेष करके
माननीयजनोंके निकट परिमित वचन कहें उनके निकट
बैठकर बहुत हँसे नहीं ॥ ६० ॥

जितेन्द्रियः प्रसन्नात्मा शुचिन्त्यः स्याद्दृढव्रतः ।

अप्रमत्तो दीर्घदर्शी मात्रास्पर्शान्विचारयेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ—गृहस्थको जितेन्द्रिय, प्रसन्नचित्त, शुचिन्त्य, दृढव्रत-
धारी, अप्रमत्त और दीर्घदर्शी होना चाहिये इन्द्रियोंकी वृत्ति-
के विषयमें भलीभाँति न विचार करके कोई काम न करे ६१

सत्यं मृदु प्रियं धीरो वाक्यं हितकरं वेदत् ।

आत्मोत्कर्षन्तथानिन्दापरेषां परिवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ—धीर पुरुषको सदा सत्य, मृदु, प्रिय और हितकारी
वचन कहना चाहिये अपनी बड़ाई और पराई निन्दा करना
उचित नहीं ॥ ६२ ॥

जलाशयाश्ववृक्षाश्वविश्रामगृहमध्वनि ।

सेतुःप्रतिष्ठितोयेनतेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६३ ॥

अर्थ-मार्गमें जो पुरुष तालाब खुदवाता है, वृक्ष लगवाता है, विश्रामगृह (सराय) बनवाता है और सेतुकी प्रतिष्ठा कराता है, वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिलोकीको जीत लेता है ॥ ६३ ॥

सन्तुष्टौपितरौयस्मिन्ननुरक्ताःसुहृद्गणाः ।

गायन्तियद्यशोलोकास्तेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६४ ॥

अर्थ-जिसपर माता पिता संतुष्ट हैं सुहृद्गण, जिसमें अनुराग करते हैं, मनुष्य जिसके यशको गाते हैं, वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६४ ॥

सत्यमेवव्रतंस्यदयादीनेपुसर्वथा ।

कामक्रोधौवशेयस्यतेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ-सत्यही जिसका सनातन व्रत है, जो पुरुष दीन दरिद्रपर दया दिखाता है, काम और क्रोध जिसके वशमें हैं वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६५ ॥

विरक्तःपरदारेपुनिःस्पृहःपरवस्तुपु ।

दम्भमात्सर्यहीनोयस्तेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-जो पुरुष परनारीसे विरागी रहता है, पराये द्रव्यकी इच्छा नहीं करता, जो पुरुष दम्भ और मात्सर्यसे हीन है, वह पुरुषही (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६६ ॥

नविभेतिरणाद्योवैसंग्रामेऽप्यपराङ्मुखः ।

धर्मयुद्धेमृतोवापितेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६७ ॥

अर्थ-जो पुरुष रणमें डरता नहीं, समरसे विमुख नहीं होता और जो पुरुष धर्मयुद्धमें प्राण त्यागदेता है, वह पुरुषही, (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६७ ॥

असंशयात्मासुश्रद्धः शाम्भवाचारतत्परः ।

मच्छासनेहितोयश्चतेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—जिसकी आत्मा सन्दिग्ध नहीं है, जो पुरुष श्रद्धायुक्त और शैवाचारमें निरत होकर मेरे शासनके वश रहता है, वह पुरुषही (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६८ ॥

ज्ञानिनालोकयात्रायैसर्वत्रसमदृष्टिना ।

क्रियन्तेयेनकर्माणि तेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—जो ज्ञानी पुरुष लोकयात्रा सिद्ध करनेके लिये शत्रु या मित्र सबके ऊपर बराबर दृष्टि रखकर कर्मका अनुष्ठान करता है वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६९ ॥

शौचन्तुद्विविधन्देवि ! बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।

ब्रह्मण्यात्मार्षणंयत्तच्छौचमान्तरिकंस्मृतम् ॥ ७० ॥

अर्थ—हे देवि ! बाहिरी और आभ्यन्तरिक यह दो प्रकारके शौच हैं । ब्रह्ममें अत्मसमर्पण करनेको आन्तरिक शौच कहते हैं ॥ ७० ॥

अद्भिर्वाभस्मनावापिमलानामपकर्षणम् ।

देहशुद्धिर्भवेद्येनवहिःशौचंतदुच्यते ॥ ७१ ॥

अर्थ—जलसे या भस्मसे मलको दूर करके जो देहकी शुद्धि की जाती है उसको बाहिरी शौच कहते हैं ॥ ७१ ॥

गङ्गानद्योह्रदावाप्यस्तथाकूपाश्चक्षुल्लकाः ।

सर्वपवित्रजननंस्वर्णदीक्रमतः प्रिये ! ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! गंगा, नदी, कुण्ड, बापी, कूप, स्वर्णदी मन्दाकिनी और सरोवरमें स्नान करनेसे शरीर पवित्रहोजाता है ७२

भस्मात्रयाज्ञिकंथ्रेष्टंमृत्स्नातुमलवर्जिता ।

वासोऽजिनतृणादीनिमृद्भजानीदिसुव्रते ! ॥ ७३ ॥

अर्थ—हे सुव्रते ! बाहिरी शौचके विषयमें याज्ञिक स्नान भस्मके द्वाराही श्रेष्ठ है । निर्मल मृत्तिकासे भी ऐसा स्नान होसक्ता है । वस्त्र, मृग, चर्म, नृणादि और मृत्तिका यह बराबर पवित्र हैं ॥ ७३ ॥

किमत्रबहुनोक्तेनशौचाशौचविधौशिवे ! ।

मनःपूतंभवेद्येनगृहस्थस्तत्तदाचरेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—हे शिवे ! इस शौच और अशौचके विषयमें अधिक और क्या कहा जाय, गृहस्थको वैसा आचरण करना चाहिये जिससे मन पवित्र होजाय ॥ ७४ ॥

निद्रान्तेमैथुनस्यान्तेत्यागान्तेमलमूत्रयोः ।

भोजनान्तेमलेरुपृष्टेवहिःशौचंविधीयते ॥ ७५ ॥

अर्थ—निद्राके पश्चात् स्त्रीभोगके पीछे मल मूत्र त्यागनेपर भोजनके बाद अथवा मलस्पर्श होनेपर तदुपरान्त ऐसा बाहिरी शौच शास्त्रमें लिखा है ॥ ७५ ॥

सन्ध्यात्रैकालिकीकार्य्यवैदिकीतान्त्रिकीक्रमात् ।

उपासनायाभेदेनपूजांकुर्य्याद्यथाविधि ॥ ७६ ॥

अर्थ—त्रिकालीन वैदिकी और तान्त्रिकी संध्या क्रमानुसार करनी चाहिये और उपासनाके भेदसे यथाविधान पूजा करे ॥ ७६ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानांगायत्रीजपतांप्रिये ! ।

ज्ञानाद्ब्रह्मेतितद्वाच्यंसन्ध्याभवतिवैदिकी ॥ ७७ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! जो लोग ब्रह्ममन्त्रके उपासक हैं वह जिस समय गायत्री जप करें, वह गायत्रीका प्रतिपाद्य ब्रह्मको समझें, ऐसे समझनेसे वैदिक संध्या होजायगी ॥ ७७ ॥

अन्येषांवैदिकीसन्ध्यासूर्योपस्थानपूर्व्वकम् ।

अर्घ्यदानान्दिनेशायगायत्रीजपनन्तथा ॥ ७८ ॥

अर्थ-जो ब्रह्मोपासक नहीं हैं उन लोगोंको सन्ध्योपासनाके समय सूर्यके उपासना, सूर्यको अर्घ्य देना और (सूर्य भगवानके अर्थ) गायत्रीका जप करना चाहिये ॥ ७८ ॥

अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा दशधापि वा ।

जपानां नियमो भद्रे ! सर्वत्राह्निककर्मणि ॥ ७९ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! समस्त आह्निककार्य करनेके समय एक सहस्र आठ (१००८) वा एक शत आठ (१०८) अथवा दश बार जप करनेका नियम है ॥ ७९ ॥

शूद्रसामान्यजातीनामधिकारोऽस्ति केवलम् ।

आगमोक्तविधौ देवि ! सर्वसिद्धिस्ततो भवेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-हे देवि ! शूद्रजातिको और साधारण जातिको केवल तंत्रमें कहेहुए विधानमेंही अधिकार है । तिससेही उनको सब सिद्धि मिलजाती है ॥ ८० ॥

प्रातःसूर्योदयः कालो मध्याह्नस्तदनन्तरम् ।

सायं सूर्यास्तसमयस्त्रिकालानामयं क्रमः ॥ ८१ ॥

अर्थ-(त्रिकालीन संध्या करनेके निमित्त) सूर्य निकलनेके समय प्रातःकाल तदुपरान्त मध्याह्नकाल, सूर्यके अस्तगमन समयमें सायंकाल, इसप्रकार त्रिकालका क्रम कहा है ॥ ८१ ॥

श्रीदेवपुत्राय ।

विप्रादिसर्ववर्णानां विहिता तान्त्रिकी क्रिया ।

त्वयैव कथितानाथ ! सम्प्राप्ते प्रबले कलौ ॥ ८२ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा-हे नाथ ! तुमने आपही पहले कहा है कि, जब कलियुग प्रबल होगा तब ब्राह्मणादि सर्ववर्णोंको केवल तान्त्रिक अनुष्ठानही विहित होता है ॥ ८२ ॥

तदिदानींकथं देवं ! विप्रान्वैदिककर्मणि ।

नियोजयसितत्सर्व्वविशेषाद्भक्तुमर्हसि ॥ ८३ ॥

अर्थ-हे देवदेव ! इस समय किसकारणसे तुम ब्राह्मणोंको वैदिककार्यमें लगातेहो यह मुझसे भली भाँति वर्णन करो ॥ ८३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

सत्यं ब्रवीपितत्त्वज्ञे ! सर्व्वपातान्त्रिकीक्रिया ।

लोकानां भोगमोक्षाय सर्व्वकर्मसु सिद्धिदा ॥ ८४ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा हे तत्त्वज्ञे ! तुमने यथार्थ कहा । कलियुगमें सबमनुष्योंके लिये केवल तान्त्रिक क्रिया श्रेष्ठ है । यह तांत्रिक अनुष्ठान भोग, मोक्ष और सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिको देता है ॥ ८४ ॥

इयन्तु ब्रह्मसावित्रीयथा भवति वैदिकी ।

तथैव तान्त्रिकी ज्ञेया प्रशस्तो भयकर्मणि ॥ ८५ ॥

अर्थ-पहली कहीहुयी ब्रह्मसावित्रीको जिसप्रकार वैदिकी कहा जाता है, वैसेही तान्त्रिकीको भी कहा जासکتा है यह गायत्री दोनों पक्षमें श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

अतोत्र कथितं देवि ! द्विजानां प्रवलेकलौ ।

गायत्र्या मधिकारोऽस्ति नान्यमन्त्रेषु कर्हि चित् ॥ ८६ ॥

अर्थ-हे देवि ! इस कारणसेही मैंने इस स्थलमें कहा है कि, कलिके प्रबल होनेसे द्विजगणोंका गायत्रीमें अधिकार है और किसी वैदिक मंत्रमें ऐसा अधिकार नहीं है ॥ ८६ ॥

ताराद्या कमलाद्या च वाग्भवाद्या यथा क्रमात् ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशांसा वित्री कथिता कलौ ॥ ८७ ॥

अर्थ—कलियुगमें ब्राह्मणोंकी गायत्रीके आगे “ओं” क्षत्रियोंकी गायत्रीके प्रथममें “श्रीं” वैश्योंकी गायत्रीके पहले “ऐं” मिलाना चाहिये ॥ ८७ ॥

द्विजादीनांप्रभेदार्थशूद्रेभ्यःपरमेश्वरि ! ।

सन्ध्येयंवैदिकीप्रोक्ताप्रागेवाह्निककर्मणाम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे परमेश्वरि ! शूद्रजातिके द्विजातियोंको अलग रखनेके लिये उनका आह्निक करना प्रातःकालमें वैदिक संध्याकी विधि कही है ॥ ८८ ॥

अन्यथाशाम्भवैर्मार्गैःकेवलैःसिद्धिभागभवेत् ।

सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यमेतन्नसंशयः ॥ ८९ ॥

अर्थ—यदि वैदिक संध्याका अनुष्ठान न किया जाय तो भी केवल शिवजीके दिखाये हुए मार्गका अवलम्बन करनेसेही सिद्धि प्राप्त होसکتा है । यह निःसन्देह सत्यसत्य और सब प्रकारसे सत्य है ॥ ८९ ॥

कालात्ययेपिसन्ध्येयंकर्तव्यादेववन्दिते ! ।

ओंतत्सद्ब्रह्मचोच्चार्यमोक्षेच्छुभिरनातुरैः ॥ ९० ॥

अर्थ—हे सुरवन्दिते ! जो लोग मुक्तिकी कामना करते हैं उनको संध्याका समय, बीत जानेपरभी “ओंतत्सद्ब्रह्म” मंत्र पढ़कर तांत्रिकी और वैदिकी संध्या करलेनी चाहिये, परन्तु आतुरमें कोई नियम नहीं है ॥ ९० ॥

आसनंवसनपात्रंशय्यांयाननिकेतनम् ।

गृह्यकंवस्तुजातश्चस्वच्छात्स्वच्छंप्रशस्यते ॥ ९१ ॥

अर्थ—आसन, वस्त्र, पात्र, शय्य, पान, गृह, गृहसामग्री यह वस्तुमें जितनी निर्मलहों उतनीही अच्छी हैं ॥ ९१ ॥

समाप्याह्निककर्माणि स्वाध्यागंगृहकर्म वा ।

गृहस्थो नियतं कुर्यान्नैव तिष्ठेन्निरुद्यमः ॥ ९२ ॥

अर्थ—आह्निक कार्यको समाप्त करके गृहस्थको अध्ययन वा गृहकर्म करना चाहिये, क्षणमात्रभी निरुद्यम होकर न रहे ॥ ९२ ॥

पुण्यतीर्थेषु पुण्यतिथौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

जपदानं प्रकुर्वाणः त्रेयसानिलयो भवेत् ॥ ९३ ॥

अर्थ—पुण्यतीर्थमें, पुण्यतिथिमें चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण में जप करनेसे मंगलको प्राप्त होता है ॥ ९३ ॥

कलावन्नगतप्राणानोपवासः प्रज्ञस्यते ।

उपवासप्रतिनिधावेकं दानं विधीयते ॥ ९४ ॥

अर्थ—कलिकालके मनुष्योंका प्राण अन्नमें है, अतएव इस युगमें उपवास श्रेष्ठ नहीं है कलियुगमें केवल दान देना ही उपवासका बदला कहा गया है ॥ ९४ ॥

फलौ दानं महेशानि । सर्वसिद्धिकरं भवेत् ।

तत्पात्रं केवलं ज्ञेयो दरिद्रः सत्क्रियान्वितः ॥ ९५ ॥

अर्थ—हे महेश्वर ! कलियुगमें केवल दान करना ही सब सिद्धियोंका कारण है केवल श्रेष्ठक्रियासे युक्त दीन दरिद्र पुरुषको ही दानका पात्र कहा है ॥ ९५ ॥

मासवत्सरपक्षाणामारम्भदिनमम्बिके ।

चतुर्दश्यष्टमीशुक्लातथैकादशीकुहूः ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! महीनेके पहले दिन, वर्षके पहले दिन, पक्षके पहले दिन चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्ल पक्षकी एकादशी, अमावास्या ॥ ९६ ॥

निजजन्मदिनञ्चैव पित्रोर्मरणवासरः ।

वेधोत्सवदिनञ्चैव पुण्यकालः प्रकीर्तितः ॥ ९७ ॥

— अर्थ—अपना जन्मदिन, पिताका मरणदिन, विधिमें कहा हुआ उत्सवका दिन यह सब दिन पुण्यकाल कहे जाते हैं ९७

गङ्गानदीमहानद्योगुरोःसदनमेवच ।

प्रसिद्धदेवताक्षेत्रंपुण्यतीर्थप्रकीर्तितम् ॥ ९८ ॥

— अर्थ—गंगानदी, महानदी, गुरुगृह, प्रसिद्धदेवता, क्षेत्र यह समस्त पुण्यतीर्थ कहे जाते हैं ॥ ९८ ॥

त्यक्त्वास्वाध्ययनंपितोःशुश्रूषान्दाररक्षणम् ।

नरकायभवेत्तीर्थतीर्थायव्रजतानृणाम् ॥ ९९ ॥

— अर्थ—अध्ययन, मातापिताकी सेवा करना, भार्याकी रक्षा करना इन सबको छोड़कर जो तीर्थमें जाता है : उसके लिये तीर्थ नरकका कारण होता है ॥ ९९ ॥

नतीर्थसेवानारीणानोपवासादिकाःक्रियाः ।

नैवव्रतानानियमोभर्तुःशुश्रूषणंविना ॥ १०० ॥

अर्थ—स्त्रियोंके लिये पतिसेवाके सिवाय तीर्थयात्राका विधान नहीं है, न व्रत करनेके अनुष्ठानका विधान है ॥ १०० ॥

भर्तव्योपितांतीर्थतपोदानंव्रतंशुरुः ।

तस्मात्सर्व्वात्मनानारीपतिसेवांसमाचरेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ—स्त्रियोंके लिये स्वामीही तीर्थ, स्वामीही तपस्या, स्वामीही दान, स्वामीही व्रत और स्वामीही गुरु हैं । अतएव स्वामिसेवा करना स्त्रीका सर्वप्रकार कर्तव्य है ॥ १०१ ॥

पत्युःप्रियंसदाकुर्याद्भूचसापरिचर्यया ।

तदाज्ञानुचरीभूत्वातोपयेत्पतिशान्धवान् ॥ १०२ ॥

अर्थ—स्त्रियोंका कर्तव्य यही है वचनसे. सेवामें मदा स्वामीका प्रिय कार्य करे और सदा आज्ञामें रहकर पतिको और पतिके भाईबन्धुओंको संतुष्ट करे ॥ १०२ ॥

नेक्षेत्पतिं क्रूरदृष्ट्या श्रावयेन्नैव दुर्वचः ।

नाप्रियं मनसा वापि चरेद्भर्तुः पतिव्रता ॥ १०३ ॥

अर्थ-पतिको क्रूरदृष्टिसे नहीं देखे, न दुर्वाक्य सुनावे पतिव्रता नारी मनसे स्वामीका अप्रिय कार्य नहीं करे ॥ १०३ ॥

कायेन मनसा वाचा सर्वदा प्रियकर्मभिः ॥

याप्रीणयति भर्तारं सैव ब्रह्मपदं लभेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ-जो स्त्री, मन, वचन, कार्यसे और प्रियकार्य करके सदा स्वामीको संतुष्ट रखती है वह ब्रह्मपदको प्राप्त करसक्ती है ॥ १०४ ॥

नान्यवक्त्रं निरीक्षेत नान्यैः सम्भाषणञ्चरेत् ।

न चाङ्गदंशयेदन्यान् भर्तुराज्ञानुसारिणी ॥ १०५ ॥

अर्थ-स्त्रियोंको और पुरुषका मुँह नहीं देखना चाहिये, औरके साथ बात नहीं करनी चाहिये और पुरुषको शरीर नहीं दिखावे, सदा स्वामीकी आज्ञामें रहे ॥ १०५ ॥

तिष्ठेत्पित्तोर्वशेवा ल्ये भर्तुः सम्प्राप्तयौवने ।

वार्द्धक्ये पतिवन्धूनां न स्वतन्त्रा भवेत्काचित् ॥ १०६ ॥

अर्थ-बालकपनके समय पिताकी अधीनतामें, जवानीके समय पतिके अधीनतामें और बुढ़ापेमें स्वामीके बंधुबान्धवोंकी अधीनतामें रहे, परन्तु स्त्रीको कभी स्वाधीन नहीं होना चाहिये ॥ १०६ ॥

अज्ञातपतिमर्यादां मज्ञातपतिसेवनाम् ।

नोद्वाहयेत्पितावालामज्ञातधर्मशासनाम् ॥ १०७ ॥

अर्थ-जिस नारीने पतिकी मर्यादाको नहीं जाना है, (जो स्त्री पतिकी) सेवा करनेके योग्य नहीं है, जो स्त्री धर्मके शासनको नहीं जानती पिताको चाहिये कि, ऐसी बालिका कन्याका विवाह न करे ॥ १०७ ॥

नरमांसं न भुञ्जीयान्नराकृतिपशून्स्तथा ।

बहूपकारकान्गाश्च मांसादात्र सर्वजितान् ॥ १०८ ॥

अर्थ-नरमांस, नराकार, पशुकामांस, महोपकारक गोजातिका मांस, गृधादिमांसभोजी जन्तुओंका नीरस मांस भक्षण न करे ॥ १०८ ॥

फलानि ग्राम्यवन्यानि मूलानि विविधानि च ।

भूमिजातानि सर्वाणि भोज्यानि स्वेच्छया शिवे ! ॥ १०९ ॥

अर्थ-हे शिवे ! पृथ्वीसे उत्पन्न हुए गाँवके और वनके अनेक प्रकारके फलमूल इच्छानुसार भक्षण करने चाहिये ॥ १०९ ॥

अध्यापनं याजनञ्च विप्राणां व्रतमुत्तमम् ।

अशक्तौ क्षत्रियविशां वृत्तैर्निर्वाहमाचरेत् ॥ ११० ॥

अर्थ-ब्राह्मणोंके लिये पढ़ाना और यज्ञ करना यह दो वृत्तियें श्रेष्ठ हैं इनसे यदि जीविकाका निर्वाह न हो तो क्षत्री या वैश्यकी वृत्ति ग्रहण करले ॥ ११० ॥

राजन्यानाञ्च सद्वृत्तसंग्रामो भूमिशासनम् ।

अत्राशक्तौ षणिग्वृत्तं शूद्रवृत्तमथाश्रयेत् ॥ १११ ॥

अर्थ-संग्राम करना और प्रजापालन करना ये दो वृत्ति क्षत्रियोंकी हैं, यदि इन वृत्तियोंसे जीविकाका निर्वाह न हो तो वैश्यकी वृत्तिको ग्रहण करे । यदि वैश्यकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह न हो तब शूद्रकी वृत्तिका ग्रहण करना चाहिये ॥ १११ ॥

वाणिज्याशक्तवैश्यानां शूद्रवृत्तमदूषणम् ।

शूद्राणां परमेशानि । सेवावृत्तिर्विधीयते ॥ ११२ ॥

अर्थ-जो वैश्यगण वाणिज्यसे जीविकाका निर्वाह नहीं करसके उनको दोषरहित शूद्रकी वृत्तिका अवलम्बन करन

चाहिये । शूद्रोंको, सेवाकेद्वारा अपनी जीविकाको निर्वाह करना चाहिये ॥ ११२ ॥

सामान्यानान्तुवर्णानांविप्रवृत्त्यन्यवृत्तिषु ।

अधिकारोऽस्तिदेवेशि ! देहयात्राप्रसिद्धये ॥ ११३ ॥

अर्थ-हे देवेश्वर ! जो साधारण जातियें हैं उनको देह यात्रा निर्वाह करनेके लिये ब्राह्मणकी वृत्तिके सिवाय और सब वृत्तियोंका अधिकार है ॥ ११३ ॥

अद्वेष्टानिर्ममःशान्तःसत्यवादीजितेन्द्रियः ।

निर्मत्सरोनिष्कपटःस्ववृत्तौब्राह्मणोभवेत् ॥ ११४ ॥

अर्थ-ब्राह्मणोंका कर्तव्य है कि-द्वेषरहित, ममतारहित, शान्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, मत्सररहित और कपट-हीन होकर अपनी वृत्तिका अनुसरण करे ॥ ११४ ॥

अध्यापयेत्पुत्रबुद्ध्याशिष्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।

सर्वलोकहितैर्पास्यात्पक्षपातविनिर्मुक्तः ॥ ११५ ॥

अर्थ-वह सर्वलोकका हित करे और पक्षपातरहित होकर चेलोंको पुत्रकी समान जानकर पढ़ावे । और ऐसा कार्य करे कि, जिससे चले श्रेष्ठ मार्गपर चलें ॥ ११५ ॥

मिथ्यालापमसूयाञ्चव्यसनाप्रियभाषणम् ।

नीचैःप्रसक्तिदम्भश्चसर्वथाब्राह्मणस्त्यजेत् ॥ ११६ ॥

अर्थ-ब्राह्मणका कर्तव्य है कि-मिथ्यावचन, नीचलोगोंमें और नीच बातोंमें आसक्ति और दम्भ इन सबको छोड़-देवे ॥ ११६ ॥

युयुत्सागर्हितासन्धौसन्मानैःसन्धिरुत्तमा ॥

मृत्युर्जयोवायुर्द्वेपुराजन्यानांवरानने ! ॥ ११७ ॥

अर्थ-हे वरानने ! क्षत्रियोंका कर्तव्य यह है कि, सन्धि स्थिर होजानेपर फिर युद्धका अभिलाष नहीं करे । सन्मानकी रक्षा करके सन्धिको स्थिर रखवै । युद्धमें जय हो या मृत्यु हो दोनोंही उनको श्रेष्ठ हैं (उनको युद्धसे कभी नहीं भागना चाहिये) ११७

अलोभीस्यात्प्रजावित्तेगृहीयात्सम्मितङ्करम् ।

रक्षन्नङ्गीकृतंधर्मपुत्रवत्पालयेत्प्रजाः ॥ ११८ ॥

अर्थ-वह प्रजाके धनका लोभ न करे, यथा समयमें नियत कर (महजूर) ग्रहण करे अंगीकार कियेहुए धर्मकी रक्षा करके पुत्रकी समान प्रजाका पालन करे ॥ ११८ ॥

न्यायंयुद्धन्तथासन्धिकर्माण्यन्यानियानिच ।

मन्त्रिभिःसहकुर्वीतविचार्यसर्वथानृपः ॥ ११९ ॥

अर्थ-युद्धकार्य, सन्धिकार्य और सारे राजकार्य उनको मंत्रियोंके साथ उत्तम विचार करके करने चाहिये ॥ ११९ ॥

धर्मयुद्धेनयोद्धव्यं न्यायदण्डपुरस्क्रियाः ।

करणीयायथाशास्त्रंसन्धिकुर्याद्यथावलम् ॥ १२० ॥

अर्थ-उनको धर्मानुसार युद्ध करना चाहिये, न्यायानुसार दंड और पुरस्कार देना चाहिये, अपना बल समझकर शास्त्रके अनुसार सन्धि करनी चाहिये ॥ १२० ॥

उपायैःसाधयेत्कार्यंयुद्धंसन्धिञ्चशत्रुभिः ।

उपायानुगताःसर्वाजयक्षेमविभूतयः ॥ १२१ ॥

अर्थ-वह लोग उपायसे कार्यको सिद्ध करें और उपायसे शत्रुओंके साथ सन्धि विग्रह करें । जो कर्म उपायसे किये जाते हैं, उनसेही जय, ऐश्वर्य और मंगल होता है ॥ १२१ ॥

स्यान्नीचसङ्गाद्विरतःसदाविद्रज्जनप्रियः ।

धीरोविपत्तौदक्षश्चशूलिवान्सम्मितव्ययी ॥ १२२ ॥

अर्थ-क्षत्रियोंको सदाही पंडितोंका प्यारा होना चाहिये कदापि नीचोंका संग करना योग्य नहीं । उसको विपत्तिका-लमेंभी अपने स्वभावको सुशील और उचित खर्च करनेवाला रखे विपत्तिके समयभी दक्षता प्रगट करना योग्य है ॥ १२२ ॥

निपुणोदुर्गसंस्कारेशस्त्रशिक्षाविचक्षणः ।

स्वसैन्यभावान्वेषीस्याच्छिष्येद्रणकौशलम् ॥ १२३ ॥

अर्थ-उनको दुर्गका संस्कार करनेमें निपुण होना चाहिये । शस्त्रकी शिक्षा अत्युत्तम हुईहो अपनी सेवकोंके मनका भाव उनको जानना चाहिये और सेनाको रणकौशल शिखाना चाहिये ॥ १२३ ॥

नहन्यान्मूर्छितान्युद्धेत्यक्तशस्त्रान्पराङ्मुखान् ।

बलनितात्रिपून्देवि ! रिपुदारशिशूनपि ॥ १२४ ॥

अर्थ-हे देवि ! संग्राममें मूर्च्छित हुआँको, अस्त्रका त्याग किये हुआँको रणसे भागेहुआँको, युद्धसे विमुख हुआँको, बलपूर्वक लाएहुये शत्रुओंको और विपक्षके स्त्री पुत्रोंको नाश नहीं करें ॥ १२४ ॥

जयलब्धानिवस्तूनिसन्धिप्राप्तानियानिच ।

वितरेत्तानिसैन्येभ्योयथायोग्यविभागतः ॥ १२५ ॥

अर्थ-जो वस्तुयें जयद्वारा या सन्धिद्वारा प्राप्त होजाँय उन सबका यथायोग्य विभाग करके सेनाको बाँटदे ॥ १२५ ॥

शौर्य्यवृत्तञ्चयोद्धृणांज्ञेयंराज्ञापृथक्कृतम् ।

बहुसैन्याधिपन्नैककुर्व्यादात्महितेतरतः ॥ १२६ ॥

अर्थ-योधाओंका चरित्र और शूरपन राजाको पृथक् २ जानना चाहिये । जो अपना हित चाहते हैं वह कभी एक पुरुषको बहुतसी सेनाका नायक नहीं करते ॥ १२६ ॥

नैकस्मिन्विश्वसेद्राजानैकंन्यायेनियोजयेत् ।

साम्यंक्रीडोपहासञ्चनीचैःसहविवर्जयेत् ॥ १२७ ॥

अर्थ—भलीभाँतिसे एकही पुरुषका राजाको विश्वास न करना चाहिये, एकही पुरुषको विचार कार्यका भार न सौंपे । नीचलोगोंके साथ राजाको खेल या उपहास नहीं करना चाहिये, नीचोंके प्रीतिभी सम्भव नहीं दिखावे ॥ १२७ ॥

बहुश्रुतःस्वल्पभाषीजिज्ञासुर्ज्ञानवानपि ।

बहुमानोपिनिर्दम्भोधीरोदण्डप्रसादयोः ॥ १२८ ॥

अर्थ—राजा बहुश्रुत होकरभी स्वल्पभाषी, ज्ञानवान् होकरभी जिज्ञासु और बहुसन्मानयुक्त होकरभी दम्भरहित हो । राजाको दण्ड देनेके समय या प्रसन्नताके समय एक साथ अधीर न होना चाहिये ॥ १२८ ॥

स्वयंवाचरदृष्ट्यावाप्रजाभावान्विलोकयेत् ।

एवंस्वजनभृत्यानांभावान्पश्येन्नराधिपः ॥ १२९ ॥

अर्थ—राजा अपनेआप या चारचक्षुसे (दूतके द्वारा) प्रजाका भाव जाने और सेवक व बन्धुबान्धवोंके भावकोभी जाने ॥ १२९ ॥

क्रोधादम्भात्प्रमादाद्वासम्मानंशासनन्तथा ।

सहसानैवकर्तव्यंस्वामिनातत्त्वदर्शिना ॥ १३० ॥

अर्थ—तत्त्वदर्शी विचारवान् राजा क्रोध करके, दम्भ करके वा असावधानी करके हठात् किसीको सन्मान या शासन नहीं करे ॥ १३० ॥

सैन्यसेनाधिपामात्यवनितापत्यसेवकाः ।

पालनीयाःसदोपाश्चेदण्ड्याराज्ञायथाविधि ॥ १३१ ॥

अर्थ-सेनाका, सेनापतिका और मंत्रियोंके छात्र, पुत्र व सेवकोंका पालन करना राजाका कर्तव्य है यदि उपरोक्त जनोंमें दोष हो तो यथाविधिसे दण्ड देना चाहिये ॥ १३१ ॥

उन्मत्तानसमर्थीश्वरालांश्चमृतवान्धवान् ।

ज्वराभिभूतान्वृद्धांश्चरक्षयेत्पितृवन्नृपः ॥ १३२ ॥

अर्थ-जो अभिभावक हीन होनेसे उन्मत्त है, असमर्थ है, बालक है, रोगी है, वृद्ध है, राजाको पुत्रकी समान उनका पालन करना चाहिये ॥ १३२ ॥

वैश्यानांकृपिवाणिज्यंवृत्तंविद्विसनातनम् ।

येनोपायेनलोकानां देहयात्राप्रसिद्ध्यति ॥ १३३ ॥

अर्थ-जिस प्रकारके खेती और वाणिज करनेसे शरीरयात्रा निर्वाह हो सकती है वैसीही खेती और वैसाही वाणिज करना वैश्योंका सनातन व्यापार है ॥ १३३ ॥

अतःसर्वात्मनादेवि ! वाणिज्यकृपिकर्मसु ।

प्रमादव्यसनालस्यंमिथ्याशास्त्रंविवर्जयेत् ॥ १३४ ॥

अर्थ-हे देवि ! इसकारणसेही वाणिज्य और कृषिकार्यमें प्रमाद, व्यसन, आलस्य, मिथ्यापन और शठता इन सबको सर्वप्रकारसे छोड़ देना वैश्योंका कर्तव्य है ॥ १३४ ॥

निश्चित्यवस्तुतन्मूल्यमुभयोःसन्मतौशिवे ।

परस्परार्द्धीकरणंक्रयसिद्धिस्ततोभवेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! क्रेता और विक्रेताकी सम्मतिसे जब वस्तु और उसका मोल ठीक होजाय और दोनों उसको अंगीकार करले तब क्रय विक्रय सिद्ध होगा ॥ १३५ ॥

मत्तविक्षिप्तवालानामरिग्रस्तनृणांप्रिये ! ।

रोगविभ्रान्तबुद्धीनामसिद्धौदानविक्रयौ ॥ १३६ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! जो मत्तवाले हैं, पागल हैं या शत्रु करके बंदी कर लिये गये हैं अथवा रोग होनेसे जिनकी बुद्धि बिगड़ गई है वह यदि दान करें या कुछ बेचे तो वह बेचना और वह दान देना असिद्ध है ॥ १३६ ॥

क्रयसिद्धिरदृष्टानांगुणश्रवणतोभवेत् ।

विपर्ययेतद्गुणानामन्यथाभवतिक्रयः ॥ १३७ ॥

अर्थ—न देखी हुई वस्तुका गुण सुनकरही क्रय (मोल लेना) सिद्ध होता है, परन्तु वर्णन किये हुए गुणका व्यतिक्रम होनेसे विक्रय असिद्ध होगा. हाथी, घोड़ा और ऊँट इनके गुण सुनकरही मोल लेना बेचना सिद्ध होता है परन्तु यदि वर्णन किये हुये गुण न हो तो वह विक्रय असिद्ध होगा ॥ १३७ ॥

कुञ्जरोष्टुरङ्गाणांगुप्तदोषप्रकाशनात् ।

वर्षातीतेऽपितत्क्रयमन्यथाकर्तुमर्हति ॥ १३८ ॥

अर्थ—यदि हाथी, घोड़े और ऊँटके गुप्त दोष प्रकाशित हो जाँय, तो एक वर्षके पीछे भी वह क्रयविक्रय अन्यथा हो सकता है ॥ १३८ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणांभाजनंमानवंवपुः ।

अतःकुलेशि ! तत्क्रयोनसिद्धयेन्ममशासनात् ॥ १३९ ॥

अर्थ—हे कुलेश्वर ! मनुष्योंका शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन है अतएव मेरी आज्ञा है कि, इस शरीरको कोई खरीदे या बेच नहीं सकेगा, जो कोई ऐसा करेगा तो वह खरीदना बेचना असिद्ध होगा ॥ १३९ ॥

यवगोधूमधान्यानां लाभो वपै गते प्रिये ! ।

युक्तश्चतुर्थो धातूनामष्टमः परिकीर्तितः ॥ १४० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो, गेहूँ, धान्य (इनको यदि उधार ले लिया जाय) तो वर्षसे केवल मूलका चौथाई अंश लाभ अर्थात् बढो-तरीमें देना पड़ेगा धातु द्रव्य (रुपया पैसा इत्यादि) उधार लेनेसे एक वर्षमें मूलका आठवाँ अंश कुसीद (सूद) देनेका नियम है ॥ १४० ॥

ऋणकृपौ च वाणिज्ये तथा सर्वेषु कर्मसु ।

यद्यदंगीकृतं मर्त्यैस्तत्कार्यं शास्त्रसम्मतम् ॥ १४१ ॥

अर्थ-ऋण, खेती, वाणिज्य और सारे कार्य जैसे माने जाँय, वैसेही उनको करना चाहिये यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ १४१ ॥

दक्षः शुचिः सत्यभीपाजितनिद्रोजितेन्द्रियः ।

अप्रमत्तो निरालस्यः सेवावृत्तौ भवेन्नरः ॥ १४२ ॥

अर्थ-सेवावृत्ति ग्रहण करनेवालोंको दक्ष अर्थात् अपने कार्य-में चतुर, विशुद्धाचार, सत्यवादी, निद्राके बशमें न रहना, जिसेन्द्रिय, प्रमादरहित और आलस्यहीन होना चाहिये ॥ १४२ ॥

प्रभुर्विष्णुसमोऽमात्यस्तज्जायाजननीसमा ।

मान्यास्तद्बान्धवाभृत्यैरिहामुत्तसुखेप्सुभिः ॥ १४३ ॥

अर्थ-इसलोकमें और परलोकमें सुखकी कामना करनेवाले भृत्योंको स्वामीको विष्णुकी समान जानकर सन्मान करना और उसकी जननीके भार्याकी समान जानना चाहिये और स्वामीके बन्धु बान्धव जो हैं उनके सन्मानकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥ १४३ ॥

भर्तुर्मित्राणिमित्राणिजानीयात्तदरीनरीन् ।

सभीतिःसर्व्वदातिष्ठेत्प्रभोराज्ञांप्रतीक्षयन् ॥ १४४ ॥

अर्थ-प्रभुके मित्रोंको अपना मित्र समझे । स्वामीके शत्रु-
ओंको अपना शत्रु समझे । सब समयमें स्वामीकी आज्ञाको
परखते हुए समयहृदय रहना चाहिये ॥ १४४ ॥

अपमानंगृहच्छिद्रंगुत्पथैकथितञ्चयत् ।

भर्तुर्ग्लानिकरंयच्चगोपयेदतियत्रतः ॥ १४५ ॥

अर्थ-अपमान, गृहछिद्र, गुप्तवाक्य अथवा जिससे प्रभुको
ग्लानि हो ऐसी बात अतियत्नसे छिपानी योग्य है ॥ १४५ ॥

अलोभःस्यात्स्वामिधनेसदास्वामिहितेरतः ।

तत्सन्निधावसद्भापांकीडांहास्यंपरित्यजेत् ॥ १४६ ॥

अर्थ-सदाही स्वामीके धनमें लोभ न करे स्वामीके हितमें
सदा तत्पर रहे स्वामीके निकट असत् वाक्यका कहना,
कीड़ा और हँसना इन सबको छोड़ देना योग्य है ॥ १४६ ॥

नपापमनसापश्येदपितृहृहकिङ्करीः ।

विविक्तशय्यांहास्यञ्चताभिःसहविवर्जयेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ-स्वामीके गृहकी दासियोंको पापकी दृष्टिसे न देखे ।
उनके साथ निर्जनमें एक शोजपर शयन न करे, हास परि-
हासभी न करे ॥ १४७ ॥

प्रभोःशय्यासनंयानंवसनम्भाजनानिच ।

उपानद्रूपणंशस्त्रंतात्मार्यविनियोजयेत् ॥ १४८ ॥

अर्थ-स्वामीकी शोज, आसन, सवारी, वसन, भाजन,
तुका, भूषण, शस्त्रको स्वयं व्यवहार न करे ॥ १४८ ॥

क्षमांकृतापराधश्चेत्प्रार्थयेदग्रतःप्रभोः ।

प्रागल्भ्यंप्रौढवादश्चसाम्याचारंविवर्जयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-यदि कोई अपराध होजाय तो स्वामीसे सेवकको क्षमा माँगना चाहिये । प्रभुके समीप धृष्टता, प्रौढता और प्रभुत्व नहीं दिखावै ॥ १४९ ॥

सर्वैवर्णाःस्वस्ववर्णैर्ब्राह्मिणैर्ब्राह्मन्तथाशनम् ।

कुर्वीरन्भैरवीचक्रात्तत्त्वचक्राद्वेशिवे ! ॥ १५० ॥

अर्थ-हे शिवे ! यदि तत्त्वचक्रका अनुष्ठान न हो तो सब जातियोंके मनुष्य अपने २ वर्णके साथ ब्रह्मविवाह और भोजन भैरवीचक्रके द्वाराही निर्वाह करना चाहिये ॥ १५० ॥

उभयत्रमहेशानि । शैवोद्वाहःप्रकीर्तितः ।

तथादानेचपानेचवर्णभेदो न विद्यते ॥ १५१ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! तत्त्वचक्र और भैरवीचक्र दोनोंके विधानसेही शैवविवाह हो सक्ता है । इन दोनों चक्रोंमें पानभोजनके समय वर्णभेदका विचार नहीं करे ॥ १५१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

किमिदंभैरवीचक्रन्तत्त्वचक्रञ्चकीदृशम् ।

तत्सर्वथोतुमिच्छामिकृपयावक्तुमर्हसि ॥ १५२ ॥

अर्थ-श्रीभगवतीजीने कहा-भैरवीचक्र कैसा है ? तत्त्वचक्र किसप्रकारका है ? मैं इन सबको श्रवण करनेकी अभिलाषा करती हूँ कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १५२ ॥

श्रीवदाशिव उवाच ।

कुलपूजाविधौदेवि ! चक्रानुष्ठानमीरितम् ।

विशेषपूजासमयेतत्कार्य्यसाधकोत्तमैः ॥ १५३ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहा, हे देवि ! कुलपूजाविधान कहनेके समय मैंने चक्रका अनुष्ठान कहा है । जो लोग उत्तम साधक हैं वह विशेषपूजाके समय वैसेही चक्रका अनुष्ठान करें ॥ १५३ ॥

भैरवीचक्रविषयेनतादृङ्नियमःप्रिये ! ।

यथासमयमासाद्यकुर्याच्चक्रमिदंशुभम् ॥ १५४ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! भैरवीचक्रके विषय ऐसा कोई नियम नहीं है । चाहे जिस समयमें इस शुभ भैरवीचक्रका अनुष्ठान किया जासक्ता है ॥ १५४ ॥

विधानमस्यवक्ष्यामि साधकानां शुभावहम् ।

आराधितायेन देवीतूर्णयच्छति वाञ्छितम् ॥ १५५ ॥

अर्थ—इस समयमें भैरवीचक्रका विधान कहता हूं । इस भैरवीचक्रसे साधकोंका मंगल होता है । इस भैरवीचक्रमें भगवतीकी आराधना करनेसे वह शीघ्रतासे अभीष्टको सिद्ध करती है ॥ १५५ ॥

कुलाचार्यैरम्यभूमावास्तीर्यासनमुत्तमम् ।

कामाद्येनास्त्रबीजेन संशोध्योपविशेत्ततः ॥ १५६ ॥

अर्थ—कुलाचार्य रमणीयस्थानमें उत्तम आसन विछाये “क्रीं फट्” इस मंत्रसे इस आसनको शुद्ध करके उसपर बैठे ॥ १५६ ॥

सिन्दूरेण कुसीदेन केवलेन जलेन वा ।

त्रिकोणञ्चतुरस्रमण्डलं रचयेत्सुधीः ॥ १५७ ॥

अर्थ—ज्ञानवान् साधक सिन्दूरसे, लालचंदनसे अथवा केवल जलसे त्रिकोण और चौकोणमण्डलको बनावे ॥ १५७ ॥

विचित्रवटमानीयदध्यक्षताविभूषितम् ।

फलपल्लवसंयुक्तं सिन्दूरतिलकान्वितम् ॥ १५८ ॥

अर्थ-फिर उस चित्रित घटको स्थापन करके तिसमें दही और अक्षत दान करे और उस घड़ेमें सिन्दूरका तिलक लगाकर तिसमें फल और पल्लव संयुक्त करे ॥ १५८ ॥

सुवासितजलैःपूर्णमण्डलेतत्रसाधकः ।

प्रणवेनतुसंस्थाप्यधूपदीपौप्रदर्शयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ-फिर साधक इस घड़ेको सुगन्धित जलसे परिपूर्ण करे । फिर प्रणव पाठ करके उसके इस मण्डलपर स्थापनपूर्वक धूप दीप दिखावे ॥ १५९ ॥

सम्पूज्यगन्धपुष्पाभ्यांचिन्तयेद्दृष्टदेवताम् ।

संक्षेपपूजाविधिनातत्रपूजांसमाचरेत् ॥ १६० ॥

अर्थ-फिर गन्धपुष्पसे अर्चना करके तिसमें दृष्टदेवताका ध्यान करे और पूजाके संक्षेप विधानानुसारतिसमें दृष्टदेवताकी पूजा करे ॥ १६० ॥

विशेषमत्रवक्ष्यामिशृणुष्वामरवन्दिते ! ।

गुर्वादिनवपात्राणानात्रस्थापनमिष्यते ॥ १६१ ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते ! इस पूजामें जो विशेष है, उसको कह-ताहूं श्रवण करो । इस पूजामें गुरुपात्रादि नौ पात्रोंके स्थापन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ १६१ ॥

यथेष्टन्तत्त्वमादायसंस्थाप्यपुरतोव्रती ।

प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेणदिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ १६२ ॥

अर्थ-साधक इस पूजाके समय अभिलाषानुसार तत्त्व सन्मुख स्थापन करके “फट्” मन्त्र पढ़ प्रोक्षितकर, दिव्य-दृष्टिसे देखे ॥ १६२ ॥

अलियन्त्रेगन्धपुष्पंदत्त्वातत्रविचिन्तयेत् ।

आनन्दभैरवीदेवीमानन्दभैरवन्तथा ॥ १६३ ॥

अर्थ-फिर मध्यपात्रमें गन्ध पुष्प डालकर तिसमें देवी आनन्दभैरवी और आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६३ ॥

नवयौवनसम्पन्नांतरुणारुणविग्रहाम् ।

चारुहासामृताभापोल्लसद्दशनपङ्कजाम् ॥ १६४ ॥

अर्थ-जो नवयौवनयुक्त हैं, जिनका शरीर तरुणअरुणकी समान कान्तिमान है जिसकी अति मनोहर हास्यामृत कान्तिके द्वारा वदनकमल विकसित हुआ है ॥ १६४ ॥

नृत्यगीतकृतामोदानानाभरणभूषिताम् ।

विचित्रवसनान्धायेद्वराभयकराम्बुजाम् ॥ १६५ ॥

अर्थ-जो नृत्यगीतमें सदा आनन्दको प्रकाशित किया करती हैं, जो अनेकप्रकारके भूषणोंसे शोभायमान हैं, जो विचित्र वस्त्र पहन रही हैं, जो एक हाथसे वर और एक हाथसे अभय दे रही हैं, ऐसी आनन्दभैरवीका ध्यान करे ॥ १६५ ॥

इत्यानन्दमयीं ध्यात्वास्मरेदानन्दभैरवम् ॥ १६६ ॥

अर्थ-इसप्रकार आनन्दभैरवीका ध्यान करके आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६६ ॥

कर्पूरपूरधवलंकमलायताक्षं

दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम् ॥

वामेनपाणिकमलेनसुधाक्षपात्रं

दक्षेणशुद्धिगुटिकान्दधतंस्मरामि ॥ १६७ ॥

अर्थ-जो कर्पूरके ढेरकी समान श्वेतवर्ण हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान दीर्घ हैं, जिनका शरीर दिव्य वसन और दिव्य भूषणोंसे भूषित होकर शोभायमान हो रहा है, जो बाँये

अर्थ-फिर उस चित्रित घटको स्थापन करके तिसमें दही और अक्षत दान करे और उस घड़ेमें सिन्दूरका तिलक लगाकर तिसमें फल और पल्लव संयुक्त करे ॥ १५८ ॥

सुवासितजलैःपूर्णमण्डलेतत्रसाधकः ।

प्रणवेनतुसंस्थाप्यधूपदीपौप्रदर्शयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ-फिर साधक इस घड़ेको सुगन्धित जलसे परिपूर्ण करे । फिर प्रणव पाठ करके उसके इस मण्डलपर स्थापनपूर्वक धूप दीप दिखावे ॥ १५९ ॥

सम्पूज्यगन्धपुष्पाभ्यांचिन्तयेदिष्टदेवताम् ।

संक्षेपपूजाविधिनातत्रपूजांसमाचरेत् ॥ १६० ॥

अर्थ-फिर गन्धपुष्पसे अर्चना करके तिसमें इष्टदेवताका ध्यान करे और पूजाके संक्षेप विधानानुसार तिसमें इष्टदेवताकी पूजा करे ॥ १६० ॥

विशेषमत्रवक्ष्यामिशृणुष्वामरवन्दिते ! ।

गुर्वादिनवपात्राणां तत्रस्थापनमिष्यते ॥ १६१ ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते ! इस पूजामें जो विशेष है, उसको कह-ताहूं श्रवण करो । इस पूजामें गुरुपात्रादि नौ पात्रोंके स्थापन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ १६१ ॥

यथेष्टन्तत्त्वमादायसंस्थाप्यपुरतोव्रती ।

प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेणदिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ १६२ ॥

अर्थ-साधक इस पूजाके समय अभिलाषानुसार तत्त्व सन्मुख स्थापन करके “फट्” मन्त्र पढ़ प्रोक्षितकर, दिव्य-दृष्टिसे देखे ॥ १६२ ॥

अलियन्त्रेगन्धपुष्पंदत्त्वात्तत्रविचिन्तयेत् ।

आनन्दभैरवीदेवीमानन्दभैरवन्तथा ॥ १६३ ॥

अर्थ-फिर मध्यपात्रमें गन्ध पुष्प डालकर तिसमें देवी आनन्दभैरवी और आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६३ ॥

नवयौवनसम्पन्नांतरुणारुणविग्रहाम् ।

चारुहासामृताभापोल्लसदशनपङ्कजाम् ॥ १६४ ॥

अर्थ-जो नवयौवनयुक्त हैं, जिनका शरीर तरुणअरुणकी समान कान्तिमान है जिसकी अति मनोहर हास्यामृत कान्तिके द्वारा वदनकमल विकसित हुआ है ॥ १६४ ॥

नृत्यगीतकृतामोदानानाभरणभूषिताम् ।

विचित्रवसनान्धायेद्वराभयकराम्बुजाम् ॥ १६५ ॥

अर्थ-जो नृत्यगीतमें सदा आनन्दको प्रकाशित किया करती हैं, जो अनेकप्रकारके भूषणोंसे शोभायमान हैं, जो विचित्र वस्त्र पहन रही हैं, जो एक हाथसे वर और एक हाथसे अभय दे रही हैं, ऐसी आनन्दभैरवीका ध्यान करे ॥ १६५ ॥

इत्यानन्दमयीं ध्यात्वास्मरेदानन्दभैरवम् ॥ १६६ ॥

अर्थ-इसप्रकार आनन्दभैरवीका ध्यान करके आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६६ ॥

कर्पूरपूरधवलंकमलायताक्षं

दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम् ॥

वामेनपाणिकमलेनसुधाक्षपात्रं

दक्षेणशुद्धिगुटिकान्दधतंस्मरामि ॥ १६७ ॥

अर्थ-जो कर्पूरके ढेरकी समान श्वेतवर्ण हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान दीर्घ हैं, जिनका शरीर दिव्य वसन और दिव्य भूषणोंसे भूषित होकर शोभायमान हो रहा है, जो बाँये

करकमलसे शुद्धि अर्थात् मांस, मत्स्य और मुद्रा धारण किये-
हुये हैं ऐसे आनन्दभैरवका स्मरण करना योग्य है ॥ १६७ ॥

ध्यात्वैवमुभयन्तत्रसामरस्यंविचिंतयन् ।

प्रणवादिनमोऽन्तेननाममन्त्रेणदेशिकः ।

संपूज्यगन्धपुष्पाभ्यांशोधयेत्कारणंततः ॥ १६८ ॥

अर्थ-इसप्रकारसे साधक आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी-
का ध्यान करके उस सुरापात्रमें दोनोंका सामरस्य विचार
पहले “प्रणव” फिर “नाम” तदुपरान्त “नमः” उच्चारण
करके गन्ध पुष्पद्वारा पूजाकर पीछेसे सुराका सेवन करे ॥ १६८ ॥

पाशादित्रिकवीजेनस्वाहान्तेनकुलार्चकः ।

अष्टोत्तरशतावृत्त्याजपन्हेतुंविशोधयेत् ॥ १६९ ॥

अर्थ-कुलपूजक, “आं ह्रीं क्लीं स्वाहा” इस मंत्रका एक शत
आठवार जप करके सुराका शोधन करे ॥ १६९ ॥

गृहकाम्यैकचित्तानांगृहिणांप्रवलेकलौ ।

आद्यतत्त्वप्रतिनिधौविधेयंमधुरत्रयम् ॥ १७० ॥

अर्थ-कलिकाल प्रबल होनेके समय सर्व गृहस्थलोग केवल-
कार्यमें ही चित्त लगावेंगे, तिसकालमें उनके अर्थ आद्यतत्त्वके
प्रतिनिधिरूप तीन मधुर विधान करने होंगे ॥ १७० ॥

दुग्धंसितामाक्षिकञ्चविज्ञेयंमधुरत्रयम् ।

अलिरूपमिदंमत्वादेवतायैनिवेदयेत् ॥ १७१ ॥

अर्थ-दूध, चीनी, शहत इन तीनों द्रव्योंका नाम मधुर है
इन मधुरत्रयको मद्यरूप समझकर देवताके निकट निवेदन
करे ॥ १७१ ॥

स्वभावात्कलिजन्मानःकामविभ्रान्तचेतसः ।

तद्रूपेणनजानन्तिशक्तिसामान्यबुद्धयः ॥ १७२ ॥

अर्थ—कलिकालके मनुष्योंकी बुद्धि अतिसामान्य है, उनका मन स्वभावसेही कामदेवकेद्वारा उद्भ्रान्त होगा । वह स्त्रीको शक्तिरूप नहीं विचार सकेंगे ॥ १७२ ॥

अतस्तेपांप्रतिनिधौशेषतत्त्वस्यपार्वति ! ।

ध्यानंदेव्याःपदाम्भोजेस्वेष्टमन्त्रजपस्तथा ॥ १७३ ॥

अर्थ—हे देवि ! इसकारण कलियुगके मनुष्योंके लिये शेष तत्त्वको बदल देवीके चरणका ध्यान और इस मन्त्रका जप करना है ॥ १७३ ॥

ततस्तुप्राप्ततत्त्वानिपललादीनियानिच ।

प्रत्येकंशतधानेनमनुनाचाभिमन्त्रयेत् ॥ १७४ ॥

अर्थ—फिर मांसादि जो तत्त्व उपस्थित हों उनमेंसे प्रत्येक तत्त्वको “आं ह्रीं क्रौं स्वाहा” इस मंत्रसे अभिमन्त्रित करे १७४

सर्वब्रह्ममयंध्यात्वानिमोल्यनयनद्वयम् ।

निवेद्यपूर्ववत्काल्यैपानभोजनमाचरेत् ॥ १७५ ॥

अर्थ—फिर सबको ब्रह्ममय भावना करके दोनों नेत्र मूँद वह सब कालीको निवेदन करके पान और भोजन करे ॥ १७५ ॥

इदन्तुभैरवीचक्रंसर्वतन्त्रेषुगोपितम् ।

तवाग्रेकथितंभद्रे । सारात्सारंपरात्परम् ॥ १७६ ॥

अर्थ—हे भद्रे । यह भैरवीचक्र सारकाभी सार है श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है । यह सब तन्त्रोंमें गुप्त है और मच्छत्र है, प्रकाशित नहीं हुआ आज यह तुमसे प्रकाशित कर कहा ॥ १७६ ॥

विवाहोभैरवीचक्रेतत्त्वचक्रेऽपिपार्वति ।।

सर्वथासाधकेन्द्रेणकर्त्तव्यःशैववर्त्मना ॥ १७७ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! शिवका दिखाया हुआ मार्ग अवलम्बन करनेसे भैरवीचक्र और तत्त्वचक्रमें परिणय सिद्ध करना सब प्रकारसे साधकको उचित है ॥ १७७ ॥

विनापरिणयवीरःशक्तिसेवासमाचरन् ।

परस्त्रीगामिनांपापंप्राप्नुयान्नात्रसंशयः ॥ १७८ ॥

अर्थ-यदि कोई वीर पुरुष विवाहके विना शक्तिकी सेवा करता है । तब उसको परस्त्री गमनके पापमें निश्चय लित होना पड़ता है ॥ १७८ ॥

सम्प्राप्तेभैरवीचक्रेसर्ववर्णाद्विजोत्तमाः ।

निवृत्तेभैरवीचक्रेसर्ववर्णाःपृथक्पृथक् ॥ १७९ ॥

अर्थ-जब भैरवीचक्रका आरम्भ होताहै तब सबजातिके पुरुषही द्विजाति गिने जाते हैं । जब भैरवीचक्र निवृत्त होता है, तब सब वर्ण अलग २ गिने जाते हैं ॥ १७९ ॥

नात्रजातिविचारोऽस्तिनोच्छिष्टादिविवेचनम् ।

चक्रमध्यगतावीराममरूपानचान्यथा ॥ १८० ॥

अर्थ-भैरवीचक्रमें जातिका विचार नहीं है जूँठादिका विचारभी नहीं है चक्रमें बैठे हुए वीरगण मेराही रूप हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १८० ॥

नदेशकालनियमो न वा पात्रविचारणम् ।

येनकेनाहृतंद्रव्यंचक्रेऽस्मिन्विनियोजयेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ-भैरवीचक्रमें देशकालका नियम नहीं है पात्रापात्रका विचारभी नहीं है जो कोई पुरुष चक्रके लायक जो कोई वस्तुभी ले आवे, उसका व्यवहार चक्रमें करना चाहिये १८१

दूरदेशात्समानीतंपक्वंवापकमेव वा ।

वीरेणपशुनावापिचक्रमध्यगतंशुचि ॥ १८२ ॥

अर्थ-यदि कोई द्रव्य दूरदेशसे लाया हुआ हो पका हुआ हो, कच्चा हो, वीर लाया हो, या पशुलाया हो यह सब द्रव्य चक्रमें आतेही पवित्र हो जाँयगे ॥ १८२ ॥

चकारम्भेमहेशानि ! विघ्नाःसबभयाकुलाः ।

विभीतास्तेपलायन्तेवीराणांब्रह्मतेजसा ॥ १८३ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! जब भैरवीचक्रका आरम्भ होताहै तब चक्रमें बैठे हुए वीरोंके ब्रह्मतेजसे त्रसित होकर सब विघ्न भयभीतहो भाग जाते हैं ॥ १८३ ॥

पिशाचागुह्यकायक्षवेतालाःक्रूरजातयः ।

श्रुत्वात्रभैरवीचक्रंदूरंगच्छन्तिसाध्वसम् ॥ १८४ ॥

अर्थ-पिशाच, गुह्यक, यक्ष, वेतालगण, औरभी समस्त क्रूर जातियें भैरवीचक्रका वृत्तान्त सुनतेही भीत होकर दूर भाग जाती हैं ॥ १८४ ॥

तत्रतीर्थानिसर्वाणिमहातीर्थानिकानि च ।

सेन्द्रामरगणाःसर्वेत्त्रागच्छन्तिसादरम् ॥ १८५ ॥

अर्थ-जहाँपर भैरवीचक्र होताहै उस स्थानमें समस्त तीर्थ महातीर्थादि और देवराजके साथ सब देवता आदरपूर्वक आते हैं ॥ १८५ ॥

चक्रस्थानंमहातीर्थैःसर्वतीर्थाधिकंशिवे ! ।

त्रिदशायत्रवाञ्छन्तितवनैवेद्यमुत्तमम् ॥ १८६ ॥

अर्थ-हे शिवे ! चक्रस्थान महातीर्थ और सब तीर्थों से श्रेष्ठ होता है इस चक्रमें देवतालोगभी तुम्हारे उत्तम नैवेद्यकी आशा करते हैं ॥ १८६ ॥

विवाहोभैरवीचक्रेतत्त्वचक्रेऽपिपार्वति ! ।

सर्वथासाधकेन्द्रेणकर्त्तव्यःशैववर्त्मना ॥ १७७ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! शिवका दिखाया हुआ मार्ग अवलम्बन करनेसे भैरवीचक्र और तत्त्वचक्रमें परिणय सिद्ध करना सब प्रकारसे साधकको उचित है ॥ १७७ ॥

विनापरिणयंवीरःशक्तिसेवासमाचरन् ।

परस्त्रीगामिनांपापंप्राप्तुयान्नात्रसंशयः ॥ १७८ ॥

अर्थ-यदि कोई वीर पुरुष विवाहके विना शक्तिकी सेवा करता है । तब उसको परस्त्री गमनके पापमें निश्चय लित होना पड़ता है ॥ १७८ ॥

सम्प्राप्तेभैरवीचक्रेसर्ववर्णाद्विजोत्तमाः ।

निवृत्तेभैरवीचक्रेसर्ववर्णाःपृथक्पृथक् ॥ १७९ ॥

अर्थ-जब भैरवीचक्रका आरम्भ होता है तब सबजातिके पुरुषही द्विजाति गिने जाते हैं । जब भैरवीचक्र निवृत्त हो जाता है, तब सब वर्ण अलग २ गिने जाते हैं ॥ १७९ ॥

नात्रजातिविचारोऽस्तिनोच्छिष्टादिविवेचनम् ।

चक्रमव्यगतावीराममरूपानचान्यथा ॥ १८० ॥

अर्थ-भैरवीचक्रमें जातिका विचार नहीं है जूँठादिका विचार भी नहीं है चक्रमें बैठे हुए वीरगण मेराही रूप हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १८० ॥

नदेशकालनियमोनवापात्रविचारणम् ।

येनकेनाहृतंद्रव्यंचक्रेऽस्मिन्विनियोजयेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ-भैरवीचक्रमें देशकालका नियम नहीं है पात्रापात्रका विचारभी नहीं है जो कोई पुरुष चक्रके लायक जो कोई वस्तुभी ले आवे, उसका व्यवहार चक्रमें करना चाहिये १८१

दूषक, वा कुलशास्त्रके निन्दा करनेवाले हैं, उनको चक्रसे निकाल देना चाहिये ॥ १९१ ॥

स्नेहाद्रयादानुरक्त्यापशूँश्चक्रेप्रवेशयन् ।

कुलधर्मात्परिभ्रष्टोवीरोऽपिनरकं व्रजेत् ॥ १९२ ॥

अर्थ—यदि कोई वीरपुरुष स्नेह, भय या अनुरागके वश-
हो किसी पशुको चक्रमें ले आवे तो वह कुलधर्मसे भ्रष्ट हो-
कर नरकको जाता है ॥ १९२ ॥

ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राःसामान्यजातयः ।

कुलधर्माश्रितायैवैपूज्यास्तेदेववत्सदा ॥ १९३ ॥

अर्थ—जिन्होंने कुलधर्मका आश्रय लिया है, वह ब्राह्मण,
क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा साधारण जातीहों, वह सदा
देवताकी समान पूज्य होंगे ॥ १९३ ॥

वर्णाभिमानाच्चक्रेतुवर्णभेदं करोति यः ।

स याति वीरनिरयमपि वेदान्तपारगः ॥ १९४ ॥

अर्थ—जो जातिका अभिमान करके चक्रमें जातिभेदका
विचार करेगा वह वेदान्तमें पारदर्शी होनेपर भी घोर नरकमें
जायगा ॥ १९४ ॥

चक्रान्तर्गतकौलानां साधूनां शुद्धचेतसाम् ।

साक्षाच्छिवस्वरूपाणां पापाशङ्का भवेत्कुतः ॥ १९५ ॥

अर्थ—जो लोग चक्रमें कौल हैं, वह विशुद्धहृदय साधु
और साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उनको किसप्रकारसे पापकी
शङ्का होसकी है ॥ १९५ ॥

म्लेच्छेनश्वपचेनापिकिरातेनापिहूणना ।

आमंपक्ष्यदानीतंवीरहस्तार्पितंशुचि ॥ १८७ ॥

अर्थ-म्लेच्छ, श्वपच, किरात अथवा हूण कोई जाति कच्चा या पक्का द्रव्य लाकर देवे, वीरके हाथमें आतेही वह पवित्र होजायगा ॥ १८७ ॥

दृष्ट्वातुभैरवीचक्रंममरूपांश्चसाधकान् ।

मुच्यन्तेपशुपाशेभ्यःकलिकल्मषदूषिताः ॥ १८८ ॥

अर्थ-जो कलियुगमें पापोंसे दूषित हैं वह लोगभी भैरवी चक्र और मेरे स्वरूप साधकोंका दर्शन करतेही पशुपाशसे छूट जाते हैं ॥ १८८ ॥

प्रवलेकलिकालेतुनकुर्याच्चक्रगोपनम् ।

सर्वत्रसर्वदावीरःसाधयेत्कुलसाधनम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-कलिकाल प्रबल होनेके समय चक्रानुष्ठानका छिपना ठीक नहीं वीर पुरुषको सब समय और सब स्थानोंमें कुलसाधन करना चाहिये ॥ १८९ ॥

३ चक्रमध्येवृथालापंचाश्वत्यंवहुभाषणम् ।

निष्ठीवनमधोवायुवर्णभेदंविषजयेत् ॥ १९० ॥

अर्थ-चक्रमें वृथा न बोले, चपलता प्रकाश न करे, वाचाल न होवे, धूकें नहीं, अधोवायुका त्याग नहीं करे, वर्णका विचारभी नहीं करे ॥ १९० ॥

क्रूरान्खलान्पशून्पापान्नास्तिकान्कुलदूषकान् ।

निन्दकान्कुलशास्त्राणांचक्रादूरतरंत्यजेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ-जो क्रूर, खल, पशु, पापात्मा, नास्तिक, कुल-

दूषक, वा कुलशास्त्रके निन्दा करनेवाले हैं, उनको चक्रसे निकाल देना चाहिये ॥ १९१ ॥

स्नेहाद्वयादानुरक्त्यापशुंश्चक्रेप्रवेशयन् ।

कुलधर्मात्परिभ्रष्टोवीरोऽपिनरकं व्रजेत् ॥ १९२ ॥

अर्थ—यदि कोई वीरपुरुष स्नेह, भय या अनुरागके वश-
हो किसी पशुको चक्रमें ले आवे तो वह कुलधर्मसे भ्रष्ट हो-
कर नरकको जाता है ॥ १९२ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः सामान्यजातयः ।

कुलधर्माश्रिता ये वै पूज्यास्ते देववत्सदा ॥ १९३ ॥

अर्थ—जिन्होंने कुलधर्मका आश्रय लिया है, वह ब्राह्मण,
क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा साधारण जातीहों, वह सदा
देवताकी समान पूज्य होंगे ॥ १९३ ॥

वर्णाभिमानाच्चक्रेतुवर्णभेदं करोति यः ।

स याति घोरनिरयमपि वेदान्तपारगः ॥ १९४ ॥

अर्थ—जो जातिका अभिमान करके चक्रमें जातिभेदका
विचार करेगा वह वेदान्तमें पारदर्शी होनेपर भी घोर नरकमें
जायगा ॥ १९४ ॥

चक्रान्तर्गतकौलानां साधूनां शुद्धचेतसाम् ।

साक्षाच्छिवस्वरूपाणां पापाशङ्का भवेत्कुतः ॥ १९५ ॥

अर्थ—जो लोग चक्रमें कौल हैं, वह विशुद्धहृदय साधु
और साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उनको किसप्रकारसे पापकी
शङ्का होसक्ती है ॥ १९५ ॥

म्लेच्छेनश्वपचेनापिकिरातेनापिहूणना ।

आमंपक्वयदानीतंधीरहस्तार्पितंशुचि ॥ १८७ ॥

अर्थ-म्लेच्छ, श्वपच, किरात अथवा हूण कोई जाति कच्चा या पक्का द्रव्य लाकर देवे, वीरके हाथमें आतेही वह पवित्र होजायगा ॥ १८७ ॥

दृष्ट्वातुभैरवीचक्रममरूपांश्चसाधकान् ।

मुच्यन्तेपशुपाशेभ्यःकलिकल्मषदूषिताः ॥ १८८ ॥

अर्थ-जो कलियुगमें पापोंसे दूषित हैं वह लोगभी भैरवी चक्र और मेरे स्वरूप साधकोंका दर्शन करतेही पशुपाशसे छूट जाते हैं ॥ १८८ ॥

प्रबलेकलिकालेतुनकुर्याच्चक्रगोपनम् ।

सर्वत्रसर्वदावीरःसाधयेत्कुलसाधनम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-कलिकाल प्रबल होनेके समय चक्रानुष्ठानका छिपना ठीक नहीं वीर पुरुषको सब समय और सब स्थानोंमें कुल-साधन करना चाहिये ॥ १८९ ॥

चक्रमध्येवृथालापंचाश्वल्यं बहुभाषणम् ।

निष्ठीवनमधोवायुं वर्णभेदं विवर्जयेत् ॥ १९० ॥

अर्थ-चक्रमें वृथा न बोले, चपलता प्रकाश न करे, वाचाल न होवे, थूकें नहीं, अधोवायुका त्याग नहीं करे, वर्णका विचारभी नहीं करे ॥ १९० ॥

क्रूरान्खलान्पशून्पापान्नास्तिकान्कुलदूषकान् ।

निन्दकान्कुलशास्त्राणांचक्रादूरतरंत्यजेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ-जो लोग क्रूर, खल, पशु, पापात्मा, नास्तिक, कुल-

दूषक, वा कुलशास्त्रके निन्दा करनेवाले हैं, उनको चक्रसे निकाल देना चाहिये ॥ १९१ ॥

स्नेहाद्रयादानुरक्त्यापशुंश्चक्रेप्रवेशयन् ।

कुलधर्मात्परिभ्रष्टेवीरोऽपिनरकं व्रजेत् ॥ १९२ ॥

अर्थ-यदि कोई वीरपुरुष स्नेह, भय या अनुरागके वश हो किसी पशुको चक्रमें ले आवे तो वह कुलधर्मसे भ्रष्ट होकर नरकको जाता है ॥ १९२ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः सामान्यजातयः ।

कुलधर्मात्प्रितायेवैपूज्यास्ते देववत्सदा ॥ १९३ ॥

अर्थ-जिन्होंने कुलधर्मका आश्रय लिया है, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा साधारण जातीहों, वह सदा देवताकी समान पूज्य होंगे ॥ १९३ ॥

वर्णाभिमानाच्चक्रेतुवर्णभेदं करोति यः ।

स याति घोरनिरयमपि वेदान्तपारगः ॥ १९४ ॥

अर्थ-जो जातिका अभिमान करके चक्रमें जातिभेदका विचार करेगा वह वेदान्तमें पारदर्शी होनेपर भी घोर नरकमें जायगा ॥ १९४ ॥

चक्रान्तर्गतकौलानां साधूनां शुद्धचेतसाम् ।

साक्षाच्छिवस्वरूपाणां पापाशङ्का भवेत्कुतः ॥ १९५ ॥

अर्थ-जो लोग चक्रमें कौल हैं, वह विशुद्धहृदय साधु और साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उनको किसप्रकारसे पापकी शङ्का होसक्ती है ॥ १९५ ॥

यावद्वसन्तिचक्रेषुविप्राद्याःशैवमार्गिणः ।

तावत्तुशाम्भवाचारांश्चरेयुःशिवशासनात् ॥ १९६ ॥

अर्थ-शिवके दिखाये हुए मार्गपर चलनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रियादि सब जातियोंके मनुष्य जबतक चक्रमें विराजमान रहते हैं तबतक उनको पशुप्रदर्शित आचारका अनुष्ठान करना चाहिये ऐसी शिवजीकी आज्ञा है ॥ १९६ ॥

चक्राद्विनिःसृताःसर्वेस्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।

लोकयात्राप्रसिद्धयर्थं कुर्युःकर्मपृथक्पृथक् ॥ १९७ ॥

अर्थ-जो लोग जिस समय चक्रसे निकले तब सबही लोक यात्राका निर्वाह करनेके लिये अपने २ आश्रममें कहे हुए कर्म पृथक् २ करें ॥ १९७ ॥

पुरश्चर्याशतेनापिशवमुण्डचितासनात् ।

चक्रमध्येसकृज्जप्त्वातत्फलंलभतेसुधीः ॥ १९८ ॥

अर्थ-शत २ पुरश्चरण करनेसे जो फल होता है, शवमुण्डमें और चिताके आसनपर बैठकर जप करनेसे जो फल होता है, ज्ञानीपुरुष केवल एकवार चक्रमें जप करनेसे उस फलको प्राप्त कर लेता है ॥ १९८ ॥

भैरवीचक्रमाहात्म्यंकोवावकुंक्षमोभवेत् ।

सकृदेतत्प्रकुर्व्वानःसर्व्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ १९९ ॥

अर्थ-भैरवीचक्रका माहात्म्य कहनेको कोई पुरुष समर्थ नहीं है क्योंकि एकवार इसका अनुष्ठान करनेसे सब पाप दूर होसक्ते हैं ॥ १९९ ॥

पण्मासंभूमिपालःस्याद्वर्षमृत्युञ्जयःस्वयम् ।

नित्यंसमाचरन्मर्त्योब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २०० ॥

अर्थ—केवल छः महीनेतक भैरवीचक्रका अनुष्ठान करनेसे राजा होसکتा है, एकवर्षतक अनुष्ठान करनेसे मृत्युञ्जय होता है, नित्यही भैरवीचक्रका अनुष्ठान करनेवाला महा-निर्वाणको प्राप्त होजाता है ॥ २०० ॥

बहुनाकिमिहोक्तेनसत्यंजानीहिकालिके ! ।

इहामुत्रसुखावाप्त्यैकुलमार्गोहिनापरः ॥ २०१ ॥

अर्थ—हे कालिके ! इस विषयमें और अधिक क्या कहूं मैं सत्य २ कहता हूं कि, कुलाचारके सिवाय इस लोकमें और परलोकमें सुखप्राप्तिका दूसरा उपाय नहीं है ॥ २०१ ॥

कलेःप्रावत्यसमयेसर्वधर्मविवर्जिते ।

गोपनात्कुलधर्मस्यकौलोऽपिनारकीभवेत् ॥ २०२ ॥

अर्थ—कलियुगके प्रबल होनेपर जब और दूसरे धर्मरहित हो आवेंगे, तब यदि कौलिक पुरुष कुलधर्मको छिपावेगा तो नरकको जायगा ॥ २०२ ॥

कथितंभैरवीचक्रंभोगमोक्षैकसाधनम् ।

तत्त्वचक्रंकुलेशानि ! साम्प्रतंवच्चितच्छृणु ॥ २०३ ॥

अर्थ—भोग और मोक्षके प्राप्त करानेवाले भैरवीचक्रका विवरण कहा. हे कुलेश्वरि ! अब तत्त्वचक्रका वर्णन करताहूं श्रवण करो ॥ २०३ ॥

तत्त्वचक्रंचक्रराजंदिव्यचक्रंतदुच्यते ।

नात्राधिकारःसर्वेषांब्रह्मज्ञानसाधकान्विना ॥ २०४ ॥

अर्थ—सब चक्रोंमें तत्त्वचक्र श्रेष्ठ है । इसको दिव्यचक्रभी कहते हैं । ब्रह्मज्ञ साधकके अतिरिक्त इसमें सबका अधिकार नहीं है ॥ २०४ ॥

परब्रह्मोपासकायेब्रह्मज्ञाब्रह्मतत्पराः ।

शुद्धान्तःकरणाःशान्ताःसर्वप्राणिहिते रताः ॥२०५॥

अर्थ—जो लोग परब्रह्मके उपासक हैं, जो लोग ब्रह्मज्ञानमें तत्पर हैं, जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं जो लोग सर्वप्राणियोंका हित करनेमें रत और शान्त हैं ॥ २०५ ॥

निर्विकारानिर्विकल्पादयाशीलादृढव्रताः ।

सत्यसङ्कल्पकाब्राह्म्यास्तएवात्राधिकारिणः ॥२०६॥

अर्थ—जो लोग विकाररहित, विकल्परहित, दयाशील और दृढव्रत हैं, जो लोग सत्यसंकल्प और ब्राह्म हैं, वही इस तत्त्वचक्रके अधिकारी हैं ॥ २०६ ॥

ब्रह्मभावेनतत्त्वज्ञे ! येपश्यन्तिचराचरम् ।

तेपांतत्त्वविदांपुंसांतत्त्वचक्रेऽधिकारिता ॥ २०७ ॥

अर्थ—हे तत्त्वज्ञे ! जो लोग इस चराचर जगत्को ब्रह्ममय अवलोकन करते हैं, उन तत्त्वज्ञानसम्पन्नपुरुषोंकाही इस तत्त्वचक्रमें अधिकार है ॥ २०७ ॥

सर्वब्रह्ममयंभावश्चक्रेऽस्मिस्तत्त्वसंज्ञके ।

येपामुत्पद्यतेदेवि ! तएवतत्त्वचक्रिणः ॥ २०८ ॥

अर्थ—हे देवि ! इस तत्त्वचक्रमें तत्त्वज्ञानसम्पन्न पुरुषोंकाही अधिकार है जो सबको ब्रह्ममय समझते हैं ॥ २०८ ॥

नघटस्थापनात्रास्तिनवाहुल्येनपूजनम् ।

सर्वत्रब्रह्मभावेनसाधयेत्तत्त्वसाधनम् ॥ २०९ ॥

अर्थ—इस तत्त्वचक्रमें घटस्थापन नहीं है, पूजाकी बहुतायत भी नहीं है, सब स्थानमेंही ब्रह्मभावसे इस तत्त्वका साधन करना चाहिये ॥ २०९ ॥

ब्रह्ममन्त्रीब्रह्मनिष्ठोभवेच्चक्रेश्वरःप्रिये ।।

ब्रह्मज्ञैःसाधकैःसार्द्धतत्त्वचक्रंसमारभेत् ॥ २१० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! ब्रह्ममन्त्रोपासक और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको चक्रेश्वर होना चाहिये, वह ब्रह्मज्ञानयुक्त साधकपुरुषोंके साथ तत्त्वचक्रका अनुष्ठान करे ॥ २१० ॥

रम्येसुनिर्मलेदेशेसाधकानांसुखावहे ।

विचित्रासनमानीयकल्पयेद्विमलासनम् ॥ २११ ॥

अर्थ-उत्तम, साफ, सुथरा, निर्मल और रमणीय स्थान साधकजनोंको उत्तम सुखका देनेवाला है । उस स्थानमें विचित्र आसन बिछाय साधक उसपर बैठनेका स्थान बनावे ॥ २११ ॥

तत्रोपविश्यचक्रेशःसहितोब्रह्मसाधकैः ।

आसादयेत्तुतत्त्वानिस्थापयेदग्रतःशिवे ! ॥ २१२ ॥

अर्थ-हे शिवे ! उस स्थानमें चक्रेश्वर सब साधकोंके साथ बैठकर सब तत्त्वोंको मैंगाय सन्मुख रखे ॥ २१२ ॥

तारादिप्राणबीजान्तंशतावृत्याजपन्मनुम् ।

सर्वतत्त्वेषुचक्रेशइमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ २१३ ॥

अर्थ-सब तत्त्वोंके ऊपर चक्रेश्वरको "ओं हंसः" मंत्र शतवार पढ़कर यह मंत्र पढ़ना चाहिये कि ॥ २१३ ॥

ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् ।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २१४ ॥

अर्थ-जिसके द्वारा अर्पण करता हूं वह ब्रह्म है, जिसमें अर्पण करता हूं वह भी ब्रह्म है, जो अर्पण करता है वह भी ब्रह्म है, जो इसप्रकार ब्रह्ममय कर्मकी समाधिसे साधक ब्रह्ममें ही लय हो जाता है ॥ २१४ ॥

सप्तधावाविधाजप्त्वातानिसर्वाणिशोधयेत् ॥ २१५ ॥

अर्थ-इस मंत्रको सातवार या तीन बार जप करके सब तत्त्वोंको शोधन करे ॥ २१५ ॥

ततोब्राह्मेणमनुनासमर्प्यपरमात्मने ।

ब्रह्मज्ञैःसाधकैःसार्धविदध्यात्पानभोजनम् ॥ २१६ ॥

अर्थ-फिर “ओं सच्चिदेकं ब्रह्म” इस मंत्रसे सब तत्त्वोंको ब्रह्ममें समर्पण कर ब्रह्मज्ञानी साधकोंके साथ पान और भोजन करे ॥ २१६ ॥

ब्रह्मचक्रेमहेशानि ! वर्णभेदं विवर्जयेत् ।

नदेशकालनियमोनपात्रनियमस्तथा ॥ २१७ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! इस ब्रह्मचक्रमें जातिभेदका विचार नहीं करे, इसमें देशकालका नियम नहीं है न पात्रापात्रका नियम है ॥ २१७ ॥

येकुर्वन्तिनरामूढादिव्यचक्रेप्रमादतः ।

कुलभेदं वर्णभेदं ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ॥ २१८ ॥

अर्थ-जो मूढपुरुष प्रमादके वश होकर इस दिव्यचक्रमें जातिभेद या कुलभेदका विचार करता है वह अधमगतिको प्राप्त होता है ॥ २१८ ॥

अतःसर्वप्रयत्नेनब्रह्मज्ञैःसाधकोत्तमैः ।

तत्त्वचक्रमनुष्ठेयं धर्मकामार्थमुक्तये ॥ २१९ ॥

अर्थ-अतएव जो लोग ब्रह्मज्ञ और श्रेष्ठ साधक ह उनको धर्म, अर्थ, काम और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये सर्वयत्नसे तत्त्वचक्रका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २१९ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

गृहस्थानामशेषेणधर्मानकथयत्प्रभो ! ।

संन्यासविहितान्धर्मान्कृपयावक्तुमर्हसि ॥ २२० ॥

अर्थ—श्रीदेवीजीने कहा—हे प्रभो ! आपने सम्पूर्ण गृहस्थ-धर्म कहा अब कृपाकरके संन्यास धर्म कहिये ॥ २२० ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

अवधूताश्रमोदेवि ! कलौसंन्यासउच्यते ।

विधिनायेनकर्त्तव्यस्तत्सर्व्वशृणुसाम्प्रतम् ॥ २२१ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहा—हे देवि ! कलियुगमें अवधूताश्रमकोही संन्यास कहते हैं । अब वह कहता हूं कि, जिस प्रकारसे संन्यास आश्रम अवलम्बन करना चाहिये ॥ २२१ ॥

ब्रह्मज्ञानेसमुत्पन्नेविस्तेसर्व्वकर्मणि ।

अध्यात्मविद्यानिपुणःसंन्यासाश्रममाश्रयेत् ॥ २२२ ॥

अर्थ—जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाय, जब समस्त काम्य कर्म रहित होजाय तिसकालमें अध्यात्मविद्याविशारद पुरुष संन्यासाश्रमको ग्रहण करे ॥ २२२ ॥

विहायवृद्धौपितरौशिशुंभार्यापतिव्रताम् ।

त्यक्त्वासमर्थान्वन्धूंश्चप्रव्रजन्नारकीभवेत् ॥ २२३ ॥

अर्थ—बूढ़े मा-बाप, शिशु-पुत्र, पतिव्रता भार्या, असमर्थ पोषण करनेके योग्योंको छोड़ जो संन्यासी होता है वह नरकको जाता है ॥ २२३ ॥

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रःसामान्यएवच ।

कुलावधूतसंस्कारेपञ्चानामधिकारती ॥ २२४ ॥

अर्थ-कुलावधूतसंस्कारमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधारण जाती इन पांच वर्णोंकाही अधिकार है ॥ २२४ ॥

सम्पाद्यगृहकर्मणिपरितोष्यपरानपि ।

निर्ममोनिलयाद्गच्छेन्निष्कामोविजितेन्द्रियः ॥ २२५ ॥

अर्थ-गृहके सारे कार्य सिद्ध करके सब आत्मीय स्वजनोंको संतुष्ट कर ममतारहित, कामनारहित और जितेन्द्रिय होकर साधक पुरुष घरसे बाहर निकले ॥ २२५ ॥

आहूयस्वजनान्वन्धून्ग्रामस्थान्प्रतिवासिनः ।

प्रीत्यानुमतिमन्विच्छेद्गृहाजिगमिपुर्जनः ॥ २२६ ॥

अर्थ-जो गृहस्थाश्रमको छोड़कर गमन करना चाहे वह निजजनों, बन्धुबान्धवोंको, पड़ोसियोंको और ग्रामवासियोंको बुलायकर प्रीतिपूर्ण हृदयसे अनुमति माँगे ॥ २२६ ॥

तेषामनुज्ञामादायप्रणम्यपरदेवताम् ।

ग्रामंप्रदक्षिणीकृत्यनिरपेक्षोगृहादियात् ॥ २२७ ॥

अर्थ-फिर सबकी अनुमति ले अभीष्टदेवताको प्रणाम कर ग्रामकी प्रदक्षिणा लगाय निरपेक्षहृदय हो घरसे बाहर निकले ॥ २२७ ॥

मुक्तःसंसारपाशेभ्यःपरमानन्दनिर्वृतः ।

कुलावधूतं ब्रह्मज्ञं गत्वासंप्रार्थयेदिदम् ॥ २२८ ॥

अर्थ-फिर संसारबन्धनसे छूट परमानन्दहृदयमें परितृप्त हो कुलावधूत ब्रह्मज्ञपुरुषके निकट जाय प्रार्थना करे ॥ २२८ ॥

गृहाश्रमेपरब्रह्मन् ! ममैतद्विगतं वयः ।

प्रसादं कुरु मे नाथ ! संन्यासग्रहणं प्रति ॥ २२९ ॥

- अर्थ-परब्रह्मन् ! मेरी यह वयस गृहस्थाश्रममें बीती है है नाथ ! मैं इस समय संन्यास ग्रहण करनेके लिये आया हूं मुझसे प्रसन्न हो ॥ २२९ ॥

निवृत्तगृहकर्माणंविचार्यविधिवद्गुरुः ।

शान्तंविवेकिनंवीक्ष्यद्वितीयाश्रममादिशेत् ॥ २३० ॥

अर्थ-फिर गुरु यह देखकर कि उसके गृहस्थाश्रमके समस्त कार्य निरवाह हुए हैं या नहीं । और उसे शान्त व विवेकवान् निहारकर दूसरे आश्रममें दीक्षित करे ॥ २३० ॥

ततःशिष्यःकृतस्नानोयतात्माविहिताह्निकः ।

ऋणत्रयविमुक्त्यर्थंदेवर्पनचर्चयेत्पितृन् ॥ २३१ ॥

अर्थ-फिर स्नानकर आत्माको जीत शिष्यको आह्निक कार्य समाप्त करना चाहिये फिर तीन ऋणसे छूटनेके लिये देवगण, पितृगण और ऋषिगणोंका तर्पण करे ॥ २३१ ॥

देवाब्रह्माचविष्णुश्चरुद्रश्चस्वर्गणैःसह ।

ऋषयःसनकाद्याश्चदेवब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २३२ ॥

अर्थ-देवगण, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके अनुचर, सनक सनन्दन, सनातनादि ऋषिगण, नारदादिक देवर्षिगण, भृगुआदि महर्षि गण ॥ २३२ ॥

अत्रयेपितरःपूज्यावक्ष्यामिशृणुतानपि ।

पितापितामहश्चैवप्रपितामहएवच ॥ २३३ ॥

मातापितामहीदेवि ! तथैवप्रपितामही ।

मातामहादयोऽप्येवंमातामह्यादयोऽपिच ॥ २३४ ॥

अर्थ-और पितरोंकी संन्यास ग्रहण करनेके समय जैसी पूजा करनी चाहिये वह तुमसे कहता हूं श्रवण करो. हे देवि !

पिता, माता, पितामह (दादा), पितामही (दादी), प्रपिता-
मह (परदादा), प्रपितामही (परदादी), मातामह (नाना),
मातामही (नानी), प्रमातामह (परनाना), प्रमातामही (पर-
नानी), वृद्धप्रमातामह (सरनाना), वृद्धप्रमातामही (सर-
नानी), (पितृऋणसे छूटनेके लिये इनका और वृद्धप्रपिता-
मह वृद्धप्रपितामही अतिवृद्धप्रमातामह इत्यादि) की पूजा
करनी होगी ॥ २३३ ॥ २३४ ॥

प्राच्यामृषीन्यजेद्देवान्दक्षिणस्यांपितृन्यजेत् ।

मातामहान्प्रतीच्याञ्चपूजयेत्त्रयासकर्मणि ॥ २३५ ॥

अर्थ—संन्यास ग्रहण करनेके समय पूर्वदिशाओंके देवता-
ओंकी और ऋषिगणोंकी पूजा करे । दक्षिणदिशामें पितृ-
पक्षकी पूजा करनी योग्य है; पश्चिमदिशामें मातामहपक्षकी
पूजा करनी चाहिये ॥ २३५ ॥

पूर्वादिक्रमतोदद्यादासनानांद्र्यंद्र्यम् ।

देवादीन्क्रमतस्तत्रावाह्यपूजांसमाचरेत् ॥ २३६ ॥

अर्थ—पूर्वदिशासे आरम्भ करके सबके लिये दो दो आसन
स्थापन करे इन आसनोंपर क्रमानुसार देवादिकोंका आवा-
हन करके पूजा करनी आरम्भ करे ॥ २३६ ॥

समर्च्यविधिवत्तेभ्यःपिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ।

पिण्डप्रदानविधिनादत्त्वापिण्डं यथाक्रमम् ।

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेत्पितृदेवताः ॥ २३७ ॥

अर्थ—फिर यथाविधानसे सबकी पूजा करके पृथक् २ पिण्ड-
दान करे । इसप्रकार पिण्डदानकी विधिके अनुसार क्रमानु-
सार पिण्डदानकर पितृ और देवताओंसे प्रार्थना करे ॥ २३७ ॥

तृप्यध्वंपितरो देवा देवर्षिमातृका गणाः ।

गुणातीतपदेयूयमनृणांकुरुताचिरात् ॥ २३८ ॥

अर्थ—हे पितृगण. मातृगण, देवर्षिगण मैं ! गुणातीतपदपर गमन करता हूं आप लोग शीघ्र मुझको ऋणसे छुटावें ॥ २३८ ॥

इत्यानृण्यमर्थयित्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ।

ऋणत्रयविनिर्मुक्त आत्मश्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ २३९ ॥

अर्थ—इस प्रकार अऋणी होनेको बारम्बार प्रणाम करके तीन ऋणसे छूटनेके लिये अपना श्राद्ध करना चाहिये ॥ २३९ ॥

पिता ह्यात्मैव सर्व्वेषां तत्पिता प्रपितामहः ।

आत्मन्यात्मार्पणार्थाय कुर्यादात्मक्रियां सुधीः २४०

अर्थ—पिता. पितामह. प्रपितामह यह आत्मासे अलग नहीं हैं । अत एव ब्रह्ममें आत्मसमर्पण करनेके निमित्त ज्ञानी-पुरुषको अपना श्राद्ध करना चाहिये ॥ २४० ॥

उत्तराभिमुखो भूत्वा प्रवृत्कल्पितासने ।

आवाह्यात्मपितृन्देवि ! दद्यात्पिण्डं समर्चयन् ॥ २४१ ॥

अर्थ—हे देवि ! पहलेकी समान परिकल्पित आसनपर उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे और अपने पितृगणोंका आवाहन कर अर्चनापूर्वक पिण्डदान करे ॥ २४१ ॥

प्रागग्रान्दक्षिणाग्रांश्च पश्चिमाग्रान्यथारूमात् ।

पिण्डार्थमास्तेरद्वर्भानुदग्रान्स्वकर्मणि ॥ २४२ ॥

अर्थ—देवता. ऋषि और पितृगणोंका (पिण्डदानके निमित्त) यथाक्रमसे पूर्वकी ओर मुख और पश्चिमकी ओर मुख करके कुश बिछाय अपनेको पिण्ड देनेके लिये कुशोंको उत्तरकी ओरको मुख करके बिछावे ॥ २४२ ॥

समाप्यश्राद्धकर्माणिगुरुदर्शितवर्त्मना ।

मुमुक्षुश्चित्तशुद्धयर्थमिमंमन्त्रंशतंजपेत् ॥ २४३ ॥

ह्रींन्यम्बकंयजामहेसुगान्धपुष्टिवर्द्धनम् ।

उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ २४४ ॥

अर्थ-मोक्षके अभिलाषी पुरुषको गुरुकी बताई पद्धतिका अवलम्बन करके श्राद्धकर्मको समाप्त कर चित्तशुद्धिके लिये शतवार “ह्रीं न्यम्बकं” मन्त्रका जपकरना चाहिये ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

उपासनानुसारेणवेद्यामण्डलपूर्वकम् ।

संस्थाप्यकलशंतत्रगुरुःपूजांसमारभेत् ॥ २४५ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि, पूजाकी विधिके अनुसार वेदीपर मण्डल बनाय तिसके ऊपर कलश स्थापितकर पूजाको आरम्भ करे ॥ २४५ ॥

ततस्तुपरमंत्रं ब्रह्मध्यात्वाशाम्भववर्त्मना ।

विधायपूजां ब्रह्मज्ञोवाह्निस्थापनमाचरेत् ॥ २४६ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्मज्ञानी पुरुष शिवकी दिखाई पद्धतिके अनुसार परब्रह्मका ध्यान करके पूजा करे और अग्निस्थापन करे ॥ २४६ ॥

प्रागुक्तसंस्कृतेष्वह्नौस्वकल्पोक्ताहुतिंगुरुः ।

दत्त्वाशिष्यंसमाहूयसाकल्यंहावयेत्तुतम् ॥ २४७ ॥

अर्थ-तदुपरान्त संस्कारकीहुई अग्निमें स्वकल्पोक्त आहुति देकर गुरु शिष्यको बुलाकर साकल्य होम करावे ॥ २४७ ॥

आदौव्याहृतिभिर्हुत्वाप्राणहोमंप्रकल्पयेत् ।

प्राणापानौसमानश्चोदानव्यानौचवायवः ॥ २४८ ॥

अर्थ-पहले व्याहृति होम करके प्राणहोम करे प्राणहोमके

समय प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इन पांचों वायुमेंसे प्रत्येकका होम करना चाहिये ॥ २४८ ॥

तत्त्वहोमततःकुर्यादेहात्मध्यासमुक्तये ।

पृथिवीसलिलंवाह्निर्वायुराकाशमेवच ॥ २४९ ॥

अर्थ-फिर देहसे आत्माका अध्यास छुटानेके लिये तत्त्व-होम करना चाहिये । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ॥ २४९ ॥

गन्धोरसश्चरूपश्चस्पर्शःशब्दोयथाक्रमात् ।

ततोवाक्पाणिपादाश्चपायूपस्थौततःपरम् ॥ २५० ॥

अर्थ-गन्ध, जल, रूप, स्पर्श, शब्द, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ॥ २५० ॥

श्रोत्रंत्वङ्मनयनंजिह्वाघ्राणंबुद्धीन्द्रियाणिच ।

मनोबुद्धिश्चचित्तश्चाहङ्कारोदेहजाःक्रियाः ॥ २५१ ॥

अर्थ-कान, त्वक्, नयन, जीभ, घ्राण, यह सब ज्ञानेन्द्रिय हैं । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार देहके समस्त कार्य ॥ २५१ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणिप्राणकर्माणियानिच ॥ २५२ ॥

एतानिमेपदान्तेचशुद्ध्यन्तांपदमुच्चरेत् ।

ह्रौज्योतिरहंविरजाविषाम्भाभूयासमित्यपि ॥ २५३ ॥

अर्थ-इन्द्रियोंके समस्त कार्य, प्राणोंके समस्त कार्य इन समस्त पदोंको उच्चारण करके “मेशुद्ध्यन्ताम्” अर्थात् शुद्धहो पद उच्चारण करे तदुपरान्त, “ह्रौ ज्योतिरहं विरजा विषाम्भा भूयासम्” यहभी पढ़े (१)-॥ २५२ ॥ २५३ ॥

चतुर्विंशतितत्त्वानिकर्माणिदैहिकानिच ।

हुत्वाग्नौनिष्क्रियोदेहंमृतवच्चिन्तयेत्ततः ॥ २५४ ॥

(१) मैत्रोद्धारः “पाणोप-नममाप्नोदान्पाना मे शुद्ध्यन्तां हौ ज्योतिरहं विरजा विषाम्भा भूयासं स्वाहा ” इसप्रकार सप्त अंगद येजना करे ।

अर्थ-इसप्रकार चौबीस तत्त्व और समस्त कर्मोंको अग्निमें होमकर कर्मसे निकलनेके पीछे अपने शरीरको मृतकतुल्य समझे ॥ २५४ ॥

विभाव्यमृतवत्कायंरहितं सर्वकर्मणा ।

स्मरंस्तत्परमं ब्रह्म यज्ञसूत्रं समुद्धरेत् ॥ २५५ ॥

अर्थ-इसप्रकार अपने शरीरको मृतकतुल्य और सब कर्मोंसे रहित विचारकर परब्रह्मका स्मरणकर गलेमेंसे यज्ञसूत्र निकाल ले ॥ २५५ ॥

ऐं क्लीं हूं इति मन्त्रेण स्कन्धादुत्तार्य तत्त्ववित् ।

यज्ञसूत्रं करे कृत्वा पठित्वा व्याहृतित्रयम् ।

बह्विजायां समुच्चार्य घृताक्तमनलेक्षिपेत् ॥ २५६ ॥

अर्थ-तत्त्वका जाननेवाला पुरुष “ऐं क्लीं हूं” मंत्र पढ़कर कंधेसे यज्ञसूत्र निकाल हाथमें धारण करे और तीन व्याहृति पढ़कर ‘स्वाहा’ पद उच्चारण करे और घृतसंयुक्त यह यज्ञोपवीत अग्निमें डालदे ॥ २५६ ॥

हुत्वेवमुपवीतश्च कामबीजं समुच्चरन् ।

छित्वा शिखां करे कृत्वा घृतमध्येनियोजयेत् ॥ २५७ ॥

अर्थ-इसप्रकार यज्ञोपवीत होमकर “क्लीं” बीज उच्चारण करके छुटियाको काटकर हाथमें ले घृतमें स्थापन करे ॥ २५७ ॥

ब्रह्मपुत्रि ! शिखे ! त्वं हि वालरूपा तपस्विनी ।

दीयते पावके स्थानं गच्छ देवि ! नमोऽस्तुते ॥ २५८ ॥

अर्थ-फिर यह मंत्र पढ़े कि, हे ब्रह्मपुत्रि शिखे ! तुम केशरूपा तपस्विनी हो । देवि ! तुमको अग्निमें स्थान देता हूं तुम गमन करो तुमको नमस्कार है ॥ २५८ ॥

काममायांकूर्चमन्त्रं वह्निजायामुदरियन् ।

तस्मिन्सुसंस्कृतेवह्नौशिखाहोमसमाचरेत् ॥ २५९ ॥

अर्थ—फिर “ह्रीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा ” यह मन्त्र पढ़कर उस

संस्कारित अग्निमें शिखाको होम करे ॥ २५९ ॥

शिखामाश्रित्यपितरादेवोदेवर्षयस्तथा ।

सर्वाण्याश्रमकर्माणिनिवसन्तिशिखोपरि ॥ २६० ॥

अर्थ—पितृगण, देवगण, देवर्षिगण और समस्त आश्रमोंके कार्य इस शिखाका आश्रय करके इसमें रहते हैं ॥ २६० ॥

अतःसन्तर्प्यताःसर्वादेवर्षिपितृदेवताः ।

शिखामूत्रपरित्यागादेहीब्रह्ममयोभवेत् ॥ २६१ ॥

अर्थ—इसकारण, देवगण, ऋषिगण, पितृगण, देवतागण, सबहीका तर्पण करके, देही शिखा और यज्ञोपवीतको छोड़तेही ब्रह्ममय होजाता है ॥ २६१ ॥

यज्ञमूत्रशिखात्यागात्संन्यासःस्याद्विजन्मनाम् २६२ ॥

अर्थ—द्विजगण, शिखा और यज्ञोपवीतके छोड़तेही ब्रह्ममय हो जाता है ॥ २६२ ॥

शूद्राणामितरेपांचशिखाहुत्वैवसंस्क्रिया ।

ततोमुक्तशिखामूत्रःप्रणमेदण्डवद्गुरुम् ।

गुरुरुत्थाप्यतंशिष्यंदक्षकर्णेवदोदिदम् ॥ २६३ ॥

अर्थ—शूद्र वा साधारण जातियोंका शिखाकाटकर होम करतेही संस्कार हो जाता है फिर शिखाको छोड़कर गुरुका दण्डवत् प्रणाम करे ॥ २६३ ॥

तत्त्वमसिमहाप्राज्ञ ! हंसः सोऽहंविभावय ।

निर्म्ममोनिरहङ्कारःस्वभावेनसुखं चर ॥ २६४ ॥

अर्थ-शिष्यको उठाकर गुरु उसके दाहिने कानमें यह मंत्र कहे कि, हे महाप्राज्ञ ! तुमहीं वह ब्रह्महो तुम हंस और सोहंकी चिन्ता करो । तुम स्वभावसेही अहंकार व ममताको छोड़कर सुखसे विचरण करो ॥ २६४ ॥

ततो घटश्च वह्निश्च विसृज्य ब्रह्मतत्त्ववित् ।

आत्मस्वरूपं तं मत्वा प्रणमेच्छिरसा गुरुः ॥ २६५ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्मज्ञानी पुरुष घट और अग्निका विसर्जन कर चेलीको अपना स्वरूप विचार मस्तक झुकायकर प्रणाम करे (और यह मंत्र पढ़े कि) ॥ २६५ ॥

नमस्तुभ्यं नमो मह्यं तुभ्यं मह्यं नमो नमः ।

त्वमेव तत्तत्त्वमेव विश्वरूप ! नमोस्तुते ॥ २६६ ॥

अर्थ-तुमको नमस्कार है, मुझको नमस्कार है । तुमको और मुझको धारंवार नमस्कार है । हे विश्वरूप ! तुमहीं यह जगत हो और यह जगतही तुमही तुमको नमस्कार करता हूँ ॥ २६६ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानां तत्त्वज्ञानां जितात्मनाम् ।

स्वमंत्रेण शिसाच्छेदात्संन्यासग्रहणं भवेत् ॥ २६७ ॥

अर्थ-जो लोग ब्रह्ममंत्रके उपामक जितेन्द्रिय और सत्त्व-ज्ञानसम्पन्न हैं वह यदि अपना मंत्र पढ़कर नाटीको काटे तो उनका संन्यासग्रहण करना ही गय्या ॥ २६७ ॥

ब्रह्मज्ञानविशुद्धानां किं यज्ञैः श्राद्धपूजनैः ।

स्वेच्छाचारपराणान्तुप्रत्यवायो न विद्यते ॥ २६८ ॥

अर्थ-जो लोग ब्रह्मज्ञानसे शुद्ध हुए हैं, उनको यज्ञ, पूजा और श्राद्धादि करनेकी आवश्यकता नहीं । वह स्वेच्छाचारी हैं तो भी कुछ घुसाई नहीं है ॥ २६८ ॥

ततोनिर्द्वन्द्वरूपोऽसौ निष्कामः स्थिरमानसः ।

विहरेत्स्वेच्छया शिष्यः साक्षाद्ब्रह्ममयो भुवि ॥ २६९ ॥

अर्थ—फिर शिष्य सुख दुःखादिरूप द्वन्द्वरहित, कामनारहित स्थिरचित्त और साक्षात् ब्रह्ममय होकर पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करे ॥ २६९ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सद्रूपेण विभावयन् ।

विस्मरन्नामरूपाणि ध्यायन्नात्मानमात्मनि ॥ २७० ॥

अर्थ—वह आब्रह्मस्तम्बतक सब विश्वको मेरा स्वरूप समझे नाम व रूपको भूलनेकी चेष्टा करे आत्मामें आत्माका ध्यान करे ॥ २७० ॥

अनिकेतः क्षमावृत्तो निःशङ्कः सद्गुर्वर्जितः ।

निर्ममो निरहङ्कारः संन्यासी विहरेत्क्षितौ ॥ २७१ ॥

अर्थ—वह वासगृहशून्य, क्षमाशील, निःशङ्कहृदय, संसर्गरहित, भ्रमनारहित, अहंकाररहित और संन्यासी होकर पृथ्वीपर विचरण करे ॥ २७१ ॥

मुक्तो विधिनिषेधभ्यो निर्योगक्षेम आत्मवित् ।

सुखदुःखसमो धीरो जितात्मा विगतस्पृहः ॥ २७२ ॥

अर्थ—वह शास्त्रीय विधिनिषेधसे मुक्त होगा उसको लब्धविषयकी रक्षा और अलब्ध विषयके लाभ करनेकी चेष्टा न करनी चाहिये । वह सुखदुःखमें समान, धीर, जितेन्द्रिय और स्पृहादिरहित होकर आत्मतत्त्वज्ञानमें रत रहे ॥ २७२ ॥

स्थिरात्मा प्रातदुःखोऽपि सुखे प्राप्तेऽपि निःस्पृहः ।

सदानन्दः शुचिः शान्तो निरपेक्षो निराकुलः ॥ २७३ ॥

अर्थ—दुःख उपरिधत्त होनेपर भी उसका अन्तःकरण स्थिर रहे, विचलित न होवे, सुखदुःखस्थित होनेपर भी उसमें स्पृहा

नहीं करे । सदा आनन्दयुक्त, पवित्र, शान्त, निरपेक्ष और निराकुल होवे ॥ २७३ ॥

नोद्वेजकः स्याज्जीवानांसदाप्राणिहितैस्तः ।

विगतामर्षभीर्दान्तोनिःसङ्कल्पोनिरुद्यमः ॥ २७४ ॥

अर्थ—वह सदा सबप्राणियोंका हित करनेमें तत्पर रहे किसीके मनमें उद्वेग न जन्मावे । वह क्रोधरहित और भयरहित होवे, वह संकल्परहित, उद्यमरहित होवे ॥ २७४ ॥

शोकद्वेषविमुक्तः स्याच्छत्रौमित्रेसमोभवेत् ।

शीतवातातपसहःसमोमानापमानयोः ॥ २७५ ॥

अर्थ—शोकरहित, द्वेषरहित और शत्रु, मित्रको समान देखे-मान, अपमानको समान समझे । वह शीत, वात, आतपादिके कष्टको सहनेमें समर्थ होवे ॥ २७५ ॥

समः शुभाशुभेतुष्टोयदृच्छाप्राप्तवस्तुना ।

निस्त्रैगुण्योनिर्विकल्पोनिर्लोभः स्यादसञ्चयी ॥ २७६ ॥

अर्थ—वह इच्छानुसार वस्तुमेंही संतुष्ट रखे । वह त्रिगुणातीत निर्विकल्प लोभशून्य और संचयरहित होवे ॥ २७६ ॥

यथासत्यमुपाश्रित्यमृषाविश्वं प्रतिष्ठति ।

आत्माश्रितस्तथा देहो जानन्नेवं सुखी भवेत् ॥ २७७ ॥

अर्थ—जगत् मिथ्यास्वरूप होकरभी जैसे एकमात्र सत्य-स्वरूप परमात्माको आश्रय करके सत्यकी समान भावना होता है । उसकी समान आत्माको आश्रय करके मिथ्याभूत यह देह आत्मवत् प्रतीत होता है, संन्यासी यह जानकर सुखी हो ॥ २७७ ॥

इन्द्रियाण्येव कुर्वन्ति स्वं स्वं कर्म पृथक् पृथक्

आत्मा सांक्षी विनिर्लिप्तो ज्ञात्वैवं मोक्षभाग्य भवेत् ॥ २७८ ॥

अर्थ-इन्द्रियांही पृथक् २ अपने कर्मको पृथक् २ निर्वाह कर-
तीहैं आत्मा, साक्षी और निर्लिप्त है अर्थात् वह उनकर्मोंमें
बद्ध नहीं होता संन्यासी यह जानकर मोक्षका भागी होता
है ॥ २७८ ॥

धातुप्रतियहंनिन्दामनृतंकीडनंस्त्रिया ।

रेतस्त्यागमसूयाञ्चसंन्यासीपरिवर्जयेत् ॥ २७९ ॥

अर्थ-धातुद्रव्य ग्रहण करना, पराई निन्दा करना, मिथ्या
व्यवहार, स्त्रियोंके साथ कीड़ा, शुक्रत्याग और असूया.
संन्यासीको चाहिये कि इनसबको छोड़ देवे ॥ २७९ ॥

सर्वत्रसमदृष्टिःस्यात्कीटिदेवेतथानरे ।

सर्वत्रह्येतिजानीयात्परिव्राट्सर्वकर्मसु ॥ २८० ॥

अर्थ-परिव्राट् संन्यासीका कर्तव्य यह है कि-देवता, मनुष्य
या कीड़ा मकोड़ा, सबको समदृष्टिसे देखे सब कार्योंमें सबको
ब्रह्म जाने ॥ २८० ॥

विप्रान्नश्चपचान्नंवायस्मात्तस्मात्समागतम् ।

देशकालं तथा पात्रमश्रीयदविचारयन् ॥ २८१ ॥

अर्थ-संन्यासीका कर्तव्य यह है कि, ब्राह्मणका अन्न होवे
वा चाण्डालका अन्न होवे जिस किसी मनुष्यसे प्राप्त करे, तिस
अन्नको देश काल और पात्रका विचार न करके अनायास
भोजन कर जाय ॥ २८१ ॥

अध्यात्मशास्त्राध्ययैः सदा तत्त्वविचारणैः ।

अवधूतो न येत्कालं स्वेच्छाचारपरायणः ॥ २८२ ॥

अर्थ-अवधूत पुरुष स्वेच्छाचारी होकरभी वेदान्तादि
अध्यात्मशास्त्र पढ़कर सदा आत्मतत्त्वका विचार करके समय
बितावे ॥ २८२ ॥

कुलावधूतस्तत्त्वज्ञोजीवन्मुक्तोनराकृतिः ।

साक्षान्नारायणं मत्वा गृहस्थस्तं प्रपूजयेत् ॥ २८८ ॥

अर्थ—ब्रह्मज्ञानसम्पन्न कुलावधूत मनुष्याकार होकर भी जीवन्मुक्त हैं । गृहस्थ उसको साक्षात् नारायण समझ पूजा करे २८८

येतर्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वपातकात् ।

तीर्थव्रततपोदानसर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ २८९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म

निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे वर्णाश्र-

माचारधर्मकथनं नाम अष्टमोऽल्लासः ॥ ८ ॥

अर्थ—यतीका दर्शन करते ही सब पापों से छूट जाता है । जो पुरुष यतीका दर्शन करता है वह तीर्थगमन, व्रतानुष्ठान, तप, दान और सब यज्ञोंके फलको प्राप्त करलेता है ॥ २८९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे वर्णाश्रमाचारकथनं नाम अष्टमोऽल्लासः ॥ ८ ॥

नवमोऽल्लासः ९.

श्रीसदाशिव उवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माः कथितास्तव सुव्रते ।

संस्कारान्सर्ववर्णानां शृणुष्व गदतो मम ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहाः—हे सुव्रते ! सब वर्ण वा आश्रमोंका आचार और धर्म मैंने तुमसे कहा; इस समय सब वर्णोंका संस्कार कहता हूँ, श्रवण करो ॥ १ ॥

संस्कारेण विना देवि ! देहशुद्धिर्न जायते ।

नासंस्कृतोऽधिकारी स्याद्वैपत्रेचकर्मणि ॥ २ ॥

अर्थ-हे देवि ! संस्कारके विना किसीका देह शुद्ध नहीं होता जिस पुरुषका संस्कार नहीं हुआ, वह कभी देव और पैतृकर्मका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ २ ॥

अतोविप्रादिभिर्वर्णैःस्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रिया ।

कर्त्तव्यासर्वथायतैरिहामुत्तहितेप्सुभिः ॥ ३ ॥

अर्थ-जो इस लोक और परलोकमें हितकी कामना करते हैं उन समस्त ब्राह्मणादि वर्णोंका यह कर्त्तव्य है कि, उनको सर्वप्रकार और सर्वयत्नसे अपने २ वर्णोंका संस्कार करना चाहिये ३

जीवसेकःपुंसवनंसीमन्तोन्नयनंतथा ।

जातनाम्नीनिष्क्रमणमन्नाशनमतःपरम् ।

चूडोपनयनोद्वाहाःसंस्काराःकथितादश ॥ ४ ॥

अर्थ-गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, घरके बाहरहोना, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह यह दश संस्कार कहे गये हैं ॥ ४ ॥

शूद्राणांशूद्रभिन्नानामुपवीतनविद्यते ।

तेषांनवैवसंस्काराद्विजातीनांदशस्मृताः ॥ ५ ॥

अर्थ-शूद्र और साधारण जातिका उपनयन नहीं होता । इसी कारणसे उनके नौ संस्कार और द्विजातियोंके दश संस्कार कहे हैं ॥ ५ ॥

नित्यानिसर्वकर्मणि तथानैमित्तिकानि च ।

काम्यान्यपिवरारोहे ! कुर्याच्छाम्भववर्त्मना ॥ ६ ॥

अर्थ-हे वरारोहे ! सब नित्यकर्म नैमित्तिककर्म और काम्यकर्म महादेवजीकी दिखाई हुई पद्धतिके अनुसार करे ॥ ६ ॥

यानियानिविधानानियेषुयेपुचकर्मसु ।

पुरैवब्रह्मरूपेणतान्युक्तानिमयाप्रिये ! ॥ ७ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जिस २ कर्मका जो जो विधान नियत है
मैंने पहलेही पितामहरूपसे उसको कहा है ॥ ७ ॥

संस्कारेषु च सर्वेषु न तथैवान्येषु कर्मसु ।

विप्रादि वर्णभेदेन क्रमान्मन्त्राश्च दर्शिताः ॥ ८ ॥

अर्थ-दशविध संस्कारमें और नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंके
विषयमें ब्रह्मादि वर्णमें जो मंत्र नियत हैं उनकोभी कह
चुका हूँ ॥ ८ ॥

सत्यत्रेताद्वापरेषु तत्तत्कर्मसु कालिके । ।

प्रणवाद्यांस्तु तान्मन्त्रान्प्रयोगेषु नियोजयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ-हे कालिके ! सत्य, त्रेता और द्वापारयुगमें उपरोक्त
सब कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय मंत्रप्रयोग करनेके नि-
कटही पहले प्रणवको मिलावे ॥ ९ ॥

कलौ तु परमेशानि ! तैरेव मनुभिर्नराः ।

मायाद्यैः सर्वकर्मणि कुर्युः शङ्करशासनात् ॥ १० ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! महादेवजीकी आज्ञा है कि, कलियुग-
में इन सब मंत्रोंके पहले मायाजीज 'ह्रीं' मिलाय नित्य नै-
मित्तिकादि कर्मोंको करे ॥ १० ॥

निगमागमतन्त्रेषु वेदेषु संहितासु च ।

सर्वमन्त्रामयैवोक्ताः प्रयोगोऽयुगभेदतः ॥ ११ ॥

अर्थ-निगम, आगम, तंत्र, वेद उसे संहिताओंमें जो मंत्र
हैं वह सब कह चुके; परन्तु युगभेदसे उसके प्रयोगमें भेद
है ॥ ११ ॥

कलावन्नगतप्राणामानवाहीनतेजसः ।

तेषां हिताय कल्याणि ! कुलधर्मो निरूपितः ॥ १२ ॥

अर्थ-हे कल्याणि ! कलियुगके मनुष्योंका प्राण अन्नमें होगा वह निस्तेज होंगे मैंने उनका हितकरनेको कुलधर्म निरूपण किया है ॥ १२ ॥

कलिदुर्बलजीवानांप्रयासाशक्तचेतसाम् ।

संस्कारादिक्रियास्तेपांसंक्षेपेणापिबच्चिन्ते ॥ १३ ॥

अर्थ-कलियुगके जीवगण अत्यन्त दुर्बल होंगे । उनपर परिश्रम और क्लेश नहीं सहा जायगा । इस कारण मैं उनकी दशाविध संस्कारादि समस्त क्रिया तुमसे संक्षेप करके कहता हूँ ॥ १३ ॥

सर्वेषांशुभकार्योणामादिभूताकुशण्डिका ।

तस्मादादौप्रवक्ष्यामिशृणुतांदिववन्दिते ! ॥ १४ ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते ! कुशण्डिका सब शुभ कर्मोंकी मूलरूप है अतएव पहले कुशण्डिकाको कहता हूँ, श्रवण करो १४

रम्येपरिष्कृतेदेशेतुपाङ्गारादिवर्जिते ।

हस्तमात्रप्रमाणेनस्थण्डिलंरचयेत्सुधीः ॥ १५ ॥

अर्थ-तुष अंगारादि रहित उत्तम रमणीय साफ स्थानमें जानीपुरुष एक हाथके परिमाणका स्थण्डिलके रेतीका बना हुआ होमकी अग्निका स्थान बनावे ॥ १५ ॥

तिस्रोरेखाविधातव्याःप्रागग्रास्तत्रमण्डले ।

कूर्चेनाभ्युक्ष्यताःसर्वावाह्निनावाह्निमाहरेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-फिर उसमण्डलके ऊपरी हिस्सेमें पूर्वकी ओर तीन रेखा खींच कर “हूँ” मंत्र पढ़कर तिसरे अभ्युक्षित करके वाह्नीबीज (रं) पढ़कर अग्नि लावे ॥ १६ ॥

आनीयवाह्नितत्पार्थ्वंस्थापयेद्वाग्भवंस्मरन् ॥ १७ ॥

अर्थ-फिर अग्निलाय “हैं” बीजको स्मरणकर उसको मण्डलके पार्श्वमें स्थापन करे ॥ १७ ॥

ततस्तस्माज्ज्वलदारुगृहीत्वादक्षपाणिना ॥

ह्रीं क्रव्यादेभ्योनमः स्वाहा क्रव्यादांश्चम्परित्यजेत् १८

अर्थ-फिर दहिने हाथके द्वारा उसमेंसे एक जलता हुआ काठ ले “ ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा ” यह मंत्र पढ़ दक्षिणकी ओर राक्षसका अंश छोड़ देवे ॥ १८ ॥

इत्थंप्रतिष्ठितं वह्निं पाणिभ्यामात्मसम्मुखम् ।

उद्धृत्य तामसुरेखासुमायाद्यां व्याहृतिं स्मरन् ॥ १९ ॥

अर्थ-इसप्रकार प्रतिष्ठित अग्निको दोनों हाथोंसे उठाय मायाबीज उच्चारणकर व्याहृति पढ़े और अपने सामने इन तीन रेखाओंके ऊपर ॥ १९ ॥

संस्थाप्य तृणदारुभ्यां प्रवलीकृत्य पावकम् ।

समिधे द्वे घृताक्ते च दुत्वा तस्मिन्नुताशने ।

स्वकर्मविहितं नाम कृत्वा ध्यायेद्धनञ्जयम् ॥ २० ॥

अर्थ-यह अग्निस्थापन करके तृण काष्ठसे उसको उज्ज्वल करे । फिर उस अग्निमें दो घृतयुक्त समिध आहुति देकर फिर इस अग्निका अपने कर्मके अनुसार नाम रखकर धनञ्जयनामक अग्निका ध्यान करे ॥ २० ॥

बालार्कारुणसङ्काशं सतजिह्वं द्रिमस्तकम् ।

अजारूढं शक्तिधरं जटामुकुटमण्डितम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जो बालसूर्यके समान अरुण वर्ण हैं, जिनके सात जीभ हैं, दो मस्तक हैं, जो छागपर सवार हैं, जिनकी शक्तिका परिमाण नहीं, जिनका मस्तक जटा और मुकुटसे शोभायमान है (उन धनञ्जय नामक अग्निका ध्यान करता हूँ) ॥ २१ ॥

ध्यात्वैवंप्राञ्जलिर्भूत्वावाहयेद्धव्यवाहनम् ॥ २२ ॥

अर्थ-इसप्रकार ध्यानकर हाथ जोड़ आगे कहा हुआ मंत्र पढ़कर अग्निका आवाहन करे ॥ २२ ॥

मायामेह्येहिपदतःसर्वामरवदेत्प्रिये ! ।

हव्यवाहपदान्तेचमुनिभिःस्वगणैःसह ।

अध्वरंरक्षरक्षेतिनमःस्वाहाततोवदेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-पहले मायाबीज 'ह्रीं' उच्चारण करके 'एह्येहि' पद पढ़कर 'सर्वामर' पद उच्चारण करे । हे प्रिये ! फिर 'हव्यवाह' पदके पश्चात् "मुनिभिः स्वगणैः सह" अध्वरं रक्षरक्ष नमः स्वाहा" इन सब पदोंको उच्चारण करे (१) ॥ २३ ॥

इत्यावाह्यहव्यवाहमयंतेयोनिरुच्चरन् ।

यथोपचारैःसम्पूज्यसप्तजिह्वांप्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

अर्थ-इसप्रकार आवाहन करके "वह्ने अयं ते योनिः" पद उच्चारण करके पाद्यादि उपचारसे पूजन करके सप्तजिह्वा की अर्चना करे ॥ २४ ॥

कालीकरालीचमनोजवाचसुलोहिताचैवसुधूम्रवर्णा ।

स्फुलिङ्गिनीविश्वनिरूपिणीचलेलायमानेतिचसप्तजिह्वाः २५

अर्थ-सप्तजिह्वाके नाम यथा-काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वनिरूपिणी, लेलायमाना यह सात अग्निकी जीभें हैं ॥ २५ ॥

ततोऽग्नेःपूर्वमारभ्यसहकीलालपाणिना ।

उत्तरान्तंमहेशानि ! त्रिधाप्रोक्षणमाचरेत् ॥ २६ ॥

(१) मन्त्रोद्गात यथा:-"ह्रीं" एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिभिः स्वगणैः सहा-
ध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा"

अर्थ-हे महेश्वर ! फिर अग्निकी पूर्वदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक तीनवार अग्निको प्रोक्षित करे ॥ २६ ॥

तथैवयाम्यमारभ्यकौवेरान्तं हुताशितुः ।

त्रिधापय्युक्षणकुर्व्यात्ततोयज्ञीयवस्तुनः ॥ २७ ॥

अर्थ-तदनन्तर अग्निकी दक्षिणदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक तीनवार प्रोक्षितकर सब उपकरणोंकोभी तीनवार प्रोक्षित करे ॥ २७ ॥

परिस्तरेत्ततोदर्भैः पूर्वस्मादुत्तरावधि ।

उदक्संस्थैरुत्तराग्नेः प्राग्ग्रेरन्यदिक्स्थितैः ॥ २८ ॥

अर्थ-फिर मंडलकी पूर्वदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक कुशसे आच्छादन करे उत्तरदिशाके कुशोंका मुख उत्तरकी ओर करके और दिशाओंके कुशोंका मुख पूर्वकी ओरको स्थापन करे ॥ २८ ॥

अग्निदक्षिणतः कृत्वा गत्वा ब्रह्मासनान्तिकम् ।

वामाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां ब्रह्मणः कल्पितासनात् ॥ २९ ॥

अर्थ-फिर अग्निको दक्षिणदिशामें रख ब्रह्मासनके निकट जाय बाँये हाथसे अँगुठे और कनिष्ठ उँगलीसे ब्रह्माके निमित्त कल्पित आसनसे ॥ २९ ॥

गृहीत्वा कुशपत्रैकं द्वौ निरस्तः परावसुः ।

इत्युक्त्वाग्नेर्दक्षिणस्यां निक्षिपेदुत्तरादिना ॥ ३० ॥

अर्थ-एक कुशपत्र ग्रहण करके “द्वौ निरस्तः परावसुः” मंत्र पढ़कर अग्निकी दाहिनी ओर उसको डाल देवे ॥ ३० ॥

सीदयज्ञपते ! ब्रह्मन्निदन्ते कल्पितासनम् ।

सीदामीति वदन् ब्रह्माविशेत्तत्रोत्तरामुसः ॥ ३१ ॥

अर्थ-फिर कहे कि, हे यज्ञपते ! हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे लिये यह आसन बनाया है, इसपर बैठो । ब्रह्माजी बैठे यह कहकर उत्तरमुख हो उसपर बैठ जावे ॥ ३१ ॥

सम्पूज्यगन्धपुष्पाद्यैर्ब्रह्माणंप्रार्थयेदिदम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-फिर गन्धपुष्पादिसे ब्रह्माकी पूजा करके इसप्रकार प्रार्थना करे कि ॥ ३२ ॥

गोपाययज्ञंयज्ञेश ! यज्ञंपाहिवृहस्पते ! ।

माश्वयज्ञपतिपाहिकर्मसाक्षिन्नमोऽस्तुते ॥ ३३ ॥

अर्थ-हे यज्ञेश्वर ! इस यज्ञकी रक्षा करो ! हे बृहस्पति ! इस यज्ञकी रक्षा करो ! हे यज्ञपति ! मेरी रक्षा करो, हे कर्मसाक्षी ! तुमको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

गोपायामिवदेद्ब्रह्माब्रह्माभोवस्त्वयंवदेत् ।

तत्रदर्भमयंविप्रंकल्पयेद्यज्ञसिद्धये ॥ ३४ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्मा कहे कि, रक्षा करताहूं ब्रह्माके न होनेसे स्वयं यह वाक्य कहना चाहिये और यज्ञकी सिद्धिके अर्थ उस ब्रह्माके स्थानमें दर्भमय ब्राह्मणकी कल्पना करे ॥ ३४ ॥

ततोब्रह्मन्निहागच्छागच्छेत्यावाह्यसाधकः ।

पाद्यादिभिश्चसम्पूज्ययावद्यज्ञसमापनम् ।

तावद्भवद्भिःस्थातव्यमितिप्रार्थनमेत्ततः ॥ ३५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधक आवाहन करे कि 'हे ब्रह्मन् ! इहागच्छ २ ' फिर पाद्यादिसे उनकी पूजाकरके प्रार्थना करे कि, जबतक यज्ञकी समाप्ति न होवे तबतक आप यहां रहें फिर साधक नमस्कार करे ॥ ३५ ॥

सोदकेनकरेणाग्नेरीशानाद्ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।

त्रिधापर्युक्ष्यवह्निश्चत्रिःप्रोक्ष्यतदनन्तरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-फिर हाथसे जल ग्रहणकर अग्निके ईशानकोणसे आरम्भ करके ब्रह्माके निकटतक तीनवार जल छिड़के इस प्रकार तीनवार अग्निको प्रोक्षित करे ॥ ३६ ॥

आगत्यवर्त्मनातेनसूपविश्यनिजासने ।

स्थण्डिलस्योत्तरेदर्भानुदगग्रान्परिस्तरेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-फिर पहले जिसमार्गसे ब्रह्माके आसनके निकट गमन किया था उस मार्गसे लौटकर अपने आसनपर बैठे और मण्डलकी उत्तरदिशामें थोड़ेसे कुश उत्तरकी ओरको मुखकरके फैलावे ॥ ३७ ॥

तेषुयज्ञीयवस्तूनि सर्वाण्यासादयेत्सुधीः ।

मोदकंप्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीसमित्कुशान् ॥ ३८ ॥

अर्थ-फिर साधकको उचित है कि, जलरहित प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली और समिध कुशादि यज्ञकी सामग्री दर्भके बिछौनेपर रखे ॥ ३८ ॥

आसाद्यसृक्सुवादीनिद्वांद्वांद्वांमितिमन्त्रकैः ।

दिव्यदृष्ट्याप्रोक्षणेन संस्कृत्य तदनन्तरम् ॥ ३९ ॥

अर्थ-फिर सृक् सुवा आदि यज्ञके सब पात्र दर्भके इस बिछौनेपर स्थापन करके “द्वां द्वीं हूं” यह मंत्र पढ़कर दिव्य-दृष्टि (बिना पलक मारे देखने) से और प्रोक्षणसे उन सबको शुद्ध करे ॥ ३९ ॥

पृथिव्यांदक्षिणंजानुपातयित्वा सृवेसृचा ।

घृतमादायमतिमांश्चिन्तयन् हितमात्मनः ।

द्वांविष्णवेद्विठान्तेनप्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ ४० ॥

अर्थ-फिर ज्ञानी साधक पृथ्वीमें दाहिनी जाँघ झुकाय सृक्से सुवानामक यज्ञीयपात्रसे घृत ग्रहण करके अपनी

मंगल कामना करते २ “ह्रीं विष्णवे स्वाहा” मंत्र पढ़कर तीनवार आहुति देवे ॥ ४० ॥

तथैव घृतमादाय ध्यायन् देवं प्रजापतिम् ।

वायव्यादग्निकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ॥ ४१ ॥

अर्थ-इस प्रकार दुबारा शुकद्वारा श्रुवानामक यज्ञपात्र-
मेंसे घृत लेकर देव प्रजापतिका ध्यान करते “ह्रीं प्रजापतये
स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर वायुकोणसे आरम्भ करके अग्निको-
णतक घृतद्वारा होम करे ॥ ४१ ॥

पुनराज्यं समादाय ध्यायन् देवं पुरन्दरम् ।

नैऋतादौ शकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ॥ ४२ ॥

अर्थ-ऐसेही फिर घृतको ग्रहण करके पुरन्दर देवका ध्यान
करते २ “ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा” इसमंत्रको पढ़कर नैऋत
कोणसे आरम्भ करके ईशानकोणतक घृतसे आहुति देवे ४२

ततोऽग्रे रुतरेयाभ्ये मध्ये च परमेश्वरि ।।

अग्निसोममग्नीषोमौ समुल्लिख्य यथा क्रमात् ॥ ४३ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! तदनन्तर फिर ऐसेही घृतको ग्रहण
करके अग्निके उत्तर दक्षिणमें और मध्यमें क्रमानुसार अग्नि,
सोम और अग्नीषोमके अर्थ ॥ ४३ ॥

स चतुर्थी नमोऽन्ते नमायाद्येनाहुतित्रयम् ।

हुत्वा विधेय कर्मोक्तं होमं कुर्व्याद्विचक्षणः ॥ ४४ ॥

अर्थ-“ह्रीं अग्नये नमः ह्रीं सोमाय नमः ह्रीं अग्नीषोमाभ्यां
नमः” यह मंत्र पढ़कर तीनवार आहुति देवे, ज्ञानी पुरुष इस
प्रकारसे धाराहोम करके ऋतुसंस्कारादि कर्मका होम करे ४४

आहुतित्रयदानान्तं धाराहोमं प्रचक्षते ॥ ४५ ॥

अर्थ- तीन आहुति देने तक को धारा होम कहते हैं ॥ ४५ ॥

यदुद्दिश्याहुतिंदद्यादेयोद्दशोऽपितत्कृते ।

समाप्यप्रकृतंकर्मस्विष्टकृद्धोममाचरेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-जिस देवताके अर्थ आहुति दीजाय उस देवताके अर्थ दी हुई वस्तुका नाम लेनाभी उचित है यथाः “ह्रीं विष्णवे स्वाहा हविरिदं विष्णवे” इसप्रकार यथार्थ होमकर्म समाप्त करके स्विष्टकृतहोम अर्थात् उत्तम अभीष्टदायक होम करे ४६

प्रायश्चित्तात्मकोहोमःकलौनास्तिवरानने !

स्विष्टकृताव्याहृतिभिःप्रायश्चित्तंविधीयते ॥ ४७ ॥

अर्थ-हे वरानने ! कलिकालमें प्रायश्चित्त होमका अनुष्ठान नहीं है, इस कारण स्विष्टकृत और व्याहृतिहोमसे प्रायश्चित्त होता है ॥ ४७ ॥

पूर्ववद्धविरादायब्रह्माणंमनसास्मरन् ।

अस्मिन्कर्मणिदेवेश ! प्रमादाद्भ्रमतोऽपिवा ॥ ४८ ॥

न्यूनाधिकंकृतंयच्चसर्वस्विष्टकृतंकुरु ।

मायाद्येनामुनादेवि ! स्वाहान्तेनाहुतिंहुनेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-फिर सृक् नामक यज्ञपात्रके द्वारा सुवानामक यज्ञपात्रमेंसे पहलेकी अनुसार घृत ग्रहण करके मनहोमनमें ब्रह्माजीका स्मरण करे और माया बीजका उच्चारण करके यह मंत्र पढ़े कि “हे देवदेव !” प्रमाद या भ्रमके कारण इस कर्ममें जो कुछ न्यूनाधिक हो गया है वह मुझको उत्तम फलदायक कर दो. हे देवि ! यह मंत्र पढ़ “स्वाहा” पद उच्चारण करके आहुति देवे (१) ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

(१) “ह्रीं अस्मिन् कर्मणि देवेश प्रमादाद्भ्रमतोऽपि वा । न्यूनाधिकं यचकृतं सर्वं स्विष्टकृतं कुरु स्वाहा” ।

। त्वमग्ने ! सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत् प्रभुः ।

यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्वान्कामान्प्रपूरय ।

अनेन हवनं कुर्व्यान्मायया वह्निजायया ॥ ५० ॥

अर्थ-हे अग्ने ! तुम सर्वलोकोंको पवित्र करते हो, तुम सब-को अभीष्ट फल देते हो और प्रभु हो तुम यज्ञके साक्षी और मंगलकारी हो तुम हमारी सर्वकामना पूर्ण करो । प्रथम माया बीज 'ह्रीं' और फिर 'स्वाहा' पद उच्चारण करके इस मंत्रसे आहुति देवे (१) ॥ ५० ॥

इत्थं स्विष्टकृतं होमं समाप्य क्रतुसाधकः ।

कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं विहितञ्च यत् ॥ ५१ ॥

अर्थ-इस प्रकारसे यज्ञकर्त्ता स्विष्टकृत होमको सिद्ध कर ऐसी प्रार्थना करे कि, हे परब्रह्मन् ! इस यज्ञमें जो कुछ अयुक्त कर्म हुआ है ॥ ५१ ॥

तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्याहूयते विभो ! ।

मायादिवह्निजायान्तैर्भूर्भुवःस्वरितिविभिः ॥ ५२ ॥

अर्थ-उसकी शान्तिके लिये और यज्ञसम्पत्तिके लिये व्याहृति होम करता हूँ (२) फिर "ह्रीं भूःस्वाहा, ह्रीं भुवःस्वाहा, ह्रीं स्वःस्वाहा" इन तीन मंत्रोंसे ॥ ५२ ॥

आहुतित्वितयंदद्यान्नितयेन तथैव च ।

हुत्वा भौयजमानेन दद्यात्पूर्णाहुतिं बुधः ! ॥ ५३ ॥

अर्थ-तीनवार आहुति देवे । फिर "ह्रीं भूर्भुवःस्वःस्वाहा"

(१) "ह्रीं त्वमग्ने सर्वलोकानां पावनं स्विष्टकृत् प्रभुः । यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्वान्कामान्प्रपूरय स्वाहा" ।

(२) "ह्रीं कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्न अयुक्तं विहितं च यत् । तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्या हूयते विभो" ।

इस मंत्रसे एकवार आहुति देकर यज्ञकर्त्ता यजमानके साथ यज्ञेश्वरके लिये फिर आहुति दे ॥ ५३ ॥

स्वयंचैत्कर्मकर्त्तास्यात्स्वयमेवाहुतिंक्षिपेत् ।

अभिषेकविधानानामेवमेवविधिःस्मृतः ॥ ५४ ॥

अर्थ—यदि यजमान स्वयं कर्मकर्त्ता हो तो स्वयं आहुति देवे । अभिषेकविधानस्थलमेंभी ऐसीही विधि कही है ॥ ५४ ॥

आदौमायांसमुच्चार्य्यततोयज्ञपते ! वदेत् ।

पूर्णोभवतुयज्ञोमेहृष्यन्तुयज्ञदेवताः ।

फलानिसम्यग्यच्छन्तुवाह्निकान्तावधिर्मनुः ॥ ५५ ॥

अर्थ—प्रथम मायाबीज उच्चारण करके फिर “यज्ञपते” पद उच्चारण करे । फिर कहे कि, यह मेरा यज्ञ पूर्ण होवे यज्ञदेवता-गण संतुष्ट होकर इस यज्ञका संपूर्ण फल दे, फिर इस मंत्रके अन्तमें “स्वाहा” पद लगावे ॥ ५५ ॥

मन्त्रेणानेनमतिमानुत्थायसुसमाहितः ।

फलताम्बूलसहिताहुतिंदद्याद्भुताग्ने ॥ ५६ ॥

अर्थ—त्राणीपुरुष खड़ा होकर सावधान हो इस मन्त्रसे फल और पानके साथ अग्निमें आहुति देवे ॥ (१) ॥ ५६ ॥

दत्तपूर्णाहुतिर्विद्वान्छान्तिकर्मसमाचरेत् ।

प्रोक्षणीपात्रतोयेनकुशैःसम्मार्जयेच्छिरः ॥ ५७ ॥

अर्थ—विद्वान् पुरुष पूर्णाहुति देकर शान्ति कर्म करे । पहले तो कुशकरके प्रोक्षणीपात्रसे जल लेकर मस्तकपर डाले ॥ ५७ ॥

आपःसुमित्रियाःसन्तुभवन्त्वोपधयोमम ।

आपोरक्षन्तुमानित्यमापोनारायणःस्वयम् ॥ ५८ ॥

(१) पूर्णाहुतिका मन्त्र—“हो यज्ञपते पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः । फलानि सम्यक् यच्छन्तु स्वाहा” ।

अर्थ-(इसका मन्त्र यह है कि) जल मेरा श्रेष्ठ मित्रस्वरूप हो । जल मेरे लिये औषधिस्वरूप हो, जल नारायणस्वरूप है, जल सदा हमलोगोंकी रक्षा करे ॥ ५८ ॥

आपोहिष्टामयोभुवस्तानउर्जेदधातन ।

इत्याभ्यांमार्जनंकृत्वाभूमौविन्दून्विनिक्षिपेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ-हे जल ! तुम सुख देतेहो तुम हमको ऐहिक विषय दान करो । इस मन्त्रसे मस्तक गीलाकर पृथ्वीपर जलकी बूँदें डाले ॥ ५९ ॥

येद्विपन्तिचमानित्ययांश्चद्विष्मोनरान्वयम् ।

आपोदुर्मित्रियास्तेपांसन्तुभक्षन्तुतानपि ॥ ६० ॥

अर्थ-जो लोग सदा हमसे द्वेष करते हैं हमलोग जिनसे द्वेष करते हैं । उनके लिये जल शत्रुस्वरूप होकर उनका भक्षण करे ॥ ६० ॥

अनेनेशानदिग्भागेविन्दून्प्राक्षिप्यतान्कुशान् ।

हित्वाकृताञ्जलिर्भूत्वाप्रार्थयेद्भव्यवाहनम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-यह मन्त्र पढ़कर कुशसे ईशानकोणमें जलकी बूँदें डालकर कुशोंको छोड़देवे फिर हाथ जोड़कर अग्निके निकट प्रार्थना करे कि ॥ ६१ ॥

बुद्धिविद्याबलमेधांप्रज्ञांश्रद्धायशःश्रियम् ।

आरोग्यंतेजआयुष्यंदेहिमेहव्यवाहन ! ॥ ६२ ॥

अर्थ-हे हुताशन ! मुझको बुद्धि अर्थात् शास्त्रादितत्त्वज्ञान, बल अर्थात् शक्ति, मेधा अर्थात् धारणशक्ति, प्रज्ञा अर्थात् सारासार विवेककी निपुणता, श्रद्धा, यश, श्री, आरोग्य, तेज, आयु इन सबको प्रदान करो ॥ ६२ ॥

इतिप्रार्थ्यवीतिहोत्रं विसृजेदमुनाशिवे ! ॥ ६३ ॥

अर्थ—हे शिवे ! अग्निके निकट इसप्रकार प्रार्थना करके इसमंत्रसे विसर्जन करे कि ॥ ६३ ॥

यज्ञ ! यज्ञपतिगच्छयज्ञगच्छहुताशन ! ।

स्वांयोनिगच्छयज्ञेश ! पूरयास्मन्मनोरथम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे यज्ञ ! तुम यज्ञपुरुष विष्णुमें गमन करो । हे हुताशन ! तुम यज्ञमें प्रवेश करो । हे यज्ञेश्वर ! तुम अपने स्थानमें गमन करो और मेरे मनोरथको पूर्ण करो ॥ ६४ ॥

अग्ने ! क्षमस्वस्वाहेतिमन्त्रेणाग्निरुदग्दिशि ।

दत्त्वादभ्राहुतिर्वह्निदक्षिणस्यांविचालयेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ—‘अग्ने ! क्षमस्व स्वाहा’ यह मंत्र पढ़कर अग्निकी उत्तर ओरमें दधिसे आहुति देकरके अग्निको दक्षिण ओर चालित करे ॥ ६५ ॥

ब्रह्मणेदक्षिणां दत्त्वा भक्त्या नत्वा विसर्जयेत् ।

ततस्तुतिलकंकुर्यात्सुवसंलग्नभस्मना ॥ ६६ ॥

अर्थ—फिर ब्रह्माको दक्षिणा देकर भक्तिके साथ नमस्कार करके विसर्जन करे फिर सुवनामक यज्ञपात्रमें लगी हुई भस्मसे तिलक करे ॥ ६६ ॥

मायांकामंसमुच्चार्य सर्वशान्तिकरो भव ।

ललाटे तिलकंकुर्यान्मन्त्रेणानेन याज्ञिकः ॥ ६७ ॥

अर्थ—“ह्रीं क्रीं सर्वशान्तिकरो भव” इस मंत्रसे यज्ञकर्त्ताको ललाटमें तिलक धारण करना चाहिये ॥ ६७ ॥

शान्तिरस्तु शिवं चास्तु वासवाग्निप्रसादतः ।

मरुतां ब्रह्मणश्चैव वसुरुद्रप्रजापतेः ॥ ६८ ॥

अर्थ-इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसुगण, रुद्रगण और मरुद्गणोंके प्रसादसे शांति होवे ॥ ६८ ॥

अनेनमनुनायुष्यंधारयन्मस्तकोपरि ।

स्वशक्त्यादक्षिणांदद्याद्धोमप्रकृतकर्मणोः ॥ ६९ ॥

अर्थ-इस मंत्रको पढ़कर मस्तकके ऊपर आयुवृद्धिकारी तिलक लगाय होमकी और प्रकृतकर्मकी दक्षिणा देवे ॥ ६९ ॥

इतितेकथितादेवि ! सर्वकर्मकुशण्डिका ।

प्रयोज्याशुभकर्मादौयत्नतःकुलसाधकैः ॥ ७० ॥

अर्थ-हे देवि ! यह मैंने तुमसे सब सत्कर्मोंकी कुशकण्डिका कही । जो लोग कुलसाधक हैं, उनकी शुभकर्म करनेके पहले यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ७० ॥

प्रकृतेकर्मणिशिवे ! चरुयैपांकुलागमः ।

सिद्ध्यर्थकर्मणान्तेपांचरुर्मनिगद्यते ॥ ७१ ॥

अर्थ-हे शिवे ! वंशके क्रमसे प्रकृतकर्ममें जिनका चरु करनेका नियम है उनकी कर्मसिद्धिके लिये चरुकर्म कहाँ है ॥ ७१ ॥

चरुस्थालीप्रकर्तव्याताम्रीवामृत्तिकोद्भवा ॥ ७२ ॥

अर्थ-पहले तो तौबेकी या मिट्टीकी चरुस्थाली बनावे ७२

कुशण्डिकोक्तविधिनाद्रव्यसंस्करणावधि ।

कृत्वाकर्मचरुस्थालीमानयेदात्मसम्मुखे ॥ ७३ ॥

अर्थ-फिर कुशकण्डिकामें कहीहुई विधिके अनुसार द्रव्य-संस्कारसे लेकर सर्वकर्म करके अपने सम्मुख चरुस्थालीको लावे ॥ ७३ ॥

अक्षतामव्रणादृद्धाप्रदेशपरिमाणकम् ।

पवित्रकुशमेकञ्चस्थालीमध्येनियोजयेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—फिर इस चरुस्थालीको अक्षत और व्रणरहित देखकर प्रादेशके प्रमाणका एक पवित्रकुश थालीमें रखे ॥ ७४ ॥

आनीयतण्डुलांस्तत्रसंस्थाप्यस्थण्डिलान्तिके ।

यस्मिन्कर्मणिदेवाः पूजनीयाः सुरार्चिते ॥ ७५ ॥

अर्थ—हे सुरवन्दिते ! तिसके पीछे यज्ञके स्थानमें चावल लायकर स्थण्डिलके निकट स्थापित करके ऋतुसंस्कारादि जिस कर्मसे जिस देवताकी पूजा करनेकी रीति है ॥ ७५ ॥

तत्तन्नामचतुर्थ्यन्तमुक्त्वात्वाजुष्टमीरयन् ।

गृह्णामिनिर्वपामीतिप्रोक्षामीतिक्रमाद्दन् ॥ ७६ ॥

अर्थ—चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें तिन २ का नाम लेकर “त्वाजुष्टम्” (प्रीतिपूर्वक) यह कहकर क्रमशः “गृह्णामि” (लेताहूँ) “निर्वपामि” (स्थालीमें रखताहूँ) “प्रोक्षामि” (जल छिड़कताहूँ) कहकर ॥ ७६ ॥

गृहीत्वानिर्वपेत्स्थाल्यांप्रोक्षयेज्जलविन्दुना ।

प्रत्येकश्चतुरोमुष्टीन्देवमुद्दिश्यतण्डुलान् ॥ ७७ ॥

अर्थ—प्रत्येक देवताकेलिये चार २ मुष्टी चावल ग्रहणकरे और थालीमें रखकर जल छिड़के (१) ॥ ७७ ॥

ततोदुग्धंसिताञ्चैवदत्वापाकविधानतः ।

सुपचेत्संस्कृतेवह्नौसावधानेनसुव्रते ! ॥ ७८ ॥

अर्थ—हे सुव्रते ! फिर उसमें दूध और बूरा डालकर सावधानहृदयसे शोधित अग्निमें पाकविधिके अनुसार उसको उत्तमरूपसे पकावै ॥ ७८ ॥

(१) मंत्रो यथा:—‘अमुक देवाय त्वा जुष्टं गृह्णामि’ इसमंत्रसे चावल ग्रहण करके “अमुकदेवाय त्वाजुष्टं निर्वपामि” इस मंत्रसे उसस्थालीमें स्थापन करे फिर “अमुकदेवाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि” यह पढ़कर इन चावलमें जल डाले ।

अर्थ-इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसुगण, रुद्रगण और मरुद्गणोंके प्रसादसे शांति होवे ॥ ६८ ॥

अनेनमनुनायुष्यंधारयन्मस्तकोपरि ।

स्वशक्त्यादक्षिणांदद्याद्धोमप्रकृतकर्मणोः ॥ ६९ ॥

अर्थ-इस मंत्रको पढ़कर मस्तकके ऊपर आयुवृद्धिकारी तिलक लगाय होमकी और प्रकृतकर्मकी दक्षिणा देवे ॥ ६९ ॥

इतितेकथितादेवि ! सर्वकर्मकुशण्डिका ।

प्रयोज्याशुभकर्मादौयत्नतःकुलसाधकैः ॥ ७० ॥

अर्थ-हे देवि ! यह मैंने तुमसे सब सत्कर्मोंकी कुशकण्डिका कही । जो लोग कुलसाधक हैं, उनको शुभकर्म करनेके पहले यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ७० ॥

प्रकृतेकर्मणिशिवे ! चरुर्येषांकुलागमः ।

सिद्ध्यर्थकर्मणान्तेषांचरुकर्मनिगद्यते ॥ ७१ ॥

अर्थ-हे शिवे ! वंशके क्रमसे प्रकृतकर्ममें जिनका चरु करनेका नियम है उनकी कर्मसिद्धिके लिये चरुकर्म कहता हूँ ॥ ७१ ॥

चरुस्थालीप्रकर्तव्याताम्रीवामृत्तिकोद्भवा ॥ ७२ ॥

अर्थ-पहले तो तौबेकी या मिट्टीकी चरुस्थाली बनावे ७२

कुशण्डिकोक्तविधिनाद्रव्यसंस्करणावधि ।

कृत्वाकर्मचरुस्थालीमानयेदात्मसन्मुखे ॥ ७३ ॥

अर्थ-फिर कुशकण्डिकामें कहीहुई विधिके अनुसार द्रव्य-संस्कारसे लेकर सर्वकर्म करके अपने सन्मुख चरुस्थालीको लावे ॥ ७३ ॥

अक्षतामव्रणादृद्धाप्रदेशपरिमाणकम् ।

पवित्रकुशमेकञ्चस्थालीमध्येनियोजयेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—फिर इस चरुस्थालीको अक्षत और व्रणरहित देखकर प्रादेशके प्रमाणका एक पवित्रकुश थालीमें रखे ॥ ७४ ॥

आनीयतण्डुलांस्तत्रसंस्थाप्यस्थण्डिलान्तिके ।

यस्मिन्कर्मणिदेवाः पूजनीयाः सुरार्चिते ॥ ७५ ॥

अर्थ—हे सुरवन्दिते ! तिसके पीछे यज्ञके स्थानमें चावल लायकर स्थण्डिलके निकट स्थापित करके ऋतुसंस्कारादि जिस कर्मसे जिस देवताकी पूजा करनेकी रीति है ॥ ७५ ॥

तत्तन्नामचतुर्थ्यन्तमुक्त्वा त्वाजुष्टमीरयन् ।

गृह्णामिनिर्वपामीतिप्रोक्षामीतिक्रमाद्ब्रून् ॥ ७६ ॥

अर्थ—चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें तिन २ का नाम लेकर “त्वाजुष्टम्” (प्रीतिपूर्वक) यह कहकर क्रमशः “गृह्णामि” (लेताहूं) “निर्वपामि” (स्थालीमें रखताहूं) “प्रोक्षामि” (जल छिड़कताहूं) कहकर ॥ ७६ ॥

गृहीत्वानिर्वपेत्स्थाल्यां प्रोक्षयेज्जलविन्दुना ।

प्रत्येकश्चतुरोमुष्टीन्देवमुद्दिश्य तण्डुलान् ॥ ७७ ॥

अर्थ—प्रत्येक देवताकेलिये चार २ मुष्टी चावल ग्रहणकरे और थालीमें रखकर जल छिड़के (१) ॥ ७७ ॥

ततो दुग्धं सिताञ्चैव दत्वा पाकविधानतः ।

सुपचेत्संस्कृते वह्नौ सावधानेन सुव्रते ॥ ७८ ॥

अर्थ—हे सुव्रते ! फिर उसमें दूध और बूरा डालकर सावधानद्वयसे शोधित अग्निमें पाकविधिके अनुसार उसको उत्तमरूपसे पकावै ॥ ७८ ॥

(१) मंत्रो यथा:—‘अमुक देवाय त्वा जुष्टं गृह्णामि’ इस मंत्रमें चावल ६४ प करके “अमुकदेवाय त्वा जुष्टं निर्वपामि” इस मंत्रमें दसस्थालीमें स्थापन करे फिर “अमुकदेवाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि” यह कहकर इन चालीमें जल डाले ।

सुपक्वकोमलंजात्वादद्यात्तत्रघृतस्रुवम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-फिर जब जाने कि, यह अन्न सुपक्व और कोमल हुआ है तब उसमें घृतपूर्ण स्रुव डाले ॥ ७९ ॥

अग्रेरुत्तरतःपात्रंविनिधायकुशोपरि ।

पुनस्त्रिधाघृतंदत्वास्थालीमाच्छादयेत्कुशैः ॥ ८० ॥

अर्थ-फिर अग्निकी उत्तरदिशामें कुशोंके ऊपर चक्र स्थापन करके फिर उसमें तीनवार घृत डालकर कुशोंसे चरुस्थालीको ढक देवे ॥ ८० ॥

ततःस्रुवेचरुस्थाल्याघृताधारणपूर्वकम् ।

किञ्चिच्चरुंसमादायजानुहोमंसमाचरेत् ॥ ८१ ॥

अर्थ-तदुपरांत चरुस्थालीसे स्रुवनामक यज्ञपात्रमें थोड़ासा चरु ले तिसमें घृत डालकर जानुहोम करे (१) ॥ ८१ ॥

धाराहोमततःकृत्वाप्रधानीभूतकर्मणि ।

यत्रयेविहितादेवास्तन्मन्त्रैराहुर्ताहुर्नेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ-अनंतर धाराहोम करके जिस प्रधान कर्मके जिस २ स्थानमें जो जो देवता पूज्य हैं; उसी २ देवताके मंत्रसे आहुति देवे ॥ ८२ ॥

समाप्यप्रकृतंहोमंस्विष्टकृद्धोमपूर्वकम् ।

प्रायश्चित्तात्मकंहुत्वाकुर्व्यात्कर्मसमापनम् ॥ ८३ ॥

अर्थ-इसप्रकार वास्तविक होम समाप्त करके स्विष्टकृत होम पूर्ण करे फिर प्रायश्चित होम करके कर्म समाप्त करे ॥ ८३ ॥

संस्कारेषुप्रतिष्ठासुविधिरेपप्रकीर्तितः ।

विधेयःशुभकर्मदौकर्मसंसिद्धिहेतवे ॥ ८४ ॥

अर्थ—दशविधि संस्कारके समय और प्रतिष्ठा इसप्रकारकी विधिसे है, शुभकर्मके पहले कर्मसिद्धिके लिये इसप्रकारकी विधिके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अथोच्यतेमहामाये ! गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।

तत्रादावृतुसंस्कारः कथ्यते क्रमतः शृणु ॥ ८५ ॥

अर्थ—हे महामाये ! अब गर्भाधानादि क्रियाकलापका वर्णन करता हूँ, तिसमें पहले क्रमके अनुसार ऋतुसंस्कार कहा जाता है, सो तुम श्रवण करो ॥ ८५ ॥

कृतनित्यक्रियः शुद्धः पञ्चदेवान्समर्चयेत् ।

ब्रह्मादुर्गागणेशश्च ग्रहादिक्पतयस्तथा ॥ ८६ ॥

अर्थ—नित्यकर्म समाप्त करके शुद्धशरीरहो पहले पंचदेवताकी पूजा करे । फिर ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, ग्रह, दिक्पाल ८६

स्थण्डिलस्येन्द्रदिग्भागे घटेष्वेतान् प्रपूजयेत् ।

ततस्तु मातृकाः पूज्या गौर्याद्याः षोडशक्रमात् ॥ ८७ ॥

अर्थ—इन देवताओंको स्थण्डिलकी पूर्व ओर घटके ऊपर पूजे क्रमानुसार गौरीआदि षोडश मातृकाकी पूजा करे ॥ ८७ ॥

गौरीपद्माशचीमेधासावित्रीविजयाजया ।

देवसेनास्वधास्वाहाशान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा ।

आत्मनो देवता चैव तथैव कुलदेवता ॥ ८८ ॥

अर्थ—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, क्षमा, आत्म-देवता और कुलदेवता ॥ ८८ ॥

आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्दकारिकाः ।

विवाहव्रतयज्ञानां सर्वाभीष्टं प्रकल्प्यताम् ॥ ८९ ॥

अर्थ-इन देवताओंको आनन्द देनेवाली यह सब मातृका आवें यह विवाह व्रत और यज्ञमें अभिप्रायानुसार फल दें ॥ ८९ ॥

यानशक्तिसमारूढाःसौम्यमूर्तिधराःसदा ।

आयान्तुमातरःसर्वायज्ञोत्सवसमृद्धये ॥ ९० ॥

अर्थ-अपनी २ सनारियोंपर और शक्तिपर आरूढ़ हुई यह मातृकाएँ यज्ञोत्सवकी समृद्धिके लिये आवें ॥ ९० ॥

इत्यावाह्यमातृगणान्स्वशक्त्यापरिपूज्यच ।

देहल्यांनाभिमात्रायांप्रादेशपरिमाणतः ।

सप्तवापञ्चवाविन्दून्दद्यात्सिन्दूरचन्दनैः ॥ ९१ ॥

अर्थ-इस मन्त्रकी पढ़ मातृकाओंका आवाहन कर यथा-शक्ति उनकी पूजा करे । फिर देहलीके मध्य नाभिपरिमाणके ऊँचे स्थानमें, प्रादेशके परिमाणके स्थानमें सिंदूर और चंदनसे सात या पाँच विन्दू अंकित करे ॥ ९१ ॥

प्रत्येकविन्दुमंतिमान्कामंमायारमांस्मरन् ।

घृतधारामविच्छिन्नादत्वातत्रवसुंयेत ॥ ९२ ॥

अर्थ-ज्ञानीपुरुष “क्लीं ह्रीं श्रीं” इन तीन बीजोंकी स्मरण करते २ प्रत्येक विन्दुके ऊपरकी ओर लगातार घृतकी धार देकर तिसमें गन्धपुष्पादिसे ऊपरके वसुकी पूजा करे ॥ ९२ ॥

वसुधारांप्रकल्प्यैवंमयोक्तेनैववर्त्मना ।

विरच्यस्थण्डिलंरौवाह्निस्थापनपूर्वकम् ।

होमद्रव्याणिसंस्कृत्यपचेच्चरुमनुत्तमम् ॥ ९३ ॥

अर्थ-मेरी कहीहुई पद्धतिके अनुसार इसप्रकार वसुधारा बनाय स्थण्डिलरचना करके तिसमें वह्निस्थापन करे फिर होमद्रव्यका संस्कार करके श्रेष्ठ चरुपाक करे ॥ ९३ ॥

प्राजापत्यश्चरुश्चात्रवायुनामाहुताग्निः ।

समाप्यधाराहोमान्तंकृत्यमार्तवमारभेत ॥ ९४ ॥

अर्थ—इस ऋतुसंस्कारके कर्म्ममें जो चरु बनाया जाता है, उसका नाम प्राजापत्य है । इसमें स्थापित हुई अग्निका नाम वायु है । धाराहोमतक सब कार्योंको करके ऋतुकर्मका आरंभ करे ॥ ९४ ॥

ह्रींप्रजापतयेस्वाहाचरुणैवाहुतितयम् ।

प्रदायैकाहुतिदद्यादिममन्त्रमुदीरयन् ॥ ९५ ॥

अर्थ—“ह्रीं प्रजापतये स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर चरुसे तीन आहुति देवै । फिर आगे कहेहुए मंत्रका पाठ करते करते आहुति देवे ॥ ९५ ॥

विष्णुयोनिकल्पयतुत्वष्टारूपाणिपिशुतु ।

आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भं दधातुते ॥ ९६ ॥

अर्थ—(मंत्रार्थ) विष्णु उत्पादकहों, त्वष्टा रूपविधान करें, प्रजापति निषेक करें, धाता गर्भसम्पादन करें ॥ ९६ ॥

आज्येनचरुणावापिसाज्येनचरुणापिवा ।

सूर्यप्रजापतिविष्णुं ध्यायन्नाहुतिमुत्सृजेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ—फिर सूर्य प्रजापति विष्णुजीका ध्यान करते २ घृत, चरु वा घृतसहित चरुसे उक्त सूर्यादिदेवताओंके लिये आहुति देवे ॥ ९७ ॥

गर्भं ये हि सिनीवाली गर्भं ये हि सरस्वती ।

गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करजौ ॥ ९८ ॥

अर्थ—तुम देवी सिनीवालीरूप होकर गर्भधारण करो । तुम सरस्वती होकर गर्भधारण करो । कमलकी माला पहिरे दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारा गर्भाधान करें ॥ ९८ ॥

ध्यात्वादेवीं सिनीवालीं सरस्वत्यश्विनौ तथा ।

स्वाहान्तमनुनानेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ॥ ९९ ॥

अर्थ-देवी सिनीवाली सरस्वती और दोनों अश्विनीकुमारोंको स्मरण करके उक्त (१) मंत्रपद “स्वाहा” उच्चारण कर उत्तम आहुति देवे ॥ ९९ ॥

ततः कामं वधूं मायां रमां कूर्चं समुच्चरन् ।

अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधे हि सद्भिष्टम् ।

उक्ताध्यात्वा रविं विष्णुं जुहुयात् संस्कृतेऽनले ॥ १०० ॥

अर्थ-फिर “ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं हूं अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधे हि स्वाहा” यह मंत्र पढ़कर सूर्य और विष्णुका ध्यान करके संस्कारित अग्निमें आहुति देवे ॥ १०० ॥

यथेयं पृथिवी देवी तु तानागर्भमादधे ।

तथा त्वंगर्भमाधे हि दशमे मासि मृतये ।

स्वाहान्तेनामुना विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमाचरेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-यह विष्णुदेवी पृथ्वी जिसप्रकारसे गर्भधारण करती है वैसेही दशममासमें प्रसव होनेके लिये तुम गर्भधारण करो । यह मंत्र पढ़ “स्वाहा” पद उच्चारण कर और विष्णुजीका ध्यान करके आहुति दे ॥ १०१ ॥

पुनराज्यं समादाय ध्यात्वा विष्णुं परात्परम् ।

विष्णो ! ज्येष्ठेन रूपेण नार्घ्यामर्च्या विरीयसम् ।

सुतमाधे हि च द्रव्यमुक्तावह्नाहविस्त्यजेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-फिर मृत ले परात्पर विष्णुजीका ध्यान करके (१) “ह्रीं गर्भं धेहि मित्रोत्तमं गर्भं धेहि मरुत्तमम् । गर्भं ते अश्विनौ देवात्पुत्रं पुंश्चरसौ स्वाहा” ।

“हे विष्णो” तुम श्रेष्ठरूप करके इस नारीमें श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करो । यह मंत्र पढ़ “स्वाहा” पद उच्चारण करके अग्निमें आहुति दे ॥ १०२ ॥

कामेनपुटितामायांमाययापुटितांवधूम् ।

पुनःकामञ्चमायाञ्चपठित्वास्याःशिरःस्पृशेत् ॥ १०३ ॥

अर्थ—फिर कामपुटित और मायापुटित वधू और काम-माया (१) पढ़कर उस कामिनीका मस्तक स्पर्शकरे ॥ १०३ ॥

पतिपुत्रवतीभिश्चनारीभिःपरिवेष्टितः ।

शिरश्चालभ्यहस्ताभ्यांवध्वाःक्रोडाञ्चलेपतिः ॥ १०४ ॥

अर्थ—फिर कुछ पतिपुत्रवाली स्त्रियोंके साथ स्वामी अपने दोनों हाथोंसे वधूका मस्तक छूकर विधि. विष्णु, दुर्गा और सूर्यका ध्यान करनेके पश्चात् तिसकी गोदीके अंचलमें तीन फल देकर स्विष्टकृत होन और प्रायश्चित्तहोम करके कर्मको समाप्त करे ॥ १०४ ॥

विष्णुदुर्गाविधिंमूर्ध्न्यध्यात्वादद्यात्फलत्रयम् ।

ततःस्विष्टकृतंहुत्वाप्रायश्चित्त्यासमापयेत् ॥ १०५ ॥

यद्वाप्रदोपसमयेगौरीशङ्करपूजनात् ।

भास्करार्घ्यप्रदानाच्चदम्पत्योःशोधनंभवेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ—अथवा सायंकालमें गौरीशंकरकी पूजा करके सूर्य भगवान्को अर्घ्य देनेसे दम्पति (स्त्रीपुरुष) का शोधन हो-सक्ता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

आर्त्तवंकथितंकर्मगर्भाधानमथशृणु ॥ १०७ ॥

अर्थ—अतुशोधन कर्म तुमसे कहा अब गर्भाधान कहताहूं, श्रवण करो ॥ १०७ ॥

तद्रात्रावन्यरात्रौवायुग्मायांनिशिभार्यया ।

सदनाभ्यन्तरंगत्वाध्यात्वादेवंप्रजापतिम् ॥ १०८ ॥

अर्थ-उस ऋतुसंस्कारकी रात्रिमें अथवा और किसी युग्म रात्रिमें भार्याके साथ गृहके भीतर जाय देव प्रजापतिकी ध्यान करके ॥ १०८ ॥

स्पृशन्पत्नीपठेद्रत्नामायाबीजपुरःसरम् ।

आवयोःसुप्रजायैत्वंशय्ये ! शुभकरीभव ॥ १०९ ॥

अर्थ-स्त्रीको स्पर्शकर स्वामी मायाबीज उच्चारण करनेके पीछे यह मंत्र पठे हे शय्ये ! हमारी उत्तम संतानोत्पत्तिके लिये तुम शुभकारी होवो ॥ १०९ ॥

आरुह्यभार्ययाशय्यांप्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।

उपविश्यस्त्रियं पश्यन्हस्तमाधायमस्तके ।

वामेनपाणिनालिङ्ग्यस्थानेस्थानेमनुजपेत् ॥ ११० ॥

अर्थ-फिर भार्याके साथ विस्तरेपर आरोहण करे और पूर्व-मुख वा उत्तरमुख हो बैठे भार्याका दर्शन करके उसके मस्तकपर हाथ रखे । फिर बाँये हाथसे भार्याको आलिंगन कर स्थान स्थानमें मंत्र जपे ॥ ११० ॥

शीर्षेकामंशतंजम्बाचिबुकेवाग्भवंशतम् ।

कण्ठेरमांविंशतिधास्तनद्वन्द्वेशतंशतम् ॥ १११ ॥

अर्थ-मस्तकपर एक शतवार कामबीज "क्लीं" जपकर, चिबुकपर एक शतवार वाग्भव "ह्रूं" का जप करे । फिर कंठमें रमा अर्थात् श्रीं बीजको बीसवार जप कर दोनों स्तनोंमें "ह्रूं" बीज एक २ शत जपे ॥ १११ ॥

हृदयेदशधामायांनाभौतांपञ्चविंशतिम् ।

जम्बायोनौकरंदत्वाकामेनसहवाग्भवम् ॥ ११२ ॥

अर्थ—हृदयमें दशवार मायाबीजका जपकर नाभिमें “ऐं ह्रीं” बीज पचीसवार जप करे । फिर योनिमें हाथ लगाय “ह्रीं ऐं” मन्त्र ॥ ११२ ॥

शतमष्टोत्तरं जप्त्वा लिङ्गेऽप्येवं समाचरन् ।

विकाशय मायया योनिं स्त्रियंगच्छेत्सुताप्तये ॥ ११३ ॥

अर्थ—एकशत आठवार जप करके ऐसेही उपस्थमें “ह्रीं ऐं” मन्त्र एकशत आठवार जप करे । फिर “ह्रीं” मन्त्र पढ़ योनिमें मोचनकर सन्तानकी कामनासे पत्नीका गमन करे ॥ ११३ ॥

रेतःसम्पातसमये ध्यात्वा विश्वकृतं पतिः ।

नाभेरधस्ताच्चित्कुण्डेरक्तिकायां प्रपातयेत् ॥ ११४ ॥

अर्थ—फिर वीर्य स्खलित होनेके समय स्वामी प्रजापतिका ध्यान करके नाभिके नीचे चित्कुण्डके बीच रक्तिका नाडीमें वीर्य डाले ॥ ११४ ॥

शुक्रसेकान्तरे विद्राणि मन्त्रमुदरयेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ—परन्तु शुक्रत्याग करनेके समय स्वामी इस मन्त्रका पाठ करे कि ॥ ११५ ॥

यथाग्निना सगर्भा भूद्यौर्यथावज्रधारिणा ।

वायुना दिग्गर्भवती तथा गर्भवती भव ॥ ११६ ॥

अर्थ—जैसे पृथ्वी अग्नि धारण करके गर्भवती हुई है, और जैसे इन्द्रको धारण करके गर्भवती हुई है, दिशा जिस प्रकार वायुको धारण करके गर्भवती हुई है, वैसेही तुमभी गर्भवती होवो ॥ ११६ ॥

जातेगर्भेऋतौतस्मिन्नन्यस्मिन्वामहेश्वरि ! ।

तृतीयेगर्भमासेतुचरेत्पुंसवनं गृही ॥ ११७ ॥

अर्थ—हे महेश्वरि ! उस ऋतुमें अथवा और ऋतुमें गर्भसंचार होनेपर गृहस्थ पुरुष गर्भाधानसे तीसरे मासमें पुंसवननामक संस्कार करे ॥ ११७ ॥

कृतनित्यक्रियोभर्तापञ्चदेवान्समर्चयेत् ।

गौर्यादिमातृकाश्चैववसोधारांग्रकल्पयेत् ॥ ११८ ॥

अर्थ—पुंसवनके समय स्वामीको चाहिये कि नित्यक्रियाको समाप्त करके पंचदेवताकी पूजा करे । फिर गौर्यादि षोडश मातृकाओंकी पूजा करके वसुधाग देवे ॥ ११८ ॥

वृद्धिश्राद्धंततःकृत्वापूर्वोक्तविधिनासुधीः ।

धारहोमान्तमापाद्यक्षुर्य्यान्पुंसवनक्रियाम् ॥ ११९ ॥

अर्थ—इसके उपरांत ज्ञाना पुरुष वृद्धिश्राद्ध करके पहली कही हुई विधिके अनुसार धाराहोम करनेपर पुंसवन क्रियाको समाप्त करे ॥ ११९ ॥

प्राजापत्यश्चरुस्तत्रचन्द्रनामाहुताशनः ॥ १२० ॥

अर्थ—पुंसवनसंस्कारके चरुका नाम प्राजापत्यचरु और अग्निका नाम चन्द्र है ॥ १२० ॥

गव्येदधियवश्चैकंद्रौमापावपिनिक्षिपेत् ।

पतिः पृच्छेत्त्रियंभद्रे! किंत्वंपिवसिन्निःकृतम् ॥ १२१ ॥

अर्थ—फिर स्वामी गायके दहीमें एक गव (जो) और दो माष (उरद) डालकर भार्यासे तीनबार पूछे कि हे भद्रे ! तुम क्या पान करती हो ॥ १२१ ॥

ततः सीमन्तिनीव्यूयान्मायापुंसवनं त्रिधा ।

प्रसृतीस्त्रीन्पिवेन्नारीयवमापयुतंदधि ॥ १२२ ॥

अर्थ-तदनंतर भार्या तीनवार कहे कि "ह्रीं पुंसवनम्"
अर्थात्, पुत्रप्रसवकी कारणीभूत वस्तु पान करती हूं। फिर
नारी यव (जौ) आर माष (उरद) युक्त दहीको तीनवार
पिये ॥ १२२ ॥

जीवत्सुताभिर्वनितायागस्थानंसमानयेत् ।

संस्थाप्यवामभागेतांचरुहोमंसमाचरेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ-फिर पतिपुत्रवती कुलकामिनियें इस स्त्रीको यज्ञ-
स्थानमें लायकर स्वामीकी बाई ओर बैठावे स्वामीको
चरुहोम आरंभ करना चाहिये ॥ १२३ ॥

पूर्ववच्चरुमादायमायांकूर्चसमुच्चरन् ।

येगर्भविघ्नकर्त्तारोयेचगर्भविनाशकाः ॥ १२४ ॥

अर्थ-आगे पहलेकी समान चरु ले " ह्रीं हूं " उच्चारण
करके (यह मन्त्र पढ़े कि) जो गर्भको विघ्न करनेवाले हैं, जो
गर्भको नाशक हैं ॥ १२४ ॥

भूताःप्रेताःपिशाचाश्चवेतालावालयातकाः ।

तान्सर्वान्नाशयद्रुद्रं गर्भरक्षांकुरुहिटः ॥ १२५ ॥

अर्थ-जो भूत, प्रेत, पिशाच और वेताल बालकसंहारक
हैं उन सबका नाश करके गर्भकी रक्षा करो। फिर "स्वाहा"
पद उच्चारण करना चाहिये (१) ॥ १२५ ॥

मन्त्रेणानेनरक्षोग्रंचिन्तयित्वाहुताशनम् ।

रुद्रं प्रजापतिं ध्यायन् प्रदद्याद्वादशाहुतीः ॥ १२६ ॥

अर्थ-यह मन्त्र पढ़कर रक्षोग्र हुताशन ध्यान करके रुद्र
और प्रजापतिका ध्यान करे और बारह आहुति देवे ॥ १२६ ॥

(१) " ह्रीं हूं य गर्भविघ्नकर्त्तारो येन गर्भविनाशकः भूताः प्रेताः पिशाचाश्च
वेताला बालघातकाः तान्सर्वान् नाशय नाशय गर्भरक्षांकुरु कुरु स्वाहा " उद्गार
करनेमें यह मंत्र हुआ ।

ततोमायाचन्द्रमसेस्वाहेत्याहुतिपञ्चकम् ।

दत्त्वाभार्याहृदिस्पृष्ट्वामायालक्ष्मींशतंजपेत् ॥ १२७ ॥

अर्थ-फिर “ ह्रीं चन्द्रमसे स्वाहा ” यह मन्त्र पढ़कर पांच आहुति देवे और भार्याको स्पर्श करके एकशतवार “ ह्रीं श्रीं ” मन्त्रका जप करे ॥ १२७ ॥

ततःस्विष्टकृतंहुत्वाप्रायश्चित्यासमापयेत् ।

ततस्तुपञ्चमेमासिदद्यात्पञ्चामृतंस्त्रियै ॥ १२८ ॥

अर्थ-अनन्तर स्विष्टकृतहोम समाप्त करके प्रायश्चित्त होमको करे फिर गर्भके पंचममासमें भार्याको पंचामृत देवे ॥ १२८ ॥

शर्करामधुदुग्धञ्चघृतंक्षयिसमांशकम् ।

पञ्चामृतमिदंप्रोक्तंदेहशुद्धौविधीयते ॥ १२९ ॥

अर्थ-बूरा, शहत, दुग्ध, घृत, दही इन पांचों पदार्थोंको बराबर करके देहशुद्धिके लिये देवे ॥ १२९ ॥

वाग्भवंमदनंलक्ष्मीमायांकूर्चपुरन्दरम् ।

पञ्चद्रव्योपरिशिवे ! प्रजप्यपञ्चपञ्चधा ।

एकीकृत्यामृतान्यत्रप्राशयेदपितांपतिः ॥ १३० ॥

अर्थ-हे शिवे ! स्वामी पहले कहे हुए पांचद्रव्यमेंसे प्रत्येक के ऊपर पांचवार “ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं हूं लं ” इन बीजोंको जप पंचामृत इकट्ठाकर भार्याको पिलावे ॥ १३० ॥

सीमन्तोन्नयनंकुर्यान्मासिपष्टेऽष्टमेऽपि वा ।

यावन्नजायतेऽपत्यंतावत्सीमन्तनक्रिया ॥ १३१ ॥

अर्थ-गर्भके छठे या आठमें मासमें सीमन्तोन्नयन कर्म करे । जबतक सन्तान उत्पन्न न होवे, तिसके बीचमें सीमन्तोन्नयन संस्कारकी विधि है ॥ १३१ ॥

पूर्वोक्तधाराहोमान्तं कर्म कृत्वा स्त्रिया सह ।

उपविश्यासने प्राज्ञः प्रदद्यादाहुतिवयम् ॥

विष्णवे भास्वते धात्रे वह्निजायां समुच्चरन् ॥ १३२ ॥

अर्थ—जानवान् स्वामी पहली कही हुई धारा तक होम करके भार्या के सहित आसन पर बैठ “ विष्णवे स्वाहा, भास्वते स्वाहा, धात्रे स्वाहा ” यह मंत्र उच्चारण करके तीन बार आहुति देवे ॥ १३२ ॥

ततश्चन्द्रमसं ध्यात्वा शिवनामिहुताशने ।

सप्तधा हवनं कुर्यात्सोममुद्दिश्य मानवः ॥ १३३ ॥

अर्थ—फिर चन्द्रमा का ध्यान करके चन्द्रमा के लिये शिवनामक हुताशन में सात बार आहुति देवे ॥ १३३ ॥

अश्विनौ वासवं विष्णुं शिवं दुर्गां प्रजापतिम् ।

ध्यात्वा प्रत्येकतो दद्यादाहुतीः पञ्चधा शिवे ! ॥ १३४ ॥

अर्थ—हे शिवे ! फिर दोनों अश्विनी कुमारों का, इन्द्र, विष्णु, शिव, दुर्गा, प्रजापति इनका ध्यान करके प्रत्येकको पाँच आहुति देवे ॥ १३४ ॥

स्वर्णकङ्कतिकां भर्ता गृहीत्वा दक्षिणे करे ।

सीमन्ताद्भृङ्गकेशान्तःकेशपाशे निवेशयेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ—अनंतर भर्ता दक्षिण (दाँये) हाथ में कंकतिका (कंठी) ग्रहण कर सीमन्त से लेकर बंधे हुए केश तक समस्त केशों को केशपाश में मिलाकर बांधे ॥ १३५ ॥

शिवं विष्णुं विधिं ध्यायन्मायाबीजं समुच्चरन् ॥ १३६ ॥

अर्थ—इस सीमंतोन्नयन के समय शिव, विष्णु और विधिका ध्यान करके “ ह्रीं ” बीज उच्चारण करे ॥ १३६ ॥

भार्यै ! कल्याणि ! सुभगे ! दशमेमासिसुव्रते ! ।

सुप्रसूताभवप्रीताप्रसादाद्विश्वकर्मणः ॥ १३७ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढ़े कि) हे कल्याणि ! सुभगे ! सुव्रते ! भार्ये ! तुम दशममासमें उत्तम सन्तान प्रसव करके हृदयमें प्रसन्न होवो । और विश्वकर्माके प्रसादसे ॥ १३७ ॥

आयुष्मतीकङ्कतिकावर्चस्वीतेशुभंकुरु ।

ततःसमापयेत्कर्मस्विष्टकृद्धवनादिभिः ॥ १३८ ॥

अर्थ-आयुष्मती कंधी तुम्हारी आयुको बढ़ानेवाली होवे । तुम शुभकार्यका अनुष्ठान करो यह मंत्र पढ़कर सीमन्तोन्नयन करके स्विष्टकृतहोमादिद्वारा कर्म समाप्त करे ॥ १३८ ॥

जातमात्रंमुतंदृष्ट्वादत्त्वास्वर्णगृहान्तरे ।

पूर्वोक्तविधिनाधीरोधाराहोमंसमापयेत् ॥ १३९ ॥

अर्थ-सन्तान उत्पन्न होतेही ज्ञानी पुरुष सुवर्ण देकर पुत्रवत् सुख देख सृतिकागारके सिवाय और गृहमें पहली कहीहुई विधिके अनुसार धाराहोम करे ॥ १३९ ॥

ततःपञ्चाहुतीर्दिश्यादग्निमिन्द्रं प्रजापतिम् ।

विश्वान्देवांश्च ब्रह्माणमुद्दिश्य तदनन्तरम् ॥ १४० ॥

अर्थ-फिर अग्नि, इंद्र, प्रजापति, विश्वदेवगण और ब्रह्मा, इनके लिये पांच आहुति देवे । फिर ॥ १४० ॥

मधुसर्पिःकांस्यपात्रे समानीया समांशकम् ।

वाग्भवं शतधा जप्त्वा प्राशयेत्तनयं पिता ॥ १४१ ॥

अर्थ-पिता कांसीके पात्रमें मेधु और घृत असमान अंश लेकर तिसके ऊपर “ऐं” बीज एकशतवार जप करके पुत्रको बहु पान करावे ॥ १४१ ॥

दक्षहस्तानामिकयामन्त्रमेनंसमुच्चरन् ।

आयुर्वच्चोवलंमेधावर्द्धततिसदाशिशो ॥ १४२ ॥

अर्थ-हे शिशो ! तुम्हारी, आयु, तेज, बल और मेधा निरंतर वृद्धिको प्राप्त होवे । यह मंत्र पढ़ते २ दक्षिण हाथकी अनामिकासे वह शिशुको पिलावे ॥ १४२ ॥

इत्यायुर्जननंकृत्वागुप्तं नाम प्रकल्पयेत् ।

कृतोपनयने पुत्रे तेन नाम्ना समाह्वयेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ-इसप्रकार आयुःकर कार्य करके बालकका एक गुप्त नाम रखे, फिर जब इस पुत्रका उपनयन होवे, तब उसको इस गुप्तनामसे आवाहन करे ॥ १४३ ॥

प्रायश्चित्तादिकंकृत्वा जातकर्म समापयेत् ।

नालच्छेदंततो धात्रीकुर्यादुत्साहपूर्वकम् ॥ १४४ ॥

अर्थ-फिर प्रायश्चित्त करके जातकर्म समाप्त करे फिर ध्याय उत्साहके साथ नालको काटे ॥ १४४ ॥

यावन्नच्छिद्यते नालं तावच्छौचं न वाधते ।

प्रागेव नाडिकाच्छेदाद्वैर्वापैर्त्रीक्रियाञ्चरेत् ॥ १४५ ॥

अर्थ-जबतक नाल न कटे तबतक अशौच नहीं होता इसकारण नाल कटनेसे पहले दूध और पेटूककर्म किया जाता है ॥ १४५ ॥

कुमार्याश्चापि कर्तव्यमेवमेवममन्त्रकम् ।

पष्ठेवाचाष्टमेमासिनामकुर्यात्प्रकाशतः ॥ १४६ ॥

अर्थ-जो कुमारी उत्पन्न होवे तो यह समस्त कर्म बिना मंत्र पढ़नेके करे । छठे या आठवे महीनेमें प्रगटभावसे नामकरण करे ॥ १४६ ॥

स्नापयित्वाशिशुमातापरिधाय्याम्बरेशुभे ।

भर्तुःपार्श्वसमागत्यप्राङ्मुखंस्थापयेत्सुतम् ॥ १४७ ॥

अर्थ-नामकरणके समय माताको चाहिये कि शिशुको स्नान कराय उत्तम वस्त्रयुगल पहराय स्वामीके निकट लाय पूर्वमुख करके बैठावे ॥ १४७ ॥

अभिपिञ्चेच्छिशोर्मूर्ध्नि सहरिण्यकुशोदकैः ।

जाह्नवीयमुनारेवासुपवित्रासरस्वती ॥ १४८ ॥

अर्थ-अनंतर पिता सुवर्णसहित कुशोदकके द्वारा बच्चेके मस्तकपर जल डाले और यह मंत्र पढ़े कि जाह्नवी, यमुना, रेवा, सुपवित्रा, सरस्वती ॥ १४८ ॥

नर्मदावरदाकुन्तीसागराश्चसरांसिच ।

एतेत्वामभिपिञ्चन्तुधर्मकामार्थसिद्धये ॥ १४९ ॥

अर्थ-नर्मदा, वरदा, कुन्ती, सागर, सरोवर ये सब धर्म, काम, अर्थसिद्धिके लिये तुमको अभिषिक्त करें ॥ १४९ ॥

ओंह्रीं आपोहिष्टामयोभुवस्तान ऊज

दधातन ॥ महेरणाय चक्षसे ॥ १५० ॥

अर्थ-हे जल ! तुम सकल सुखदाता हो अतएव हमारे इस कालका अन्नसंस्थान करो और परकालमें हमारे लिये परम ब्रह्मके साथ मिलाना ॥ १५० ॥

ओंयोत्रः शिवतमोरसस्तस्य भाजयते हनः ।

उशतीरिवमातरः ॥ ओतस्मा अरङ्गमामवो

यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥ १५१ ॥

अर्थ-हे जल ! तुम सकल माताकी समान स्नेहयुक्त हो इसी लिये हमको उत्तम मंगलमें रसप्रदान करो । हे जल ! तुम सकल

जिस रससे संसारमंडलको संतुष्ट करते हों, वही रस हमको सम्भोग कराओ । हम तिससे परितृप्त होंगे ॥ १५१ ॥

अभिषिच्यत्रिभिर्मन्त्रैःपूर्ववद्वह्निसंस्क्रियाम् ।

कृत्वासम्पाद्यधारान्तंदद्यात्पञ्चाहुतीःसुधीः ॥ १५२ ॥

अर्थ-ज्ञानवान् पिता, इन दो मंत्रोंसे बालकको अभिषेक करके पहिलेकी समान अग्निसंस्कार करे और धाराहोमतक समस्त कार्य करके पंच आहुति देवे ॥ १५२ ॥

अग्नयेप्रथमांदत्त्वावासवायततःपरम् ।

ततःप्रजानाम्पतयेविश्वेदेवेभ्यएवच ।

ब्रह्मणेचाहुतिंदद्याद्ब्रह्मैपार्थिवसंज्ञके ॥ १५३ ॥

अर्थ-पार्थिवनामक अग्निमें उक्त पंच आहुति देनेके समय पहले अग्निको फिर वासवको, तदुपरांत प्रजापतिको तदनंतर विश्वेदेवाओंको तिसके उपरांत आहुति देवे ॥ १५३ ॥

ततोऽङ्केपुत्रमादायश्रावयेद्दक्षिणश्रुतौ ।

स्वल्पाक्षरंसुखोच्चार्य्यशुभेनामविचक्षणः ॥ १५४ ॥

अर्थ-फिर विचक्षण पुरुष पुत्रको गोदीमें ले उसके दाहिने कानमें स्वल्पाक्षर सुखसे उच्चारण करनेके योग्य इसका शुभ नाम श्रवण करावे ॥ १५४ ॥

श्रावयित्वाग्निधानामब्राह्मणेभ्योनिवेद्यच ।

ततःसमापयेत्कर्मकृत्वास्विष्टकृदादिकम् ॥ १५५ ॥

अर्थ-इसप्रकार नाम तीनवार सुनाकर स्विष्टकृतहोमादि कर ब्राह्मणोंको नाम जनाय उनकी अनुमति ले कर्मको समाप्त करे ॥ १५५ ॥

कन्यायानिष्क्रमोनास्तिवृद्धिश्राद्धंनविद्यते ।

नामान्नप्राशनंचूडांकुर्याद्धीमानमन्त्रकम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-कन्या उत्पन्न होवे तो उसका निष्क्रमण संस्कार नहीं है, न वृद्धिश्राद्ध है बुद्धिमान् पुरुष बिना मंत्रपढ़े, उनका नामकरण, अन्नप्राशन और चूड़ाकरण करे ॥ १५६ ॥

चतुर्थेमासिपष्टेवाकुर्यान्निष्क्रमणंशिशोः ॥ १५७ ॥

अर्थ-चतुर्थमासमें या छठेमासमें बालकका निकलनेका संस्कार सिद्ध करे ॥ १५७ ॥

कृतनित्यक्रियःस्नातःसम्पूज्यगणनायकम् ।

स्नापयित्वातुतनयंवस्त्रालंकारभूषितम् ।

संस्थाप्यपुरतोविद्वानिममन्त्रमुदीरयेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ-बाहर निकलनेके संस्कारके समय पिता स्नान कर नित्यक्रिया सम्पादनपूर्वक गणेशजीकी पूजा करे । फिर विद्वान् पुरुष बालकको स्नान कराय वस्त्र और अलंकारसे भूषित करके सामने रख यह मंत्र पढ़े ॥ १५८ ॥

ब्रह्माविष्णुःशिवोदुर्गागणेशोभास्करस्तथा ।

इन्द्रोवायुःकुबेरश्चवरुणोऽग्निर्वृहस्पतिः ।

शिशोःशुभंप्रकुर्वन्तुरक्षन्तुपथिसर्वदा ॥ १५९ ॥

अर्थ-ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, गणेश, दिवाकर, इन्द्र, वायु, कुबेर, वरुण, अग्नि, बृहस्पति यह सबही बालकका मंगल करे और मार्गमें सदा इसकी रक्षा करें ॥ १५९ ॥

इत्युक्त्वाङ्केसमादायगीतवाद्यपुरःसरम् ।

वहिर्निष्क्रामयेद्रालंसानन्दैःस्वजनैःसह ॥ १६० ॥

अर्थ-पिता यह मन्त्र पढ़ बच्चेको गोदमें ले आनंदसे पूर्ण अपने परिवारवालोंके साथ गीत गाय बाजे बजाय बालकको बाहर लेजावे ॥ १६० ॥

गत्वाध्वानिकियदूरं शिशुं सूर्यं निरीक्षयेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ-मार्गमें कुछ एक दूर जाय बालकको सूर्य दिखावे (और इस वैदिकमन्त्रका पाठ करे कि) ॥ १६१ ॥

ओं ह्रीं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।

पश्येमशरदः शतं जीवेमशरदः शतम् ॥ १६२ ॥

अर्थ-शुक्रको अतिक्रम करके जो देवताओंका भी हितकारी सूर्यरूप नेत्र वर्तमान है तिसको हम एकशत वर्षतक देखें और तिसको दर्शन करके हम एक शत वर्षतक बचे रहें १६२

इत्यादित्यंदर्शयित्वासमागत्य निजालयम् ।

अव्ययं दत्त्वा दिने शायस्व जनान् भोजयेत् पिता ॥ १६३ ॥

अर्थ-इसप्रकार पिता कुमारको सूर्य दिखाय अपने गृहमें लौटाय सूर्यको अर्घ्य देकर कुटुंबियोंको भोजन करावे १६३

पष्टे मासिकुमारस्य मासि वाप्यष्टमे शिवे ।

पितृभ्रातापितावापि कुर्व्यादत्राशनक्रियाम् ॥ १६४ ॥

अर्थ-हे शिवे ! कुमारके जन्मकालसे छः मासमें पिता वा पितृभ्राता (चचा या ताऊ) उसका अन्नप्राशनसंस्कार करे १६४

पूर्वदेवपूजादिवह्निसंस्करणं तथा ।

एवं धारान्तकर्माणि सम्पाद्य विधिवत् पिता ॥ १६५ ॥

अर्थ-पिता वा पितृभ्राता पहलेकी समान देवपूजादि और अग्निसंस्कार करके यथाविधानसे धाराहोमतक कर्म करे १६५

दद्यात्पञ्चाहुतीस्तत्रशुचिनामिहुताग्ने ।

अग्निमुद्दिश्यप्रथमां द्वितीयां वासवं स्मरन् ॥ १६६ ॥

अर्थ-फिर शुचिनामक अग्निमें पंच आहुति देवे । अग्निके लिये प्रथम आहुति, इन्द्रके लिये दूसरी आहुति ॥ १६६ ॥

ततः प्रजापतिदेवं विश्वान्देवांस्ततः परम् ।

ब्रह्माणश्च समुद्दिश्य पञ्चमीमाहुतित्यजेत् ॥ १६७ ॥

अर्थ-देव प्रजापतिके लिये तीसरी आहुति, विश्वेदेवोंके लिये चौथी आहुति, ब्रह्माके लिये पांचमी आहुति देवे ॥ १६७ ॥

ततोऽग्नावन्नदां ध्यात्वा दत्तपञ्चाहुतिः पिता ।

तत्राथ वागृहेऽन्यस्मिन्वस्त्रालंकारशोभितम् ।

क्राण्डे निधाय तनयं प्राशयेत्पायसामृतम् ॥ १६८ ॥

अर्थ-इसके उपरांत पिता अग्निमें अन्नदा देवीका ध्यान करके तिसके लिये पंच आहुति दे उस गृहमें वा दूसरे गृहमें बस्त्रालंकारभूषित कुमारको गोदमें ले खीररूपी अमृतपान करावे ॥ १६८ ॥

पञ्चप्राणाहुतैर्मन्त्रैर्भोजयित्वा तु पञ्चधा ।

ततोऽन्नव्यञ्जनादीनां दत्त्वा किञ्चिच्छिरोमुखे ॥ १६९ ॥

अर्थ-प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, यह पांच मन्त्र पढ़कर बालकके मुखमें पांचवार पायसामृत देकर पीछे समस्त अन्नव्यञ्जनादि कुछ २ लेकर बालकके मुखमें देवे ॥ १६९ ॥

शङ्खतूर्यादिवोपेण प्रायश्चित्त्या समापयेत् ।

इत्यन्नप्राशनं प्रोक्तं चूडाविधिमतः शृणु ॥ १७० ॥

अर्थ-फिर शंख तुरही आदिकी ध्वनी करके प्रायश्चित्ति

होम समाप्त करनेके पीछे क्रिया समाप्त करे। यह तुमसे अन्न-
प्राशनसंस्कारकी विधि कही। अब चूडाकरणविधि कहताहूं
श्रवण करो ॥ १७० ॥

तृतीयेपञ्चमेवर्षेकुलाचारानुसारतः ।

चूडाकर्मशिशोःकुर्याद्बालसंस्कारसिद्धये ॥ १७१ ॥

अर्थ-जन्मकालसे तीसरे वर्षमें या पाँचवें वर्षमें संस्कारसि-
द्धिके लिये कुलाचारके अनुसार बालकका चूडाकरण
करे ॥ १७१ ॥

देवपूजादिधारान्तंकर्मनिष्पाद्यसाधकः ।

सत्याग्निरुत्तरेदेशेवृषगोमयपूरितम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-विचक्षण साधक देवपूजासे धाराहोमतक सब कर्म
करके सत्याग्ननामस्थापित अग्निकी उत्तर ओर वृषके गोघरसे
पूरित ॥ १७२ ॥

तिलगोधूमसंयुक्तंशरावंस्थापयेद्बुधः ।

कवोष्णंसलिलञ्चापिक्षुरमेकंसुशानितम् ॥ १७३ ॥

अर्थ-तिल और गोधूमसंयुक्त एक नई सरैयामें थोड़ासा
गरम जल और एक तीक्ष्ण उस्तरा स्थापन करे ॥ १७३ ॥

आसाद्यतनयंतत्रजनकःस्वीयवामतः ।

संस्थाप्यजननीक्रोडेकवोष्णसलिलैश्चतैः ॥ १७४ ॥

अर्थ-फिर पिता उस स्थानमें अपनी बाईं ओर उसकी माता
अर्थात् अपनी स्त्रीकी गोदमें बालकको रखकर इस समस्त
कर्म वा इस गरम जलसे ॥ १७४ ॥

वारुणंदशधाजप्त्वासम्मार्ज्यंशिशुमूर्द्धजान् ।

माययाकुशपत्राभ्यांलुष्टिमेकांप्रकल्पयेत् ॥ १७५ ॥

अर्थ-“वं” वरुणबीजको दशवार जप करनेके पीछे बाल-
कके मस्तकको मार्जित करके “ह्रीं” मंत्र पढ़कर दों कुशप-
त्रसे मस्तकमें एक जुष्टि बनावे ॥ १७५ ॥

मायांलक्ष्मींविधाजस्वागृहीत्वालौहजंधुरम् ।

छित्त्वातुमुष्टिकामूलंमातृहस्तेनिवेशयेत् ॥ १७६ ॥

अर्थ-फिर “ह्रीं श्रीं” मंत्र तीनवार पढ़कर लोहेका ठरतरा
ले जुष्टिकाकी जड़ काटकर माताके हाथमें देवे ॥ १७६ ॥

कुमारमाताहस्ताभ्यामांदायगोमयान्विते ।

शरावेस्थापयेज्जुष्टिंनापितायपितावदेत् ॥ १७७ ॥

अर्थ-कुमारको माता दोनों हाथोंसे उस जुष्टिकाको ग्रहण
करके गोमययुक्त नवीन सरैयामें स्थापित करे फिर पिता
नाईसे फहे कि ॥ १७७ ॥

धुरमुण्डिन् ! शिशोःक्षारंसुरसंसाधयद्वयम् ।

पठित्वानापितपश्यन्सत्यनामानिपावके ।

प्रजापतिसमुद्दिश्यप्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ १७८ ॥

अर्थ-हे धुरमुण्डिन् नापिन ! तुम सुगन्ध इस घालकका
क्षारकर्म करो यह कहकर “गवाहा” पद उच्चारण करना
चाहिये पिता यह मंत्र पढ़कर नापितकी ओर निहार प्रजा-
पतिके अर्थ सत्यनामक अग्निमें तीनवार आहुति देवे ॥ १७८ ॥

नापितेनकृतक्षारंस्नापयित्वाशिशुंतनः ।

नापितेनकृतक्षारंस्नापयित्वाग्निसन्निधौ ॥ १७९ ॥

अर्थ-जय नापित बालकका क्षारकर्म करनेके तब पिता
उस बालकको स्नान कराय वस्त्राभूषण व माला पहनाय
सजायकर अग्निके मन्मुख ॥ १७९ ॥

स्ववामभागेसंस्थाप्यस्विष्टकृद्धोममाचरेत् ।

प्रायश्चित्तंततःकृत्वादद्यात्पूर्णाहुतिपिता ॥ १८० ॥

अर्थ-अपने वामभागमे स्थापित कर स्विष्टकृतहोम करे ।
फिर प्रायश्चित्तहोम करके पूर्णाहुति देवे ॥ १८० ॥

मायाशिशो!तेकुशलंकुरुतांविश्वकृद्विभुः ।

पठित्वैनंशिशोःकर्णैस्वर्णमय्याशलाकया ।

राजत्यालोहमय्यावाकर्णवेधंप्रकल्पयेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ-“ ह्रीं शिशो विभु विश्वस्तृष्टा तुम्हारा मंगल करें ”
इस मंत्रको पढ़कर स्वर्णमयी शलाकासे या चांदीकी सलाईसे
अथवा लोहेकी सलाईसे बालकका कर्णवेध करे ॥ १८१ ॥

आपोहिष्टेतिमन्त्रेणअभिषिच्यसुतंततः ।

शान्त्यादिदक्षिणांकृत्वाचूडाकर्मसमापयेत् ॥ १८२ ॥

अर्थ-फिर “ आपोहिष्टा मयोभुवः ” इस मंत्रसे पुत्रको
अभिषेकित कर शान्तिकर्मके पश्चात् दक्षिणादेकर चूडाकर्म
करे ॥ १८२ ॥

गर्भाधानादिचूडान्तंसमानंसर्वजातिषु ।

शूद्रसामान्यजातीनांसर्वमेतदमन्त्रकम् ॥ १८३ ॥

अर्थ-गर्भाधानसे लेकर चूडाकरणतक समस्त संस्कार
समस्तजातियोंके लिये समान हैं । शूद्रजाती और साधारण
जातियोंके इन सब संस्कारोंके समय केवल मंत्र नहीं
पढ़े ॥ १८३ ॥

जातकर्मादिचूडान्तंकुमार्याश्चाप्यमन्त्रकम् ।

कर्तव्यंपञ्चभिष्वर्णैरकंनिष्क्रमणंविना ॥ १८४ ॥

अर्थ-कन्या उत्पन्न होनेपर ब्राह्मणादि पांचोंवर्ण विना मंत्र

पढे इन सारे संस्कारोंको करे, परंतु कुमारीके लिये निष्क्रमणका संस्कार नहीं है ॥ १८४ ॥

अथोच्यतेद्विजातीनामुपवीतक्रियाविधिः ।

यस्मिन्कृतेद्विजन्मानोदेवपैत्र्याधिकारिणः ॥ १८५ ॥

अर्थ-अब द्विजातियोंके उपनयनकी विधि कही जाती है। इससे द्विजगणदेव और पैतृककर्ममें अधिकारी होजातेहैं ॥ १८५ ॥

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्देकुर्यादुपनयंशिशोः ।

षोडशाब्दाधिकोनोपनेतव्योनिष्क्रियोऽपि सः ॥ १८६ ॥

अर्थ-गर्भके आठवें वर्षकी आयुमें बालकका उपनयन संस्कार करे। जिसके सोलह वर्ष बीतगये हैं, फिर उसका उपनयन नहीं हो सक्ता, वह अनुपनीत बालक देव और पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है ॥ १८६ ॥

कृतानित्यक्रियोविद्वान्पञ्चदेवान्समर्चयेत् ।

गौर्यादिमातृकाश्चैववसुधारांप्रकल्पयेत् ॥ १८७ ॥

अर्थ-विद्वान् पिता नित्यक्रिया समाप्त करके पंचदेवताओंकी पूजा करे। फिर गौरीआदि षोडश मातृकाओंकी पूजा करके वसुधारा देवे ॥ १८७ ॥

वृद्धिश्राद्धंततःकुर्यादेवतापितृतृप्तये ।

कुशण्डिकोक्तविधिनाधाराहोमान्तमाचरेत् ॥ १८८ ॥

अर्थ-फिर देवता और पितरोंके लिये वृद्धिश्राद्ध करके कुशण्डिकामें कही विधिकेअनुसार सब कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ १८८ ॥

प्रातःकृताशनंवालंसुस्नातंसमलङ्कृतम् ।

शिखांविनाकृतक्षौरक्षौमाम्बरविभूषितम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-प्रातःकालमें बालकको स्नान भोजन कराये उत्तम

गहने और रेशमीनवस्त्र पहिरावे । परन्तु केवल शिखा रख-
कर उसका सारा मस्तक मूंडवा दे ॥ १८९ ॥

छायामण्डपमानीयसमुद्रबहुताशितुः ।

समीपैर्चात्मनोवामेसंस्थाप्यविमलासने ॥ १९० ॥

अर्थ—फिर इस बालकको छायामण्डपमें लाय समुद्रव-
नामक अग्निके समीपमें अपनी बाईं ओर सुविमल आसन-
पर बैठावे ॥ १९० ॥

शिष्यंवेदेद्रह्यचर्य्यकुरुवत्स ! ततःशिशुः ।

ब्रह्मचर्य्यकरोमीतिगुरवेविनिवेदयेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ—फिर गुरु इस शिष्यसे कहे कि हे वत्स ! ब्रह्मचर्य्य
धारण करो । बालक गुरुसे निवेदन करे कि ब्रह्मचर्य्यका
अवलम्बन करता हूँ ॥ १९१ ॥

ततोऽगुरुःप्रसन्नात्माशिशवेशान्तचेतसे ।

कापायवाससीदद्यादीर्घायुद्वायवर्चसे ॥ १९२ ॥

अर्थ—फिर गुरु प्रसन्न होकर शान्तहृदय बालकको
दीर्घायुःकारी तेजकी वृद्धिके लिये कपले रंगेहुए दो वस्त्र
देवे ॥ १९२ ॥

मौर्जीकुशमर्यावापित्रिवृत्तांश्रन्धिसंयुताम् ।

तूर्णीचमेखलांदद्यात्कापायाम्बरधारिणे ॥ १९३ ॥

अर्थ—जब यह बालक कपले वस्त्र पहरेल तब गुरुको
चाहिये कि उसको मंजकी, कुशकी, गांठयुक्त त्रिवली देदे
और मौन धारण करके मेखलाभी देवे ॥ १९३ ॥

मायामुच्चार्य्यसुभगामेखलास्याच्छुभप्रदा ।

इत्यक्त्वामेखलांवद्धामौनीतिष्ठेद्गुरोःपुरः ॥ १९४ ॥

अर्थ-पहले बालक "ह्रीं" उच्चारण करके यह सुभग मेखला मुझे कल्याणकी देनेवाली हो । यह मंत्र पढ़कर कमरमें मेखला बांध गुरुके सामने बैठे ॥ १९४ ॥

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं बृहस्पतिर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमभ्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः १९५ ॥

अर्थ-यह यज्ञोपवीत परमपवित्र है पहले बृहस्पतिजीने इस सहज यज्ञोपवीतकी धारण किया था आयु करनेवाला श्रेष्ठ शुभ्र यज्ञोपवीत तुम धारण करो तुम्हारा बल और तेज बढ़े ॥ १९५ ॥

मन्त्रेणानेन शिशवे दद्यात्कृष्णाजिनान्वितम् ।

यज्ञोपवीतं दण्डश्च वैणवं खादिरञ्च वा ।

पालाशमथ वा दद्यात्क्षीरवृक्षसमुद्भवम् ॥ १९६ ॥

अर्थ-गुरु यह मंत्र पढ़कर बालकको काले मृगचर्मका यज्ञोपवीत और बांसका बनाहुआ खदिरका या टाक अथवा क्षीरवृक्षका बनाहुआ दंड देवे ॥ १९६ ॥

आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण मायया पुटितेन च ।

त्रिरावृत्त्या कुशाम्भोभिर्धृतदण्डोपवीतिनम् ॥

अभिषिच्य ततस्तोयैः पूरयेद्भालकाञ्जलिम् ॥ १९७ ॥

अर्थ-जब बालक दंड और उपवीत धारण कर ले माया-पुटित अर्थात् "ह्रीं" बीजसे पुटित आपोहिष्ठा यह मंत्र तीनवार पढ़कर कुशसे जल ले बालकको अभिषेकित करे । फिर तिस पात्रमें रक्खाहुआ जल ले उपवीत बालककी अंजलि भरे ॥ १९७ ॥

तदञ्जलिं दिने शायदातारं ब्रह्मचारिणम् ।

तच्च क्षुरिति मन्त्रेण दर्शयेद्भास्करं गुरुः ॥ १९८ ॥

अर्थ-जब ब्रह्मचारी वह जलाजलि सूर्य भगवानको अर्पण करदे तब गुरु “ तच्चधुर्देवहितम् ” मन्त्र पढ़कर तिसको सूर्यका दर्शन करावे ॥ १९८ ॥

दृष्टभास्करमाचार्योवदेन्माणवकंततः ।

ममव्रतेमनोधेहिममवित्तंददामिते ।

जुपस्वैकमनावत्स ! ममवाचोस्तुतेशिवम् ॥ १९९ ॥

अर्थ-जब बालक सूर्यका दर्शन करले तब आचार्य उससे कहे कि मैं तुमको अपना वित्त प्रदान करता हूं तुम हमारे अनुष्ठानमें मन लगाओ हे वत्स ! तुम एक मनोहर हमारे व्रतका आचरण करो हमारा वाक्य तुम्हारा कल्याण करने-वाला हो ॥ १९९ ॥

हृदिस्पृष्ट्वापठित्वैनंकित्रामासीतितंवेदेत् ।

शिष्यस्त्वमुकशम्माहंभवन्तमभिवादये ॥ २०० ॥

अर्थ-गुरु यह मन्त्र पढ़कर बालकको हृदयस्पर्श करके कहे कि “ हे वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है ” शिष्य कहे कि “ मुझ आपके शिष्यका नाम अमुकशमा है ” मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ २०० ॥

कस्यत्वंब्रह्मचारीतिगुरौपृच्छतिपार्वति ! ।

शिष्यःसावहितोब्रूयाद्भवतोब्रह्मचार्यहम् ॥ २०१ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! फिर गुरु पृछे कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो; शिष्य सावधानचित्तसे कहे कि मैं आपका ब्रह्मचारी हूं २०१

इंद्रस्यब्रह्मचारीत्वमाचार्यस्तेहुताशनः ।

इत्युक्त्वासद्गुरुःपश्चादेवेभ्यस्तंसमर्पयेत् ॥ २०२ ॥

अर्थ-फिर सद्गुरु शिष्यसे कहे कि हे वत्स ! तुम इंद्रके ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारे आचार्य हैं । यह कहकर गुरु शिष्यको देवताओंको समर्पण करे ॥ २०२ ॥

त्वांप्रजापतयेवत्स ! सवित्रेवरुणाय च ।

पृथिव्यै विश्वे देवेभ्यः सर्वदेवेभ्य एव च ।

समर्पयामि ते सर्वैरक्षन्तु त्वानिरन्तरम् ॥ २०३ ॥

अर्थ—(और यह मन्त्र पढ़े कि) वत्स ! तुमको प्रजापतिके निकट, सविताके निकट, वरुणके निकट और सब देवताओंके निकट समर्पण करता हूँ । वह सब देवता निरन्तर तुम्हारी रक्षा करें ॥ २०३ ॥

ततो माणवको वह्निं दक्षिणावर्त्तयोगतः ।

गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य स्वासने पुनराविशेत् ॥ २०४ ॥

अर्थ—फिर बालक दक्षिणावर्त्त योगसे अग्निको और गुरुको प्रदक्षिणा कर फिर आसनपर बैठे ॥ २०४ ॥

गुरुः शिष्येण संस्पृष्टः समुद्रवहुताग्ने ।

पञ्चदेवान्समुद्दिश्य दद्यात्पञ्चाहुतीः प्रिये ! ॥ २०५ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! तदुपरांत गुरु शिष्यके द्वारा स्पर्शहोकर समुद्रवनामक अग्निमें पाँच देवताओंके लिये पाँच आहुति देवे ॥ २०५ ॥

प्रजापतिस्तथाऽक्रोविष्णुर्ब्रह्माशिवस्तथा ॥ २०६ ॥

अर्थ—अनन्तर प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, शिव ॥ २०६ ॥

मायादिवह्निजायन्ते जुहुयात्स्वस्वनामभिः ।

अनुक्तमन्त्रैः सर्वत्र विधिरेव प्रकीर्त्तितः ॥ २०७ ॥

अर्थ—इन सब देवताओंका नाम लेकर आदिमें “ह्रीं” अन्तमें “स्वाहा” उच्चारण करके आहुति देवे । जिस मन्त्रमें कोई विधि नहीं कही है, उस मन्त्रकारी तमेंही विधान करे । अर्थात् नामत्रे पहले “ह्रीं” उच्चारण करके फिर “स्वाहा” कहे जैसे “ह्रीं प्रजापतये स्वाहा” ॥ २०७ ॥

ततोदुर्गामहालक्ष्मीःसुन्दरीभुवनेश्वरी ।

इन्द्रादिदशदिक्पालाभास्करादिनवग्रहाः ॥ २०८ ॥

अर्थ-फिर दुर्गा, महालक्ष्मी, सुन्दरी, भुवनेश्वरी, इन्द्रादि दश दिक्पाल, भास्करादि नवग्रह ॥ २०८ ॥

प्रत्येकनाम्नाहुत्वैतान्वाससाच्छाद्यबालकम् ।

पृच्छेन्माणवकंप्राज्ञोब्रह्मचर्य्याभिमानिनम् ।

कोवाश्रमस्तेतनय ! ब्रूहिकिन्तेमनोगतम् ॥ २०९ ॥

अर्थ-इनमेंसे प्रत्येकका नाम लेकर आहुति देवे (?) फिर बुद्धिमान गुरु ब्रह्मचर्याभिमानि बालकको वस्त्रसे ढककर पूछे कि हे बत्स ! इस समय तुम कौनसे आश्रमको चाहते हो और तुम्हारे मनका भाव क्या है सो कहो ॥ २०९ ॥

ततःशिष्यःसावहितोधृत्वागुरुपदद्वयम् ।

करोतुमामाश्रमिणंब्रह्मविद्योपदेशतः ॥ २१० ॥

अर्थ-फिर शिष्य सावधानहो गुरुके दोनों चरणकमल पकड़कर प्रार्थना करे कि हे गुरो ! ब्रह्मका उपदेश देकर मुझको गृहस्थाश्रमी कीजिये ॥ २१० ॥

एवंप्रार्थयमानस्यदक्षकर्णेऽशिःस्तदा ।

श्रावयित्वात्रिधातारंसर्व्वमन्त्रमयंशिवे ! ।

व्याहृतित्रयमुच्चार्य्यसावित्रींश्रावयेद्गुरुः ॥ २११ ॥

अर्थ-हे शिवे ! बालकके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर गुरु उसके दाहिने कानमें सर्व्वमन्त्रमें प्रणवको तीनवार सुनाय " भूर्भुवः स्वः " यह तीन व्याहृति उच्चारण करके गायत्री-उपदेश करे ॥ २११ ॥

ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुप् उदाहृतम् ।

अधिष्ठात्री तु सावित्री मोक्षार्थे विनियोगिता ॥ २१२ ॥

अर्थ-इस सावित्री के ऋषि सदाशिव, छन्द त्रिष्टुप्, अधिष्ठात्री देवी सावित्री मोक्ष के लिये विनियोग कीर्तन होता है (१) २१२

आदौ तत्सवितुः पश्चाद्वरेण्यं पदमुच्चेत् ।

भर्गः पदान्ते देवस्य धीमहीति पदं वदेत् ॥ २१३ ॥

✓ अर्थ-पहले "तत्सवितुः" पद उच्चारण करके फिर "वरेण्यं" पद उच्चारण करे । तदुपरान्त "भर्गः" पद के पीछे "देवस्य धीमहि" पद का पाठ करे ॥ २१३ ॥

ततस्तु परमेशानि ! धियो योनः प्रचोदयात् ।

पुनः प्रणवमुच्चार्य सावित्र्यर्थं गुरुं वदेत् ॥ २१४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! तदुपरान्त "धियो योनः प्रचोदयात्" यह पद उच्चारण करके प्रणव उच्चारण करने के पीछे गुरु शिष्य को गायत्री का अर्थ समझावे ॥ २१४ ॥

अक्षरात्मकतरेण परेशः प्रतिपाद्यते ।

पाताहर्ता च संस्रष्टा यो देवः प्रकृतेः परः ॥ २१५ ॥

✓ अर्थ-अक्षरात्मक प्रणव के द्वारा जो देव प्रकृति से भी श्रेष्ठ है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय को करता है वही परमेश्वर कथित होते हैं (२) ॥ २१५ ॥

✓ (१) ग यंत्रों के ऋष्यादि यथा-अस्या गायत्र्यः सदाशिव ऋषिः त्रिष्टुप् उदः सावि-यधिष्ठात्री देवता मोक्षार्थे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः । हृदये सावित्र्यै अधिष्ठात्र्यै देवतायै नमः । मोक्षार्थं तस्य विनियोगः । इमप्रकार ऋषि-पास करके गायत्री का जप करे ।

✓ (२) अक्षरों विष्णु रुद्र इह उकारस्तु मोक्षार्थः । मकारः मोक्षपते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः ॥ अ, उ, म इन तीन अक्षरों से प्रणव होता है । अकार का अर्थ विष्णु अर्थात् पालनकर्ता, उकार का अर्थ मोक्षार्थ अर्थात् संहारकर्ता । मकार का अर्थ ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता है । अ, उ, म-ओं, इस प्रणव से सृष्टि, स्थिति, प्रलयकर्ता क -

असौदेवस्त्रिलोकात्मात्रिगुणंव्याप्यतिष्ठति ।

अतोविश्वमयं ब्रह्मवाच्यं व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ २१६ ॥

अर्थ—वह देव त्रिलोकीके आत्मा हैं वह तीनों गुणोंमें व्याप रहे हैं । इसकारण “भूर्भुवःस्वः” इन तीन व्याहृतिसे ब्रह्माण्डमें ब्रह्म कहे जाते हैं ॥ २१६ ॥

तारव्याहृतिवाच्योयः सावित्र्याज्ञेय एव सः ।

जगद्रूपस्य सवितुः संसृष्टुर्दीव्यतो विभोः ॥ २१७ ॥

अर्थ—जो प्रणवसे प्रतिपाद्य हैं, जो तीनव्याहृतिसे वाच्य हैं, सावित्रीसे वही जाने जाते हैं । जो जगत्के सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता हैं, जो दीप्त्यादि क्रियाश्रय विभु हैं ॥ २१७ ॥

अन्तर्गतं महद्वर्चो वरणीयं यत्तात्मभिः ।

ध्यायेम तत्परं सत्यं सर्वव्यापि सनातनम् ॥ २१८ ॥

अर्थ—उनके अन्तर्गत योगियोंकी वरणीय महाज्योतिका ध्यानकर्ता हूं । वह ब्रह्मही परमसत्य, सर्वव्यापि और सनातन है ॥ २१८ ॥

यो भर्गः सर्वसाक्षी शोमनोबुद्धीन्द्रियाणि नः ।

धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेद्विनि योजयेत् ॥ २१९ ॥

अर्थ—जो वह महाज्योति सर्वसाक्षी और ईश्वर है वह हमारे मनकी बुद्धि व इन्द्रियोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें लगावे ॥ २१९ ॥

—जाता है । गोरक्षमहितामं कदा है—इच्छा । तदा तथा जाने गौरा महती व वैष्णवी । त्रिधा शक्तिः स्मिता लोकं तत्परं इति रोमिति ॥ ईश्वरकी तीन शक्त हैं एक शक्तिका नाम इच्छा शक्ति है । एक शक्ति का नाम क्रियाशक्ति और एक शक्ति का नाम ज्ञानशक्ति है । इच्छाशक्ति गौराशब्दमें, क्रियाशक्ति माहतीशब्दमें, और ज्ञानशक्ति वैष्णवीशब्दमें कही जाती है । पदव अर्थात् ओंकारके द्वारा यह तीन शक्तियां दिव्य हैं ॥

इत्थमर्थयुतां ब्रह्मविद्यामादिश्य सद्गुरुः ।

शिष्यं नियोजयेद्देवि ! गृहस्थाश्रमकर्मसु ॥ २२० ॥

अर्थ-हे देवि ! सद्गुरु इस प्रकार अर्थसहित ब्रह्मविद्याका उपदेश देकर शिष्यको गृहस्थाश्रमके कर्ममें लगावे ॥ २२० ॥

ब्रह्मचर्योचितं वेपं वत्सेदानीं परित्यज ।

शाम्भवोदितमार्गेण देवान्पितृन्समर्चय ॥ २२१ ॥

अर्थ-और कहे कि हे वत्स ! इस समय वह वेश जो ब्रह्मचर्यके योग्य है-त्याग दे । महादेवजीका दिखाया हुआ मार्ग अवलंबन करके देवता और पितृगणोंकी पूजा कर ॥ २२१ ॥

ब्रह्मविद्योपदेशेन पवित्रं ते कलेवरम् ।

प्राप्ता गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय ॥ २२२ ॥

अर्थ-ब्रह्मविद्याके उपदेशसे इस समय तुम्हारा शरीर पवित्र हुआ है । इस समय तुम गृहस्थाश्रमको प्राप्त होगये । अतः एव तुम गृहस्थाश्रममें कहे हुए कार्योंका अनुष्ठान करो २२२

उपवीतद्वयं दिव्यवस्त्रालङ्करणानि च ।

गृहाण पादुकां छत्रं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥ २२३ ॥

अर्थ-हे वत्स ! इस समय तुम दो यज्ञोपवीत, रमणीय वस्त्र, अलंकार, खड़ाऊँ, छत्र, गंध, माला और अनुलेपन ग्रहण करो ॥ २२३ ॥

ततः कापायवसनं कृष्णाजिनसमन्वितम् ।

यज्ञसूत्रं मेखलाञ्चदण्डं भिक्षाकरण्डकम् ॥ २२४ ॥

अर्थ-फिर गेरुआरंगके वस्त्र, कृष्णमृगका चर्म, यज्ञोपवीत, मेखला, दंड, भिक्षापात्र ॥ २२४ ॥

आचारादर्जितां भिक्षां समर्प्य गुरवेशिवे ! ।

शुद्धोपवीतयुगलं परिधायाम्बरेशुभे ॥ २२५ ॥

अर्थ-आचारके अनुसार मिलीहुई भिक्षा, यह सब गुरु-
जीको अर्पण करके शिष्य, दो शुद्ध यज्ञोपवीत और दो
उत्तम वस्त्र पहरे ॥ २२५ ॥

गन्धमाल्यधरस्तूष्णींतिष्ठेदाचार्यसन्निधौ ।

ततो गृहस्थाश्रमिणं शिष्यमेतद्देह्युः ॥ २२६ ॥

अर्थ-गंध और माला धारण कर आचार्यके समीप चुप-
केसे खड़ा रहे । आचार्य गृहस्थाश्रमी शिष्यसे कहे ॥ २२६ ॥

जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्रह्मज्ञानपरो भव ।

स्वाध्यायाश्रमकर्माणियथाधर्मेण साधय ॥ २२७ ॥

अर्थ-तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मज्ञानपरायण हो ।
तुम धर्मशास्त्रकी विधिके अनुसार अध्ययन और गृहस्था-
श्रमके समस्त कर्म करो ॥ २२७ ॥

इत्यादिश्यद्विजं पश्चात्समुद्भवहुताग्ने ।

मायादिप्रणवान्तेन भूर्भुवः स्वस्त्वयेण च ॥ २२८ ॥

अर्थ-इस प्रकार द्विज शिष्यको आज्ञा देकर गुरु पहले
माया और पीछेसे प्रणव उच्चारण करके, "भूः भुवः स्वः" इन
तीन मन्त्रोंसे सम्भवनामक अग्निमें ॥ २२८ ॥

हावयित्वा त्रिधाचार्यः स्विष्टकृद्धो ममाचरन् ।

दत्त्वा पूर्णाहुतिं भद्रे ! व्रतकर्म समापयेत् ॥ २२९ ॥

अर्थ-तीन बार आहुति देकर स्विष्टकृत होमको करे । हे
भद्रे ! फिर पूर्णाहुति देकर उपनयनक्रिया समाप्त करे ॥ २२९ ॥

जीवसेकादिसंस्कारा व्रतान्तः पितृतो नव ।

उद्वाहः पितृतो वापि स्वतोऽपि सिध्यति प्रिये ! ॥ २३० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जीवसेकसे लेकर उपनयन तक नौ संस्कार
पिताहीके द्वारा होते हैं । परन्तु विवाहसंस्कार पिताके द्वारा
या अपने आप भी होसक्ता है ॥ २३० ॥

विवाहाह्निकृतस्नानःकृतनित्यक्रियःकृती ।

पञ्चदेवान्समभ्यर्च्यगौर्यादिमातृकास्तथा ।

वसोधरांकल्पयित्वावृद्धिश्राद्धंसमाचरेत् ॥ २३१ ॥

अर्थ-कार्यकुशल विवाहके दिन स्नान करके नित्यक्रियासे निष्ट-पांच देवताओंकी पूजा कर गौरी इत्यादि षोडश मातृकाओंकी पूजा करे । फिर वसुधारा देकर वृद्धिश्राद्ध करे ॥ २३१ ॥

रात्रौप्रतिश्रुतंपातंगीतवाद्यपुरःसरम् ।

छायामण्डपमानीयउपवेश्यवरासने ॥ २३२ ॥

अर्थ-पहले जिस पात्रको कन्यादान करनेके लिये वचन दिया था, जब वह पात्र गाजे बाजेके साथ रात्रिके समय आवे, तब उसको छाये हुए मण्डपके नीचे लाय करके आसनपर बैठावे २३२

वासवाभिमुखंदातापश्चिमाभिमुखोविशेत् ।

आचम्यस्वस्तिमृद्धिश्रवणैःसह ॥ २३३ ॥

अर्थ-पात्र पूर्वकी ओर बैठे, दाता पश्चिमकी ओर बैठे, कन्यादान करनेवाला पहले आचमन करके । (कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्मणि स्वस्ति भवन्तो द्युवन्तु) यह मन्त्र पढ़कर फिर ब्राह्मणोंके साथ कहै कि (स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा इत्यादि) स्वस्ति पढ़कर फिर कन्यादान करनेवाला कहै कि (कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्मणि ऋद्धि भवन्तोऽधिद्युवन्तु) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मणोंसे कहावे कि (ऋध्यताम् ऋध्यताम् ऋध्यताम्) ॥ २३३ ॥

साधुप्रश्रवंरंपृच्छेदर्चनाप्रश्रमेवच ।

वरात्प्रश्नोत्तरं नीत्वा पाद्याद्यैर्वरमर्चयेत् ॥ २३४ ॥

अर्थ-फिर कन्यादाता वरसे साधु प्रश्न और अर्चनाप्रश्न करके प्रश्नका उत्तर ले । (१) पाद्यादिसे वरकी अर्चना करे ॥ २३४ ॥

(१) कन्यादाताका प्रश्न-“साधु भवाःस्तौ” वरका उत्तर-“साधुमास” प्रश्न-“अर्चयिष्यामि भवन्तम्” उत्तर-“ओं ऋचंय”

समर्पयामिवाक्येनदेयद्रव्यंसमर्पयेत् ।

पादयोरर्पयेत्पाद्यंशिरस्यर्घ्यंनिवेदयेत् ॥ २३५ ॥

अर्थ—पाद्यादि देनेके समय, तुमको यह समर्पण करता हूं यह वाक्य पढ़कर सब देनेके योग्य द्रव्योंको समर्पण करदे, दोनों चरणोंमें पाद्य और मस्तकमें अर्घ्य समर्पण करे ॥ २३५ ॥

आचम्यवदनेदद्याद्गन्धंमाल्यंसुवाससी ।

दिव्याभरणरत्नानियज्ञसूत्रंसमर्पयेत् ॥ २३६ ॥

अर्थ—फिर वदनमें आचमनीय देकर दो वस्त्र, सुगंधित माला, यज्ञोपवीत, उत्तम आभूषण और रत्नादि दान करे २३६

ततस्तुभाजनेकांस्येकृत्वादधिघृतंमधु ।

समर्पयामिवाक्येनमधुपर्ककरेऽर्पयेत् ॥ २३७ ॥

अर्थ—फिर कांसिके पात्रमें दही, घी और मधु रखकर समर्पण करताहूं वाक्य पढ़कर हाथमें मधुपर्क अर्पण करे ॥ २३७ ॥

वरोऽपिपात्रमादायवामेषाणौनिधायच ।

दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्यांप्राणाहुत्युक्तमन्त्रैः ॥ २३८ ॥

अर्थ—वर भी उस मधुपर्कके पात्रको ग्रहण कर वाम हाथमें रख प्राणाहुति मंत्र पढ़के (१) दांये हाथके अंगूठे और अनामिकासे ॥ २३८ ॥

पञ्चधाग्रायतत्पात्रमुदीच्यांदिशिधारयेत् ।

मधुपर्कसमर्प्यैवंपुनराचामयेद्भरम् ॥ २३९ ॥

अर्थ—पांचवार सूंघकर उस पात्रको उत्तरकी ओर रखदे इस प्रकार मधुपर्क समर्पण करके वरको पुनराचमनीय दे ॥ २३९ ॥

(१) प्राणाहुति मंत्र यथा—“प्राणाय स्वाहा, अग्नय स्वाहा, समा य स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा ॥”

दूर्वाक्षताभ्यांजामातुर्विधृत्यजानुदक्षिणम् ।

स्मृत्वाविष्णुंतत्सदितिमासपक्षतिथीस्ततः ॥ २४० ॥

अर्थ-फिर दूर्व और अक्षत हाथमें ले जामाताकी दाहिनी जांघ नवाय विष्णुजीका स्मरण करके "तत्सत्" वाक्य उच्चारण कर, मास, पक्ष और तिथिका ॥ २४० ॥

समुल्लिख्यनिमित्तानिवृणुयाद्रमुत्तमम् ।

गोत्रप्रवरनामानिप्रत्येकंप्रपितामहात् ॥ २४१ ॥

पष्ठ्यन्तानिसमुच्चार्य्यवरस्यजनकावधि ।

द्वितीयान्तंवरं ब्रूयाद्गोत्रप्रवरनामभिः ॥ २४२ ॥

अर्थ-नाम ले वरके परदादेसे लेकर पितातक प्रत्येकका गोत्र, प्रवरके साथ पष्ठ्यन्त नाम उच्चारण करे, ऐसेही गोत्र प्रवरादिके सहित द्वितीयान्त वरका "॥" ले वरको भली-भाँतिसे वरण करे ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

तथैवकन्यामुल्लिख्यब्राह्मोद्वाहेनपण्डितः ।

दातुंभवन्तमित्युक्त्वावृणुष्वहमितिकीर्तयेत् ॥ २४३ ॥

अर्थ-फिर इसप्रकार कन्याके परदादेसे लेकर बापतक तीनपुरुषका पष्ठ्यन्त नाम गोत्र और प्रवरके साथ उच्चारण करके ऐसेही गोत्र प्रवरके साथ द्वितीयान्त कन्याका नाम लेकर, पंडित कन्यादातासे कहे कि ब्राह्मविवाहसे कन्यादान करनेके अर्थ मैं तुमको वरण करताहूँ (१) ॥ २४३ ॥

(१) यह मंत्र उद्धृत हुआ यथा:-विष्णुं तत्सदं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेप्रकतिधा-
वमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकदेवशर्मामुकगोत्रस्यामुकपारस्य श्रीमतोऽ-
मुकदेवशर्मणः प्रपौत्रम्, अमुकगोत्रस्य मुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रम्, अमु-
कगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रम् अमुकगोत्रममुकप्रवरं श्रीमतममुक-
देवशर्मणं रममुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रम्, अमुकगोत्रस्या-

वृतोऽस्मीतिवरोव्रूयात्ततोदातावदेद्वरम् ।

यथाविहितमित्युक्त्वाविवाहकर्मकुर्विति ॥ ।

वरोव्रूयाद्यथाज्ञानंकरवाणितदुत्तरम् ॥ २४४ ॥

अर्थ-फिर कहे कि (वृतोऽस्मि) वृत हुआ । फिर कन्या-
दाता वरसे कहे कि (यथाविहितं विवाहकर्म कुरु) यथा
विधानसे विवाहकार्य करो । वर उत्तर दे कि (यथाज्ञानं
करवाणि) मुझको जैसा ज्ञान है वैसा करताहूं ॥ २४४ ॥

ततःकन्यांसमानीयवस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।

वस्त्रान्तरेणसंच्छाद्यस्थापयेद्वरसम्मुखम् ॥ २४५ ॥

अर्थ-फिर वस्त्राभूषणसे सजी हुई कन्याको लाकर वस्त्रसे
ढकके वरके सम्मुख बैठावे ॥ २४५ ॥

पुनर्व्वरंसमभ्यर्च्यवासोऽलङ्करणदिभिः ।

वरस्यदक्षिणेपाणौकन्यापाणिंनियोजयेत् ॥ २४६ ॥

अर्थ-तदुपरांत कन्यादाता फिर वस्त्र और अलंकारा-
दिसे वरकी पूजा करके वरके दाहिने हाथमें कन्याके हाथको
समर्पण करे ॥ २४६ ॥

तन्मध्येपञ्चरत्नानिफलताम्बूलमेववा ।

दत्त्वार्चयित्वातनयांवरायविदुपेऽर्पयेत् ॥ २४७ ॥

अर्थ-और उसके हाथमें फल, ताम्बूल व पंचरत्न देकर अर्चना
करके उस विद्वान्वरके हाथमें कन्याको समर्पण करे ॥ २४७ ॥

प्राग्वच्चिपुरुषाख्याननिमित्ताख्यानमेवच ।

आत्मनःकाममुद्दिश्यचतुर्थ्यन्तंवरंवदेत् ॥ २४८ ॥

मुक्त्वावरस्य श्रीमदमुक्त्वादेशमर्पणः पौत्रिम् अमुकगोत्रस्यामकपुत्रस्य श्रीमदमुक्त्वादेशमर्पणः
पुत्रिम्, अमुकगोत्राममुकपुत्रस्य अमुकाम् देवीं कन्यां प्राप्त्वाद्वादेन दातुं भवतमहं वृत्ते ॥

अर्थ-तुम धर्म, अर्थ और कामविषयमें भार्याके साथ मिलकर कार्य करना । “ऐसेही कसंगा” कहकर वर इस प्रकार कामरतुनि पड़े कि ॥ २५१ ॥

दाताकामोगृहीतापिकामायादाञ्चकामिनीम् ।

कामेनत्वांप्रगृह्णामिकामःपूर्णोऽस्तुचावयोः ॥ २५२ ॥

अर्थ-काम सम्प्रदान करता है, कामही प्रतिग्रह करता है, कामही कामको कामिनीदान करता है. हे भार्ये ! मैं कामके हेतु तुमको ग्रहण करता हूं हमारे दोनोंके काम पूर्ण होवें २५२

ततोवेदसम्प्रदाताकन्यांजामातरंप्रति ।

प्रजापतिप्रसादेनयुवयोरभिवाञ्छितम् ।

पूर्णमस्तुशिवश्चास्तुधर्मपालयतंयुवाम् ॥ २५३ ॥

अर्थ-फिर कन्याका देनेवाला, जँवाई और कन्यासेकहे कि, प्रजापतिके प्रसादसे तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो, तुम्हारा मंगल हो, तुम दोनों मिलकर धर्मकरो ॥ २५३ ॥

ततअच्छाद्यवस्त्रेणसम्प्रदातासुमङ्गलैः ।

परस्परशुभालोकंकारयेद्वरकन्ययोः ॥ २५४ ॥

अर्थ-फिर दाता मंगलगीत बाजे शंखादि बजाय कन्या और वरको श्वेतवस्त्र पहराय परस्पर शुभदृष्टि करावें ॥ २५४ ॥

ततोहिरण्यरत्नानियथाशक्त्यनुसारतः ।

जामात्रेदक्षिणादद्यादच्छिद्रमवधारयेत् ॥ २५५ ॥

अर्थ-तदुपरांत जामाताको यथाशक्ति सुवर्ण और रत्नदक्षिणा देकर “कृतमिदं शुभविवाहकर्माच्छिद्रमस्तु” यह कहकर अच्छिद्रावधारण करे ॥ २५५ ॥

वरस्तुभार्ययासार्द्धतद्रात्रौदिवसेऽपिवा ।

कुशण्डिकोक्तविधिनावह्निस्थापनमाचरेत् ॥ २५६ ॥

अर्थ-अनन्तर उसरात्रिमें वा दूसरे दिन भार्याके साथ कुश-
कण्डिकामें कहीं हुई विधिके अनुसार अग्निस्थापन करे ॥ २५६ ॥

योजकाख्यःपावकोऽत्रप्राजापत्यश्चरुःस्मृतः ।

धारान्तंकर्मसम्पाद्यदद्यात्पञ्चाहुतीर्वरः ॥ २५७ ॥

अर्थ-इस कुशण्डिकास्थलमें योजकनामक अग्नि और
प्राजापत्य नामक चरु कहा है । धाराहोमतक सब कर्म करके
वरको पाँच आहुति देनी चाहिये ॥ २५७ ॥

शिवंदुर्गा तथा विष्णुं ब्रह्माणं वज्रधारिणम् ।

ध्यात्वैकैकं सगुह्यं जुहुयात्संस्कृतेऽनले ॥ २५८ ॥

अर्थ-इन पाँच आहुतियोंको देनेके समय, शिव, दुर्गा,
विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र इन पाँचों देवताओंका ध्यान करके प्रत्ये-
कके लिये एक २ आहुति संस्कार की हुई अग्निमें देवे ॥ २५८ ॥

भार्ययाः पाणियुगलं गृह्णीयादित्युदीरयन् ।

पाणिगृह्णामि सुभगे ! गुरुदेवरताभव ।

गार्हस्थ्यं कर्म धर्मेण यथावदनुशीलय ॥ २५९ ॥

अर्थ-फिर भार्याके दोनों हाथ पकड़कर वर यह मंत्र पढ़े
कि, हे सुभगे ! मैं तेरा पाणिग्रहण करता हूँ, तू गुरुभक्ति और
देवताभक्ति परायण होकर धर्मानुसार विधिविधानसे गृहस्थ
कर्मका अनुष्ठान कर ॥ २५९ ॥

धृतेन स्वाभिदत्तेन लज्जैर्भ्रात्रा हतैः शिवे !

प्रजापतिं स मुद्दिश्य दद्याद्देवाहुतीर्वधुः ॥ २६० ॥

अर्थ-हे शिवे ! इसके उपरांत वरको चाहिये कि, स्वामीके

दिये हुये घृतसे और आताके दियेहुये लाजसे प्रजापतिके अर्थ चार आहुति देवे ॥ २६० ॥

प्रदक्षिणीकृत्यवह्निमुत्थायभार्ययासह ।

दुर्गाशिवंरमांविष्णुंब्राह्मींब्रह्माणमेवच ।

युग्मंयुग्मंसमुद्दिश्यत्रिस्त्रिधाहवनंचरेत् ॥ २६१ ॥

अर्थ-फिर भार्याके साथ बरको उठकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके दुर्गा और शिव, रमा और विष्णु, ब्राह्मी और ब्रह्मा इन दोनोंके लिये अर्थात् प्रत्येक दम्पतिके लिये तीनवार आहुति देवे ॥ २६१ ॥

अश्ममण्डलिकासत्तारोहौकुर्व्यादमन्त्रकम् ।

निशायांचेत्तदास्त्रीभिःपश्येद्भुवमरुन्धतीम् ॥ २६२ ॥

अर्थ-फिर विनामंत्र पढ़े शिलारोहण और सप्तपदीगमन करे यदि विवाहकी रात्रिमेंही कुशण्डिका होतो बर और वधू-को पुरकी स्त्रियोंके साथ मिलकर अरुन्धतीका दर्शन करे २६२

प्रत्यावृत्त्यासनेसम्यगुपविश्यवरस्तदा ।

स्विष्टकृद्धोमतःपूर्णाहुत्यन्तेनसमापयेत् ॥ २६३ ॥

अर्थ-फिर बरको उचित है कि, लौटके भलिभौतिसे अपने आसनपर बैठे औरस्विष्टकृत् होमसे पूर्णाहुतितक समस्त कर्म करे ॥ २६३ ॥

ब्राह्मोविवाहोविहितोदोषहीनःसर्वणया ।

कुलधर्मानुसारेणगोत्रभिन्नासपिण्डया ॥ २६४ ॥

अर्थ-यदि स्वजातीय गोत्रके सिवाय असपिंडाकन्याके साथ कुलधर्मके अनुसार विवाह हो तो वह निर्दोष ब्राह्म-विवाह (१) कहलाता है ॥ २६४ ॥

(१) रूपमात्र पात्रको बुलाकर यदि अर्हृष्टा रन्याहो दान परदिया जाय तो ह "ब्राह्मविवाह" कहलाया जायगा ।

ब्राह्मोद्वाहेनयाग्राह्यासैवपत्नीगृहेश्वरी ।

तदनुज्ञांविनाब्राह्मविवाहंनचरेत्पुनः ॥ २६५ ॥

अर्थ-जो भार्या ब्राह्मविवाहसे ग्रहण की जाती है, वही भार्या पत्नी और गृहेश्वरी होती है विना उसकी सम्मतिके कोई पुरुष पुनर्বার ब्राह्मविवाह नहीं करसक्ता ॥ २६५ ॥

तस्याअपत्येतद्वंशोविद्यमानेकुलेश्वरि ! ।

शैवोद्भवान्यपत्यानिदायार्हाणिभवन्तिन ॥ २६६ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! ब्राह्मविवाहसे उत्पन्न हुआ पुत्र या उसके वंशमें किसीके रहते हुये, शैवविवाहके द्वारा विवाहित भार्याके गर्भका पुत्र धनका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ २६६ ॥

शैवास्तदन्वयाश्चैवलभेरन्धनभाजिनः ।

यथाविभवमाच्छादंयासञ्चपरमेश्वरि ! ॥ २६७ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! शिवविवाहसे उत्पन्न हुई सन्तान वा उसवंशके पुत्रगण, धनाधिकारीके पाससे सम्पत्तिके अनुसार भोजन मात्र पासक्ते हैं ॥ २६७ ॥

शैवोविवाहोद्विविधःकुलचक्रेविधीयते ।

चक्रस्यनियमेनैकोद्वितीयोजीवनावधि ॥ २६८ ॥

अर्थ-शैवविवाह दो प्रकारका है कुलचक्रमेही ऐसे विवाह होते हैं । एकप्रकारका विवाह चक्रक नियमानुसार (चक्रकी निवृत्तितक स्थाई रहता है) दूसरेप्रकारके विवाहका बन्धन जन्मभरतक स्थाई होता है ॥ २६८ ॥

चक्रानुष्ठानसमयेस्वर्गणैःशक्तिसाधकैः ।

परस्परैच्छयोद्वाहंकुर्याद्विरःसमाहितः ॥ २६९ ॥

अर्थ-विरपुरुष चक्रानुष्ठानके समय सावधान चित्तसे शक्ति साधक स्वजनोंके साथ मिलकर परस्पर इच्छानुसार विवाह करे ॥ २६९ ॥

भैरवीवीरवृन्देषुस्वाभिप्रायंनिवेदयेत् ।

आवयोःशाम्भवोद्वाहेभवद्भिरनुमन्यताम् ॥ २७० ॥

अर्थ-प्रथम, भैरवी वीरोंके निकट अपना अभिप्राय निवेदन करके कहे कि, हम दोनोंके शैवविवाहमें आपलोग अनुमति दे ॥ २७० ॥

तेषामनुज्ञामादायजप्त्वासप्ताक्षरंमनुम् ।

अष्टोत्तरशतावृत्त्याप्रणमेत्कालिकांपराम् ॥ २७१ ॥

अर्थ-अनन्तर वीरोंकी अनुमति ग्रहण करके “परमेश्वरि स्वाहा” यह मन्त्र एकशत आठवार जप करके परमदेवी कालिकाको प्रणाम करे ॥ २७१ ॥

ततोवदेत्तारमर्णांकौलानांसन्निधौ शिवे ।

अकैतवेनचित्तेनपतिभावेनमांवृणु ॥ २७२ ॥

अर्थ-हे शिवे ! फिर कौलवर्गके सन्मुख वीरको उस स्त्रीसे कहना चाहिये कि, कपटहीन हृदयसे मुझको पतिभावमें वरण करे ॥ २७२ ॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्वृत्वासाकौलादयिताततः ।

सुश्रद्धानादेवेशि ! करोदद्यात्करोपरि ॥ २७३ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! वह कुलीन कामीनी गन्ध, पुष्प और अक्षत ले श्रद्धायुक्त हृदयसे प्यारे पतिकी पजाकर उसके हाथपर अपना हाथ रखे ॥ २७३ ॥

ततोऽभिपिञ्चेच्चक्रेशोमन्त्रेणानेनदम्पती ।

तदाचक्रस्थितःकौलात्रयुःस्वस्तीतिसादरम् ॥ २७४ ॥

अर्थ-तदनन्तर चक्रेश्वरको आगे लिखा हुआ मन्त्र पढ़कर उस दम्पतिको अभिषेक करना चाहिये । और चक्रमें बैठेहुए समस्त वीर आदरसहित “स्वस्ति” वचन कहें ॥ २७४ ॥

राजराजेश्वरीकालीतारीणीभुवनेश्वरी ।

वगलाकमलानित्यायुवारक्षन्तुभैरवी ॥ २७५ ॥

अर्थ-दम्पतिको अभिषेकित करनेके समय चक्रेश्वर यह मन्त्र पढ़े कि, राजराजेश्वरी काली, तारिणी, भुवनेश्वरी, वगला, कमला, नित्या और भैरवी यह तुम दोनोंकी रक्षा करें ॥ २७५ ॥

अभिपिञ्चेद्वादशधामधुनावर्घ्यपाथसा ।

ततस्तौप्रणतौविद्वाञ्छावयेद्भागभवंरमाम् ॥ २७६ ॥

अर्थ-चक्रेश्वर यह मन्त्र पढ़कर सुरासे अथवा अर्घ्यके जलसे दोनोंको अभिषेक करे । जब दम्पति भूमिष्ठहो प्रणाम करे तब चक्रेश्वर उनको “ ॐ श्रीं ” यह दो बीज श्रवण करावै ॥ २७६ ॥

यद्यदङ्गीकृतंतत्रताभ्यांपालयंप्रयत्नतः ।

शाम्भवोक्तविधानेनकुलीनाभ्यांकुलेश्वरि ! ॥ २७७ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! वह कुलीन दम्पति उस शैवविवाह-स्थलमें जो जो अङ्गीकार करेंगे, उसको शिवोक्तविधिके अनुसार उनको अवश्य पालन करना होगा ॥ २७७ ॥

वयोवर्णविचारोऽत्रशैवोद्वाहेनविद्यते ।

असपिण्डांभर्तृहीनामुद्गहेच्छम्भुशासनात् ॥ २७८ ॥

अर्थ-इस शैवविवाहास्थलमें कौन वर्ण, कितनी आयु है, इसका विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है । महादेवजीकी ऐसी आज्ञा है कि, स्वामिहीन और असपिण्डकाही विवाह होगा ॥ २७८ ॥

परिणीताशैवधर्मेचक्रनिर्धारणेनया ।

अपत्यार्थाऋतुंदृष्ट्वाचक्रावर्तितेतुतांत्यजेत् ॥ २७९ ॥

अर्थ—शैवनियमके अनुसार चरनियम उसके जिसके साथ विवाह किया गया है। सन्तानार्थी और उसका नियमित ऋतु-काल देखकर चक्रनिवृत्त होनेपर उसको त्याग करसक्ते हैं २७९॥

शैवभार्याद्विवापत्यमनुलोमेनमातृवत् ।

रागापरेद्विलोमेनतत्तुसामान्यजातिवत् ॥ २८० ॥

अर्थ—अनुलोम विवाहकी विधिसे विवाहित शैवभार्याकी गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान (अपनी) माताकी समान होगी। अर्थात् माताकी जो जाति है सन्तानभी उसी जातिकी प्राप्त होगी। यदि विलोम विवाह होजाय अर्थात् कन्या ऊंची जातिकी और पात्र नीच जातिका हो तो उसके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान साधारण जातिकी समान अर्थात् पंचमवर्ण होगी ॥ २८० ॥

एपांसङ्गरजातीनांसर्वत्रपितृकर्मसु ।

भोज्यप्रदानंकौलानांभोजनंविहितं भवेत् ॥ २८१ ॥

अर्थ—इन संकरजातिकी पितृश्राद्धादिमें कौलपुरुषको भोजन देना और भोजन कराना होगा ॥ २८१ ॥

नृणांस्वभावजं देवि । प्रियंभोजनमैधुनम् ।

सङ्क्षेपायहितार्थायैवधर्मैरिहपितम् ॥ २८२ ॥

अर्थ—हे देवि ! भोजन और मैथुन मनुष्योंको स्वभावसेही प्रिय होता है. अतएव उसको संक्षेप करनेके लिये और हित करनेके लिये शैवधर्ममें उसकी सीमा नियत की गई है २८२॥

अतएवमहेशानि ! शैवधर्मैरिहपिण्डात् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणांप्रभुर्भवतिनान्यथा ॥ २८३ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमं सर्वधर्मनिर्णय-
सारं श्रीमद्राधासदाशिवसंवादे नृशण्डिकादशविध
संस्कारविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! इसकारण शिवके प्रवर्तित किये धर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य निःसंदेह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी होजाता है ॥ २८३ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या
सदाशिवसंवादे पं० बलदेवमसादमिश्रकृतभाषाटीकायां कुशण्डिका
दशविधसंस्कारविधिर्नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

दशमोल्लासः १०.

श्रीदेव्युवाच ।

कुशण्डिकाविधिर्नाथ ! संस्काराश्चदशश्रुताः ।

वृद्धिश्राद्धविधिर्देव ! कृपयामेप्रकाशय ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा हेनाथ ! आपसे दशविधिके संस्कार और कुशण्डिकाकी विधि श्रवण करी । अब मुझसे वृद्धिश्राद्धका विधान कहिये ॥ १ ॥

कस्मिन्कस्मिन्श्चसंस्कारेप्रतिष्ठासुचकास्वपि ।

कुशण्डिकाविधानञ्चवृद्धिश्राद्धञ्चशङ्कर ! ॥ २ ॥

अर्थ-हे महादेव ! किस संस्कारके समय अथवा किस २ प्रतिष्ठाके समय कुशण्डिका और वृद्धिश्राद्ध ॥ २ ॥

कर्त्तव्यंवाचककर्त्तव्यतन्ममाचक्षतत्त्वतः ।

मत्प्रीतयेमहेशान ! जीवानांमङ्गलायच ॥ ३ ॥

अर्थ-करना व न करना चाहिये सो मेरी प्रीतिके लिये और जीवोंके मंगलार्थ भलीभाँति मुझसे कहिये ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

जीवसेकाद्विवाहान्तदशसंस्कारकर्मसु ।

यत्तयद्विहितंभद्रे ! सविशेषंप्रकीर्तितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीमहादेवजीने कहा, हे भट्टे ! गर्भाधानसे विवाह तक दशविधिसंस्कारके बीच जहाँपर जिस २ कार्यकी विधि है सो मैं भलीभाँति कह आया हूँ ॥ ४ ॥

तदेव कार्यमनुजैस्तत्त्वज्ञैर्हितमिच्छुभिः ।

अन्यत्रयाद्विधातव्यंतच्छृणुष्ववरानने । ॥ ५ ॥

अर्थ—हे वरानने ! मैं इसप्रकारसे जहाँपर जैसा विधान किया है, हित चाहनेवाले तत्त्वजानी ज्ञानी मनुष्य वैसाही अनुष्ठान करें. इसके अतिरिक्त और स्थलमें जैसा विधान चाहिये वह भी कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ ५ ॥

वापीकूपतडागानां देवप्रतिकृतेस्तथा ।

गृहारामव्रतादीनां प्रतिष्ठा कर्मसु प्रिये । ॥ ६ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! वापी, कूप, तडाग, देवप्रतिमा, गृह, उद्यान, व्रतादिकी प्रतिष्ठाके समय ॥ ६ ॥

सर्वत्र पञ्चदेवानां मातृणामपि पूजनम् ।

वसोर्धाराचकर्त्तव्या वृद्धिश्चाद्धकुशण्डिके ॥ ७ ॥

अर्थ—पञ्चदेवताओंकी पूजा, मातृकाओंकी पूजा, वसुधारा, वृद्धिश्चाद्ध और कुशण्डिका करनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्त्रीणां विधेयकृत्येषु वृद्धिश्चाद्धं न विद्यते ।

देवतापितृवृत्त्यर्थं भोज्यमेकं समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—स्त्रीजातिके कर्त्तव्यकर्ममें वृद्धिश्चाद्धका विधान नहीं है, परन्तु देवता और पितरोंकी वृत्तिके लिये एक भोज्य उत्सर्ग करना चाहिये ॥ ८ ॥

देवमात्रार्चनं तत्र वसुधाराकुशण्डिका ।

भक्त्या स्त्रिया विधातव्या ऋत्विजा कमलानने । ॥ ९ ॥

अर्थ-हे कमलानने ! ऐसे स्थलमें स्त्रियोंका कर्तव्य है कि, पुरोहित करके भक्तिके साथ देवताकी पूजा करे, वसुधारा देकर कुशण्डिका करे ॥ ९ ॥

पुत्रश्चपौत्रोदौहित्रोजातयोभगिनीसुतः ।

जामातृत्विगदैवपैत्र्येशस्ताःप्रतिनिधौशिवे । ॥ १० ॥

अर्थ-हे शिवे ! बेटा, पोता, धेवता, जाति, भानजा, जामाता और पुरोहित स्त्रियोंके प्रतिनिधि होनेको यही दैव और पैतृकर्ममें श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणुकालिके । ॥ ११ ॥

अर्थ-हे कालिके ! अब ठीक २ वृद्धिश्राद्धका प्रयोग कहता हूँ, श्रवणकरो ॥ ११ ॥

कृत्वानित्योदितं कर्म मानवः सुसमाहितः ।

गङ्गां यज्ञेश्वरं विष्णुं वासुदेवं और भस्वामीकी पूजा

करनी चाहिये ॥ १२ ॥

ततो दर्भमयान्विप्रान्कल्पयेत्प्रणवं स्मरन् ।

पञ्चभिर्नवभिर्वापि सप्तभिस्त्रिभिरेव वा ॥ १३ ॥

अर्थ-फिर प्रणवका स्मरण करते २ दर्भमय ब्राह्मण बनावे । पाँच, नव, सप्त अथवा तीन ब्राह्मण बनावे ॥ १३ ॥

निर्गर्भैश्च कुशैः साग्रैर्दक्षिणावर्त्तयोगतः ।

सार्द्धं द्रव्यावर्त्तनेन उद्धाग्रैरचयेद्विजान् ॥ १४ ॥

अर्थ-गर्भशून्य अग्रभागके साथ ऊर्ध्वाग्रकुशके साथ दक्षिणावर्तमें ढाईसे घेरकर उक्त ब्राह्मणकी रचना करे ॥ १४ ॥

वृद्धिश्राद्धेपार्वणादौपड्विप्राःपरिकीर्तिताः ।

एकोद्दिष्टेतुकथितएकएवद्विजःशिवे ! ॥ १५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! वृद्धिश्राद्ध और पार्वणादिश्राद्धमें दो ब्राह्मण बनावे, परंतु एकोद्दिष्ट श्राद्धमें केवल एक ब्राह्मणकी कल्पना करे ॥ १५ ॥

ततोविप्रान्कुशमयानेकस्मिन्नेवभाजने ।

कौवेराभिमुखान्कृत्वाम्नापयेदमुनासुधीः ॥ १६ ॥

अर्थ-अनन्तर ज्ञानीपुरुष कुशमय ब्राह्मणोंको एकपात्रमें उत्तरकी ओर मुख करके स्थापनकर इसमंत्रको पढ़के स्नान करावे कि ॥ १६ ॥

ह्रींशन्नोदेवीरभिष्टयेन्नोभवन्तु पीतये ।

शंयोरभिस्रवन्तुनः ॥ १७ ॥

अर्थ-जलदेवता हमारी अर्भाष्टसिद्धिके लिये मंगल करे । जलदेवता हमारे पानके लिये मंगलकरे । जलदेवता सब प्रकारसे हमारे कल्याणकी वर्षा करे ॥ १७ ॥

ततस्तुगन्धपुष्पाभ्यांपूजयेत्कुशभूसुरान् ॥ १८ ॥

अर्थ-फिर इन कुशमय ब्राह्मणोंकी गन्ध पुष्पसे पूजा करे १८

पश्चिमेदक्षिणेचैवयुग्मयुग्मक्रमात्सुधीः ।

पट्पात्राणिसदर्भाणिस्थापयेत्तुलसीतिलैः ॥ १९ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुष पश्चिम और दक्षिणदिशामें तुलसीदल तिल और दर्भके साथ दो २ एकत्र करके छः पात्र स्थापन करे ॥ १९ ॥

पात्रद्वयेपश्चिमायांयाम्येपात्रचतुष्टयम् ।

पूर्वास्यानुत्तरमुखान्पड्विप्रानुपवेशयेत् ॥ २० ॥

अर्थ-हे कमलानने ! ऐसे स्थलमें स्त्रियोंका कर्तव्य है कि, पुरोहित करके भक्तिके साथ देवताकी पूजा करे, वसुधारा देकर कुशाण्डिका करे ॥ ९ ॥

पुत्रश्चपौत्रोदौहित्रोज्ञातयोभगिनीसुतः ।

जामातृत्विगदैवपैत्र्येशस्ताःप्रतिनिधौशिवे ! ॥ १० ॥

अर्थ-हे शिवे ! बेटा, पोता, धेवता, जाति, भानजा, जामाता और पुरोहित स्त्रियोंके प्रतिनिधि होनेको यही देव और पैतृकर्ममें श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणुकालिके ! ॥ ११ ॥

अर्थ-हे कालिके ! अब ठीक २ वृद्धिश्राद्धका प्रयोग कहता हूँ, श्रवणकरो ॥ ११ ॥

कृत्वानित्योदितं कर्म मानवः सुसमाहितः ।

गङ्गां यज्ञेश्वरं विष्णुं वास्त्वीशं भूपतियजेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-सावधानचित्तसे नित्यकर्म समाप्त करके मनुष्यको गंगा, यज्ञेश्वर, विष्णु, वासुदेव और भूस्वामीकी पूजा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

ततो दर्भमयान्विप्रान्कल्पयेत्प्रणवं स्मरन् ।

पञ्चभिर्नवभिर्वापि सप्तभिस्त्रिभिरेव वा ॥ १३ ॥

अर्थ-फिर प्रणवका स्मरण करते २ दर्भमय ब्राह्मण बनावे । पाँच, नव, सप्त अथवा तीन ब्राह्मण बनावे ॥ १३ ॥

निर्गर्भश्च कुशैः साग्रैर्दक्षिणावर्तयोगतः ।

सार्द्धं द्रुयावर्तनेन ऊर्ध्वाग्रैरचयेद्दिजान् ॥ १४ ॥

अर्थ-गर्भशून्य अग्रभागके साथ ऊर्ध्वाग्रकुशके साथ दक्षिणावर्तमें ढाँड़से घेरकर उक्त ब्राह्मणकी रचना करे ॥ १४ ॥

वृद्धिश्राद्धेपार्वणादौपड्विप्राःपरिकीर्त्तिताः ।

एकोद्विष्टेतुकथितएकएवद्विजःशिवे ! ॥ १५ ॥

अर्थ—हे शिवे ! वृद्धिश्राद्ध और पार्वणादिश्राद्धमें दो ब्राह्मण बनावे, परंतु एकोद्विष्ट श्राद्धमें केवल एक ब्राह्मणकी कल्पना करे ॥ १५ ॥

ततोविप्रान्कुशमयानेकस्मिन्नेवभाजने ।

कौवेराभिमुखान्कृत्वास्त्रापयेदमुनासुधीः ॥ १६ ॥

अर्थ—अनन्तर जानीपुरुष कुशमय ब्राह्मणोंको एकपात्रमें उत्तरकी ओर मुख करके स्थापनकर इसमंत्रको पढ़के स्नान करावे कि ॥ १६ ॥

ह्रींशत्रोदेवीरभिष्टयेशत्रोभवन्तु पीतये ।

शंयोरभिस्रवन्तुनः ॥ १७ ॥

अर्थ—जलदेवता हमारी अर्भाष्टसिद्धिके लिये मंगल करे । जलदेवता हमारे पानके लिये मंगलकरे । जलदेवता सब-प्रकारसे हमारे कल्याणकी वर्षा करे ॥ १७ ॥

ततस्तुगन्धपुष्पाभ्यांपूजयेत्कुशभृसुरान् ॥ १८ ॥

अर्थ—फिर उन कुशमय ब्राह्मणोंकी गन्ध पुष्पसे पूजा करे १८

पश्चिमेदक्षिणेचैवयुग्मयुग्मक्रमात्सुधीः ।

पट्पात्राणिसदर्भाणिस्थापयेत्तुलसीतिलैः ॥ १९ ॥

अर्थ—फिर जानीपुरुष पश्चिम और दक्षिणदिशामें तुलसीदल तिल और दर्भके साथ दो २ एकत्र करके छः पात्र स्थापन करे ॥ १९ ॥

पात्रद्वयेपश्चिमायांयाम्येपात्रचतुष्टयम् ।

पूर्वास्यानुत्तरमुखान्पड्विप्रानुपवेशयेत् ॥ २० ॥

अर्थ-पश्चिमदिशामें रखेहुए दोपात्रोंमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वमुख करके और दक्षिणदिशामें स्थापित चारपात्रोंमें चारब्राह्मणोंको उत्तरमुख करके बैठावे ॥ २० ॥

देवपक्षं पश्चिमायां दक्षिणे वामया मय्ययोः ।

पितुर्मातामहस्यापि पक्षौ द्वौ विद्धि पार्वति ! ॥ २१ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! पश्चिमदिशामें देवपक्ष दक्षिणदिशाके वामभागमें पितृपक्ष और दक्षिणदिशाके दक्षिणभागमें मातामहकी कल्पना करे ॥ २१ ॥

नान्दीमुखाश्च पितरो नान्दीमुख्यश्च मातरः ।

मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च ।

श्राद्धेनाभ्याभ्युदयिके समुह्ये स्याद्वरानने ! ॥ २२ ॥

अर्थ-हे वरानने ! आभ्युदयिकनामक नान्दीश्राद्धमें नान्दीमुख पितृगणोंका और नान्दीमुख मातृगणोंका नाम ले । इसप्रकार नान्दीमुख मातामहादि और नान्दीमुख मातामही इत्यादिकाभी नाम लेना कर्तव्य है ॥ २२ ॥

दक्षावर्त्तेनोत्तरास्यो देवं कर्म समाचरेत् ।

वामावर्त्तेन दक्षास्यः पितृकर्माणि साधयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-दक्षिणावर्त्तसे उत्तरमुख होकर बैठ देवकर्मका अनुष्ठान करे । और वामावर्त्तसे लौट दक्षिणकी ओर मुखकर पितृकर्म करे ॥ २३ ॥

सर्वकर्म प्रकुर्वीत देवादिक्रमतः शिवे ! ।

लङ्घनान्मातृमातृणां श्राद्धं तद्विफलं भवेत् ॥ २४ ॥

कौबेरभिमुखोऽनुज्ञावाक्यं देवे प्रकल्पयेत् ।

याभ्यास्यः कल्पयेद्वाक्यं पित्र मातामहेऽपि च ।

तत्रादौ देवपक्षे तु वाक्यं शृणु शुचिस्मिते ! ॥ २५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! इसप्रकार दैवादिक्रमसे सब कर्म करे (वामावर्तन होकर) माताके पितामाताको लंघन करके श्राद्ध किया जाय तो वह निष्फल होगा दैवकर्मके समय उत्तरकी ओर मुख करके अनुज्ञावाक्य पढ़े और पैत्र्य व मातामहादिके कर्मकालमें दक्षिणकी ओरको मुखकर अनुज्ञा वाक्य कहे । हे शुचिरिमते ! पहले देवपक्षके वाक्य कहताहूं श्रवण करो ॥ २४ ॥ २५ ॥

कालादीनिनिमित्तानिसमुल्लिख्यततःपरम् ।

तत्तत्कर्माभ्युदयार्थमुक्त्वासाधकसत्तमः ॥ २६ ॥

अर्थ-साधकश्रेष्ठको चाहिये कि, प्रथमकाल और निमित्तका नाम लेकर फिर “तत्तत्कर्माभ्युदयार्थ” कहकर ॥ २६॥

पित्रादीनांत्रयाणांतुमात्रादीनांतथैवच ।

मातामहानांचमातामह्यादीनामपिप्रिये ! ॥ २७ ॥

अर्थ-पित्रादि तीन पुरुषोंका, मात्रादितीनका, मातामहादि तीनपुरुषोंका और मातामही इत्यादि तीनके ॥ २७ ॥

पष्ठ्यन्तंकीर्त्तयेन्नामगोत्रोच्चारणपूर्वकम् ।

विश्वेपाञ्चदेवानांश्चाद्धंपदमुदीरयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-गोत्रका उच्चारण करके पष्ठी विभक्त्यन्त नाम लेवे फिर “विश्वेपां देवानांश्चाद्धं” यह पद उच्चारण करे ॥ २८ ॥

कुशनिर्मितयोःपश्चाद्विप्रयोरहमित्यपि ।

करिष्येपरमेशानांत्यनुज्ञावाक्यमरितम् ॥ २९ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! फिर “कुशनिर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहंक-

रिष्ये” इस वाक्यको पढ़े. इसका नाम अनुज्ञावाक्य है (१) ॥ २९ ॥

विश्वान्देवान्परित्यज्यपितृपक्षेतुपार्वति । ।

तथामातामहस्यापिपक्षेऽनुज्ञाप्रकीर्तिता ॥ ३० ॥

अर्थ—हे पार्वति ! पितृपक्षमें और मातामहपक्षमें “विश्वेषां देवानां” पद छोड़कर अनुज्ञावाक्य कल्पित होगा (२) ॥ ३० ॥

ततो जपेद्ब्रह्मविद्यां गायत्रीं दशधा शिवे ! ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे शिवे ! फिर दशवार ब्रह्मविद्या गायत्रीका जप-करे ॥ ३१ ॥

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।

नमोऽस्तु पुष्टयै स्वाहायै नित्यमेव भवन्ति वति ॥ ३२ ॥

(१) “विष्णुर्गोतः स दय अमुक मामि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुककर्माभ्युद-यार्थमुक्तागोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितृमुक्तदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितृमहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रपितामहस्य अमुकदेवशर्मण, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातृमुक्तीदेव्या, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्याः पिता ह्य अमुकदेव्याः, अमुकगोत्र याः नान्दीमुख्याः प्रपितामह्या अमुकदेव्याः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य वृद्धप्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या प्रमातामह्या अमुकदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या प्रमातामह्या अमुकदेव्या, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या वृद्धप्रमातामह्याः अमुकदेव्याश्च विश्वेषां देवानामभ्युदयिकश्चाद् कुशनिर्मितयेर्षाङ्गणयोरहकरिष्ये” । यह वाक्य उद्धृत हुआ ।

(२) ओं अद्य मुक्तागोत्रस्य अमुकगोत्रस्य अमुककर्माभ्युदयार्थमुक्तागोत्राणां नान्दीमुख्यानां पितृमहप्रपितामहानाममुक्तागोत्राणां अमुकदेवशर्मणाम्, अमुकगोत्राणां नान्दीमुख्यानां मातृपितामहीप्रपितामहानाममुक्तागोत्राणां देवानाम् अमुकगोत्राणां नान्दीमुख्यानां मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामहानाम् अमुकगोत्राणां अमुकदेवशर्मणाम्, अमुकगोत्राणां नान्दीमुख्यानां मातामहीप्रपितामहीवृद्धप्रमातामहीनाम्, अमुकगोत्राणां अमुकदेवशर्मणाम् चान्द्याभ्युदयिकश्चाद् कुशनिर्मितयेर्षाङ्गणयोरहकरिष्ये ।

अर्थ-देवताओंको, पितृगणोंको, महायोगियोंको, पुष्टिको और स्वाहाको नमस्कार है, इसप्रकार अभ्युदयके कार्य नित्यहों ॥ ३२ ॥

पठित्वैनं त्रिधा हस्ते जलमादाय सत्तमः ।

वंहूं फडिति मन्त्रेण श्राद्धद्रव्याणि शोधयेत् ॥ ३३ ॥ ॥

अर्थ-इस मन्त्रको पढ़ साधुपुरुष हाथमें जल लेकर “ वं हूं फट् ” मन्त्र पढ़कर श्राद्धके सब द्रव्योंको तीनवार प्रोक्षित करके शुद्ध करे ॥ ३३ ॥

आग्नेय्यापात्रमेकन्तु संस्थाप्य कुलनायिके ! ।

रक्षोघ्नममृतं प्रोच्य यज्ञरक्षां कुरुष्व मे ।

इत्युक्त्वा भाजने तस्मिन् तुलसीपत्रे संयुतम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-हे कुलनायिके ! फिर अग्निकोणमें एक पात्र स्थापन करके “ रक्षोघ्नममृतमसि मम यज्ञरक्षां कुरुष्व ” इस मन्त्रको पढ़कर उस पात्रमें तुलसीपत्रके सहित ॥ ३४ ॥

निधाय सलिलं देवि ! देवादि क्रमतः सुधीः ।

विप्रेभ्यो जलगण्डूपं दत्त्वा दद्यात्कुशासनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ-जल रखकर जानवान् श्राद्धका करनेवाला देवपक्षमें आरंभ करके कुशमय ब्राह्मणोंको जलगण्डूप देवे । फिर देवादि क्रमसे कुशासन दे (१) ॥ ३५ ॥

(१) “विधे देवा इदमासनं योनयः” यह वाक्य पढ़कर विधे देवाओंको कुशासन देवे । फिर “अमुकगोत्र नान्दीमुख्य पितरमुत्तरेयशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख्य पितरम् अमुकदेवशर्मन् । अमुकगोत्र नान्दीमुख्यप्रपितामह अमुकदेवशर्मन्, इदमासनं यः स्वया, ” यह मंत्र पढ़कर पिता, पितामह और प्रपितामहको आसन देवे । तदनन्तर “अमुकगोत्रे नान्दीमुख्य मातरमुक्तां देवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुख्य पितामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्र नान्दीमुख्य प्रपितामहि अमुकीदेवि, इदमासनं यः स्वया । ” यह पढ़कर, माता, पितामहीको और प्रपितामहीको आसन देवे । अनन्तर “अमुकगोत्र नान्दीमुख्य-

ततआवाहयेद्विद्वान्विथान्देवान्पितॄंस्तथा ।

मातृर्मातामहांश्चापितथामातामहोशिवे ! ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे शिवे ! इसके उपरांत विद्वान् पुरुषको उचित है कि, विश्वदेवाओंको, पितृलोगोंको, मातृगणोंको, मातामह-लोगोंको और मातामही इनको आवाहन करे (१) ॥ ३६ ॥

—प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, अमुक-गोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, इदमासनं यः स्वधा” पठकर मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको आसन दे । फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि, इदमासनं यः स्वधा” यह मंत्र पठकर मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामहीको आसन दे ।

(१) आवाहनके मंत्र यथा—“विश्वेदेवाः इहागच्छत इह तिष्ठत इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” इस वाक्यसे विश्वदेवाओंको कुशासनपर आवाहनकरे । “अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” इस वाक्यसे पिताको कुशासनपर आवाहनकरे । तदनन्तर “अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” यह वाक्य पठकर पितामहको आवाहनकरे । तदुपरान्त “अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” इस वाक्यसे प्रपितामहको कुशासनपर आवाहनकरे । अथात् “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” यह वाक्य पठकर माताको आवाहन करे । फिर “अमुकगोत्र नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” इस वाक्यसे पितामहको कुशासनपर आवाहन करे । फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” यह वाक्य पठकर प्रपितामहको आवाहन करे । अतन्तर “अमुकगोत्रे नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” यह वाक्य पठकर मातामहको कुशासनपर आवाहन करे । फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधौ मम पूजां गृह्णात” यह वाक्य पठकर प्रमातामहको कुशासनपर आवाहन करे ।

आवाह्यपूजयेदादौ विश्वान्देवांस्ततो यजेत ।

पितृत्रयं तथा मातृवयं मातामहत्रयम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-इसप्रकार विश्वेदेव, मातृपक्ष और पितृपक्षका आवाहन करके पहले विश्वेदेवताओंकी पूजा करे, फिर बाप, दादा, परदादा इन तीन पितरोंको, माता, दादी, परदादी इन तीन माताओंको, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, इन तीन मातामहोंको ॥ ३७ ॥

मातामहीत्रयंचापि पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ।

धूपैर्दीपैश्च वासोभिः पूजयित्वा वरानने । ।

पात्राणां पातनप्रश्नं कुर्याद्वैवक्रमाच्छिवे ! ॥ ३८ ॥

अर्थ-और मातामही-प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही इन तीन प्रमातामहीगणोंको-पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप, वस्त्रादिसे पूजा करे (१) हे वरानने ! फिर देवपक्षसे आरंभ करके पात्र पातन प्रश्न करे (२) हे शिवे ! ॥ ३८ ॥

-तदुभयान्त "अमुकगोत्रे नान्दीमुखे वृद्धप्रमातामहि अमुकादेवि इहागच्छ, इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजा गृहाण" यह वाक्य पढ़कर वृद्धप्रमातामहोंको पुशासनपर आवाहन करे । अनन्तर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखे मातामहि अमुकादेवि इहागच्छ, इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजा गृहाण" इस वाक्यसे मातामहीको पुशासनपर आवाहन करे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखे प्रमातामहि अमुकादेवि इहागच्छ, इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजा गृहाण" यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहीको पुशासनपर आवाहन करे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखे प्रमातामहि अमुकादेवि इहागच्छ, इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजा गृहाण" यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहीको पुशासनपर आवाहन करे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखे वृद्धप्रमातामहि अमुकादेवि इहागच्छ, इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजा गृहाण" इस वाक्यसे वृद्धप्रमातामहोंको आवाहन करे ।

(१) कल्पितवाक्यं यथा - "विश्वेदेवा एतानि पाद्यार्घ्यानमनीयगन्धधूपदीप-
पात्रादिवानि यो नमः" यह वाक्य पढ़कर प्रथम विश्वेदेवाओंकी पूजा करे । फिर
"यो ऊच्यते उमुकगोत्रे नान्दीमुखे पितृपितामहपितामहा अमुकामुतामृद्धप्रमातामहो

मण्डलं रचयेदकं मायया चतुरस्रकम् ।

द्वे द्वे च मण्डले कुर्व्यात्तद्वत्पक्षद्वयोरपि ॥ ३९ ॥

अर्थ-फिर मायाबीज उच्चारण करके देवपक्षमें एक चौकोन मंडल रचै फिर मातामहपक्षमें और पितृपक्षमें ऐसेही 'ह्रीं' उच्चारण करके दो दो मंडल बनावै ॥ ३९ ॥

वारुणप्रोक्षितेष्वेपुपात्राण्यासाद्यसाधकः ।

तेनक्षालितपात्रेषु सर्वोपकरणैः सह ।

पानार्थं पाथसान्नानिक्रमेण परिवेषयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-फिर साधकको उचित है कि "वं" इस वरुणबीजसे इस मंडलको प्रोक्षित करके तिसमें क्रमानुसार सब पात्रोंको रखे । ऐसेही "वं" बीजसे प्रक्षालितपात्रमें देवपक्षसे आरंभ करके सब उपकरणोंके सहित और पान करनेके अर्थ जलके साथ क्रमानुसार अन्नपरसे ॥ ४० ॥

ततो मधुयवान्दत्त्वा ह्रां हूं फडिति मन्त्रकैः ।

संप्रोक्ष्यान्नानि सर्वाणि विश्वान्देवांस्तथापितृन् ॥ ४१ ॥

-एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे ऊपर बड़े तीन जनोंकी पूजा करे । अनन्तर "अमुकगोत्रा नान्दीमुखः मातामहीप्रतीतामहाः अमुकपमुकपमुकयो देव्यः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यको पढ़कर तीन माताओंकी पूजा करे । फिर "अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहा अमुकामुकामुदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे तीन नानाओंकी पूजा करे । अनन्तर "अमुकगोत्रा नान्दीमुखो मातामहीप्रमातामहोवृद्धप्रमातामहाः अमुकपमुकपमुकयो देव्यः पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे तीन मातामहोंकी पूजा करे ।

(२) ब्राह्मणके प्रति पक्ष करे कि "प्राणि पातयिष्ये" ब्राह्मण उत्तर दे कि, पातय ॥

अर्थ-फिर सब अन्नमें मधु और जौ डालकर “ द्वां द्वं पद ” मन्त्र पढ़कर समस्त अन्नको प्रोक्षित अर्थात् जलसे छिड़के फिर विश्वेदेवताओंका, पितरोंका, ॥ ४१ ॥

मातृमातामहान्मातामहीरुहिरुयतत्त्ववित् ।

निवेद्यदेवीं गायत्रीं देवताभ्यः स्त्रिधा पठेत् ॥ ४२ ॥

शेषान्नपिण्डयोः प्रश्नोक्त्युदाद्ये ! ततः परम् ॥ ४३ ॥

अर्थ-माताओंका, मातामहोंका, मातामहीगणोंका नाम-लेकर तत्त्वजाननेवाला पुरुष सब अन्नको क्रमानुसार निवेदन करे (१) फिर दशवार गायत्रीको पढ़कर तीनवार देव-ताभ्यः (२) मन्त्रको पाठ करे. हे आद्ये ! तिसके पीछे शेषा-न्नप्रश्न और पिण्डप्रश्न (३) करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

(१) “विश्वेदेवा. पानार्थोदकमधुपयस्सर्वोपकरणसहितमेतदन्नं यो नमः” इस मन्त्रसे विश्वेदेवताओंको अन्न निवेदन करे । फिर “अमुकगोत्रा नान्दीमुखः तितृपितामहपिता-महः अमुकामुकामुहदेवशर्मणः पानार्थोदकमधुपयस्सर्वोपकरणानि-मेतदन्नं यः स्वधा” यह वक्ष्य पढ़कर तितृगणोंको अन्न निवेदन करे । फिर “ अमुकगोत्रा नान्दीमुखः मातृपितामहीपितामहोऽमुकपुत्रपुत्र्यो देव्यः पानार्थोदकमधुपयस्सर्वोपकरणान्वितमे-तदन्नं यः स्वधा ” इस प्राक्षये मातृगणोंको अन्न दे । फिर “अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहपितामहपितामहोऽमुकपुत्रपुत्र्यो देव्यः पानार्थोदकमधुपयस्सर्वोपकरणान्वितमे-तदन्नं यः स्वधा ” इस मन्त्रसे मातामहोंको अन्न निवेदन करे । फिर “अमुकगोत्रा नान्दीमुखो मातामहीपितामहोऽमुकपुत्रपुत्र्यो देव्यः पानार्थोदकमधुपयस्सर्वोपकरणान्वितमे-तदन्नं यः स्वधा ” इस वक्ष्यको पढ़ ना निवेदो को मन्त्र देवे ।

(२) देवताभ्यः तितृभ्यश्च महायोगिभ्य एवम् । नमोस्तु पुष्टये स्वाहायि नित्यमेव भवत्विति ॥

(३) ब्राह्मणसे इसप्रकार शेषान्नप्रश्न करे कि “शेषान्नमस्ति क देयम्” ब्राह्मण उत्तर दे “रष्ट्रेभ्यो दीयताम्” फिर पिण्डप्रश्न करे कि “ पिण्डदानमई करिष्ये ” ब्राह्मण उत्तर दे कि “ ओ जुहोष ”

दत्तशेपैरक्षताद्यैर्मालूरफलसन्निभान् ।

द्विजात्प्राप्तोत्तरः पिण्डाव्रचयेद्वादशप्रिये ! ॥ ४४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! ब्राह्मणसे प्रश्नका उत्तर प्राप्त होकर बचेहुए अक्षतादिसे बिल्वफलकी समान बारह पिंड बनावे ॥ ४४ ॥

अन्यंतुकल्पयेदेकं पिण्डं तत्सममम्बिके ।

आस्तरेर्नैर्ऋतेर्दर्भान्मण्डलेयवसंयुतान् ॥ ४५ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! वैसाही बेलफलकी समान और एक पिंड बनावे फिर नैर्ऋत्यकोणके मण्डलपर यवसंयुक्त दर्भ (कुश) बिछावे ॥ ४५ ॥

येमेकुलेलुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।

अग्निदग्धाश्च येकेऽपिव्यालव्याग्रहताश्च ये ॥ ४६ ॥

अर्थ-(तिसके ऊपर यह पढ़कर पिंडदान करें, कि) हमारे वंशमें जो लोग स्त्रीपुत्रसे रहित हैं, जिनका पिंडलोप होगया है अथवा जो अग्निसे भस्म होगये हैं अथवा जो व्याघ्रादिकोंसे या और हिंसक जन्तुओंसे मार डाले गये हैं ॥ ४६ ॥

येवान्धवावान्धवावायेऽन्यजन्मनिवान्धवाः ।

मदत्तपिण्डतोयाभ्यतियान्तु तृप्तिमक्षयाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-जो हमारे बान्धव हैं या अबान्धव हैं, जो पहले जन्ममें हमारे बान्धव थे, वह सबही मुझकरके दियेहुए इस पिंड और जलसे अक्षय तृप्तिको प्राप्त करें ॥ ४७ ॥

दत्त्वापिण्डमपिण्डेभ्यो मन्त्राभ्यां सुरवंदिते ! ।

प्रक्षाल्य हस्तावाचान्तःसवित्रीं प्रजपंस्ततः ।

देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते ! इन दो मंत्रोंसे अपिण्डोंको पिंड-दान करके हाथ धोवे और आचमनपूर्वक दशवार गायत्रीका

जप करे फिर देवताभ्यः इस मंत्रको तीनवार पढ़े । फिर मंडल बनावे ॥ ४८ ॥

उच्छिष्टपात्रपुरतःपूर्वोक्तविधिनावुधः ।

द्वेद्वेचमण्डलेदेवि ! रचयेत्पितृतःक्रमात् ॥ ४९ ॥

अर्थ—हे देवि ! बुद्धिमान् श्राद्ध कर्ताको उचित है कि, पि०-पक्षमें आरंभ करके उच्छिष्टपात्रके सामने पहली कही हुई विधिके अनुसार दोदो मंडल बनावे ॥ ४९ ॥

पूर्वमन्त्रेणसंप्रोक्ष्यकुशांस्तेज्वास्तेरेत्कृती ।

अभ्युक्ष्यवायुनादर्भान्पितृदर्भक्रमाच्छिवे ।

ऊर्ध्वेमूलेचमध्येचत्रींस्त्रीन्पिण्डान्निवेदयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ—हे शिव ! बुद्धिमान् श्राद्धका करनेवाला पहलेकी समान वरुणबीजसे इस मंडलको मोक्षित करके तिसमें दर्भ बिछावे फिर “यं” बीजसे सब दर्भोंको अभ्युक्षित करके पितृदर्भसे आरंभ करके दर्भके मूलमें और ऊपर पितादिको, मातादिको, मातामहादिको और मातामही इत्यादिको क्रमानुसार तीन २ पिंड दे ॥ ५० ॥

आमन्त्रणेनप्रत्येकं नामोच्चार्यमहेश्वरि ! ।

स्वधयावितरेत्पिण्डंयवमाध्वीकसंयुतम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—हे महेश्वरि ! आमन्त्रणयुक्त प्रत्येकका नाम उच्चारण करके स्वधा पढ़ प्रत्येकको जौ व मधुसे युक्त पिंडदान करे (१) ॥ ५१ ॥

(१) वास्य यथा.—“अमुहगोत्र नान्दीमुख पितामह देवज्ञर्भव । एष मधुपरासितः पिण्डस्ते स्वधा” यह वास्य पढ़कर दर्भमलेमें पिताके लिये पिंड दे “अमुहगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुहदेवज्ञर्भव । एष त मधुपरासितः पिण्डः स्वधा” यह वास्य पढ़कर दर्भमें पितामहकी पिंड दे “अमुहगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुहदे-

पिण्डान्तेपिण्डशेषविकीर्यलेपभाजिनः ।

प्राणयेत्करलेपेनैकोदिष्टेष्वयंविधिः ॥ ५२ ॥

अर्थ-इसप्रकार पिण्ड देकर पिण्डके चारों ओर पिण्डशेषको बखेरदे “लेपभुजःपितरः प्रीयन्ताम्” यह वाक्य पढ़के करलेप अर्थात् हाथमें लगेहुए अन्नसे लेपभोजी चतुर्थपंचमादि पुरुषोंको प्रसन्न करे । एकोदिष्टश्राद्धमें यह विधि अर्थात् लेपभागी पितृगणोंके प्रसन्न करनेकी विधि नहीं है ॥ ५२ ॥

देवतापितृतृप्त्यर्थसावित्रीदशधाजपेत् ।

देवताभ्यस्त्रिधाजप्त्वापिण्डान्सम्पूजयेत्ततः ॥ ५३ ॥

-वशाभेत् । एष मधुपवसुतः पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़कर दर्भके ऊपरीभागमें मपितामहीको पिण्ड दे । फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि देवि । मधुपवसुतमन्वित एष पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़कर दर्भके मपितामहीके लिये पिण्ड दे । “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकादेवि । यवमधुसहित एष पिण्डहस्ते स्वया” । यह वाक्य पढ़कर दर्भमें पितामहीको पिण्ड देवे । तदुपरान्त “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मपित मदि अमुकादेवि । मधुपवसुत एष पिण्डहस्ते स्वया” । यह वाक्य पढ़कर दर्भके अपभागमें मपितामहीके लिये पिण्ड देवे फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि व मुद्गदेवशर्भेत् । मधुपवसुत एष पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़कर दर्भके मूत्रमें मातामहीको पिण्ड दे । फिर “अमुकगोत्रे मपितामहि अमुकदेवशर्भेत् । मधुपवसुतमन्वित एष पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़कर दर्भके अपभागमें मपितामहीको पिण्ड दे । फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धमपितामहि अमुकदेवशर्भेत् । मधुपवसुत एष पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़के दर्भके अपभागमें वृद्धमपितामहीको पिण्ड दे । अनन्तर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकादेवि । मधुपवसुत एष पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़कर दर्भके मपितामहीको पिण्ड दे । फिर “अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकादेवि । मधुपवसुतमन्वित एष पिण्डहस्ते स्वया” यह वाक्य पढ़कर मपितामहीको पिण्ड दे । फिर अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धमपितामहि अमुकादेवि । यवमधुसहित एष पिण्डहस्ते स्वया” । यह वाक्य पढ़कर दर्भके अपभागमें मातामहीको पिण्ड दे ।

अर्थ—फिर देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये दशवार गायत्रीका जप करे, “ देवताभ्यः पितृभ्यश्च ” यह मंत्र पढ़े । फिर (गंध पुष्पसे) पिंडकी पूजा करे ॥ ५३ ॥

प्रज्वालयधूपंदीपंचनिमील्यनयनद्वयम् ।

दिव्यदेहधरान्पितृनश्रतःकव्यमध्वरे ।

विभाव्यप्रणमेद्धीमानिमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—तदुपरान्त धूप दीपको जलाय दोनों नेत्र बंदकर विचार करे कि, दिव्यदेह धारण करके पितृगण यज्ञस्थलमें कव्य अर्थात् अपना २ अन्न भोजन करते हैं फिर ज्ञानीपुरुष इस मंत्रको पढ़कर पितरोंको प्रणाम करे कि ॥ ५४ ॥

पितामेपरमोधर्मःपितामेपरमंतपः ।

स्वर्गःपितामेतत्तृप्तौतृप्तमस्त्यखिलंजगत् ॥ ५५ ॥

अर्थ—पिताही हमारा परमधर्म है, पिताही हमारा परम तप है, पिताही हमारा स्वर्ग है पितरोंके तृप्त होनेसे सारा संसार संतुष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

ततोनिर्माल्यमादायप्रार्थयेदाशिपःपितृन् ॥ ५६ ॥

अर्थ—फिर निर्माल्य ग्रहण करके पितरोंसे इस आशिर्वादकी प्रार्थना करे कि ॥ ५६ ॥

आशिपोमेप्रदीयन्तांपितरःकरुणामयाः ।

वेदाःसन्ततयोनित्यंवर्द्धन्तांवांधवामम ॥ ५७ ॥

अर्थ—करुणामय पितृगण हमको आशिर्वाद दें । हमारी वेद, संतान और बांधवगण नित्य वृद्धिको प्राप्तहों ॥ ५७ ॥

दातारोमेविवर्द्धन्तांवहून्यन्नानिसन्तुमे ।

याचितारःसदासन्तुमाचयाचामिकश्चन ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो हमको दान करते हैं वह बृद्धिको प्राप्त होवें । हमारे पास बहुतसा अन्न होवे, हमसे अनेक याचना करें, हम मानों किसीसे याचना नहीं करें ॥ ५८ ॥

देवादितोद्विजान्पिण्डान्विसृजेत्तदनन्तरम् ।

तथैवदक्षिणांकुर्यात्पक्षेपुत्रिपुतत्त्ववित् ॥ ५९ ॥

अर्थ-फिर देवपक्षसे आरंभ करके ब्राह्मणोंको और सब पिण्डोंको विसर्जन करदे (१) फिर जानीपुरुषको चाहिये कि-देवपक्ष, पितृपक्ष, मातामहपक्षको दक्षिणा दे (२) ॥ ५९ ॥

गायत्रीदशधाजप्त्वादेवताभ्योऽपिपञ्चधा ।

दृष्ट्वावाह्निरविप्रमिदंपृच्छेत्कृताञ्जलिः ॥ ६० ॥

अर्थ-फिर दशवार गायत्रीका जप करके पाँचवार “देवताभ्यः पितृभ्यश्च ” यह मंत्र पढ़े फिर अग्नि और सूर्यका दर्शन कर हाथ जोड़ ब्राह्मणसे पूछे कि ॥ ६० ॥

इदंश्राद्धंसमुच्चार्यसाङ्गंजातमुदीरयेत् ।

द्विजोवदेत्सम्यगेवसाङ्गंजातंविधानतः ॥ ६१ ॥

(१) ‘ ब्रह्मव्र । क्षमस्व ’ यह वाक्य पढ़कर देवपक्षसे आरंभ करके सब ब्राह्मणोंको विसर्जन करे । फिर “ पिण्ड गणां गच्छ ” यह वाक्य पढ़कर ऐमेही देवादि कमसे विसर्जन करे ।

(२) ‘ ओतत्सद्यः अमुके मासि अमुकशिक्षिणे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रे अमुकनक्षत्रे अमुर्द्विषान्तर्गतभारतवर्षकेदेशे अमुकग्रामे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकशास्त्राध्यायी श्रीअमुकदेवशर्मा कृतितदाभ्युदयिकश्राद्धप्रतिष्ठार्थं काश्चनमिदम् अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदीयामुक्शास्त्राध्यायिने जगत्सर्वपान्तर्गतभारतखंडरधामुक्ग्रामवासिनेश्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां दानमुदमस्मृजे । ’ यह वाक्य पढ़कर यथाशक्ति वाचनादि दक्षिणा दे ।

अर्थ—“इदं श्राद्धं साङ्गं जातम्” अर्थात् क्या यह श्राद्ध सब अंशसे सम्पूर्ण हुआ है ? ब्राह्मण उत्तर दे “विधानतः सम्यगेव साङ्गं जातम्” अर्थात् विधिविधानकरके सब भाँतिसे सब अंशसे पूर्ण हुआ है ॥ ६१ ॥

अङ्गवैगुण्यशान्त्यर्थप्रणवदशधाजपन् ।

अच्छिद्राभिविधानेन कुठ्यात्सर्वसमापनम् ।

पात्रीयान्नानिपिण्डांश्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ—फिर अंगकी विकारताकी शान्तिके लिये दशवार प्रणवका जप करे अच्छिद्राभिधानसे “कृतं तच्छ्राद्धकर्माच्छिद्रमस्तु” कर्म समाप्त करे अनन्तर पात्रका अन्न और पिण्ड ब्राह्मणको अर्पण करे ॥ ६२ ॥

विप्राभावे गवाजेभ्यः सलिले वा विनिक्षिपेत् ।

वृद्धिश्राद्धमिदं प्रोक्तं नित्यसंस्कारकर्मणि ॥ ६३ ॥

अर्थ—यदि ब्राह्मण न पाया जाय तो समस्त द्रव्य गाय या छागको दे दे अथवा जलमें डाल दे। नित्य अर्थात् अवश्य कर्तव्य दशविध संस्कारके समय जो वृद्धिश्राद्ध होता है वह तुमसे कहा ॥ ६३ ॥

श्राद्धे पर्वणिकर्तव्ये पार्वणत्वेन कीर्तयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—यदि अमावास्यादि पर्वों पर उक्त विधानसे श्राद्ध करना हो तो उसको पार्वणश्राद्ध कहते हैं ॥ ६४ ॥

देवतादिप्रतिष्ठासु तीर्थयात्राप्रवेशयोः ।

पार्वणेन विधानेन श्राद्धमेतदुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ—देवतादिकी प्रतिष्ठाके समय, तीर्थयात्राके समय, गृह प्रवेशादिके समय, पार्वणश्राद्धकी विधिके अनुसार कार्य करे ॥ ६५ ॥

नेतेपुत्राद्वकृत्येपुपितृन्नान्दीमुखान्वदेत् ।

नमोऽस्तुपुष्ट्यायित्यत्रस्वधायैपदमुचरेत् ॥ ६६ ॥

अर्थ-इन सब श्राद्धोंके समयें “ नान्दीमुखान् पितृन् ” पद न कहे और “ नमोऽस्तु पुष्ट्यै ” इस पदके “ नमः स्वधायै ” पद उच्चारण करे ॥ ६६ ॥

पित्रादित्रयमध्येतुयोजीवतिवरानने ! ।

तस्योर्द्ध्वतनमुल्लिख्यश्राद्धंकुर्व्याद्विचक्षणः ॥ ६७ ॥

अर्थ-हे वरानने ! पितादि तीनपुरुषोंके बीचमें जो जीवितहो, बुद्धिमान् उसके बदलेमें उसके ऊपरके पुरुषका नाम लेकर श्राद्ध करे ॥ ६७ ॥

जनकादिपुर्जीवत्सुत्रिपुश्राद्धंविर्वर्जयेत् ।

तेषुप्रतिपुदेवेशि ! श्राद्धयज्ञफलंलभेत् ॥ ६८ ॥

✓ अर्थ-जो बाप, दादा, परदादा यह तीनों पुरुष जीवितहों तो श्राद्ध नहीं करना चाहिये । हे देवेशि ! इन तीन पुरुषोंके प्रसन्न होनेसे श्राद्धका और यज्ञका फल मिलजाता है ॥ ६८ ॥

जीवत्पितरि कल्याणि नान्यश्राद्धाधिकारिता ।

मातुःश्राद्धंविनापत्न्यास्तयानान्दीमुखंविना ॥ ६९ ॥

अर्थ-हे कल्याणि ! पिताके जीवित रहते हुए माताका श्राद्ध, भार्याका श्राद्ध वा नान्दीमुख श्राद्धके सिवाय और किसी श्राद्धके करनेका अधिकार नहीं है ॥ ६९ ॥

एकोदिष्टेतुकौलेशि ! विश्वेदेवान्नपूजयेत् ।

एकमेवसमुद्दिश्यानुज्ञावाक्यंप्रकल्पयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! एकोदिष्ट श्राद्ध करनेके समय विश्वेदेवा-

ओंकी पूजा नहीं करनी चाहिये, वहांपर केवल एकपुरुषको उद्देश करके ही अनुज्ञावाक्य कल्पना करे ॥ ७० ॥

दक्षिणाभिमुखोदद्यादन्नं पिण्डं च मानवः ।

यवस्थानेतिलदेयाः सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—इस एकोद्दिष्टश्राद्धमें दक्षिणकी ओर मुखकर अन्नका और पिण्डका दान करे, इसमें सबविधि पहलेकी नाई-है, परन्तु जौकी जगह तिल देने चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रेतश्राद्धे विशेषोयंगङ्गाद्यर्चाविवर्जयेत् ।

मृतंसमुल्लिखेत्प्रेतं वाक्ये दानेऽन्नपिण्डयोः ॥ ७२ ॥

अर्थ—प्रेतश्राद्धमें विशेष बात यह है कि, इसमें गंगादिकी पूजा नहीं करनी चाहिये और वाक्यकल्पनाके समय और पिण्ड देनेके समय मृतक पुरुषको प्रेत कहो ॥ ७२ ॥

एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं तु द्रव्यते ।

प्रेतस्यान्ने च पिण्डे च मत्स्यमांसं न योजयेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ—एक पुरुषके लिये श्राद्धकरनेका नाम “एकोद्दिष्ट” श्राद्ध है । प्रेतश्राद्धमें प्रेतके लिये अन्नसे और पिण्डमें मत्स्य और मांस देवे ॥ ७३ ॥

अशौचान्ताद्वितीयेऽह्नि श्राद्धं यत्कुरुते नरः ।

प्रेतश्राद्धं विजानीहितदेवकुलनायिके ! ॥ ७४ ॥

अर्थ—हे कुलनायिके ! अशौचके अन्तमें दूसरेदिन जो श्राद्ध मनुष्यगण करते हैं, वह प्रेतश्राद्ध कहलाता है ॥ ७४ ॥

गर्भस्त्रावाजातमृतादन्यत्र मृतजातयोः ।

कुलाचारानुसारेण मानवोऽशौचमाचरेत् ॥ ७५ ॥

तवस्वरूपारमणीजगत्याच्छन्नविग्रहा ।

मोहाद्भर्तुश्चितारोहाद्भवेन्नरकगामिनी ॥ ८० ॥

अर्थ—सबस्त्रियें तुम्हारा स्वरूप हैं, संसारमें उनका शरीर आच्छन्न जो स्त्री मोहके मारे स्वामीकी चितापर चढ़ती है, वह नरकको जाती है ॥ ८० ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकांस्तुतेषामाज्ञानुसारतः ।

प्रवाहयेद्भानिखनेद्वाहयेद्वापिकालिके ! ॥ ८१ ॥

अर्थ—हे कालिके ! जो लोग ब्रह्ममन्त्रके उपासक हैं, उनकी आज्ञानुसार, उनका मृतकशरीर जलमें बहादे या मृत्तिकामें दाबदे या भस्मकर डाले ॥ ८१ ॥

पुण्यक्षेत्रेचतीर्थेवादेव्याःपार्श्वेविशेषतः ।

कुलीनानांसमीपेवामरणंशस्तमम्बिके ! ॥ ८२ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! पुण्यक्षेत्रमें, तीर्थमें अथवा भगवतीके समीप वा कौलिकगणोंके समीपही मरना अच्छा है ॥ ८२ ॥

विभावयन्सत्यमेकंविस्मरन्मृतात्रयम् ।

परित्यजतियःप्राणान्सत्स्वरूपेप्रतिष्ठति ॥ ८३ ॥

अर्थ—जो पुरुष मरणकालमें त्रिलोकीको धिसार केवल सत्यरूपका ध्यान करते २ प्राण छोड़ता है वह परमात्मामें मिलजाता है ॥ ८३ ॥

प्रेतभूमौशवंतीत्वाम्नायित्वाधृतोक्षितम् ।

उत्तराभिमुखंकृत्वाशाययेत्तंचितोपरि ॥ ८४ ॥

अर्थ—पहले शवको उठाकर प्रेतभूमिमें लेजावे । फिर इस मृतक देहको धी लगाय स्नान कराय चिताके ऊपर उत्तरकी ओर मुख करके लिटावे ॥ ८४ ॥

सम्बोधनान्तंतद्गोत्रं प्रेताख्यानं समुच्चरन् ।

दत्त्वा पिण्डं प्रेतमुखे देहे द्विह्निमनुं स्मरन् ॥ ८५ ॥

अर्थ—फिर सम्बोधनके अन्तमें गोत्रके साथ प्रेतका नाम (१) लेकर प्रेतके मुखमें पिण्ड दे और “रं” बह्निबीजका स्मरण करते २ दाहकरे ॥ ८५ ॥

पिण्डन्तु रचयेत्तत्र सिद्धाग्निस्तण्डुलैश्च वा ।

यवगोधूमचूर्णैर्वा धात्रीफलसमंप्रिये ! ॥ ८६ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! यहाँपर पके हुए अन्नसे, चावलोंसे अथवा गेहूँके ओटसे आँवलेकी समान पिण्ड बनावे ॥ ८६ ॥

स्थिते पुत्रे तपुत्रे पुज्येष्टे श्राद्धाधिकारिता ।

तदभावेऽन्यपुत्रादौ ज्येष्ठानुक्रमतो भवेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—प्रेतपुरुषके और पुत्रोंके रहनेपर भी बड़ा पुत्र ही श्राद्धकरनेका अधिकारी है । बड़ा पुत्र न हो (मर गया हो) वा किसी दूरदेशमें हो तो इन कारणोंमें ज्येष्ठके क्रमसे और पुत्रभी श्राद्धके अधिकारी हो सकते हैं ॥ ८७ ॥

अशौचान्तान्तदिवसे कृतस्नानो नरः शुचिः ।

मृतप्रेतत्वमुत्तयर्थमुत्सृजे तिलकाञ्चनम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—अशौचके अन्तमें दूसरे दिन मनुष्यको स्नान करके पवित्र हो मृतकपुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करना चाहिये (२) ॥ ८८ ॥

(१) “ओं अघ अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन् । एव पिण्डं स्ते स्वधा ” यह पढ़कर प्रेतके मुखमें पिण्ड रखे ।

(२) “ओं अघ अमुगोत्राय प्रेतराय पितृअमुकदेवशर्मणः प्रेतत्वविमुक्तयर्थम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे द्राक्षणाप दातुमह नाञ्चनसहितान् तिलान् समुत्सृजे ।” यह पाठ्य पढ़कर मृतकपुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे ।

गांभूमिवसनंयानंपात्रंधातुविनिर्मितम् ।

भोज्यं बहुविधं दद्यात्प्रेतस्वर्गाय सत्सुतः ॥ ८९ ॥

अर्थ—मृतकपुरुषको स्वर्गप्राप्तिके लिये मृतकपुरुषके पुत्रों-
को, गाय, भूमि, वस्त्र, यान, धातु, पात्र और बहुतसे भोज्य
द्रव्य (भोजनकी सामग्री) उत्सर्ग करने उचित है (१) ॥ ८९ ॥

गन्धंमालयंफलंतोयंशय्यांप्रियकरंतथा ।

यद्यत्प्रेतप्रियद्रव्यंतत्स्वर्गायसमुत्सृजेत् ॥ ९० ॥

अर्थ—गन्ध, माला, फल, जल, प्यारीशेज और जो जो
वस्तुएँ प्रेतपुरुषको प्यारी रही हों वह सब प्रेतकी स्वर्ग-
प्राप्तिके लिये दान करदे ॥ ९० ॥

ततस्तुवृषभश्चैकं त्रिशूलं केनलाञ्छितम् ।

स्वर्णेनालंकृतंकृत्वात्यजेत्तत्स्वरवासये ॥ ९१ ॥

अर्थ—अनन्तर स्वर्गप्राप्तिके लिये एकवृषभ त्रिशूलके चिह्नसे
चिह्नित और सुवर्णालंकारसे भूषितकर छोड़देवे ॥ ९१ ॥

प्रेतश्चादोक्तविधिनाश्चाद्धंकृत्वातिभक्तिः ।

ब्रह्मज्ञान्ब्राह्मणान्कौलान्क्षुधितानपिभोजयेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—फिर अत्यन्त भक्तिकेसाथ प्रेतश्चाद्धमें कहीहुई
विधिके अनुसार कुलवान् व दूसरे क्षुधित ब्राह्मणोंको भोजन
करावे ॥ ९२ ॥

दानेष्वशक्तोमनुजःकुर्वन्द्वाहंस्वशक्तिः ।

बुभुक्षितान्भोजयित्वाप्रेतत्वंमोचयेत्पितुः ॥ ९३ ॥

अर्थ—जो पुरुष भूमि शय्यादिका दान करनेमें असमर्थ हो

(१) “ ओ अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः स्वर्गार्थम् अमुकगोत्राय
अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं ममप्रददे । ” यह पदकर स्वर्गप्राप्तिके लिये गोदान
करे भूमि, वस्त्र, यानादि उत्सर्गके समयभी यह वाक्य पड़े ।

सम्बोधनान्तंतद्गोत्रप्रेताख्यानंसमुच्चरन् ।

दत्त्वापिण्डंप्रेतमुखेदेहेद्रह्निमनुंस्मरन् ॥ ८५ ॥

अर्थ-फिर सम्बोधनके अन्तमें गोत्रके साथ प्रेतका नाम (१) लेकर प्रेतके मुखमें पिंड दे और "रं" बहिवीजका स्मरण करते २ दाहकरे ॥ ८५ ॥

पिण्डन्तुरचयेत्तत्रसिद्धान्नैस्तण्डुलैश्चवा ।

यवगोधूमचूर्णैर्वाधात्रीफलसमंप्रिये ! ॥ ८६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! यहाँपर पके हुए अन्नसे, चावलोंसे अथवा गेहूँके आँटेसे आँवलेकी समान पिंड बनावे ॥ ८६ ॥

स्थितेषुप्रेतपुत्रेषुज्येष्ठेऽश्राद्धाधिकारिता ।

तदभावेऽन्यपुत्रादौज्येष्ठानुक्रमतोभवेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ-प्रेतपुरुषके और पुत्रोंके रहनेपरभी बड़ापुत्रही श्राद्धकरनेका अधिकारी है । बड़ापुत्र न हो (मर गया हो) या किसी दूरदेशमें होतो इनकारणोंमें ज्येष्ठके क्रमसे और पुत्रही श्राद्धके अधिकारी होसके हैं ॥ ८७ ॥

अशौचान्तान्तदिवसेकृतस्नानोनरःशुचिः ।

मृतप्रेतत्वमुत्तयर्थमुत्सृजेत्तिलकाञ्चनम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अशौचके अन्तमें दूसरेदिन मनुष्यको स्नान करके पवित्र हो मृतकपुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करना चाहिये (२) ॥ ८८ ॥

(१) "ओं अद्य अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन् । एष पिण्डस्ते स्वधा " यह पढ़कर प्रेतके मुखमें पिंड रखे ।

(२) "ओं अद्य अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः प्रेतत्वमिमुत्तयर्थम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे दाहनाय दातुमहं काञ्चनसहितान् तिलान् समुत्सृजे ।" यह वाक्य पढ़कर मृतकपुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्गकरे ।

गांभूमिवसनयानंपात्रंधातुविनिर्मितम् ।

भोज्यं बहुविधं दद्यात्प्रेतस्वर्गाय सत्सुतः ॥ ८९ ॥

अर्थ—मृतकपुरुषको स्वर्गप्राप्तिके लिये मृतकपुरुषके पुत्रों-
को, गाय, भूमि, वस्त्र, यान, धातु, पात्र और बहुतसे भोज्य
द्रव्य (भोजनकी सामग्री) उत्सर्ग करने उचित है (?) ॥ ८९ ॥

गन्धं माल्यं फलं तोयं शय्यां प्रियकरौ तथा ।

यद्यत्प्रेतप्रियद्रव्यं तत्स्वर्गाय स मुत्सृजेत् ॥ ९० ॥

अर्थ—गन्ध, माला, फल, जल, प्यारी शय्या और जो जो
वस्तुएं प्रेतपुरुषको प्यारी रही हों वह सब प्रेतकी स्वर्ग-
प्राप्तिके लिये दान करदे ॥ ९० ॥

ततस्तु वृषभश्चैकं त्रिशूलं केन लाञ्छितम् ।

स्वर्णेनालंकृतं कृत्वा त्यजेत्तत्स्वरवाप्तये ॥ ९१ ॥

अर्थ—अनन्तर स्वर्गप्राप्तिके लिये एकवृषभ त्रिशूलके चिह्नसे
चिह्नित और सुवर्णालंकारसे भूषितकर छोड़देवे ॥ ९१ ॥

प्रेतश्राद्धोक्तविधिना श्राद्धं कृत्वा तिभक्तितः ।

ब्रह्मज्ञान् ब्राह्मणान् कौलान् क्षुधितान् पिभोजयेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—फिर अत्यन्त भक्तिके साथ प्रेतश्राद्धमें कहींहुई
विधिके अनुसार कुलवान् व दूसरे क्षुधित ब्राह्मणोंको भोजन
करावे ॥ ९२ ॥

दाने प्वशक्तो मनुजः कुर्वन् श्राद्धं स्वशक्तितः ।

बुभुक्षितान् भोजयित्वा प्रेतत्वं मोचयेत्पितुः ॥ ९३ ॥

अर्थ—जो पुरुष भूमि शय्यादिका दान करनेमें असमर्थ हो
(१) “ओं अमुकगोत्राय प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः स्वर्गार्थम् अमुकगोत्राय
अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय पुत्रपदं ममन्दे ।” यह पढ़कर स्वर्गप्राप्तिके लिये गोदान
करे भूमि, तम्ब, यानादि उत्सर्गके समयभी यह पाठ्य पड़े ।

मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्ध करके भस्म ब्राह्मणोंको भोजन कराये पिताका भेतपन छुटावे ॥ ९३ ॥

आद्यैकोदिष्टमेतत्प्रेतत्त्वान्मुक्तिकारणम् ।

वर्षेवर्षे मृततिथौ दद्यादन्नंगतासवे ॥ ९४ ॥

अर्थ-यह भेतश्राद्ध आद्य एकोदिष्ट और भेतपनकी मुक्ति का कारण है इसके आगे प्रतिवर्ष मृतककी तिथिपर मृतक पुरुषके नामपर अन्न देना चाहिये ॥ ९४ ॥

• - - - - - •

• • • • •

॥ ९५ ॥

अर्थ-बहुतसे विधानसे क्या फल होसक्ता है ? बहुतसे कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे क्या फल होसक्ता है ? कुलवान पुरुषकी अर्चना करनेहीसे मनुष्यको सब सिद्धियाँ मिल जाती हैं ॥ ९५ ॥

विनाहोमाजपाच्छाद्धात्संस्कारेषु च कर्मसु ।

सम्पूर्णकार्यसिद्धेः स्यादेकया कौलिकार्जया ॥ ९६ ॥

अर्थ-होम, जप, श्राद्ध या कोई भी संस्कार न किया जाय तथापि केवल कुलवान् पुरुषकी अर्चना करनेसे सब कार्य सिद्ध होजाजाते हैं ॥ ९६ ॥

शुक्लांचतुर्थीमारभ्य शुभकर्माणिकारयेत् ।

असितापश्चर्मायावद्विधिरेपशिवोदितः ॥ ९७ ॥

अर्थ-शिवका कहा हुआ विधान है कि, शुक्लपक्षकी चतुर्थीतिथिसे आरंभ करके कृष्णपक्षकी पंचमी तिथिके बीचमें ही इन सब शुभकर्मोंको करले ॥ ९७ ॥

अन्यत्रापि विरुद्धेऽह्नि गुरुवृत्ति कौलिकाजया ।

कर्माण्यपरिहाय्याणिकर्मार्थैर्कर्तुमर्हति ॥ ९८ ॥

अर्थ-गुरु, ऋत्विक् और कुलवान पुरुषकी अज्ञाके अनु-
सार मनुष्य अवैध दिनमेंभी अपरिहार्य कर्मका अनुष्ठान
करसक्ता है ॥ ९८ ॥

गृहाम्भःप्रवेशश्चयात्रारत्नादिधारणम् ।

सम्पूज्याद्यांपञ्चतत्त्वैःकुर्व्यादेतानिकौलिकः ॥ ९९ ॥

अर्थ-गृहारंभ, गृहप्रवेश, यात्रा, शंख रत्नादिधारण
इत्यादि कर्म कुलवान पुरुषको पञ्चतत्त्वसे देवीकी पूजा
करके करने चाहिये ॥ ९९ ॥

संक्षेपयात्रामथवाकुर्व्यात्साधकसत्तमः ।

ध्यायन्देवीजपमन्त्रंनत्वागच्छेद्यथामति ॥ १०० ॥

अर्थ-अथवा साधकको उचित है कि, देवी भगवतीका
ध्यान करके मंत्रजप और नमस्कार करके इच्छानुसार गमन-
करे इसका नाम संक्षेपयात्रा है ॥ १०० ॥

सर्वासुदेवतार्चासुशारदीयोत्सवादिषु ।

तत्तत्कल्पोक्तविधिनाध्यानपूजांसमाचरेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-सब देवताओंकी पूजाके स्थानमें शारदीय महोत्स-
वके स्थलमें तिस २ कल्पमें कही हुई विधिके अनुसार ध्यान
और पूजा करनी उचित है ॥ १०१ ॥

आद्यापूजोक्तविधिनावलिहोमंप्रयोजयेत् ।

कौलार्चनंदक्षिणाञ्चकृत्वाकर्मसमापयेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-आदिकालिकाकी पूजामें जैसा विधान है निम्नके
अनुसार बलिदान करे और फिर कुलवान पुरुषको पूजा
दक्षिणा देकर कर्मको समाप्त करे ॥ १०२ ॥

गङ्गाविष्णुंशिवंसूर्यब्रह्माणंपरिपूज्यच ।

उद्देश्यमर्चयद्देवंसामान्योविधिरीरितः ॥ १०३ ॥

अर्थ-साधारण विधि यह है कि-गंगा, विष्णु, शिव, सूर्य और ब्रह्मा इन पाँचों देवताओंकी पूजा करके उद्दिष्ट देवताकी पूजा करे ॥ १०३ ॥

कौलिकःपरमोधर्मःकौलिकःपरदेवता ।

कौलिकःपरमंतीर्थतस्मात्कौलंसदाञ्चयेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ-कुलवान पुरुषही परमधर्म है, कुलवान पुरुषही परम देवता है, कुलवान पुरुषही परमतीर्थ है, इसकारणसे सदा सर्वभौतिसे कुलवान पुरुषकी पूजा करनी चाहिये ॥ १०४ ॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थानिब्रह्माद्याःसर्व्यदेवताः ।

वसन्तिकौलिकेदेहेकिन्नस्यात्कौलिकाञ्चनात् ॥ १०५ ॥

अर्थ-साढ़ेतीन कटोड़ तीर्थ ब्रह्मादि समस्त देवता कुलवान महापुरुषके शरीरमें विराजमान रहते हैं, अतएव कुलवान पुरुषकी पूजा करनेसे सम्पूर्णफल मिलते हैं ॥ १०५ ॥

पूर्णाभिषिक्तःसत्कौलोयस्मिन्देशेविराजते ।

धन्योमान्यःपुण्यतमःसदेशःप्रार्थ्यतेसुरैः ॥ १०६ ॥

अर्थ-पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त हुआ श्रेष्ठ कुलवान जिस देशमें रहता है, वह देशही धन्य, मान्य और पुण्यतम है । देवतालोगभी ऐसे देशकी प्रार्थना करते हैं ॥ १०६ ॥

कृतपूर्णाभिषेकस्यसाधकस्यशिवात्मनः ।

पुण्यपापविहीनस्यप्रभावंवेत्तिभोभुवि ॥ १०७ ॥

अर्थ-पूर्णाभिषेकमें अभिषेकित हुआ साधक पापपुण्यरहित और साक्षात् शिवरूप है, पृथ्वीमें कौन पुरुष उस महात्माके प्रभावको जान सक्ता है ॥ १०७ ॥

केवलंनररूपेणतारयन्नखिलंजगत् ।

शिक्षयँल्लोकयात्राश्चकौलोविहरतिसितौ ॥ १०८ ॥

अर्थ-केवल समस्त जगत्का उद्धार करनेके लिये और लोकयात्रा सिखानेके लिये कुलवान पुरुष पृथ्वीपर विचरण किया करते हैं ॥ १०८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पूर्णाभिषिक्तकौलस्यमाहात्म्यंकथितंप्रभो ।

विधानमभिषेकस्यकृपयाश्रावयस्वमाम् ॥ १०९ ॥

अर्थ-श्रीमगवतीजीने कहा-हे प्रभो ! पूर्णाभिषेकके द्वारा अभिषेकित हुये कुलवान पुरुषका माहात्म्य आपने कहा, अब कृपाकरके इस अभिषेकका विधान कहिये, इसके श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ १०९ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

विधानमेतत्परमं गुप्तमासीद्युगत्रये ।

गुप्तभावेनकुर्वन्तो नरामोक्षंयुःपुरा ॥ ११० ॥

अर्थ-सदाशिवने कहा-सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें इस पूर्ण अभिषेकका विधान अत्यन्त गुप्त था । तिसकालमें गुप्त-भावसे इसका अनुष्ठान करके मनुष्योंने मुक्ति पाई है ॥ ११० ॥

प्रवलेकलिकालेतुप्रकाशकुलवर्तिनः ।

नक्तंवादिवसेकुर्यात्सप्रकाशाभिषेचनम् ॥ १११ ॥

अर्थ-आगे जब कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा तब कुलाचारी मनुष्य रात अथवा दिनमें प्रगटभावमें अभिषेक करेंगे ॥ १११ ॥

नाभिषेकंविनाकौलःकेवलंमद्यसेवनात् ।

पूर्णाभिषेकात्कौलःस्याचक्राधीशःकुलार्चकः ११२ ॥

अर्थ-अभिषेकके बिना केवल मद्यके सेवनसेही कुलवान नहीं होता, जिसका पूर्ण अभिषेक हुआहै, वही कुलार्चक, चक्राधीश्वर और कौल हो सक्ता है ॥ ११२ ॥

तत्राभिषेकपूर्वेष्वहिसर्वविघ्नोपशान्तये ।

यथाशक्त्युपचारेणविघ्नेशंपूजयेद्गुरुः ॥ ११३ ॥

अर्थ-अभिषेकके पहलेदिन सबविघ्नोंकी शान्तिके लिये यथाशक्ति उपचार करके गुरुको विघ्नराजकी पूजा करनी चाहिये ॥ ११३ ॥

गुरुश्चेन्नाधिकारीस्याच्छुभपूर्णाभिषेचने ।

तदाभिषिक्तकौलेनसंस्कारंसाधयेत्प्रिये ! ॥ ११४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! यदि गुरु पूर्णाभिषेकमें अधिकारी न होतो पूर्ण अभिषेकमें अभिषेकित हुए कुलवानसे और कहा हुआ संस्कार सिद्धि करावे ॥ ११४ ॥

खान्ताणैविन्दुसंगुतंबीजमस्यप्रकीर्तितम् ॥ ११५ ॥

अर्थ-"ख" वर्णके पिछले वर्णमें चंद्रबिन्दु मिलाने (ग) से गणपतिका बीज होगा ॥ ११५ ॥

गणकोऽस्यऋषिश्छन्दोनीवृद्धिर्नस्तुदेवता ।

कर्तव्यकर्मणोविघ्नशान्त्यर्थेविनियोगिता ॥ ११६ ॥

अर्थ-इस गणपतिमंत्रका ऋषि गणक, छन्द नीवृत्त, देवता विघ्न है कर्तव्यकर्मकी विघ्नशान्तिके लिये विनियोगकीर्तन करना चाहिये (१) ॥ ११६ ॥

पट्टदीर्घयुक्तमूलेनपडङ्गानिसमाचरेत् ।

प्राणायामंततःकृत्वाध्यायेद्गणपतिंशिवे ! ॥ ११७ ॥

(१) ऋष्यादिपासः यथाः-अस्य गणपतिबीजमंत्रस्य गणकऋषिः । नीवृच्छन्दो विघ्नो देवता कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः । शिवसि गण-काय ऋषये नमः । मुखे नीवृच्छन्दसे नमः । हृदये विघ्नाय देवतायै नमः । कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः ।

अर्थ-छैः दीर्घस्वर युक्त मंत्रसं षडङ्गन्यास करे (१)
हे शिवे ! फिर प्राणायाम करके (२) गणेशजीका ध्यान
करे ॥ ११७ ॥

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
शंखपाशाङ्कुशैः शैलान्गुरुकरविलसद्धारुणीपूर्णकुम्भम् ॥
वालेन्दूदीप्तमौलिकरिपतिवदनं बीजपराद्रंगण्डं
भोगीन्द्रावद्धभूपं भजतगणपतिरक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥ ११८ ॥

अर्थ-जो सिन्दूरकी समान लालवर्ण है, जो तीन नेत्रवाले
है, जिनका उदर बड़ा है, जो चार भुजाओंमें शंख, पाश,
अंकुश और वर धारण किये हैं, जो विशाल गुण्डसे वारुणीसे
पूर्णकुम्भ (घड़ा) धारण कर रहे हैं, नवीन चद्रमाकी कलासे
जिनका मरतक शोभायमान हो रहा है, जिनका वदन
गजराजके वदनकी समान है जिनके दोनों कपोल सदा मदके
निकलनेसे भीगे रहते हैं, जिनका शरीर सर्पराजसे शोभायमा-
न है, जो लालवस्त्र और लाल अंगराग धारण किये हैं उन देव-
गणपतिका भजन करना चाहिये ॥ ११८ ॥

ध्यात्वैवं मानसैरिद्धापीठशक्तीः प्रपूजयेत् ।

तीव्राचज्वालिनी नन्दाभोगदाकामरूपिणी ॥ ११९ ॥

अर्थ-इस प्रकार ध्यान करके मनके उपचारसे पूजा करके
(प्रणवका उच्चारण करके चतुर्थाधिभक्त्यन्त नाम लेकर)

(१) अगुष्टान् षडङ्ग न्यास यथा - गामुष्टान्या नमः । गौ तर्जनीभ्यां त्र्यम्बा ।
गू मध्यमाभ्यां षष्ठः । गै अनामिकाभ्यां हुम् । गौ कनिष्ठाभ्यां यौषट् । ग परतल
पृष्ठभ्यामध्याय पट् । हृदयान् षडङ्ग न्यास यथा - गौ त्र्यम्बा नमः । गौ शिरमे रय हा ।
ग शिखायै षष्ठः । गै शक्त्याय हुम् । गौ नेत्रत्रयाय यौषट् । ग परतल पृष्ठभ्यामध्याय पट् ।

(२ ' मं' इस बीजमंत्रकी पठन करना करे ।

“नमः” पद अंतमें लगाय गंधपुष्पादिसे पीठशक्तियोंकी पूजा करे । तीव्रा, ज्वालिनी, नंदा, भोगदा, कामरूपिणी ॥ ११९ ॥

उग्रातेजस्वतीसत्यामध्येविघ्नविनाशिनी ।

पूर्वादितोऽर्चयित्वैताः पूजयेत्कमलासनम् ॥ १२० ॥

अर्थ-उग्रा, तेजस्वती और सत्या इन आठ पीठशक्तियोंकी पूर्वादि क्रमसे पूजा करके मध्यदेशमें विघ्नविनाशिनीकी पूजा करे (१) फिर प्रणव पढ़कर “नमः” (पदान्त नाम उच्चारण करके) कमलासनकी पूजा करे (२) ॥ १२० ॥

पुनर्ध्यात्वागणेशानंपञ्चतत्त्वोपचारकैः ।

अभ्यर्च्यतच्चतुर्दिक्षुगणेशं गणनायकम् ॥ १२१ ॥

गणनाथं गणक्रीडं जेत्कौलिकसत्तमः ।

एकदन्तरक्ततुण्डलम्बोदरगजाननौ ॥ १२२ ॥

महोदरश्च विकटं धूम्राभं विघ्ननाशनम् ॥ १२३ ॥

अर्थ-कौलिकश्रेष्ठको चाहिये कि फिर ध्यान करके मंत्रसे शुद्ध हुए पंचतत्त्वरूप उच्चारसे गणेशजीकी पूजा करे । फिर उनके चारों ओर गणेश, गणनायक, गणनाथ, गणक्रीड, एकदन्त, रक्ततुण्ड, लम्बोदर, गजानन, महोदर, विकट, धूम्राभ, विघ्ननाशन इनकी पूजा करे (३) ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

(१) पूर्वदिशामें एते गंधपुष्पे “ओ नन्दायै नमः” आग्नेकोणमें एते गरुपुष्पे, “ओ ज्वालिन्यै नमः” । दक्षिणदिशामें “ओ नन्दायै नमः” । नैऋतकोणमें “ओ भोगदायै नमः” । पश्चिमदिशामें “ओ कामरूपिण्यै नमः” । वायुकोणमें “ओ उग्रायै नमः” । उत्तरदिशामें “ओ तेजस्विन्यै नमः” । ईशानकोणमें “ओ सत्यायै नमः” । मध्यमें “ओ विघ्नविनाशिन्यै नमः” ।

(२) एते गंधपुष्पे: “ओ कमलासनया नमः” ।

(३) एते गंधपुष्पे: “ओ गणेशाय नमः” एते गंधपुष्पे “ओ गणनायकाय नमः” । इत्यादि ।

ततोब्राह्मीमुखाःशक्तीर्दिक्पालांश्चप्रपूजयन् ।

तेषामस्त्राणिसम्पूज्यविघ्नराजं विसर्जयेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ—फिर ब्राह्मी इत्यादि अष्टशक्ति और इन्द्रादि दश-
दिक्पालोंकी पूजा करके दिक्पालोंके सब अस्त्रोंकी पूजाकरे
और विघ्नराज ! (क्षमस्व, इस वाक्यसे) विघ्नराजका विस-
र्जन करे ॥ १२४ ॥

एवंसम्पूज्यविघ्नेशमधिवासनमाचरेत् ।

भोजयेच्चपञ्चतत्त्वैर्ब्रह्मज्ञान्कुलसाधकान् ॥ १२५ ॥

अर्थ—इसप्रकार विघ्नराजकी पूजा करके अधिवासन करे
और पञ्चतत्त्वसे ब्रह्मज्ञानी कुलसाधकोंको भोजन करावे १२५

ततःपरदिनेस्नातःकृतनित्योदितक्रियः ।

आजन्मकृतपापानांक्षयार्थतिलकाञ्चनम् ।

उत्सृजेत्कौलतृप्त्यर्थंभोज्यञ्चैकमपिप्रिये ! ॥ १२६ ॥

अर्थ—फिर दूसरेदिन स्नान करनेके पीछे नित्यक्रियाको
समाप्त करके जन्मसे लेकर कियेहुए सब पापोंके क्षय होनेके
अर्थ तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे (१) हे प्रिये ! तिसके उपरान्त
कुलवानोंकी तृप्तिके लिये एक भोज्य देवे (२) ॥ १२६ ॥

(१) “ओं तत्सद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिर्ये भास्वरे अमुकतिथौ
अमुकचारे अमुकदीपान्तर्गतभारतवर्षकदेशस्थितामुकग्रामवासी अमुकगोत्रः अमुकपत्न्यः
अमुकवेदान्तर्गतामुकशास्त्राध्यायिने श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितान्
तिलानहं समुत्सृजे । ” यह वाक्य पढ़कर तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे ।

(२) “ओं तत्सद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिर्ये भास्वरे अमुकतिथौ
अमुकचारे अमुकगोत्रः अमुकपत्न्यः अमुकवेदान्तर्गतामुकशास्त्राध्यायी श्रीअमुकदेवशर्मा
कौलादितृप्तिकामः अमुकगोत्राय अमुकपत्न्याय अमुकवेदान्तर्गतामुकशास्त्राध्ययिने
श्रीभते अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय कौलाय दातुं भोज्यपदं समुत्सृजे” यह वाक्य पढ़कर
भोज्य उत्सर्ग करे ।

अव्ययैतत्वादिनेशायत्रह्मविष्णुशिवग्रहान् ।

अर्घयित्वा मातृगणान्वसुधारां प्रकल्पयेत् ॥ १२७ ॥

कर्मणोऽभ्युदयार्थाय वृद्धिश्चाद्धं समाचरेत् ।

ततो गत्वा गुरोः पार्श्वं प्रणम्य प्रार्थयेद्दिदम् ॥ १२८ ॥

अर्थ-फिर सूर्यको अर्घ्य देकर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह, मातृगणोंकी पूजा करके वसुधारा दे। अनन्तर कर्मके उदय होनेकी कामनासे वृद्धिश्चाद्ध करे। इसके उपरान्त गुरुके निकट जाय प्रणाम करके प्रार्थना करे कि ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

ब्राहिनाथ ! कुलाचार ! नलिनीकुलवल्लभ ! ।

त्वत्पादाम्भोरुहच्छायादेहि मृध्नि कृपानिधे ! ॥ १२९ ॥

अर्थ-हे नाथ ! आप कौलिकरूप पद्मवनके धारे हैं। हे कृपा निधे ! इस समय मेरे मस्तकपर अपने चरणकमलकी छाया करदो ॥ १२९ ॥

आज्ञादेहि महाभाग ! शुभपूर्णाभिषेचने ।

निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिमुपैमित्व त्रसादतः ॥ १३० ॥

अर्थ-हे महाभाग ! मेरे शुभ पूर्णाभिषेकके लिये आप आज्ञा दें आपके प्रसादसे मैं निर्विघ्न कार्यकी सिद्धि प्राप्त कर लूंगा ॥ १३० ॥

शिवशक्त्याज्ञया वत्स ! कुरु पूर्णाभिषेचनम् ।

मनोरथमयी सिद्धिर्जायतां शिवशासनात् ॥ १३१ ॥

अर्थ-हे वत्स ! शिवशक्तिके आज्ञानुसार पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त होवो। महादेवजीकी आज्ञाके अनुसार तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होवे ॥ १३१ ॥

इत्थमाज्ञांगुरोःप्राप्यसर्वोपद्रवशान्तये ।

आयुर्लक्ष्मीवलारोग्यावाप्त्यैसङ्कल्पमाचरेत् ॥ १३२ ॥

अर्थ-गुरुजीसे यह आज्ञापायकर शिष्य सब उपद्रवोंको शान्तिके लिये और आयु, लक्ष्मी, बल व आरोग्य प्राप्तिके लिये संकल्प करे (१) ॥ १३२ ॥

ततस्तुकृतसङ्कल्पोवस्त्राभूषणैः ।

कारणैःशुद्धिसहितैरभ्यर्च्यवृणुयाद्गुरुम् ॥ १३३ ॥

अर्थ-इसप्रकार संकल्प कर वस्त्राभूषण वा शुद्धिके साथ कारणसे गुरुको पूजा करके वरण करे (२) ॥ १३३ ॥

गुरुर्मनोहरगेहेगैरिकादिविचितिते ।

चित्रध्वजपताकाभिःफलपल्लवशोभिते ॥ १३४ ॥

अर्थ-गैरिकादिसे चित्रविचित्रवने मनोहरगृहमें गुरुको (बैठना चाहिये) यह गृह मनको रमानेवाला, ध्वजा, पताका और फल पत्रादिसे शोभायमानहो ॥ १३४ ॥

(१) "ओं तत्सद्य अमुके मासि अमुरारशिरसे भास्करे अमुके पक्षे अमुरातिथौ अमुकघोरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रे अमुकप्रातः अमुकवेदि अमुकश्राद्धे यः पुष्यारि-
काखडान्तर्गतं मुकुटप्रदेशीयमुकप्राप्त्यर्था, श्रीअमुकदेवशर्मा, निःशेषोपद्रवशान्तिनामः
अमुक-नीबलारोग्यकामश्च शुभपूर्णाभिषेकमङ्गलं करिष्ये" यह वाक्य पढ़कर संकल्प करे ।

(२) "ओं तत्सद्य अमुके मासि अमुकराशिरसे भास्करे अमुके पक्षे अमुरातिथौ
अमुकघोरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रे अमुकप्रातः अमुकवेदि अमुकश्राद्धे यः पुष्यारि-
काखडान्तर्गतमुकुटप्रदेशाय मुकप्राप्त्यर्था, श्रीअमुकदेवशर्मा, अमुकगोत्रम् अमुकप्रातम्
अमुकवेदिनाम् अमुकश्राद्धाय यः कुमारिकाखडान्तर्गतामुकुटप्रदेशीयमुकप्राप्त्यर्था
श्रीमन्तममुकानन्दनाथ गुरुत्वेन मङ्गलं वस्त्राभूषणैः शोभिते" इसप्रकार संकल्प पढ़
गुरुको वरण करे ।

किङ्किणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते ।

घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविर्वर्जिते ॥ १३५ ॥

अर्थ—किंकिणी अर्थात् धुद्रघंटिकाओंकी मालासे विभूषित विचित्र चंदोवेसे यह गृह सजा रहे । घृतके इतने दीपक जलादिये जाँय कि, अंधकारका नाम न रहे ॥ १३५ ॥

कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैःसुवासिते ।

व्यजनैश्चामरैर्वहैर्दर्पणाद्यैरलङ्किते ॥ १३६ ॥

अर्थ—कपूरके साथ धूपकेद्वारा शालके गोंदसे बनीहुई धूपके द्वारा उस स्थानको सुगंधित करे हाथके खेंचनेके पंखेसे तालवृन्त चामरसे मोरके पंखोंसे और दर्पणादिसे उस गृहको सजावे ॥ १३६ ॥

साद्धैहस्तमितावेदीमुच्चकैश्चतुरङ्गुलाम् ।

रचयेन्मृन्मयीतत्रचूर्णैरक्षतसम्भवैः ॥ १३७ ॥

पीतरक्तासितश्वेतश्यामलैः सुमनोहरम् ।

मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्याच्छ्रीगुरुस्ततः ॥ १३८ ॥

अर्थ—चार अंगुल ऊंची और आधेहाथकी लम्बी चौड़ी वेदी इसगृहमें गुरुको बनानी चाहिये । फिर पीले, लाल, काले, श्वेत, श्यामल इन पांच रंगे चावलोंके आदेसे मनोहर सर्वतोभद्रमंडल बनावे ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

स्वस्वकल्पोक्तविधिनामानसार्चायधिक्रियाम् ।

कृत्वापूर्वोक्तमन्त्रेण पञ्चतत्त्वानिशोधयेत् ॥ १३९ ॥

अर्थ—फिर अपने २ कल्पमें कहीहुई विधिके अनुसार मानसिक पूजासे लेकर समस्तकार्य समाप्त करके पहले कहे-हुए मंत्रसे पंचतत्त्वको शुद्धकरे ॥ १३९ ॥

संशोध्यपञ्चतत्त्वानिपुरःकल्पितमण्डले ।

स्वार्णवाराजतंताम्रमृन्मयंवटमेववा ॥ १४० ॥

अर्थ-पञ्चतत्त्वको शुद्धकरनेके उपरान्त पहले कहे हुए सर्वतो-
भद्र मण्डलके ऊपर सुवर्ण, चांदी, तांबा, अथवा मृत्तिकाका
बना घड़ा लाय ॥ १४० ॥

क्षालितश्चास्त्रवीजेनदध्यक्षतविवर्जितम् ।

स्थापयेद्ब्रह्मवीजेनसिन्दूरेणाङ्ग्येच्छ्रिया ॥ १४१ ॥

अर्थ-“ फट् ” मन्त्रसे इस घड़ेको प्रक्षालितकर उसमें दही
चावलका लेप करे और प्रणवका उच्चारण करके उसको इस-
मण्डलमें स्थापन करे । फिर “ श्रीं ” बीज पढ़कर सिंदूरसे
उसको अंकित करे ॥ १४१ ॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्विन्दुविभूषितैः ।

मूलमन्त्रत्रिजापेनपूरयेत्कारणेनतम् ॥ १४२ ॥

अर्थ-चन्द्रविन्दु ‘ॐ’ विभूषित (क्ष) से लेकर ‘ अ ’ तक
५० वर्णके साथ तीनवार मूलमन्त्रका जप करके कारणसे
इसघड़ेको भरे ॥ १४२ ॥

अथवातीर्थतोयेनशुद्धेनपाथसापिवा ।

नवरत्नसुवर्णवावटमध्येविनिःशेषत ॥ १४३ ॥

अर्थ-अथवा तीर्थजलसे या शुद्धजलसे घड़ेको भरकर फिर
इसघड़ेमें सुवर्ण या नवरत्न डालने उचित हैं ॥ १४३ ॥

पनसोदुम्बराश्वत्थवकुलाम्रसमुद्भवम् ।

पल्लवंतन्मुखेदद्याद्भागभवेनकृपानिधिः ॥ १४४ ॥

अर्थ-फिर कृपानिधान गुरुजी “ नै ” बीज उच्चारण करके

कलशके मुखमें कटहल, गलर, पीपल, मौलसिरी और आम इन पांच वृक्षोंके पत्ते रखे ॥ १४४ ॥

शरावंमार्तिकंवापिफलाक्षतसमन्वितम् ।

रमांमायांसमुच्चार्यस्थापयेत्पल्लवोपरि ॥ १४५ ॥

अर्थ-फिर “ ह्रीं श्रीं ” मन्त्र उच्चारण करके आतप तन्दुल और फलयुक्त सुवर्ण, चांदी, तांबे या मिट्टीकी बनी सौंरयां पत्तोंके ऊपर रखे ॥ १४५ ॥

वध्नीयाद्वस्त्रयुग्मेनश्रीवांतस्यवरानने ! ।

शक्तौरक्तंशिवेविष्णौश्वेतवासः प्रकीर्तितम् ॥ १४६ ॥

अर्थ-हे वरानने ! दो वस्त्रोंसे इसवर्तनका गला बांधे । हे शिवे ! शक्तिमन्त्रमें लाल और शिव तथा विष्णुजीके मंत्रमें श्वेतवस्त्रही अच्छा है ॥ १४६ ॥

स्थांरथींमायांरमांस्मृत्वास्थिराकृत्यघटान्तरे ।

निक्षिप्यपञ्चतत्त्वानिनवपात्राणिविन्यसेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ-अनन्तर “ स्थां रथीं ह्रीं श्रीं स्थिरीभव ” यह मन्त्र पढ़कर स्थिर किये हुये और घड़ेमें पंचतत्त्व रखकर नवपात्र को रखे ॥ १४७ ॥

राजतंशक्तिपात्रंस्याद्वरुपात्रंहिरण्यम् ।

श्रीपात्रन्तुमहाशङ्खंताम्राण्यन्यानिक्लपयेत् ॥ १४८ ॥

अर्थ-शक्तिपात्र चांदीका बना हुआ, गुरुपात्र सुवर्णका बना हुआ, श्रीपात्र महाशंखका बना हुआ और सबपात्र तांबेके होने चाहिये ॥ १४८ ॥

पापाणदारुलैहानांपात्राणिपरिवर्जयेत् ।

शक्त्याप्रक्लपयेत्पात्रंमहादेव्याःप्रपूजने ॥ १४९ ॥

अर्थ--महादेवीजीकी पूजाके अवसरमें पत्थरके, काठके और लोहेके पात्रोंको छोड़कर शक्तिके अनुसार और पदार्थसे पात्र बनावै ॥ १४९ ॥

पात्राणांस्थापनंकृत्वागुरुन्देवींप्रतर्पयेत् ।

ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्चयेत्सुधीः ॥ १५० ॥

अर्थ--फिर पात्र स्थापन करके गुरुगणोंका और भगवतीका (और आनंदभैरवादिकोंका) तर्पण करे। इसके उपरान्त ज्ञानीपुरुष अमृतसे भरेहुए घड़ेकी पूजा करे ॥ १५० ॥

दर्शयित्वाधृपदीपौसर्व्वभूतबलिहरेत् ।

पीठदेवान्पूजयित्वापङ्कन्यासमाचरेत् ॥ १५१ ॥

अर्थ--पीछे धूप दीप दिखाय पहला कहा हुआ मंत्रपठ सब भूतोंको बलि दे। अनन्तर पीठदेवताओंकी पूजा करके पङ्कन्यास करे ॥ १५१ ॥

प्राणायामंततःकृत्वाध्यात्वावाह्यमहेश्वरीम् ।

स्वशक्त्यापूजयेदिष्टांवित्तशास्त्रंविबर्जयेत् ॥ १५२ ॥

अर्थ--इसके उपरान्त प्राणायाम करके महेश्वरीका ध्यान धरके आवाहन करनेके पीछे अपनी शक्तिके अनुसार उस-अभीष्टदेवताकी पूजा करे, परन्तु किसीप्रकारसे वित्तशास्त्र (सामर्थ्य रुपयादान करनेकी है तो देडिया एक पैसा) न करे ॥ १५२ ॥

होमान्तकृत्यंनिष्पाद्यकुमारीशक्तिसाधकान् ।

पुष्पचन्दनवासोभिरर्चयेत्सद्गुरुःशिवे ! ॥ १५३ ॥

अर्थ--हे शिवे ! सद्गुरुको चाहिये कि होमसे लेकर सब कार्योंको प्राकर फूल, चंदन और चम्रोंसे कुमारियोंकी और शक्तिसाधकोंकी पूजा करे ॥ १५३ ॥

अनुगृह्णन्तुकौलामेशिष्यंप्रतिकुलव्रताः ।

पूर्णाभिषेकसंस्कारेभवद्भिरनुमन्यताम् ॥ १५४ ॥

अर्थ-हे कौलगण ! आपलोग मेरे शिष्यपर अनुगृह कीजिये । इस पूर्णाभिषेकसंस्कारमें अनुमति दीजिये ॥ १५४ ॥

एवंशुच्छतिचक्रेशेतंत्र्युगुरुमादरात् ।

महामायाप्रसादेनप्रभावात्परमात्मनः ।

शिष्योभवतुपूर्णस्तेपरतत्त्वपरायणः ॥ १५५ ॥

अर्थ-इसप्रकार चक्रेश्वरके प्रश करनेपर सबकुलवान आदरपूर्वक कहे कि, महामायाके प्रसादसे और परमात्माके प्रभावसे आपका शिष्य परमतत्त्वपरायण और पूर्णहो ॥ १५५ ॥

शिष्येणचगुरुर्देवीमर्चयित्वार्चितेष्टे ।

कामंमायारमांजस्वाचालयेद्विमलंवटम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि, शिष्यसे देवी भगवती-जीकी पूजा कराय पजित घड़ेके ऊपर "ह्रीं ह्रीं श्रीं" मंत्र जपवाकर उस निर्मल घड़ेको चलावे ॥ १५६ ॥

उत्तिष्ठब्रह्मकलशदेवतात्मक ! सिद्धिद ! ।

त्वत्तोयपल्लवैःसिक्तःशिष्योब्रह्मरतोऽस्तुते ॥ १५७ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढ़े कि) हे ब्रह्मकलश ! तुम सिद्धि-दाता और देवतास्वरूपहोतुम उठो ! हमारा शिष्य तुम्हारे जल और पत्तोंसे सिक्त होकर ब्रह्ममें निरत होवे ॥ १५७ ॥

इत्थंसञ्चाल्यकलशमुत्तराभिमुखंगुरुः ।

मन्त्रैरेतैर्वाक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत्कृपाशितः ॥ १५८ ॥

अर्थ-इसमंत्रसे कलशको चलायकर गुरु कृपायुक्त हृदयसे

उत्तरकी ओर मुख करके बैठे हुए शिष्यको अभिषेकित करें
और यह मंत्र पढ़ता रहे ॥ १५८ ॥

शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिवऋषिः स्मृतः ।

छन्दोऽनुष्टुप् देवताद्याप्रणवञ्जीजमीरितम् ।

शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ १५९ ॥

अर्थ—शुभ पूर्णाभिषेकके ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, बीज
प्रणव ॐ शुभपूर्णाभिषेककार्यके अर्थ विनियोग कीर्तन करना
चाहिये (१) ॥ १५९ ॥

गुरुवस्त्वाभिपिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिपिञ्चन्तु मातरः ॥ १६० ॥

अर्थ—गुरुजन तुमको अभिषेकित करें. दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी
यह मातायें तुमको अभिषेकित करें ॥ १६० ॥

पोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी ।

एतास्त्वामभिपिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ १६१ ॥

अर्थ—पोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी
यह मंत्र पढ़े हुए जलसे तुमको अभिषेकित करें ॥ १६१ ॥

जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती ।

एतास्त्वामभिपिञ्चन्तु च गला वरदा शिवा ॥ १६२ ॥

अर्थ—जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी सरस्वती, चगला,
वरदा, शिवा यह तुमको अभिषेकित करें ॥ १६२ ॥

(१) मंत्रः—“१५। शुभपूर्णाभिषेकमंत्रानां सदाशिव ऋषिरनुष्टुप् छन्दः आद्याद्या
देवता ओं बीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थं विनियोगः । शिष्ये सदाशिव ऋषये नमः । गुरु
अनुष्टुप् छन्दे नमः । हस्त्ये आद्यये कृत्विह्ये देवताये नमः । गुरु ओं बीजं नमः ।
शुभपूर्णाभिषेकार्थं विनियोगः । ” इति पद्या ऋषि-गामदरे ।

अनुगृह्णन्तु कौलामे शिष्यं प्रतिकुलव्रताः ।

पूर्णाभिपेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥ १५४ ॥

अर्थ-हे कौलगण ! आपलोग मेरे शिष्यपर अनुगृह्ण कीजिये । इस पूर्णाभिपेकसंस्कारमें अनुमति दीजिये ॥ १५४ ॥

एवं शृच्छति चक्रेशे तं ब्रह्मगुरुमादरात् ।

महामायाप्रसादेन प्रभावात् परमात्मनः ।

शिष्यो भवतु पूर्णस्ते परतत्त्वपरायणः ॥ १५५ ॥

अर्थ-इस प्रकार चक्रेश्वरके प्रसाद करनेपर सबकुलधान आदरपूर्वक कहें कि, महामायाके प्रसादसे और परमात्माके प्रभावसे आपका शिष्य परमतत्त्वपरायण और पूर्ण है ॥ १५५ ॥

शिष्येण च गुरुदेवीमर्चयित्वा चितेष्टे ।

कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद्भिर्मलं यटम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि, शिष्यसे देवी भगवती-जीकी पूजा कराव्य पूजित घड़ेके ऊपर "ह्रीं ह्रीं श्रीं" मंत्र जपवाकर उस निर्मल घड़ेको चलावे ॥ १५६ ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मकलशं देवतात्मक ! सिद्धिद ! ।

त्वत्तोयपल्लवैः सितैः शिष्यो ब्रह्मरतोऽस्तुते ॥ १५७ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढ़ें कि) हे ब्रह्मकलश ! तুম सिद्धि-दाता और देवतारूपको तूम उठो ! हमारा शिष्य तुम्हारे जल और पत्तोंसे सित होकर ब्रह्ममें निरत होय ॥ १५७ ॥

इत्थं सञ्चाल्य कलशमुत्तमाभिमुखं गुरुः ।

मन्त्रैरेतज्ज्यमाणं गभिपिञ्चेत्कृपाग्निः ॥ १५८ ॥

अर्थ-इस मंत्रसे कलशको चलायकर गुरु कृपायुक्त तदग्रे

उत्तरकी ओर मुख करके बैठेहुए शिष्यको अभिषेकित करें
और यह मंत्र पढ़तारहें ॥ १५८ ॥

शुभपूर्णाभिषेकस्यसदाशिवऋषिःस्मृतः ।

छन्दोऽनुष्टुप्देवताद्याप्रणवंबीजमीरितम् ।

शुभपूर्णाभिषेकार्थेविनियोगःप्रकीर्तितः ॥ १५९ ॥

अर्थ—शुभ पूर्णाभिषेकके ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, बीज
ॐ शुभपूर्णाभिषेककार्यके अर्थ विनियोग कीर्तन करना
चाहिये (१) ॥ १५९ ॥

गुरुवस्त्वाभिपिञ्चन्तुब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिपिञ्चन्तुमातरः ॥ १६० ॥

अर्थ—गुरुजन तुमको अभिषेकित करें. दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी
यह मातायें तुमको अभिषेकित करें ॥ १६० ॥

षोडशीतारिणीनित्यास्वाहामहिषमर्दिनी ।

एतास्त्वामभिपिञ्चन्तुमन्त्रपूतेनवारिणा ॥ १६१ ॥

अर्थ—षोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी
यह मंत्र पढ़ेहुए जलसे तुमको अभिषेकित करें ॥ १६१ ॥

जयदुर्गाविशालाक्षीब्रह्माणीचसरस्वती ।

एतास्त्वामभिपिञ्चन्तुवगलावरदाशिवा ॥ १६२ ॥

अर्थ—जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी सरस्वती, वगला,
वरदा, शिवा यह तुमको अभिषेकित करें ॥ १६२ ॥

(१) मंत्रः—“१षा शुभपूर्णाभिषेकमंत्राणा सदाशिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आद्याकाला
देवता ओं बीज शुभपूर्णाभिषेकार्थं विनियोगः । शिरभि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे
अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदय आय ये क लिये देवताये नमः । मुखे ओं बीज, य नमः ।
शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः ।” इस प्रकार ऋषि गायकरी ।

अनुगृह्णन्तुकौलामेशिष्यप्रतिकुलव्रताः ।

पूर्णाभिषेकसंस्कारेभवद्भिरनुमन्यताम् ॥ १५४ ॥

अर्थ-हे कौलगण ! आपलोग मेरे शिष्यपर अनुगृह कीजिये । इस पूर्णाभिषेकसंस्कारमें अनुमति दीजिये ॥ १५४ ॥

एवंशृच्छतिचक्रेशेतंत्रयुगुरुमादरात् ।

महामायाप्रसादेनप्रभावात्परमात्मनः ।

शिष्योभवतुपूर्णस्तेपरतत्त्वपरायणः ॥ १५५ ॥

अर्थ-इसप्रकार चक्रेशरके प्रश करनेपर सबकुलवान आदरपूर्वक कहे कि, महामायाके प्रसादसे और परमात्माके प्रभावसे आपका शिष्य परमतत्त्वपरायण और पूर्णहो ॥ १५५ ॥

शिष्येणचगुरुर्देवीमर्चयित्वार्चितेवटे ।

कामंमायारमांजस्वाचालयेद्विमलंघटम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि, शिष्यसे देवी भगवती-जीकी पूजा कराय पूजित घड़ेके ऊपर "ह्रीं ह्रीं श्रीं" मंत्र जपवाकर उस निर्मल घड़ेको चलावे ॥ १५६ ॥

उत्तिष्ठब्रह्मकलशदेवतात्मक ! सिद्धिद ! ।

त्वत्तोयपल्लवैःसिक्तःशिष्योब्रह्मस्तोऽस्तुते ॥ १५७ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढ़े कि) हे ब्रह्मकलश ! तुम सिद्धि-दाता और देवतास्वरूपहो तुम उठो ! हमारा शिष्य तुम्हारे जल और पत्तोंसे सिक्त होकर ब्रह्ममें निरत होवै ॥ १५७ ॥

इत्थंसञ्चाल्यकलशमुत्तराभिमुखंगुरुः ।

मन्त्रैरेतैर्वक्ष्यमाणैरभिपिञ्चेत्कृपान्वितः ॥ १५८ ॥

अर्थ-इसमंत्रसे कलशको चलायकर गुरु कृपायुक्त हृदयसे

नारसिंहीचवाराहीवैष्णवीवनमालिनी ।

इन्द्राणीवारुणीरौद्रीत्याभिपिञ्चन्तुशक्तयः ॥ १६३ ॥

अर्थ-नारसिंही, वैष्णवी, वाराही, वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री यह सब शक्तियें तुमको अभिषेकित करें ॥ १६३ ॥

भैरवीभद्रकालीचतुष्टिःपुष्टिरुमाक्षमा ।

श्रद्धाकान्तिर्दयाशान्तिरभिपिञ्चन्तुतेसदा ॥ १६४ ॥

अर्थ-भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा कान्ति, दया, शान्ति यह सदा तुमको अभिषेकित करें १६४

महाकालीमहालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।

उग्रचण्डाप्रचण्डात्वामभिपिञ्चन्तुसर्वदा ॥ १६५ ॥

अर्थ-महाकाली, महालक्ष्मी, महानीला, सरस्वती, उग्र-चंडा, प्रचंडा यह सदा तुमको अभिषेकित करें ॥ १६५ ॥

मत्स्यःकूर्मोवराहश्चनृसिंहोवामनस्तथा ।

रामोभार्गवरामस्त्वामभिपिञ्चन्तुवारिणा ॥ १६६ ॥

अर्थ-मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम यह सदा जलसे तुम्हारा अभिषेक करें ॥ १६६ ॥

असिताङ्गोरुरुश्चण्डःक्रोधोन्मत्तोभयङ्करः ।

कपालीभीषणश्चत्वामभिपिञ्चन्तुवारिणा ॥ १६७ ॥

अर्थ-असिताङ्ग, रुरु, चंड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली भीषण यह जलसे तुमको अभिषेकित करें ॥ १६७ ॥

कालीकपालिनीकुल्लुकुरुकुल्लाविरोधिनी ।

विप्रचित्तामहोग्रात्वामभिपिञ्चन्तुसर्वदा ॥ १६८ ॥

अर्थ-काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, महोग्रा यह सदा तुमको अभिषेकित करें ॥ १६८ ॥

इन्द्रोऽग्निःशमनोरक्षोवरुणःपवनरतथा ।

धनदश्चमहेशानःसिञ्चन्तुत्वान्दिगीश्वराः ॥ १६९ ॥

अर्थ-इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नेत्रांत, वरुण, मरुत, कुबेर, ईशान और आठ दिक्पाल तुमको अभिषेकित करें ॥ १६९ ॥

रविःसोमोमङ्गलश्चबुधोजीवःसितःशनिः ।

राहुःकेतुःसनक्षत्राभिपिञ्चन्तुतेग्रहाः ॥ १७० ॥

अर्थ-सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु यह सब ग्रह और नक्षत्रगण तुमको अभिषेकित करें १७०

नक्षत्रंकरणंयोगोवाराःपक्षौदिनानिच ।

ऋतुर्मासोहायनस्त्वामभिपिञ्चन्तुसर्वदा ॥ १७१ ॥

अर्थ-अश्विनीआदि नक्षत्र, बवआदि करण, विष्कंभादि योग, रवि इत्यादि वार, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, दिन, वसन्तादि छैः ऋतु, वैष्णव आदि वारह महीने और उत्तरायण व दक्षिणायन यह सदा तुमको अभिषेकित करें ॥ १७१ ॥

लवणेशुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।

समुद्रास्त्वामभिपिञ्चन्तुमन्त्रपूतेनवारिणा ॥ १७२ ॥

अर्थ-लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र यह सब समुद्र अभिमंत्रित जलसे तुमको अभिषेकित करें ॥ १७२ ॥

गङ्गासूर्य्यसुतारेवाचन्द्रभागासरस्वती ।

सरयूर्गण्डकीकुन्तीश्वेतगङ्गाचकौशिकी ।

एतास्त्वामभिपिञ्चन्तुमन्त्रपूतेनवारिणा ॥ १७३ ॥

अर्थ-गंगा, यमुना, रेवा, चंद्रभागा, सरस्वती, सरयू, गंडकी, कुन्ती, श्वेतगंगा, कौशिकी यह नदियें अभिमंत्रित जलसे तुमको अभिषेक करें ॥ १७३ ॥

अनन्ताद्यामहानागाःसुपर्णाद्याःपतत्रिणः ।

तरवःकल्पवृक्षाद्याःसिञ्चन्तुत्वांमहीधराः ॥ १७४ ॥

अर्थ-अनन्त, वासुकि, पद्म आदि महानाग, गरुडादि पक्षी, कल्पवृक्षादि वृक्ष और पर्वत तुमको अभिषेकित करें ॥ १७४ ॥

पातालभूतलव्योमचारिणःक्षेमकारिणः ।

पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वाभिपिञ्चन्तुपाथसा ॥ १७५ ॥

अर्थ-पातालचारी, भूतलचारी और व्योमचारी जीवगण तुम्हारा मंगल करें और वह पूर्णाभिषेक देखकर संतुष्ट हो जलसे तुम्हारा अभिषेक करें ॥ १७५ ॥

दौर्भाग्यन्दुर्यशोरोगादौर्मनस्यन्तथाशुचः ।

विनश्यन्त्वभिषेकेणपरमब्रह्मतेजसा ॥ १७६ ॥

अर्थ-पूर्णाभिषेक होनेसे और परब्रह्मके तेजसे तुम्हारा दुर्भाग्य, अयश, रोग, दुर्मनसा व शोकादि सब विध्वंस हो जाँय ॥ १७६ ॥

अलक्ष्मीःकालकर्णीचिडाकिन्योयोगिनीगणाः ।

विनश्यन्त्वभिषेकेणकालीबीजेनताडिताः ॥ १७७ ॥

अर्थ-अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनी यह अभिषेकसे और कालीजीके बीजसे ताड़ित होकर नाशवो प्राप्त होजाँय ॥ १७७ ॥

भूताःप्रेताःपिशाचाश्चग्रहायेऽरिष्टकारकाः ।

विद्रुतास्तेविनश्यन्तुरमाबीजेनताडिताः ॥ १७८ ॥

अर्थ-भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह और सब अनिष्ट करनेवाले रमाके बीजसे फटकारे खाकर भाग जाँय और नष्ट होवें १७८

अभिचारकृतादोषावैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।

मनोवाक्कायजादोषाविनश्यन्त्वभिषेचनात् ॥ १७९ ॥

अर्थ-अभिचारसे उत्पन्न हुआ दोष, वैरिमंत्रसे उत्पन्न हुआ दोष, मानसिकदोष, वाचनिकदोष, कायिकदोष यह सब दोष तुम्हारे अभिषेकसे नाश होजाँय ॥ १७९ ॥

नश्यन्तुविपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।

अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥ १८० ॥

अर्थ-तुम्हारी सब विपत्तियें दूरहों । तुम्हारी समस्त सम्पत्ति स्थिरहो इस पूर्णअभिषेकसे तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होवें ॥ १८० ॥

इत्येकाधिकविंशत्यामन्त्रैः संसिक्तसाधकम् ।

पशोर्मुखालम्ब्य मन्त्रं पुनः संश्रावयेद्गुरुः ॥ १८१ ॥

अर्थ-इन इक्कीसमंत्रोंसे साधकको अभिषिक्त होना चाहिये यदि शिष्य पशुके निकट दीक्षित हुआ हो, तब गुरुको उचित है कि, पुनर्बार शिष्यको वह मंत्र श्रवण करावै ॥ १८१ ॥

पूर्वोक्तनाम्नासम्बोध्य ज्ञापयच्छक्तिसाधकान् ।

दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानं कौलिकोगुरुः ॥ १८२ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि, शक्तिसाधक लोगोंको बतायकर पहले नामले शिष्यको पुकार आनन्दनाथान्त नाम रखे ॥ १८२ ॥

श्रुतमन्त्रोगुरोर्यन्त्रे सम्पूज्य निजदेवतान् ।

पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः ॥ १८३ ॥

अर्थ-गुरुके मुखसे मंत्र सुनकर शिष्यको चाहिये कि, पंच तत्त्वके उपचारसे यंत्रमें अपने अभीष्टदेवताकी पूजा करके गुरुकी पूजा करे ॥ १८३ ॥

गोभूहिरण्यवासांसि पानालङ्करणानि च ।

गुरवे दक्षिणां दत्वा यजेत्कौलान्छिवात्मकान् ॥ १८४ ॥

अर्थ-फिर गुरुजीको गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, पीनेके पदार्थ, आभूषण यह सब वस्तुयें दक्षिणामें देकर साक्षात् शिवस्वरूप कुलवानोंकी पूजा करे ॥ १८४ ॥

कृतकौलार्चनोधीरःशान्तोऽतिविनयान्वितः ।

श्रीगुरेश्वरणौस्पृह्यभक्त्यानत्वेदमर्थयेत् ॥ १८५ ॥

अर्थ-अनन्तर ज्ञानीपुरुष कुलवानोंकी पूजाकर शान्त और अतिविनीतहो भक्तिके साथ श्रीगुरुजीके चरण छू नमस्कार करके प्रार्थना करे कि ॥ १८५ ॥

श्रीनाथ ! जगतांनाथ ! मन्नाथ ! करुणानिधे ! ।

परामृतप्रदानेन पूरयास्मन्मनोरथम् ॥ १८६ ॥

अर्थ-हे श्रीनाथ ! आप जगत्के नाथ हैं, मेरे नाथ और करुणानिधि हैं, आप परमामृत देकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ १८६ ॥

आज्ञामेदीयतांकौलाःप्रत्यक्षशिवरूपिणः ।

सच्छिष्याय विनीताय ददामि परमामृतम् ॥ १८७ ॥

अर्थ-(कुलवानोंसे गुरुको कहना उचित है कि) कौलगण ! आप लोग प्रत्यक्ष शिवस्वरूप हैं आप आज्ञा दें, मैं इस विनयी श्रेष्ठ शिष्यके परम अमृत दूँ ॥ १८७ ॥

चक्रेश ! परमेशान ! कौलपङ्कजभास्कर ! ।

कृतार्थकुरुसच्छिष्यं देह्यमुष्मैकुलामृतम् ॥ १८८ ॥

अर्थ-(कुलानोंको कहना चाहिये) हे चक्रेश्वर ! आप साक्षात् परमेश्वर हैं, आप कौलरूप कमलवनके लिये स्वरूप हैं, आप इस श्रेष्ठ शिष्यको चरितार्थ करें इसको कुलामृत दें ॥ १८८ ॥

आज्ञामादाय कौलानां परमामृतपूरितम् ।

सशुद्धिकंपानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ-कुलीनोंकी अनुमति लेकर गुरुको उचित है कि, शुद्धिके साथ परमामृतपूरित पानपात्र शिष्यके हाथमें समर्पण करे ॥ १८९ ॥

हृद्याकृष्यगुरुर्देवींशुवसंलग्नभस्मना ।

स्वस्यशिष्यस्यकौलानांकूर्चैचतिलकंन्यसेत् ॥ १९० ॥

अर्थ-फिर अपने हृदयमें देवी भगवतीका ध्यानकरके गुरु श्रुवेमें लगीहुई भस्मसे अपने शिष्यके और कुलीनोंके माथेमें तिलक लगादेवे ॥ १९० ॥

ततःप्रसादतत्त्वानिकौलेभ्यःपरिवेपयन् ।

चक्रानुष्ठानविधिनाविदध्यात्पानभोजनम् ॥ १९१ ॥

अर्थ-अनन्तर प्रसादतत्त्व सब कुलीनोंको परोसकर चक्रानुष्ठानकी विधिके अनुसार पान और भोजन करे ॥ १९१ ॥

इतितेकथितंदेवि ! शुभपूर्णाभिषेचनम् ।

ब्रह्मज्ञानैकजननंशिवत्वफलसाधनम् ॥ १९२ ॥

अर्थ-हे देवि ! यह मैंने तुमसे शुभ पूर्णाभिषेक कहा, इससे ब्रह्मज्ञान और शिवतत्त्व प्राप्त होजाता है ॥ १९२ ॥

नवरात्रंसप्तरात्रंपञ्चरात्रंतत्रिरात्रकम् ।

अथवाप्येकरात्रञ्चकुर्व्यात्पूर्णाभिषेचनम् ॥ १९३ ॥

अर्थ-नवरात्रि, सप्तरात्रि, पंचरात्रि, त्रिरात्रि, अथवा एकरात्रि पूर्णाभिषेक करे ॥ १९३ ॥

संस्कारेऽस्मिन्कुलेशानि ! पञ्चकल्पाःप्रकीर्तिताः ।

नवरात्रेविधातव्यंसर्वतोभद्रमण्डलम् ॥ १९४ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! इस संस्कारमें पांच कल्प हैं, यदि नवरात्रितक अभिषेक हो तो सर्वतोभद्र मंडल बनाना चाहिये ॥ १९४ ॥

नवनाभंसतरात्रेपञ्चाब्जंपञ्चरात्रके ।

त्रिरात्रेचैकरात्रेचपद्ममष्टदलंप्रिये ॥ १९५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! सतरात्रिके अभिषेकमें नवनाभमंडल पंचरात्रिके अभिषेकमें पञ्चाब्जमंडल, त्रिरात्रि और एकरात्रिके अभिषेकमें अष्टदलपद्म बनावे ॥ १९५ ॥

मण्डलेसर्वतोभद्रेनवनाभेऽपिसाधकैः ।

स्थापनीयानवयटाःपञ्चाब्जेपञ्चसङ्ख्यकाः ॥ १९६ ॥

अर्थ-साधकलोगोंको चाहिये कि, सर्वतोभद्रमंडलमें और नवनाभमंडलमें नौ घड़े और पञ्चाब्ज मंडलके पांच घड़े स्थापन करे ॥ १९६ ॥

नलिनेऽष्टदलेदेवि ! घटस्त्वेकःप्रकीर्तितः ।

अङ्गावरणदेवांश्चकेशवादिपुपूजयेत् ॥ १९७ ॥

अर्थ-हे देवि ! अष्टदलपद्ममें केवल एक घटस्थापन करना चाहिये, इस पद्मके केशरादिमें अंगदेवता और आवरण देवताओंकी पूजा करे ॥ १९७ ॥

पूर्णाभिषेकसिद्धानांकौलानांनिर्मलात्मनाम् ।

दर्शनात्स्पर्शनाद्घ्राणाद्रव्यशुद्धिर्विधीयते ॥ १९८ ॥

अर्थ-जो कुलीन पूर्णाभिषेकसे अभिषिक्त हुये हैं, जिनका हृदय निर्मल है, जिनके दर्शन, स्पर्श या घ्राणसे द्रव्यशुद्धि हो जाती है ॥ १९८ ॥

शाक्तैर्वावैष्णवैः शैवैः सौरैर्गाणपतैरपि ।

कौलधर्माश्रितःसाधुःपूजनीयोऽतियत्नतः ॥ १९९ ॥

अर्थ-जो शाक्तहो, वैष्णवहो, शैवहो, सौरहो, वा गाणपत्य हो चाहे जिसका उपासक हो, वह अवश्यही अतियत्नके साथ कुलधर्मका आश्रय रखनेवाले साधुकी पूजा करें ॥ १९९ ॥

शक्तेशाक्तोगुरुःशस्तः शैवेशैवोगुरुर्मतः ।

वैष्णवैष्णवःसौरैसौरोगुरुरुदाहृतः ॥ २०० ॥

अर्थ—शाक्तोंके लिये शाक्त, शैवोंके लिये शैव, वैष्णवोंके लिये वैष्णव और सौरलोगोंके लिये सौर ॥ २०० ॥

गाणपेगाणपश्चैवकौलःसर्वत्रसद्गुरुः ।

अतःसर्वात्मनार्थीमान्कौलादीक्षांसमाचरेत् ॥ २०१ ॥

अर्थ—गाणपत्योंके लिये गाणपत्य गुरुही श्रेष्ठ है, परन्तु कौलपुरुष सबप्रकारसे सबकेलिये श्रेष्ठ गुरु हो सक्ता है अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सबप्रकारसे कुलवानके निकट दीक्षित होना चाहिये ॥ २०१ ॥

पञ्चतत्त्वेनयत्नेनभक्त्याकौलान्यजन्तिये ।

उद्धृत्यपुरुषान्सर्वास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ २०२ ॥

अर्थ—जो लोग भक्तिपूर्वक यत्नके साथ पंचतत्त्वसे कुलीनोंकी पूजा करेंगे, वह अपने पूर्वपुरुषोंका उद्धार करके परमगति पावेंगे ॥ २०२ ॥

पशोर्वक्रालम्ब्यमन्त्रःपशुरेव न संशयः ।

वीरालम्ब्यमनुवीरःकौलाद्भवतिब्रह्मवित् ॥ २०३ ॥

अर्थ—पशुसे मन्त्र ग्रहण करनेवाला पशुही है इसमें कोई संदेह नहीं । जिसने वीरसे मन्त्र ग्रहण किया है वह वीर है, जिसने कौलसे मन्त्र ग्रहण किया है वह निःसन्देह ब्रह्मका जाननेवाला होता है ॥ २०३ ॥

शाक्ताभिपेकीवीरःस्यात्पञ्चतत्त्वानिशोधयेत् ।

स्वेष्टपूजाविधावेव न तु चक्रेश्वरो भवेत् ॥ २०४ ॥

अर्थ—जिसको शाक्ताभिपेक हुआ है, वह वीर है वह अपने इष्टदेवताकी पूजा करनेके समयही पंचतत्त्वको शुद्ध कर सकेगा, परन्तु वह चक्रेश्वर होनेका अधिकारी नहीं है ॥ २०४ ॥

वीरघातोवृथापायीवीराणांस्त्रीगमस्तथा ।

स्तेयीमहापातकिनस्तत्संसर्गाचिपञ्चमः ॥ २०५ ॥

अर्थ-जो वीरकी हत्या करता है, जो वृथा पान करता है, जो वीरकी स्त्रीसे मिलता है, जो चोरीसे आजीविका करता है, जो इन चार प्रकारके महापातकियोंका संग करते हैं वह सबही महापातकी हैं ॥ २०५ ॥

कुलवर्त्मकुलद्रव्यकुलसाधकमेवच ।

येनिन्दन्तिदुरात्मानस्तेगच्छन्त्यधमाङ्गतिम् ॥ २०६ ॥

अर्थ-जो दुरात्मा, कुलमार्ग, कुलद्रव्य और कुलसाधककी निन्दा करता है उसको अधोगति होती है ॥ २०६ ॥

नृत्यन्तिरुद्रडाकिन्योनृत्यन्तिरुद्रभैरवाः ।

मांसास्थिचर्वणानन्दाःसुराःकौलद्विपांनृणाम् ॥ २०७ ॥

अर्थ-रुद्रडाकिनियें और रुद्रभैरवगण, कौलविद्वेषी मनुष्योंका मांस व हड्डी चाबनेके लिये आनन्दसे नाचते रहते हैं ॥ २०७ ॥

दयालवःसत्यशीलाःसदापरहितैषिणः ।

तान्गर्हयन्तो नरकान्निष्कृतिंयान्तिनकचित् ॥ २०८ ॥

अर्थ-जो लोग दयालु, सत्यनिष्ठ और सदा परायाहित करनेवाले हैं वहभी यदि कुलवानोंकी निन्दा करें तो किसी प्रकार नरकसे छुटकारा नहीं पासके ॥ २०८ ॥

उक्ताःप्रयोगावहवःकर्माणिविविधानिच ।

ब्रह्मैकनिष्ठकौलस्यत्यागानुष्ठानयोःसमम् ॥ २०९ ॥

अर्थ-बहुतसे प्रयोग कहे हैं, बहुतसे कर्मानुष्ठान और विधान कहे हैं, परन्तु ब्रह्मनिष्ठ कुलवानके लिये कर्मत्याग और कर्मानुष्ठान यह दोनों समान हैं केवल परब्रह्म जगन्मंडलमें व्यापकर विराजमान है ॥ २०९ ॥

एकमेवपरंब्रह्मजगदावृत्यतिष्ठति ।

विश्वार्चयातर्चस्याद्यतःसर्व्वतदन्वितम् ॥ २१० ॥

अर्थ-अतएव किसीभी संसारी वस्तुकी पूजा करनेसे उस ब्रह्महीकी पूजा होती है. कारण कि, संसारकी कोई वस्तु ब्रह्मसे अलग नहीं है ॥ २१० ॥

फलासक्ताःकामपराःकर्मजालरताःप्रिये ! ।

पृथक्त्वेनयजन्तोपितत्प्रयान्तिविशन्तिच ॥ २११ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो कर्मकाण्डमें लगे हुए हैं कामपरायण और फलमें आसक्त हैं, वह पृथक्पनसे और देवताकी पूजा करकेभी यथासमयमें ब्रह्मको प्राप्त होते और ब्रह्ममेंही लय होजाते हैं ॥ २११ ॥

सर्व्वंब्रह्मणिसर्व्वत्रब्रह्मैवपरिपश्यति ।

ज्ञेयःसएवसत्कौलोजीवन्मुक्तोनसंशयः ॥ २१२ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे वृद्धिश्रा-
द्धादिमृतक्रियापूर्णाभिषेककथनं नाम

दशमोऽल्लासः ॥ १० ॥

अर्थ-जो सब वस्तुओंमें ब्रह्मका अधिष्ठान और ब्रह्ममेंही सब वस्तुओंका अधिष्ठान अवलोकन करते हैं, वह निःसन्देह श्रेष्ठ कौल जीवन्मुक्त हैं ॥ २१२ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादेकात्या यनगोत्रोत्पन्नपंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
शुद्धिश्राद्धादिकथननामदशमोऽल्लासः ॥ १० ॥

एकादशोल्लासः ११.

श्रुत्वाशांभभवधर्माश्रवणाश्रमविभेदतः ।

अपर्णापरयाप्रीत्यापप्रच्छशङ्करं प्रति ॥ १ ॥

अर्थ-वर्णाश्रमके भेदसे महादेवजीका चलाया धर्म सुन परम प्रसन्नहो भगवती अपर्णा महादेवजीसे पूछतीहुई ॥ १ ॥

श्रीदेवुवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माः संस्कारालोकसिद्धये ।

कथिताः कृपयामह्यं सर्वज्ञेन त्वया प्रभो ! ॥ २ ॥

अर्थ-भगवतीने कहा हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं । आपने कृपा करके मुझसे लोकव्यवहारके निर्वाह करने योग्य वर्णाश्रमका आचार, धर्म और सब संस्कार कहा ॥ २ ॥

फलौ दुर्वृत्तयो लोकाः कामक्रोधान्धचेतसः ।

नास्तिकाः संशयात्मानः सदेन्द्रियसुखैः पिणः ॥ ३ ॥

अर्थ-कलिकालके मनुष्य कामक्रोधादिसे अन्धे, खोटी वृत्तिवाले, नास्तिक, संशययुक्त और सदा इन्द्रियोंका सुख चाहनेवाले होंगे ॥ ३ ॥

भवन्निगदितं वर्त्मनानुष्टास्यन्ति दुर्द्धियः ।

ते पाङ्गा गतिरीशान ! विशेषाद्भक्तुर्महसि ॥ ४ ॥

अर्थ-हे ईशान ! वह कुबुद्धिवान् मनुष्य आपके कहेहुये मार्गको बरण नहीं करेंगे उनकी क्या गति होगी सो भली-भाँतिसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

साधुपृष्टं त्वया देवि ! लोकानां हितकारिणि ! ।

त्वं जगज्जननी दुर्गा जन्मसंसारमोचनी ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहाः—हे देवि ! तुमने उत्तम प्रश्न किया, तुम लोकहितकारिणी, जगज्जननी और संसारका बन्धन छुड़ानेवाली दुर्गाहो ॥ ५ ॥

त्वमाद्याजगतांधात्रीपालयित्रीपरात्परा ।

त्वयैवधार्यतेदेवि ! विश्वमेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे देवि ! तुम जगद्धात्री पालन करनेवाली आद्या और परात्परा हो इस चराचर विश्वको तुम्ही धारण करती हो ॥ ६ ॥

त्वमेवपृथ्वीत्वंवारित्वंवायुस्त्वंहुताशनः ।

त्वंवियत्त्वमहङ्कारस्त्वंमहत्तत्त्वरूपिणी ॥ ७ ॥

अर्थ—तुम पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहङ्कारतत्त्व और महत्तत्त्व हो ॥ ७ ॥

त्वमेवजीवलोकेऽस्मिंस्त्वंविद्यापरदेवता ।

इन्द्रियाणिमनोबुद्धिर्विज्ञेपांत्वंगतिःस्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस लोकमें स्थित जो जीव हैं, वह भी तुम्हीं हो, तुम विद्या, परमदेवता, सब इन्द्रियां, मन, बुद्धि, जगतकी गति और स्थिति भी तुम्हीं हो ॥ ८ ॥

त्वमेववेदाःप्रणवःस्मृतयस्त्वंहिसंहिताः ।

निगमागमतन्त्राणिसर्व्वशास्त्रमयीशिवा ॥ ९ ॥

अर्थ—तुम्हीं वेद, प्रणव (ओंकार) . सब स्मृति हो, तुम्हीं सब संहिता हो, तुम निगम, आगम, तन्त्र और सर्व शास्त्र-मयी भगवती भी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥

महाकालीमहालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।

महोदरीमहामायामहारौद्रीमहेश्वरी ॥ १० ॥

अर्थ—तुम महाकाली, महालक्ष्मी, महानीला, सरस्वती, महोदरी, महामाया. महारौद्री और महेश्वरी हो ॥ १० ॥

एकादशोऽष्टासः ११.

श्रुत्वाशांभवधर्माश्रवणाश्रमविभेदतः ।

अपर्णापरयाप्रीत्यापप्रच्छशङ्करं प्रति ॥ १ ॥

अर्थ-वर्णाश्रमके भेदसे महादेवजीका चलाया धर्म सुन परम प्रसन्नहो भगवती अपर्णा महादेवजीसे पूछतीहुई ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माः संस्कारालोकसिद्धये ।

कथिताः कृपयामह्यं सर्वज्ञेन त्वया प्रभो ! ॥ २ ॥

अर्थ-भगवतीने कहा हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं । आपने कृपा करके मुझसे लोकव्यवहारके निर्वाह करने योग्य वर्णाश्रमका आचार, धर्म और सब संस्कार कहा ॥ २ ॥

फलौ दुर्वृत्तयो लोकाः कामक्रोधान्धचेतसः ।

नास्तिकाः संशयात्मानः सदेन्द्रियसुखैः पिणः ॥ ३ ॥

अर्थ-कलिकालके मनुष्य कामक्रोधादिसे अन्धे, खोटी वृत्तिवाले, नास्तिक, संशययुक्त और सदा इन्द्रियोंका सुख चाहनेवाले होंगे ॥ ३ ॥

भवन्निगदितं वर्त्मनानुष्ठास्यन्ति दुर्द्धियः ।

ते पाङ्गा गतिरीशान ! विशेषाद्बलमर्हसि ॥ ४ ॥

अर्थ-हे ईशान ! वह कुबुद्धिवान् मनुष्य आपके कहेहुये मार्गको वरण नहीं करेंगे उनकी क्या गति होगी सो भली-भाँतिसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

साधुपृष्टं त्वया देवि ! लोकानां हितकारिणि ! ।

त्वं जगज्जननी दुर्गा जन्मसंसारमोचनी ॥ ५ ॥

परानिष्टकरात्पापान्मुच्यते राजशासनात् ।

अन्यस्मान्मुच्यते मर्त्यः प्रायश्चित्तात्समाधिना ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस पापसे पराया बुरा होता है राजदंडके द्वारा वह पाप छूट जाता है प्रायश्चित्त और चित्तनिरोधसे दूसरा पाप छूट सकता है ॥ १६ ॥

प्रायश्चित्त्याथवा दण्डैर्नृपूतायेकृतांहसः ।

नरकात्प्रनिवर्तन्ते इहामुत्रविगर्हिताः ॥ १७ ॥

अर्थ—जो पापात्मा राजदंडसे या प्रायश्चित्तसे पवित्र नहीं होते वह इस लोक और परलोकमें निन्दनीय होकर नरकको जाते हैं ॥ १७ ॥

तत्रादौ कथयाम्याद्ये ! नृपशासननिर्णयम् ।

यल्लङ्घनान्महेशानि ! राजायात्यधमाङ्गतिम् ॥ १८ ॥

अर्थ—हे आद्ये ! पहले राजशासनका निर्णय कहता हूँ । यदि राजा इसको लंघन करे अर्थात् दण्ड योग्य प्रजाको दण्ड नहीं दे तो वह नरकको जाता है ॥ १८ ॥

भृत्यान्पुत्रानुदासीनान्प्रियानपितृप्रियान् ।

शासने च तथा न्याये समदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—विचारके समय, दंड देनेके समय, शासनके समय राजाको उचित है, कि नौकरोंको, पुत्रोंको, उदासीन जनोंको प्रिय अप्रिय पुरुषोंको समान दृष्टिसे देखे ॥ १९ ॥

स्वयंचेतकृतपापः स्यात्पीडयेदकृतांहसः ।

उपवासैश्च दानैस्तान्परितोष्य विशुद्ध्यति ॥ २० ॥

अर्थ—राजा यदि स्वयं पाप करे तो उपवास करके शुद्ध हो सकता है निरपराधी पुरुषोंको दण्ड देनेसे राजा दानसे उन निरपराधी पुरुषोंको संतुष्ट करके पापसे छूट सकता है ॥ २० ॥

सर्वज्ञात्वंज्ञानमयीनास्त्यवेद्यंतवान्तिके ।

तथापिपृच्छसिप्राज्ञे ! प्रीतयेकथयामिते ॥ ११ ॥

अर्थ-तुम सर्वज्ञानमयी हो, इसकारण ऐसी वार्ता कोई नहीं है जिसको तुम न जानती हो । हे प्राज्ञे ! जब कि, तुम सब कुछ जानकरभी पृच्छती हो, तब तुम्हारी प्रसन्नताके लिये कहता हूं ॥ ११ ॥

सत्यमुक्तंत्वयादेवि ! मनुजानांविचेष्टितम् ।

जानन्तोऽपिहितंमत्ताःपापैराशुसुखप्रदैः ॥ १२ ॥

अर्थ-हे देवि ! मनुष्यगण कलियुगमें जैसा आचरण करेंगे वह तुमने यथार्थही कहा है । वह लोग हितकी बातको जान करभी शीघ्र सुखका देनेवाला अवैध स्त्रीगमन, सुरापानादि पापमें मत्त होकर ॥ १२ ॥

नाचरिष्यन्तिसद्धर्माहिताहितवहिष्कृताः ।

तेषांनिःश्रेयसार्थायकर्त्तव्यंयत्तदुच्यते ॥ १३ ॥

अर्थ-हिताहितका विचार छोड़ श्रेष्ठमार्गमें नहीं चलेंगे इनकी मुक्तिके जो कर्त्तव्य है सो कहता हूं ॥ १३ ॥

अनुष्ठानंनिषिद्धस्यत्यागोविहितकर्मणः ।

नृणांजनयतःपापंक्लेशशोकामयप्रदम् ॥ १४ ॥

अर्थ-निषिद्ध कर्मका अनुष्ठान और वैधकर्मका अनुष्ठान इन दोनोंसे मनुष्यको पाप होता है । पापसे क्लेश, शोक और पीडा होती है ॥ १४ ॥

स्वानिष्टमात्रजननात्परानिष्टोपपादनात् ।

तदेवपापंद्विविधंजानीहिकुलनायिके ! ॥ १५ ॥

अर्थ-हे कुलनायिके ! यह पाप दो प्रकारका है, एक प्रकारके पापसे केवल अपना अनमल होता है और एक पापसे दूसरेका बुरा होता है ॥ १५ ॥

अर्थ—यदि बहुमानास्पद कुलवान पुरुष वा तैसा ब्राह्मण-
भी अल्पअपराधमें अपराधी हो तो राजाको चाहिये कि,
उसको वचनदण्ड दे ॥ २५ ॥

न्यायंदण्डंप्रसादंचविचार्यसचिवैःसह ।

योनिकुर्यान्महीपालःसमहापातकीभवेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—मंत्रियोंके साथ विचार करके जो राजा न्यायानुसार
दण्ड या पारितोषिक नहीं देता वह महापातकी है ॥ २६ ॥

नत्यजेत्पितरौपुत्रोनत्यजेयुर्नृपंप्रजाः ।

नत्यजेत्स्वामिनंभार्याविनातानतिपापिनः ॥ २७ ॥

अर्थ—पुत्र, पिता माताको, प्रजा राजाको और विनययुक्त
भार्या स्वामीको, नहीं छोड़ सकती. परन्तु यदि पिता, माता,
स्वामी या राजा यह अतिपातकी हो तो इनको छोड़ दिया
जासका है ॥ २७ ॥

राज्यंधनंजीवनंचधार्मिकस्यमहीपतेः ।

संरक्षेयुःप्रजायतैरन्यथायान्त्यधोगतिम् ॥ २८ ॥

अर्थ—धर्मात्मा राजाके राज्य, धन और जीवनकी रक्षा
यत्रके साथ प्रजाको करनी चाहिये । इसके विपरीत करनेसे
नरकगामी होना पड़ता है ॥ २८ ॥

मातरंभगिनीञ्चापितथादुहितरंशिवे ! ।

गन्तारोज्ञानतोयेचमहागुरुनिपातकाः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे शिवे ! जो जान बूझकर मातृगमन, भगिनीगमन
या कन्यागमन करते हैं, जो जान-बूझकर महागुरुकी हत्या
करते हैं ॥ २९ ॥

कुलधर्मसमाश्रित्यपुनस्त्यक्तकुलक्रियाः ।

विश्वासवातिनोलोकातिपातकिनःस्मृताः ॥ ३० ॥

वधार्हमन्यमानःस्वंकृतपापोनराधिपः ।

त्यक्त्वा राज्यं वनं प्राप्य तपसा त्मानमुद्धरेत् ॥ २१ ॥

अर्थ-यदि राजाने ऐसा पाप किया हो कि, जिससे वह स्वयं वधदण्ड योग्य हो तो वह राज्य त्याग वनमें जाय तपकरके अपना उद्धार करे ॥ २१ ॥

गुरुदण्डं नैव राजा विदध्या लघुपापिपु ।

न लघुं गुरुपापे पुविनाहेतुं विपर्यये ॥ २२ ॥

अर्थ-बिना किसी विशेष कारणके थोड़े पापमें बड़ा दण्ड या बड़े पापमें लघु दण्ड राजा को न देना चाहिये । यदि विशेष कारण हो तो इस विषयके विपरित करसक्ता है ॥ २२ ॥

तस्मिन् यच्छासने शास्याने कोन्मार्गवर्त्तिनः ।

पापेभ्यो निर्भये शस्तोलघुपापे गुरुदमः ॥ २३ ॥

अर्थ-जो पुरुष पापकर्म करनेमें निर्भय है अर्थात् जिस पुरुषने बारंबार पाप किया है और उस आदमीको दण्ड देनेसे यदि बहुतसे कुमार्गी उसको देख छोटे रस्तेको छोड़ श्रेष्ठ मार्गपर आजाय तो ऐसी जगह छोटे पापमें बड़ा दण्ड देना श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

सकृत्कृतापराधेन सत्रपे बहुमानिनि ।

पापाद्विरो प्रशस्तः स्याद्गुरुपापे लघुदमः ॥ २४ ॥

अर्थ-जिस पुरुषने केवल एकवार अपराध किया है जो पुरुष लाजयुक्त और मानी है और जो पुरुष पापाचरणसे डरता है । ऐसे पुरुषका यदि बड़ा अपराध हो तो भी उसको लघुदण्ड देना चाहिये ॥ २४ ॥

स्वरूपापराधी कौलश्चेद्ब्राह्मणो लघुपापकृत् ।

वहमान्योऽपि दण्ड्यः स्याद्ब्रह्मचोभिरवनीभृता ॥ २५ ॥

सपिण्डदारतनयाःस्त्रियंविश्वासिनामपि ।

सर्वस्वहरणंकेशवपनंगच्छतोदमः ॥ ३५ ॥

अर्थ-जो पुरुष किसी सपिण्डकी स्त्रीसे या कन्यासे मिला-
हुआहो, जो पुरुष किसी विश्वासी पुरुषकी स्त्रीसे गमन करे,
राजाको चाहिये कि, उसका सब मालमता छीन शिर
मुँडाकर छोड़दे ॥ ३५ ॥

स्त्रीभिरेताभिरज्ञानाद्भवेत्परिणयोयदि ।

ब्राह्मेणवापिशैवेनज्ञात्वातास्तत्क्षणंत्यजेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-यदि अजानतासे पहले कहे हुए सम्बंधियोंकी किसी
नारीसे ब्राह्म या शैव विवाह होजाय तो जभी यह बात
ज्ञातहो तभी उस स्त्रीको छोड़ना चाहिये ॥ ३६ ॥

सवर्णदारान्योगच्छेदनुलोमपरस्त्रियम् ।

दमस्तस्यधनादानंमासैकंकणभोजनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-जो पुरुष अपनी जातिकी पराई स्त्रीमें गमन करे
अथवा जो पुरुष अपने आपसे नीच जातिवाली पराई स्त्रीमें
गमन करे । राजाको उचित है कि, उसपर यथासम्भव अर्थदण्ड
(जुर्माना) करे और एक मासतक कणभोजन करावे ॥ ३७ ॥

राजन्यवैश्यशूद्राणांसामान्यानांवरानने ।

ब्राह्मणींगच्छतांज्ञानाल्लिङ्गच्छेदोदमःस्मृतः ॥ ३८ ॥

अर्थ-हे वरानने ! यदि कोई, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या सा-
धारण जाती जान बूझकर ब्राह्मणीसे संग करे तो उसका दंड
लिंगका कटवा देना है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणींविकृतांकृत्वादेशान्निर्य्यापयेन्नृपः ।

वीरस्त्रीगामिनांतासामेवमेवदमोविधिः ॥ ३९ ॥

अर्थ-जो लोग कुलधर्म ग्रहण करके फिर कुलकी क्रियाके अनुष्ठानको छोड़ देते हैं, जो लोगोंसे विश्वासघात करा करते हैं वह सबही पातकी हैं ॥ ३० ॥

मातरं भगिनीं कन्यां गच्छते निधनं दमः ।

तासामपि सकामानां तदेव विहितं शिवे ! ॥ ३१ ॥

अर्थ-हे शिवे ! मातृगमन, भगिनीगमन वा कन्यागमन करनेवालेको और सकाम हुई उन स्त्रियोंकोभी प्राणदण्ड देना चाहिये ॥ ३१ ॥

मातापितृष्वसुस्तल्पं स्नुषांश्च श्रृंगुरुस्त्रियम् ।

पितामहस्य वनितां तथा मातामहस्य च ॥ ३२ ॥

अर्थ-जो पुरुष साँतिलीमाके पास जाय, दुआके पास जाय, जो पुरुष पुत्रवधूके पास जाय, जो सासके पास जाय, जो गुरुपत्नीके पास जाय, दादीके पास जाय, नानीके पास जाय ॥ ३२ ॥

पित्रोर्भ्रातुः सुतां जायां भ्रातुः पत्नीं सुतामपि ।

भगिनेर्यो प्रभोः पत्नीं तनयाञ्च कुमारिकाम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-जो पुरुष चचाकी बेटी, या मामाकी बेटीके पास जाय, जो पुरुष चाची या मामीके पास जाय, जो पुरुष नानी या भतीजीसे भोग करे, जो पुरुष भाजनीका संग करे, जो पुरुष स्वामीकी स्त्री या कन्यासे संग करे, जो पुरुष कारीसे रमण करे ॥ ३३ ॥

गच्छतां पापिनां लिङ्गच्छेदोदण्डो विधीयते ।

गृहान्निर्ग्यापणं चैव पापादस्माद्विमुक्तये ॥ ३४ ॥

अर्थ-इन पापियोंके उपस्यके कटवानेका दण्ड विधिमें कहा है, यदि ये कामनियेंभी सकामा हो तो इनका बड़ा पाप छुटानेको नाक काटकर घरसे बाहर निकालदे ॥ ३४ ॥

सपिण्डदारतनयाःस्त्रियंविश्वासिनामपि ।

सर्वस्वहरणकेशवपनंगच्छतोदमः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो पुरुष किसी सपिण्डकी स्त्रीसे या कन्यासे मिला-
हुआ हो, जो पुरुष किसी विश्वासी पुरुषकी स्त्रीसे गमन करे,
राजाको चाहिये कि, उसका सब मालमता छीन शिर
मुँडाकर छोड़दे ॥ ३५ ॥

स्त्रीभिरेताभिरज्ञानाद्भवेत्परिणयोयदि ।

ब्राह्मेणवापिशैवेनज्ञात्वातास्तत्क्षणंत्यजेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि अज्ञानतासे पहले कहे हुए सम्बंधियोंकी किसी
नारीसे ब्राह्म या शैव विवाह होजाय तो जभी यह बात
ज्ञातहो तभी उस स्त्रीको छोड़ना चाहिये ॥ ३६ ॥

सवर्णदारान्योगच्छेदनुलोमपरस्त्रियम् ।

दमस्तस्यधनादानंमासैकंकणभोजनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो पुरुष अपनी जातिकी पराई स्त्रीमें गमन करे
अथवा जो पुरुष अपने आपसे नीच जातिवाली पराई स्त्रीमें
गमन करे। राजाको उचित है कि, उसपर यथासम्भव अर्थदण्ड
(जुर्माना) करे और एक मासतक कणभोजन करावे ॥ ३७ ॥

राजन्यवैश्यशूद्राणांसामान्यानावरानने ।

ब्राह्मणींगच्छतांज्ञानाल्लिङ्गच्छेदोदमःस्मृतः ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे वरानने ! यदि कोई, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या सा-
धारण जाती जान बूझकर ब्राह्मणीसे संग करे तो उसका दंड
लिंगका कटवा देना है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणींविकृतांकृत्वादेशान्निव्यापयेत्पुत्रः ।

वीरस्त्रीगामिनांतासामेवमेवदमोन्निवेः ॥ ३९ ॥

अर्थ-राजाको उचित है कि, इस नीचगामिनी ब्राह्मणीका नाक, कान या और कोई अंग काटकर वा मस्तक मुँडाय कुरूप कर अपने राज्यसे बाहर निकालदे यदि पहले कहे पुरुष वीरपत्नी गमनकरे तो उनको और वीरपत्नियोंकोभी ऐसाही दण्डदेना उचित है ॥ ३९ ॥

दुरात्मायस्तुरमतेप्रतिलोमपरस्त्रिया ।

दण्डस्तस्यधनादानंत्रिमासंकणभोजनम् ॥ ४० ॥

अर्थ-जो दुरात्मा प्रतिलोम स्त्रीका संग करे अर्थात् अधम जातिका पुरुष होकर उत्तम जातिकी स्त्रीमें रत होवे, उसका सर्वस्वहरण करके तीनमासतक कणभोजन कराके रखे ४०

सकामायाःस्त्रियाश्चापिदण्डस्तद्विधीयते ।

बलात्काररताभार्यात्याज्यापाल्याभवेच्छिवे ! ॥ ४१ ॥

अर्थ-यदि यह स्त्रियें सकामा होतो उनको भी ऐसाही दण्ड दे. हे शिवे ! यदि किसीकी भार्यापर दूसरा कोई बलात्कार करे तो उस भार्याको छोड़तो दे, परन्तु उसका भरण पोषण करना चाहिये ॥ ४१ ॥

ब्राह्मीभार्याथवाशैवीकामतोवाप्यकामतः ।

सर्वथाहिपरित्याज्यास्याच्चेत्परगतासकृत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-ब्राह्मी भार्याहो, या शैवी भार्याहो, इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक हो यदि एकबारभी परपुरुषके संसर्गसे दूषित होजाय तो उसको छोड़देना योग्य है ॥ ४२ ॥

गच्छतांवारनारीपुगवादिपशुयोनिषु ।

शुद्धिर्भवातिदेवेशि ! त्रिरात्रंकणभोजनात् ॥ ४३ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! जो पुरुष वेद्यागमन करे, जो पुरुष गौ, छागी इत्यादि पशुयोनिमें गमन करे, वह त्रिरात्री कणभोजन करके पापसे छूट सकता है ॥ ४३ ॥

गच्छतां कामतः पुंसः स्त्रियाः पायुंदुरात्मनाम् ।

वध एव विधातव्यो भूभृताश्च भुशासनात् ॥ ४४ ॥

अर्थ—महादेवजीका शासन है कि, यदि कोई मनुष्य पुरुष अथवा स्त्रीके गुह्यदेशमें गमन करे तो राजाको चाहिये कि, उसको वध दण्ड देवे ॥ ४४ ॥

बलात्कारेण योगच्छेदपि चाण्डालयोपितम् ।

वधस्तस्य विधातव्यो न क्षन्तव्यः कदापि सः ॥ ४५ ॥

अर्थ—यदि कोई पुरुष बलात्कार करके चाण्डालकन्यासे भी संसर्ग करे तो उसको भी वध दंड दे। बलात्कारमें यह समझकर कि, चाण्डालकन्यासे संसर्ग किया है, क्षमा नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥

परिणीतास्तु यानां यो ब्राह्मणैर्वा शैववर्त्मभिः ॥

ता एव दारा विज्ञेया अन्याः सर्वाः परस्त्रियः ॥ ४६ ॥

अर्थ—जो कन्या ब्राह्मणविवाहसे या शैवविवाहसे व्याही गई हैं। वही भार्या हैं और सब परस्त्री हैं ॥ ४६ ॥

कामात्परस्त्रियं पश्यन्नहः सम्भाषयन्स्पृशन् ।

परिष्वज्योपवासेन विशुध्यो द्विगुणक्रमात् ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो पुरुष सकाम होकर पराई स्त्रीको देखे वह एक दिन उपवास करके शुद्ध होजायगा, जो पुरुष सकाम होकर पराई स्त्रीके साथ अकेलेमें बात चीत करे वह दो दिन उपवास करे और जो पुरुष पराई स्त्रीको छुए वह दो दिन उपवास करे जो पुरुष पराई स्त्रीको चिपटावे वह आठदिन तक उपवास करे तब शुद्ध होगा ॥ ४७ ॥

कुर्वत्येवं सकामाया परपुंसाकुलाङ्गना ।

उक्तोपवासविधिना स्वात्मानं परिशोधयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ-जो कुलाङ्गना सकामा होकर परपुरुषका दर्शन करे, परपुरुषसे बात चीत करे, परपुरुषको छुए २ परपुरुषको आलिंगन करे वह स्त्री भी ययाक्रमसे एक दिन, दो दिन, चार दिन और आठदिन उपवास करके शुद्ध होसक्ती है ॥ ४८ ॥

शुबन्निच्यं वचः स्त्रीपुपश्यन्गुह्यं परस्त्रियाः ।

हसन्गुरुतरं मर्त्यः शुध्येद्विरुपवासतः ॥ ४९ ॥

अर्थ-जो पुरुष स्त्रियोंसे अर्शालताके वचन कहे, जो पुरुष स्त्रियोंके गुप्तस्थानको देखे, जो पुरुष स्त्रियोंको देख ठठायकर हँसे वह दोदिन उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ ४९ ॥

दर्शयन्नभ्रमात्मानं कुर्वन्नग्रं तथा परम् ।

त्रिरात्रमशनं त्यक्त्वा शुद्धो भवति मानवः ॥ ५० ॥

अर्थ-जो पुरुष किसीके सामने नंगा हो अथवा जो पुरुष किसी औरको नंगा करे वह तीन दिनतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ ५० ॥

पत्न्याः पराभिगमनं प्रमाणयति चेत्पतिः ।

नृपस्तदा तां तज्जारं शास्त्राच्छास्त्रानुसारतः ॥ ५१ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष ऐसा प्रमाण कर सके कि, उसकी स्त्रीने परपुरुषके साथ संसर्ग किया है तब राजाको उचित है कि, उस स्त्रीको और उसके यारको शास्त्रानुसार पहले कहे लिंग-छेदनादि दंड दे ॥ ५१ ॥

प्रमाणेयद्यशक्तः स्याद्वयितोपपत्तेः पतिः ।

त्यक्त्वा तां पोषयेद्वासैस्तिष्ठेच्चैत्पतिशासने ॥ ५२ ॥

अर्थ-यदि अपनी स्त्रीका उपपत्तिसे संसर्ग करना प्रमाणित न करसके तो भी उस स्त्रीको त्याग करसक्ता है, परन्तु यदि यह स्त्री पतिकी आज्ञामें रहे तो पतिको चाहिये कि, उसका भरण पोषण करे ॥ ५२ ॥

रममाणामुपपतौपश्यन्पत्नीपतिस्तदा ।

निघ्नन्वनितयाजारंवधाहोनैवभूभृतः ॥ ५३ ॥

अर्थ—यदि स्वामी अपनी स्त्रीको उपपतिके साथ रति करता हुआ देखले और यदि वह (स्वामी) उस समयमें उस व्यभिचारिणी स्त्रीको और उसके उपपतिको मार डाले तो राजा उसका वधदंड (या और कोई दंड) न करे ॥ ५३ ॥

भर्तुर्निवारणंयत्रगमनेयेनभाषणे ।

प्रयाणाद्भाषणात्तत्रत्यागाहस्यात्कुलाङ्गना ॥ ५४ ॥

अर्थ—स्वामी जहाँपर जानेको निषेध करे । या जिसके साथ बात चीत करनेको मना करे यदि कुलकामिनी अपनी स्वामीकी सम्मतिके बिना उस स्थानमें जाय या उस पुरुषसे बात करे तो स्वामीको चाहिये कि, उसको छोड़दे ॥ ५४ ॥

मृतेपत्यौस्वधर्मेणपतिबन्धुवशेस्थिता ।

अभावेपितृबन्धूनांतिष्ठन्तीदायमर्हति ॥ ५५ ॥

अर्थ—स्वामीकी मृत्यु होनेपर यदि विधवा भार्या पतिबंधुओंके वशमें रहकर अपने धर्ममें रहे अथवा पतिबंधुके न रहनेपर पितृकुलमें रहकर अपना धर्म पालन करे तो वह स्वामीकी स्थावर अस्थावर सब संपत्तियोंको पासती है ॥ ५५ ॥

द्विर्भोजनंपरान्नंचमैथुनामिपदूषणम् ।

पर्यङ्करक्तवासश्चविधवापरिवर्जयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—दोवार भोजन, परान्नभोजन, मैथुन, मांसभोजन, भूषण पहरना, पलंगपर लेटना, लाल वस्त्र पहरना, विधवाको इन वस्तुओंका व्यवहार छोड़देना चाहिये ॥ ५६ ॥

नाङ्गमुद्रतेयेद्रासैर्ग्राम्यालापमपित्यजेत् ।

देवव्रतान्नयेत्कालंवैधव्यंधर्ममाश्रिता ॥ ५७ ॥

अर्थ-विधवा स्त्रीको सुगन्धित तेल नहीं लगाना चाहिये अथवा सुगन्धितद्रव्यसे शरीरको नहीं मलना चाहिये ग्राम्य आलाप छोड़ देना उचित है. परन्तु विधवाका कर्तव्य है कि, अपने वैधव्यधर्मका अवलंबन कर सदा देवपूजामें निरत रहे और व्रतपरायण होकर समय बितावे ॥ ५७ ॥

नविद्यतेपितायस्यशिशोर्मातापितामहः ।

नियतंपालनेतस्यमातृबन्धुःप्रशस्यते ॥ ५८ ॥

अर्थ-जिस बालकके माता पिता नहीं और दादाभी नहीं हो तो माताके कुलमें मातृबन्धुद्वाराही उसका पालन श्रेष्ठ है ५८

मातुर्मातापिताभ्रातामातुर्भ्रातुःसुतास्तथा ।

मातुःपितुःसोदराश्चविज्ञेयामातृवान्धवाः ॥ ५९ ॥

अर्थ-नानी, नाना, मामा, मामाका बेटा और नानाका भाई इत्यादि यह मातृबन्धु हैं ॥ ५९ ॥

पितुर्मातापिताभ्रातापितुर्भ्रातुःस्वसुःसुताः ।

पितुःपितुःसोदराश्चविज्ञेयाः पितृवान्धवाः ॥ ६० ॥

अर्थ-दादी, चचा, चचाकी बेट्टी, पितृष्वश्वेय (बुआका लडका) दादाका भाई इत्यादिको पितृबन्धु कहा जाता है ६०

पत्युर्मातापिताभ्रातापत्युर्भ्रातुःस्वसुःसुताः ।

पत्युःपितुःसोदराश्चविज्ञेयाः पतिवान्धवाः ॥ ६१ ॥

अर्थ-स्वामीकी माता, श्वशुर, देवर, भईयेका श्वशुर, देवरका पुत्र, स्वामीकी बहनका पुत्र, श्वशुरका भाई इत्यादि यह पतिके बन्धु कहलाते हैं ॥ ६१ ॥

पित्रेमात्रेपितुःपित्रेपितामह्यैतथास्त्रियै ।

अयोग्यसूनवेपुत्रहीनमातामहायच ॥ ६२ ॥

अर्थ—पिता, माता, दादा, दादी, पत्नी, अयोग्य पुत्र, पुत्रहीन मातामह ॥ ६२ ॥

मातामह्यैदरिद्रेभ्योयेभ्योवासस्तथाशनम् ।

दापयेन्नृपतिःपुंसायथाविभवमम्बिके ! ॥ ६३ ॥

अर्थ—पुत्रहीन नानी यह लोग यदि दरिद्री हों तो राजा इनको वित्तानुसार अन्न, वस्त्र दिलावे ॥ ६३ ॥

दुर्वाच्यंकथयन्पत्नीमेकाहमशनंत्यजेत् ।

त्र्यहंसन्ताडयन्नक्तंपातयन्सप्तवासरान् ॥ ६४ ॥

अर्थ—यदि कोई भार्याको कुबचन कहे तो उसे एकदिन उपवास करना चाहिये, यदि कोई पत्नीको मारे तो उसे तीन राततक उपवास करना चाहिये, यदि कोई प्रहार करके भार्याके रुधिर निकाले तो उसे सातदिनतक उपवास करना चाहिये ॥ ६४ ॥

क्रोधाद्रामोहतोभार्यामातरंभगिर्नीसुताम् ।

वदन्नुपोष्यसप्ताहंविशुष्येच्छिवशासनात् ॥ ६५ ॥

अर्थ—यदि कोई क्रोधसे या मोहसे भार्याको “माता” कहे, बहन कहे “कन्या” कहे तो शिवकी आज्ञा है कि उसको सातरात उपवास करना चाहिये ॥ ६५ ॥

पण्डेनोद्गाहितांकन्यांकालातीतेपिपार्थिवः ।

जानन्नुद्गाहयेद्भूयोविधिरेपशिवोदितः ॥ ६६ ॥

अर्थ—शिवका विधान है कि, जो कोई कन्या नपुंसकसे व्याहीजाय और बहुतदिन पीछेभी यह वृत्तान्त जना जाय तो राजाको उचित है कि, उस कन्याका विवाह फिर करावे ६६

परिणीतानरमिताकन्यकाविधवाभवेत् ।

साप्युद्गाह्यापुनःपित्ताशैवधर्मैष्वयंविधिः ॥ ६७ ॥

अर्थ-यदि कन्या विवाही जाकर पतिका संग करनेसे पहले विधवा होजाय तो मातापिताको उसका पुनर्विवाह कर देना चाहिये शैवधर्ममें ऐसेही विधान है ॥ ६७ ॥

उद्ग्राहाद्वादशेपक्षेपत्यन्ताद्गतहायने ।

प्रसूतेतनययोग्यंनसापत्निसःसुतः ॥ ६८ ॥

अर्थ-विवाहके पीछे बारह पक्ष अथवा छैः मासमें या पति वियोगके पीछे एक वर्षके अन्तमें जो स्त्री परिपुष्ट सन्तान उत्पन्न करे वह भार्याभी नहीं है ॥ ६८ ॥

आगर्भात्पञ्चमासान्तर्गर्भयास्त्रावयेद्विया ।

तदुपायकृतंताश्चयातयेत्तीव्रताडनैः ॥ ६९ ॥

अर्थ-गर्भाधानसे लेकर पाँच मासके बीचमें जो नारी जान बूझकर गर्भ गिरादे उस नारीको और गर्भगिरानेका उपाय करनेवाले उस पुरुषको राजा कठिन ताड़ना देकर दंडदे ॥ ६९ ॥

पञ्चमात्परतोमासाद्यास्त्रीभ्रूणं प्रपातयेत् ।

तत्प्रयोक्तुश्चतस्याश्चपातकंस्याद्विधोद्वेगम् ॥ ७० ॥

अर्थ-पाँच मासके पीछे जो नारी गर्भ गिरावे अथवा जो पुरुष उसका उपाय करदे वह दोनों मनुष्य वध करनेके मह/ पापसे पातकी होंगे ॥ ७० ॥

योहन्तिज्ञानतोमर्त्यमानवः क्रूरचेष्टितः ।

वधस्तस्यविधातव्यः सर्वथाधरणीभृता ॥ ७१ ॥

अर्थ-जो कोई निडुर डुरात्मा जान बूझकर नरहत्या करे तो राजा उसे मरवा डाले ॥ ७१ ॥

प्रमादाद्भ्रमतोऽज्ञानाद्भ्रन्तन्नरमरिन्दमः ।

द्रविणादानतस्तीव्रताडनैस्तंविशोधयेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष प्रमाद (पागलपन) या भ्रमसे मनुष्यको मार डाले तो राजा उसे धनदण्ड देकर कठिन मार लगवावे ॥ ७२ ॥

स्वतोवापरतोवापिवधोपायंप्रकुर्वतः ।

अज्ञानवधिनांदण्डोविहितस्तस्यपापिनः ॥ ७३ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष आप या दूसरेसे अपने या दूसरेके वधका उपाय करे तो उस पापीको वह दंड देना चाहिये जो लोग अनजानमें नरहत्या करनेवालेको मिलता है ॥ ७३ ॥

मिथःसङ्ग्रामयोद्धारमाततायिनमागतम् ।

निहत्यपरमेशानि ! नपापाहोभवेन्नरः ॥ ७४ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! जो मनुष्य आततायी होकर आया है उसका वध करनेसे मनुष्यको पाप नहीं होता ॥ ७४ ॥

अङ्गच्छेदेविधातव्यंभूभृताङ्गनिकृन्तनम् ।

प्रहारेचप्रहरणंनृपुपापंचिकीर्णु ॥ ७५ ॥

अर्थ—पाप करनेवाला पुरुष यदि दूसरेका अंग काट डाले तो राजाको उसका अंग कटाना चाहिये यदि कोई पापात्मा दूसरेपर प्रहार करे तो राजाभी उसपर तैसाही प्रहार करावे ॥ ७५ ॥

विप्रान्गुरुनवगुरेत्प्रहरेद्योदुरासदः ।

धनादानाद्भ्रस्तदाहात्क्रमतस्तंविशोधयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ—ब्राह्मण या गुरुके मारनेको जो पापात्मा लाठी इत्यादि उठावे अथवा जो पुरुष इनको मारे राजाको उचित है कि, उसकी धन सम्पत्ति लेकर उसके हाथ जलादे ॥ ७६ ॥

शस्त्रादिक्षतकायस्यपण्मासात्परतोमृतौ ।

प्रहर्त्तादण्डनीयःस्याद्रथाहोनिहिभूभृतः ॥ ७७ ॥

अर्थ-यदि किसीका शरीर शस्त्रादिसे घायल होजाय और यह घायल छैः मासके पीछे मरे तो प्रहार करनेवालेको दंड होगा, परन्तु बध दंड नहीं ॥ ७७ ॥

राष्ट्रविप्लाविनोराज्यंजिहीषोर्नृपवैरिणाम् ।

रहोहितैपिणोभृत्याद्भेदकात्रपसैन्ययोः ॥ ७८ ॥

अर्थ-जो लोग विद्रोही हैं, जो लोग राज्यको छोड़ना चाहते हैं, जो लोग छिपे हुए शत्रु राजाओंका हित चाहते हैं, जो लोग राजाके साथ सेनाका भेद करा देते हैं ॥ ७८ ॥

योद्धुमिच्छुःप्रजाराज्ञाशस्त्रिणःपान्थपीडकान् ।

हत्वानरपतिस्त्वेतान्नैवकिल्मषभागभवेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ-जो प्रजा युद्ध करना चाहती है, जो लोग शस्त्र धारण कर यात्रियोंपर अत्याचार करते हैं इन सबका नाश करनेसे राजा पापका भागी नहीं होता ॥ ७९ ॥

योहन्यान्मानवंभर्तुराज्ञयापरिहार्यया ।

भर्तुरेववधस्तत्रप्रहर्तुर्नशिवाज्ञया ॥ ८० ॥

अर्थ-शिवजीकी आज्ञा है कि, जो पुरुष स्वामीकी न उलंघन करने योग्य आज्ञाके अनुसार किसी मनुष्यको मार डाले तो उसे नरहत्याका पाप नहीं होगा बरन् आज्ञा देनेवालेको पापका भागी होना पड़ेगा ॥ ८० ॥

अयत्नपुंसःपशुनाशस्त्रैर्वाध्रियतेनरः ।

धनदंडेनवाकायदमेनास्यविशोधनम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-यदि किसीकी असावधानीसे अस्त्रकरके वा पशुसे दूसरेकी मृत्यु होजाय तो धनदंडसे उसका पाप दूटैगा ॥ ८१ ॥

बहिर्मुखात्रपाज्ञासुनृपाग्नेप्रौढवादिनः ।

दूपकान्कुलधर्माणांशास्याद्राजाविगर्हितान् ॥ ८२ ॥

अर्थ—जो लोग राजाकी आज्ञाका पालन नहीं करते, जो लोग राजाके सामने ठीठता करते हैं, जो कुलधर्मके दूषक हैं राजाको उचित है कि, इन सबको दण्ड देवे ॥ ८२ ॥

स्थाप्यापहारिणंक्रूरंवञ्चकंभेदकारिणम् ।

विवादयन्तंलोकांश्चदेशान्निर्यापयेन्नृपः ॥ ८३ ॥

अर्थ—जो पुरुष धरोहरके धनको हरले, जो क्रूर और धोखा देनेवाला हो, जो आदमियोंमें परस्पर वैमनस्यता और झगड़ा उत्पन्न करादे राजाको उचित है कि, ऐसे आदमी-योंको देशसे निकाल देवे ॥ ८३ ॥

शुल्केनकन्यांदातृंश्चपुत्रंपण्डेप्रयच्छतः ।

देशान्निर्यापयेद्राजापतितान्दुष्कृतात्मनः ॥ ८४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य शुल्क ग्रहण करके कन्या या पुत्रका दान करते हैं अथवा नपुंसकको कन्याका दान करते हैं राजा उन पतित पापियोंको निकालदे ॥ ८४ ॥

मिथ्यापवादव्याजेनपरानिष्टंचिकीर्षवः ।

यथापराधंतेऽशास्याधर्मज्ञेनमहीभृता ॥ ८५ ॥

अर्थ—जो लोग झूठ तोहमत लगाकर पराया बुरा करनेकी अभिलाषा करे धर्मवान राजा अपवादके अनुसार उसको यथायोग्य दंडदे ॥ ८५ ॥

योयत्परिमितानिष्टंकुर्यात्तत्सम्मितंधनम् ।

नृपतिर्दापयेत्तेनजनायानिष्टभागिने ॥ ८६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य जितना अनिष्ट करे उतनाही धनदण्ड करके अनिष्टपद भोगनेवाले मनुष्यको वह देदे ॥ ८६ ॥

मणिमुक्ताहिरण्यादिधातूनांस्तेयकारिणः ।

करस्यग्राहोश्छेदोवाकाय्यौमूल्यंविचारयन् ॥ ८७ ॥

अर्थ-जो लोग मणि, मुक्ता या सुवर्णादि धातु चुरावे राजा मोलका विचारकर उनके हाथ (पंजे) या दोनों बाहों कटवादे ॥ ८७ ॥

महिपाश्वगवादीनांरत्नादीनांतथाशिशोः ।

बलेनापहृतांनृणांस्तेयिवद्विहितोदमः ॥ ८८ ॥

अर्थ-जो लोग बलात्कारसे भैंस, घोड़ा, गाय इत्यादि पशु, सुवर्णादि धातु द्रव्य या छोटे बच्चेको चुरावे राजाको उचित है कि, उनको चोरोंकी समान दंडदे ॥ ८८ ॥

अन्नानामल्पमूल्यस्यवस्तुनःस्तेयिनंनृपः ।

विशोधयेत्तंपक्षैकंसप्ताहंवाशयन्कणम् ॥ ८९ ॥

अर्थ-जो पुरुष अन्न या थोड़े मोलका पदार्थ चुरावे राजा को चाहिये कि, उसको एकपक्ष वा सप्ताहतक कणभोजन कराकर शुद्ध करे ॥ ८९ ॥

विश्वासघातकेपुंसिकृतघ्नेसुरवन्दिते ।।

यज्ञैर्व्रतैस्तपोदानैःप्रायश्चित्तैर्ननिष्कृतिः ॥ ९० ॥

अर्थ-हे सुरपूजिते ! जो विश्वासघाती और कृतघ्नी हैं वह यज्ञ, व्रत, तप, दान या कोईभी प्रायश्चित्त करे, उनका छुटकारा किसीप्रकारसे नहीं ॥ ९० ॥

येकूटसाक्षिणोमर्त्यामध्यस्थाःपक्षपातिनः ।

शास्यात्तांस्तीव्रदण्डेनदेशान्निर्य्यापयेन्नृपः ॥ ९१ ॥

अर्थ-जो मनुष्य कूटसाक्षी हैं, जो बिचउये बनकर पक्षपात

करते हैं, राजाको उचित है कि, उन्हें तीव्र दण्ड देकर देशसे निकालदे ॥ ९१ ॥

पट्साक्षिणःप्रमाणंस्त्युश्चत्वारस्त्रयएववा ।

अभावेद्वावपिशिवे ! प्रसिद्धौयदिधार्मिकौ ॥ ९२ ॥

अर्थ-छैः चार अथवा तीन साक्षी प्रमाणमें गिने जाते हैं, हे शिवे ! जो (गवाह) न मिले तो, धर्मात्मा और प्रसिद्ध दो गवाहोंका वचनभी प्रमाण होसके हैं ॥ ९२ ॥

देशतःकालतोवापितथाविषयतःप्रिये ! ।

परस्परमयुक्तञ्चेदग्राह्यंसाक्षिणांवचः ॥ ९३ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो वह लोग पृष्ठे जानेपर देशकाल और किसी विशेष बातके मध्य परस्पर विरोधवचन कहे तो उन गवाहोंके वाक्य ग्रहण नहीं किये जायेंगे ॥ ९३ ॥

अन्धानांवाक्प्रमाणंस्याद्गिराणांतथाप्रिये । ।

मूकानामेडमूकानांशिरसाङ्गीकृतिर्लिपिः ॥ ९४ ॥

अर्थ-साक्षीमें अंधे और बहरोंके वचन प्रमाणित गिने जायेंगे । जो गूंगे हैं एडमूक (कानहीन और वाचाशक्ति हीन) हैं उनका शिर हिलाना ग्रहण किया जायगा और लेख प्रमाण माना जायगा ॥ ९४ ॥

लिपिःप्रमाणं सर्वेषां सर्वत्रैवप्रशस्यते ।

विशेषाद्व्यवहारेपुनर्विनश्येच्चिरंयतः ॥ ९५ ॥

अर्थ-सबस्थानोंमें सबके लियेही लेखका प्रमाण श्रेष्ठ है, विशेष करके व्यवहारमें यह सबप्रकारसे श्रेष्ठ है, क्योंकि यह बहुत कालमेंभी नष्ट नहीं होता ॥ ९५ ॥

स्वीयार्थमपरार्थञ्चेत्कुर्वतःकल्पितालिपिम् ।

दण्डस्तस्यविधातव्योद्विपाद्यंकूटसाक्षिणः ॥ ९६ ॥

अर्थ-जो पुरुष अपने लिये या पराये लिये कल्पित लिपि (जाल) बनावे, उस कूटसाक्षी (जालसाज) को दूना दण्ड होवे अर्थात् ऐसे पुरुषोंका मालमता छीन कठिन दंड देकर देशसे निकालदे ॥ ९६ ॥

अभ्रमस्याप्रमत्तस्ययदङ्गीकरणंसकृत् ।

स्वीयार्थैतत्प्रमाणंस्याद्वचसोबहुसाक्षिणाम् ॥ ९७ ॥

अर्थ-जो पुरुष भ्रम और प्रमादसे रहित हो यह यदि किसी अपनी बातकी केवल एकवार अंगीकार करले तो उसका प्रमाण बहुत साक्षियोंके वचनोंसे भी प्रबल होगा ॥ ९७ ॥

यथातिष्ठन्तिपुण्यानिसत्यमाश्रित्यपार्वति ।

तयानृतंसमाश्रित्यपातकान्यखिलान्यपि ॥ ९८ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! जिसप्रकार सत्यमें सब पुण्य रहते हैं तैसेही झूटमें समस्त पातक रहते हैं ॥ ९८ ॥

अतःसत्यविहीनस्यसर्वपापाश्रयस्यच ।

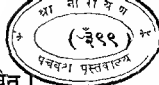
ताडनादमनाद्राजानपापार्हःशिवाज्ञया ॥ ९९ ॥

अर्थ-अतएव सत्यहीन पुरुष सबपापोंका आश्रय है । शिवकी आज्ञा है कि, ऐसे पापात्माका ताड़न और दमन करनेसे राजाको पाप नहीं होता ॥ ९९ ॥

सत्यंवक्त्रमिसृङ्खलप्यरुपृङ्गाकैलंगुरुद्विजम् ।

गंगातोयंदेवमूर्तिकुलशास्त्रकुलामृतम् ॥ १०० ॥

अर्थ-मैं जो कुछ कहूंगा "सत्यकहूंगा" ऐसा संकल्प करके कौलगुरु ब्राह्मण, गंगाजल, देवमूर्ति, कुलशास्त्र, कुलामृत १००



देवनिर्म्माल्यमथवाकथनं शपथो भवेत् ।

तत्रानृतं वदन्मर्त्यः कल्पान्तं नरकं व्रजेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ—देव, निर्म्माल्य इन सबको स्पर्श करके जो कहा जाय उसका नाम शपथ है । जो पुरुष इस शपथको करके मिथ्या वचन कहेगा उसका वास एक कल्प तक नरकमें रहेगा ॥ १०१ ॥

अपापजनिकार्याणां त्यागे वा ग्रहणेऽपि वा ।

तत्कार्यं सर्वथा मर्त्यैः स्वीकृतं शपथेन यत् ॥ १०२ ॥

अर्थ—जो कार्य शपथ करके स्वीकार किया गया है, वह कार्य यदि तैसा पापजनक न होतो उसके करने या न करनेमें अंगीकारके अनुसार कार्य करना पड़ेगा ॥ १०२ ॥

स्वीकारो लङ्घनाच्छुष्येत्पक्षमेकमभोजनैः ।

भ्रमेणापि तमुलङ्घ्य द्वादशाहं कणाशनैः ॥ १०३ ॥

अर्थ—जो पुरुष पहले अंगीकार करके फिर लंघन कर जाता है, वह एक पक्ष अनाहार रहकर उस पापसे छूटसक्ता है । जो भ्रमसे अंगीकारको लॉंघ जाय वह बारह दिन तक कण खाय तब शुद्ध होसक्ता है ॥ १०३ ॥

कुलधर्म्मोऽपि सत्येन विधिना चेन्न सेवितः ।

मोक्षाय त्रेयसेन स्यात्कौले पापाय केवलम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—और बात तो दूर रहे जो पुरुष सत्यका आश्रय लेकर कुलधर्मकी सेवा नहीं करता है उसका वह बल, धर्म मोक्षदायक नहीं होता केवल पापजनक होता है ॥ १०४ ॥

सुराद्रवमयी तारा जीवनिस्तारकारिणी ।

जननी भोगमोक्षणां नाशिनी विषदां रुजाम् ॥ १०५ ॥

अर्थ—सुराद्रव्यमयी स्वयं भगवती तारा है । इस कारणसे प्राणियोंका निस्तार होता है सुरा भोग और मोक्षकी कारण है

सुरा रोगकी नाश करनेवाली और विपत्तिसे उद्धार करने वाली होती है ॥ १०५ ॥

दाहिनीपापसङ्घानांपावनीजगतांप्रिये ! ।

सर्वसिद्धिप्रदाज्ञानबुद्धिविद्याविवाङ्मनी ॥ १०६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! सुरासे पापके समूह भस्म होजाते हैं, सुरा संसारको पावत्र करती है, सुरासे सबकार्य सिद्ध होजाते हैं, सुरासे ज्ञान, बुद्धि, विद्याकी वृद्धि होती है ॥ १०६ ॥

मुक्तैर्मुमुक्षुभिःसिद्धैःसाधकैःक्षितिपालकैः ।

सेव्यतेसर्वदादेवैराद्यैःस्वाभीष्टसिद्धये ॥ १०७ ॥

अर्थ-हे आद्ये ! मुक्त, मुमुक्षु और सिद्ध योगीगण, साधक-गण, भूपालगण और देवतालोक अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये सदा इस सुराका सेवन करते हैं ॥ १०७ ॥

सम्यग्विधिविधानेनसुसमाहितचेतसा ।

पिबन्तिमदिरामर्त्यामर्त्याएवतेक्षितौ ॥ १०८ ॥

अर्थ-जो लोग उत्तम और सावधानहृदय हो विधिके अनुसार मदिराको पीते हैं वह मनुष्य नहीं, वरन पृथ्वीपर रहनेवाले देवता हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १०८ ॥

प्रत्येकतत्त्वस्वीकाराद्विधिनास्याच्छिन्नोत्तरः ।

नजानेपञ्चतत्त्वानांसेवनार्त्तिकफलंभवेत् ॥ १०९ ॥

अर्थ-इसपञ्चतत्त्वमें यदि कोई विधिविधानसे एक तत्त्व-काभी सेवन करता है तो वह निःसन्देह साक्षात् शिव है, परन्तु पञ्चतत्त्वके सेवन करनेसे जो फल होता है उसको हम नहीं कहसकते ॥ १०९ ॥

इयञ्चेद्वारुणीदेवीनिपीताविधिवर्जिता ।

नृणांविनाशयत्सर्वबुद्धिमायुर्यशोधनम् ॥ ११० ॥

अर्थ-जो विधिविधानके बिना वारुणी देवीकी सेवा की-
जाय तो यह मनुष्यकी बुद्धि, आयु, यश, धन सबकोही
नाश कर देती है ॥ ११० ॥

अत्यन्तपानान्मद्यस्यचतुर्वर्गप्रसाधनी ।

बुद्धिर्विनश्यतिप्रायो लोकानांमत्तचेतसाम् ॥ १११ ॥

अर्थ-जो लोग अत्यन्त सुरापान करके मतवाले हो जाते हैं,
उनके हृदयमें भ्रमसा पड़जाता है उनकी बुद्धि कि जिससे चारों
वर्ग प्राप्त होजाते हैं; बहुधा कलुषित और नष्ट होती है ॥ १११ ॥

विभ्रान्तबुद्धेर्मनुजात्कार्यार्थकार्यमजानतः ।

स्वानिष्टंचपरानिष्टंजायतेऽस्मात्पदेपदे ॥ ११२ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी बुद्धि बिगड़ गई है जो पुरुष कर्तव्या-
कर्तव्य और हिताहितका ज्ञान नहीं रखता उससे पग २ पर
अपना और पराया बुरा हुआ करता है ॥ ११२ ॥

अतो नृपोवाचकेशोमद्येमादकवस्तुषु ।

अत्यासक्तजनान्कायधनदण्डेनशोधयेत् ॥ ११३ ॥

अर्थ-इस कारण जो लोग मद्य या मादक वस्तुमें अत्यन्त
आसक्त हैं राजाको या चक्रेश्वरको चाहिये कि, उन्हें शारीरिक
दंड या अर्थ दण्ड दे ॥ ११३ ॥

सुराभेदाद्व्यक्तिभेदान्नृनेनाप्यधिकेनवा ।

देशकालविभेदेनबुद्धिभ्रंशोभवेत्तृणाम् ॥ ११४ ॥

अर्थ-सुरा अधिक पीजाय वा थोड़ी पीजाय सुराके भेदसे
मनुष्यभेदसे, देश और कालके भेदसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट
होजाती है ॥ ११४ ॥

अतएवसुरापानादतिपानंनलक्ष्यते ।

स्खलद्वाक्पाणिपाद्विभ्रंतिपानंविचारयेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-इस कारण लड़खड़ते हुए बोल, डोलते हुए हाथ और
स्खलित पाँव वा चंचलदृष्टिसे अधिक पानका विचार करें
क्योंकि सुरापानके अनुसार अतिपान नहीं देखा जाता ॥ ११५ ॥

नेन्द्रियाणिवशेयस्य मदविह्वलचेतसः ।

देवतागुरुमर्यादोलंघिनोभयरूपिणः ॥ ११६ ॥

अर्थ-सब इन्द्रियें जिसके वशमें नहीं हैं, जिसका चित्त
मदसे विह्वल हो रहा है, जो पुरुष मत्तताके मारे देवता और
गुरुकी मर्यादाको लाँघता है, जिसकी मतवाली अवस्था
देखकर भय होता है ॥ ११६ ॥

निखिलानर्थयोग्यस्य पापिनः शिवघातिनः ।

दहेजिह्वां हरेर्दथास्ताडयेत्तंच पार्थिवः ॥ ११७ ॥

अर्थ-जो पुरुष सब अनर्थोंकी खानी है वह पुरुष पापात्मा
और शिवघाती है राजा उसका धन छीनकर जीभ जलवादे
और उसकी ताड़ना करे ॥ ११७ ॥

विचलत्पादवाक्पाणिभ्रान्तमुन्मत्तमुद्धतम् ।

तमुग्रं यातयेद्राजाद्रविणंचाहरेत्ततः ॥ ११८ ॥

अर्थ-जिसके पाँव, वाक्य और हाथ विचलते रहें जो पुरुष
भ्रमयुक्त, उन्मत्त, ऊधमी और अचिनीत हो उस पुरुषको राजा
दंड देवे और उसकी सब सम्पत्ति हरण करले ॥ ११८ ॥

अपवाग्वादिनं मत्तं लज्जाभयविवर्जितम् ।

धनादानेन तं शस्यात्प्रजाप्रीतिकरो नृपः ॥ ११९ ॥

अर्थ-जो पुरुष मतवाला होकर अश्लील या अयुक्त वचन
कहे अथवा लाज भयरहित हो जाय मजाका रंजन करनेवाला
राजा उसका धन ग्रहण करके उसे दण्ड देवे ॥ ११९ ॥

शताभिपिक्तः कौलश्चेदतिपानात्कुलेश्वरि ! ।

पशुरेव समन्तव्यः कुलधर्मवहिष्कृतः ॥ १२० ॥

अर्थ—हे कुलेश्वर ! शताभिषिक्त कौलपुरुष यदि अतिपानके दोषदूषित हो तो वह कुलधर्मसे च्युत होगा और पशुमें उसकी गिनती कीजायगी ॥ १२० ॥

पिवन्नतिशयंमद्यंशोधितंवाप्यशोधितम् ।

त्याज्योभवतिकौलानांदण्डनीयोऽपिभूतः ॥ १२१ ॥

अर्थ—शोधित या अशोधित मद्यको जो पीता है कौल पुरुषोंको चाहिये कि, उसको त्याग करदे और वह राजाके निकट दंडनीय होगा ॥ १२१ ॥

ब्राह्मीभार्यासुरांमत्ताःपाययन्तोद्विजातयः ।

शुध्येयुर्भार्ययासार्द्धपञ्चाहंकणभोजनात् ॥ १२२ ॥

अर्थ—यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रि या वैश्य मत्त होकर ब्राह्मी भार्या अर्थात् वेदकी विधिके अनुसार व्याही हुई स्त्रीको मद्य पिलावे तो वह इस भार्याके साथ पांच दिनतक कण भोजन करके शुद्धि प्राप्त करसकेगा ॥ १२२ ॥

असंस्कृतसुरापानाच्छुध्येदुपवासंरुयहम् ।

भुक्त्वाप्यशोधितंमांसमुपवासद्वयंचरेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष विनासंस्कार कीहुई सुराको पिये तो वह तीनदिन उपवास करके शुद्ध हो सक्ता है । यदि कोई पुरुष विना शुद्ध हुआ मांस भक्षण करे तो उस पापसे छुटानेको उसे दोदिन उपवास करना चाहिये ॥ १२३ ॥

असंस्कृतेमीनमुद्रेखादन्नपवसेदहः ।

अवैधंपञ्चमंकुर्वन्नाज्ञोदण्डेनशुध्यति ॥ १२४ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष विना संस्कारके मत्स्य या मुद्राका भक्षण करे तो वह एकदिन उपवास करे, यदि कोई पुरुष विधिका लंघन करके पांचवे तत्त्वका सेवन करे तो पाप छुटानेके लिये उसको राजदंड देना चाहिये ॥ १२४ ॥

भुज्जानोमानवंमांसंगोमांसंज्ञानतःशिवे ! ।

उपोप्यपक्षशुद्धःस्यात्प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम् ॥ १२५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जो कोई पुरुष जान बूझकर मनुष्यमांस या गोमांस भक्षण करे तो उसका प्रायश्चित्त यह है कि, वह एकपक्ष उपवास करके शुद्धि प्राप्त करसके ॥ १२५ ॥

नराकृतिपशोर्मांसमांसमांसादनस्यच ।

अत्त्वाशुध्येन्नरःपापादुपवासैस्त्रिभिःप्रिये ! ॥ १२६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो मनुष्याकार पशुका मांस या मांस खानेवाले जीवका मांस भक्षण करे वह तीन दिन उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १२६ ॥

म्लेच्छानांश्चपचानांचपशूनांकुलवैरिणाम् ।

खादन्नन्नंविशुद्धःस्यात्पक्षमेकमुपोषितः ॥ १२७ ॥

अर्थ-जो पुरुष म्लेच्छ और यवनका अन्न, चाण्डालका अन्न अथवा कुलधर्मसे विद्वेष करनेवाले पशुका अन्न भोजन करे वह एकपक्षतक उपवास करके शुद्धि प्राप्त कर सकता है ॥ १२७ ॥

उच्छिष्टंयदिभुञ्जीतज्ञानदेपांकुलेश्वरि ! ।

शुध्येन्मासोपवासेनाज्ञानात्पशोपवासतः ॥ १२८ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! जो पुरुष अज्ञानमें उपरोक्त मनुष्योंकी जंठ खाले तो इस पापके छुटानेके अर्थ उसको एक पक्षतक उपवास करना चाहिये यदि कोई जानबूझकर इनकी जंठ खाय तो वह एकमासतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १२८ ॥

अनुलोमेनवर्णानामन्नंभुक्त्वासकृत्प्रिये ! ।

दिनत्रयोपवासेनविशुद्धःस्यान्ममाज्ञया ॥ १२९ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मेरी आज्ञा है कि, यदि कोई पुरुष केवल एकबार अनुलोमजातिका भोजन करे तो वह तीनदिनतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १२९ ॥

पशुश्वपचम्लेच्छानामन्नंचक्रार्पितं यदि ।

वीरहस्तार्पितं वा पितदश्रन्नैव पापभाक् ॥ १३० ॥

अर्थ-यदि पशुका अन्न, श्वपचका अन्न अथवा म्लेच्छका अन्न चक्रमें अर्पण किया जावे यदि वीरपुरुष उसको हाथमें लेकर देदे तो उसके भोजन करनेसे कोई पापका भागी नहीं होगा ॥ १३० ॥

अन्नाभावे च दौर्भिक्ष्ये विपदि प्राणसङ्कटे ।

निषिद्धेनादनेनापिरक्षन् प्राणात्त्रपातकी ॥ १३१ ॥

अर्थ-जब अन्नकी कमी हो दुर्भिक्ष होवे विपत्तिका समय हो, प्राणसंकट पड़ रहा हो, जो उस समय कोई निषिद्ध अन्न-भोजन करके प्राणकी रक्षा करे तो वह पापका भागी नहीं होगा ॥ १३१ ॥

करिपृष्ठेतथानेकोद्वाह्यपापाणदारुणु ।

अलक्षितेऽपि दूष्याणां भक्ष्यदोषो न विद्यते ॥ १३२ ॥

अर्थ-जिस पत्थरको या काटादिको एक आदमी उठाकर ले जासके तैसे काठ और पाषाणादिके ऊपर, हाथीकी पीठके ऊपर और जिस स्थानमें दोषित संसर्ग दिखाई दे उस स्थानमें भोजन करलेनेसे स्पर्शदोष नहीं होता ॥ १३२ ॥

पशून् भक्ष्यमांसांश्च न्याधियुक्तानपि प्रिये ! ।

न हन्यादेव तार्थेऽपि हत्वा च पातकी भवेत् ॥ १३३ ॥

अर्थ-जिन पशुओंका मांस अभक्ष्य है, जो पशु रोगी हैं उन पशुओंका वध देवताके अर्थभी न करे यदि कोई वध करे तो पातकी होगा ॥ १३३ ॥

कृच्छ्रव्रतनरःकुर्व्याद्गोवधेषुद्विपूर्वके ।

अज्ञानादाचरेदद्धैवतंशङ्करशासनात् ॥ १३४ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष जानकर गोहत्या करे तो उसे कृच्छ्रव्रत करना चाहिये महादेवजीकी आज्ञा है कि, जो कोई पुरुष अज्ञानसे गोहत्या करे तो वह अर्द्धकृच्छ्रव्रत पालन करे ॥ १३४ ॥

नकेशवपनंकुर्व्यान्नखच्छेदनंतथा ।

नक्षारयोगंवसनेयावन्नव्रतमाचरेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ-जबतक इस व्रतका अनुष्ठान कियाजाय तबतक हजामत बनवाना, नख कटाना बर्जित है और बछको क्षार (साबुनादि) से धोवे नहीं ॥ १३५ ॥

उपवासैर्नयेन्मासंमासमेकंकणाशनैः ।

मासंभिक्षान्नमश्रियात्कृच्छ्रव्रतमिदंशिवे । ॥ १३६ ॥

अर्थ-हे शिवे ! कृच्छ्रव्रतका नियम यह है कि, एकमास उपवास करके बितावै, एकमास कणभक्षण करके रहें, एकमास भिक्षान्न करके बितावै इसका नाम कृच्छ्रव्रत है ॥ १३६ ॥

व्रतान्तेवापितशिराःकौलञ्जातीश्वचान्धवान् ।

भोजयित्वाविमुक्तःस्याज्ज्ञानगोवधपातकात् ॥ १३७ ॥

अर्थ-व्रत पूर्ण होनेपर मस्तक मुँडवाय कुलवानोंको जाति वालोंको और बंधु बान्धवोंको भोजन करावे तब ज्ञानकृत गोवधजनित पापकसे छुटकारा प्राप्त कर सक्ता है ॥ १३७ ॥

अपालनवधाद्गोशुच्येदष्टोपवासतः ।

बाहुजाद्याविशुच्येयुःपादन्यूनक्रमाच्छिवे । ॥ १३८ ॥

अर्थ-हे शिवे ! अपालनकृत गोवधजनित पापकके लगनेसे आठ दिन उपवास करके शुद्धहोसक्ताहै, परन्तु क्षत्रीलोग

छैः दिन, वैश्य चारदिन, शूद्र दो दिनतक उपवास करके उस अपालनकृत गोवधके उत्पन्न हुए पापसे ब्रूट सक्ते हैं ॥ १३८ ॥

गजोष्टमहिपाश्वंश्चहत्वाकौलिनि ! कामतः ।

उपवासैस्त्रिभिः शुध्येन्मानवः कृतकिल्विपः ॥ १३९ ॥

अर्थ—हे कुलनायिके ! इच्छानुसार हाथी, ऊँट, भैंसा, घोड़ा इन जीवोंकी हत्या करनेसे मनुष्य पापी होगा और तीनदिनतक उपवास करके उस पापसे ब्रूट सकेगा ॥ १३९ ॥

मृगमेपाजमार्जारान्निघ्नन्नुपवसेदहः ।

मयूरशुकहंसांश्चसज्योतिरशनंत्यजेत् ॥ १४० ॥

—अर्थ—जो कोई मृग, छाग और बिल्लीको मार डाले तो वह एकदिन उपवास करे. जो मोर, शुक या हंसका वध किया जाय तो सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उपवास करना चाहिये ॥ १४० ॥

निहत्यसास्थिजन्तूंश्चनक्तमद्यान्निरामिषम् ।

निरस्थिजीविनोहत्वा मनस्तापेन शुद्ध्यति ॥ १४१ ॥

अर्थ—यदि अस्थियुक्त (हड्डीदार) जीवको मारा हो तो पकरात्रि निरामिष भोजन करे, यदि अस्थिहीन जीवकी हत्या करे तो केवल पछतानेसे शुद्धता प्राप्त होसक्ती है ॥ १४१ ॥

पशुमीनाण्डजान्निघ्नन्मृगयायामहीपतिः ।

नपापाहौ भवेद्देवि ! राज्ञो धर्मः सनातनः ॥ १४२ ॥

अर्थ—हे देवि ! जो राजा मृगयाके समय पशु, मछली या अण्डज (अंडेसे उत्पन्नहुये) जीवकी हत्या करे तो वह पापी नहीं हीगा क्योंकि राजाओंका यह सनातन धर्म है ॥ १४२ ॥

देवोद्देशं विना भद्रे ! हिंसां सर्वत्र वर्जयेत् ।

कृतायां वै धर्हिंसायां नरः पापैर्न लिप्यते ॥ १४३ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! विना देवताके अर्थके और किसी अवसरपर हिंसा न करे, जो कोई देवतादिके लिये मृगयाके समय वा संग्राममें वैधहिंसा करे तो वह पुरुष पापी नहीं होसक्ता १४३

संकल्पितव्रतापूर्तौ देवनिर्माल्यलंघने ।

अशुचौ देवतारूपशैर्गायत्रीजपमाचरेत् ॥ १४४ ॥

अर्थ-जो कोई संकल्प किया हुआ व्रत पूर्ण न करसके यदि देवनिर्माल्यका लंघन न किया जाय, जो कोई अशौचके समय देवप्रतिमाको छुवे तो उसे गायत्री जपना चाहिये ॥ १४४ ॥

मातापिताब्रह्मदाता महान्तो गुरुवः स्मृताः ।

निन्दन्नेतान्वदन्क्रूरं शुद्धयेत्पञ्चोपवासतः ॥ १४५ ॥

अर्थ-माता, पिता और ब्रह्मदाता यह तीन महागुरु हैं जो पुरुष महागुरुकी निन्दा करे या महागुरुको निन्दर वचन कहे वह पांच दिनतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १४५ ॥

एवमन्यान्गुरुन्कौलान्विप्रान्गार्हन्नपि प्रिये ! ।

सार्द्धद्वयोपवासेन मुक्तो भवति पातकात् ॥ १४६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो पुरुष इसप्रकार और गुरुकी, कुलवान् या ब्राह्मणकी निन्दा करे या उससे घृणा करे वह अठार्व दिन उपवास करके उस पातकसे छूट सक्ता है ॥ १४६ ॥

वित्तार्थी मानवो देशान्खिलान्गन्तुमर्हति ।

निषिद्धकौलिकाचारं देशं शास्त्रमपित्यजेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ-मनुष्यगण धन पैदा करनेके लिये चाहे जिस देशमें जासके हैं जिस देशमें वा जिस शास्त्रमें कौलाचारवर्जित हुआ है, उस देश और उस शास्त्रका त्याग कर देना चाहिये ॥ १४७ ॥

गच्छंस्तुस्वेच्छयादेशेनिपिद्धेकुलवर्त्मनि ।

कुलधर्मात्पितृद्वयः शुध्येत्पूर्णाभिषेकतः ॥ १४८ ॥

अर्थ—जिस देशमें कुलधर्म और कौलिकाचार वर्जित है, यदि कोई इच्छानुसार उस देशमें चलाजाय तो वह कुलधर्मसे भ्रष्ट होगा और पूर्णाभिषेक करायकर शुद्धि प्राप्त कर सकेगा ॥ १४८ ॥

तपनोदयमारभ्ययामाष्टकमभोजनम् ।

उपवासः सविज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते ॥ १४९ ॥

अर्थ—प्रायश्चित्तके लिये उपवास करनेपर सूर्योदयसे लेकर आठ पहरतक अनाहार रहना चाहिये ॥ १४९ ॥

पिबंस्तोयाञ्जलिञ्चैकं भक्षन्नपिसमीरणम् ।

मानवः प्राणरक्षार्थं न भ्रश्येदुपवासतः ॥ १५० ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष प्राणधारणके लिये एक अंजली जल पी लेगा अथवा वायुभक्षण करेगा वह उपवाससे भ्रष्ट नहीं होगा ॥ १५० ॥

उपवासासमर्थश्चेद्बुजावाजरसापिवा ।

तदा प्रत्युपवासश्च भोजयेद्वादशाद्रिजान् ॥ १५१ ॥

अर्थ—यदि बुढ़ापे या दैहिक पीडाके मारे उपवास करनेको समर्थ न हो तो प्रत्येक उपवासके अनुकल्प स्वरूप (बदलमें) बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १५१ ॥

परनिन्दानिजोत्कर्षव्यसनायुक्तभाषणम् ।

अयुक्तं कर्म कुर्वाणो मनस्तापैर्विशुध्यति ॥ १५२ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष पराई निन्दा या अपनी प्रशंसा करे अथवा जो और पराई निन्दा आदिका आन्दोलन करे या अवैधकार्य करे तो वह केवल पछताना करनेसे शुद्ध हो सक्ता है ॥ १५२ ॥ -

अन्यानियानिपापानिज्ञानाज्ञानकृतान्यपि ।

नश्यन्तिजपनाद्देव्याःसावित्र्याःकौलभोजनात् ॥ १५३ ॥

अर्थ-और जो सब पाप हैं वह ज्ञानसे किये जाँय या अज्ञानसे किये जाँय भगवती गायत्रीका जप करके और कौल भोजन करातेही नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १५३ ॥

सामान्यनियमान्पुंसांस्त्रीपुपण्डेपुयोजयेत् ।

योपितान्तुविशेषोऽयंपतिरेकोमहागुरुः ॥ १५४ ॥

अर्थ-जो साधारण नियम पुरुषोंपर प्रगट किये गये हैं वही नियम नपुंसकोंपर और स्त्रियोंपर लगेंगे । स्त्रीजातिमें विशेषता यह है कि, उनके लिये स्वामीही महागुरु हैं ॥ १५४ ॥

महारोगान्वितायेचयेनराश्विररोगिणः ।

स्वर्णदानेनपूताःस्युर्देवैपैत्र्येऽधिकारिणः ॥ १५५ ॥

अर्थ-महाव्याधीसे असित और सदाके रोगी लोग सुवर्ण दान करके पवित्र हो दैव और पैतृककर्ममें अधिकारी होंगे १५५

अपघातमृतेनापिदूषितंविद्युदग्निना ।

गृहंविशोधयेद्धैमैर्व्याहृत्याशतसंख्यकैः ॥ १५६ ॥

अर्थ-यदि किसी गृहमें सर्पाघात या उद्वंघनादि (फाँसी वगैरह) से किसीकी अपमृत्यु हुई हो अथवा कोई घर विजलीकी आगसे दूषित हुआ हो तो “ भूः स्वाहा भुवः स्वाहा ” इत्यादि शतव्याहृति होम करके उस गृहको शुद्ध करे ॥ १५६ ॥

वापीकूपतडागेपुसास्थांशवनिरीक्षणात् ।

उद्धृत्यकुणपंतेभ्यस्ततस्तान्पारिशोधयेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ-यदि वापी, कूप, तडागादिमें अस्थियुक्त शव दिखलाईदे उस वापी, कूपादिको शुद्ध करे ॥ १५७ ॥

पूर्णाभिषेकमनुभिर्मन्त्रितैः शुद्धवारिभिः ।

पूर्णैस्त्रिसप्तकुम्भैस्तान्प्लावयेदिति शोधनम् ॥ १५८ ॥

अर्थ—उसको शोधन करनेका विधान यह है कि, इक्कीस घड़े जलसे भरे हुए पूर्णाभिषेकके मंत्रसे अभिमन्त्रित करके उनको इस जलाशयमें डालदे ॥ १५८ ॥

यदिस्वल्पजलास्तेस्युःश्वदुर्गन्धिदूषिताः ।

सपङ्कगालिलं सर्वमुद्धृत्याप्लावयेत्तुतान् ॥ १५९ ॥

अर्थ—यदि इन वापी, कूपादिमें जल अल्पहो और श्वकी दुर्गन्धिसे वह दूषित होगयाहो तो उस सबजलको और कीचड़को निकालकर पहले कहे हुए पूर्णाभिषेकके मंत्रसे अभिमन्त्रित इक्कीस घड़े शुद्धजल तिसमें डालदे ॥ १५९ ॥

सन्तिभूरीणितोयानिगजदघ्नानितेषुच ।

शतकुम्भजलोद्धारैरभिषेकेणशोधयेत् ॥ १६० ॥

अर्थ—उक्त जलाशयमें यदि गजभरके परिमाणका बहुतसा जल हो तो उससे शतघड़े जल निकालकर पहले कहे हुए मंत्रपढ़े इक्कीस घड़े जल उसमें डालकर उसको शुद्ध करले १६०

यद्येवंशोधितानस्युर्मृतस्पृष्टजलाशयाः ।

अपेयसलिलास्तेपांप्रतिष्ठामपिनाचरेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ—सब स्पृष्टजलाशय यदि इसप्रकारसेभी शोधित नहो तो उसका जल पीना उचित नहीं और उस जलाशयकी प्रतिष्ठाभी नहीं करे ॥ १६१ ॥

स्नानमेषुजलैरेपांकुर्वन्कर्मवृथाभवेत् ।

दिनमेकंविनाहारःशुष्येतपश्चामृताशनात् ॥ १६२ ॥

अर्थ—इस जलसे स्नानकरना या किसी कर्मका करना वृथा

होजायगा जो लोग इस जलसे न्हायेंगे या कोई कर्म करेंगे वह एकदिन अनाहार रहकर पंचामृत पान करनेसे शुद्ध होंगे १६२

याचकंधनिनंदद्वावीर्युद्धपराङ्मुखम् ।

दूषकंकुलधर्म्माणांमद्यपाञ्चकुलस्त्रियम् ॥ १६३ ॥

अर्थ-जो कोई धनवान होकर भाँगे, जो कोई संग्राममें विमुख होजाय यदि कोई कुलधर्मपर विद्वेष दिखावे यदि कोई कुलकामिनी सुरा पिये ॥ १६३ ॥

मित्रद्रोहकरंमर्त्यैस्वयंपापपरतंबुधम् ।

पश्यन्सूर्यस्मरन्विष्णुंसचैलंस्नानमाचरेत् ॥ १६४ ॥

अर्थ-यदि मित्रद्रोह करे यदि कोई पंडित होकर पापका आचरण करे । ऐसे आदमियोंको जो पुरुष देखले तो वह विष्णुजीका स्मरण करे । और सूर्यका दर्शनकर तत्काल उस वस्त्रमें स्नान करके पापसे छूटसक्ता है ॥ १६४ ॥

खरकुक्कुटकोलांश्चविक्रीणन्तोद्विजातयः ।

नीचवृत्तिचरन्तोऽपिशुष्येयुस्त्रिदिनव्रतात् ॥ १६५ ॥

अर्थ-जो द्विजातिके लोग गधे, कुक्कुट या शूकरको बेचे या और कोई नीच काम करें वह तीनदिनतक व्रत करनेसे शुद्ध होसक्ते हैं ॥ १६५ ॥

दिनमेकंनिराहारोद्वितीयंकणभोजनः ।

अपरन्तुनयेद्विस्त्रिदिनव्रतमम्बिके ! ॥ १६६ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! तीनदिनतक व्रत करनेकी रीति यह है कि, एक दिन अनाहार रहे, एक दिन कणभोजन करे, एकदिन जल पीकर रहे ॥ १६६ ॥

गृहेऽनुद्धाटितद्वारेऽनाहूतःप्रविशन्नरः ।

वारितार्थप्रवक्तापिपञ्चाहमशनंत्यजेत् ॥ १६७ ॥

अर्थ-यदि कोई बिना बुलाये ऐसे गृहमें चला जाय कि जिसका द्वार बंद है अथवा उसवातको कहे कि, जिसके कहनेको बर्ज दिया है तो उसे पांच दिनतक उपवास करना चाहिये ॥ १६७ ॥

आगच्छतो गुरुन्द्द्वानोत्तिष्ठेद्योमदान्वितः ।

तथैव कुलशास्त्राणि शुध्येदेकोपवासतः ॥ १६८ ॥

अर्थ-गुरुजनको आता हुआ देखकर जो पुरुष घमंडक मारे उठे नहीं अथवा जो पुरुष कुलशास्त्रको आता हुआ देखकर न उठे उसपापके लिये उसको एकदिन उपवास करना चाहिये ॥ १६८ ॥

एतस्मिच्छाम्भवेशास्त्रे व्यक्तार्थपदवृंहिते ।

कूटेनार्थकल्पयन्तः पतितायान्त्यधोगतिम् ॥ १६९ ॥

अर्थ-शिवजीके बनाये हुए इसशास्त्रमें सब अर्थ भली-भाँतिसे खुले हैं जो पंडितलोग इसका कूट अर्थ करेंगे वह पतित होकर नीच गतिको प्राप्त होंगे ॥ १६९ ॥

इदं ते कथितं देवि ! सारात्सारं परात्परम् ।

इहामुक्तार्थदधर्म्यपावनं हितकारकम् ॥ १७० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सार्वतन्त्र्योत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्ण-

यसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे स्वपरानिष्ठजनक

पापप्रायश्चित्तकथननामं एकादशोऽल्लासः ॥ ११ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैंने तुमसे जो कुछभी कहा सो परेसे परे सारकाभी सार धर्म है पवित्रकारक हितकारक और इस लोक व परलोकमें शुभ फलका देनेवाला है ॥ १७० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या

सदाशिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां प्रायश्चित्त-

कथननाम एकादशोऽल्लासः समाप्तः ॥ ११ ॥

द्वादशोल्लासः १२.

श्रीसदाशिव उवाच ।

भूयस्तेकथयाम्याद्ये ! व्यवहारान्सनातनान् ।

यात्रक्षन्प्रविदन् राजास्वच्छन्दं पालयेत्प्रजाः ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा:-हे आद्ये ! मैं फिर तुमसे सनातन व्यवहार कहता हूँ ज्ञानवान् राजा इसव्यवहारके अनुसार चलकर स्वच्छन्द हो प्रजापालन करसक्ता है ॥ १ ॥

नियमेन विनाराजो मानवाधनलोलुपाः ।

मिथस्ते विवदिष्यन्ति गुरुस्वजनवन्धुभिः ॥ २ ॥

अर्थ-यदि राजा नियमको स्थापन नहीं करे तो मनुष्य धनके लोभी होकर गुरुजनोंके साथ, स्वजनोंके साथ और वन्धु बान्धवोंके साथ परस्पर झगड़ा करेंगे ॥ २ ॥

व्यतिघ्नन्ति तदा देवि ! स्वार्थिनो विवत्तहेतवे ।

पापाश्रया भविष्यन्ति हिंसाचजिहीर्षया ॥ ३ ॥

अर्थ-हे देवि ! राजनियमके न होनेसे मनुष्य धनके अभिलाषी होकर परस्पर एक दूसरेको मारेंगे; वध करेंगे और वह हिंसाके हेतु और धन हरण करनेकी इच्छाके हेतु अनेक पापोंमें लित होंगे ॥ ३ ॥

अतस्ते पांहितार्थाय नियमो धर्मसम्मतः ।

नियोज्यते यमाश्रित्य न भ्रश्येयुः शुभान्नराः ॥ ४ ॥

दण्डयेत्पापिनो राजायथापापपनुत्तये ।

तथैव विभजेद्दायान् नृणां सम्बन्धभेदतः ॥ ५ ॥

अर्थ-इसकारणसे मनुष्योंका हित करनेके लिये धर्मानुगत राजनियम बाँधता हूँ; जो मनुष्य इननियमोंके अनुसार

कार्य करेंगे कदापि उनका अमंगल न होगा पाप दूर करनेके लिये जिसप्रकार राजा पापियोंको दण्ड देता है, वैसेही मनुष्योंके सम्बन्धानुसार दायविभाग करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

सम्बन्धोद्विविधोज्ञेयोविवाहाज्जन्मनस्तथा ।

तत्रोद्वाहिकसम्बन्धादपरोवलवत्तरः ॥ ६ ॥

अर्थ—विवाहाधीन और जन्माधीन, यह दो प्रकारके सम्बन्ध हैं इनमें वैवाहिक सम्बन्धसे जन्माधीन सम्बन्ध अधिक बलवान् है ॥ ६ ॥

दायेतूर्ध्वतनाज्ज्यायान्सम्बन्धोऽधस्तनःशिवे । ।

अधःतूर्ध्वक्रमादत्रपुमान्मुख्यतरःस्मृतः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे शिवे ! धनाधिकारमें ऊर्ध्वतन पुरुषोंके अधस्तन पुरुष अर्थात् दादा परदादा इत्यादिके रहते बेटे पोते इत्यादि धनके अधिकारी होंगे इसप्रकार अधः ऊर्ध्वके क्रमसे स्त्रीजातिकी अपेक्षा पुरुषजातिही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

तत्रापिसात्रिकर्षेणसम्बन्धोदायमर्हति ।

अनेनविधिनाधीराविभजेयुःक्रमाद्धनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसमें जिसपुरुषके साथ सम्बन्ध अतिनिकट है; वह पुरुषही दायाधिकारी हो सक्ता है इस प्रकार पण्डितगण क्रमके अनुसार विधिविधानसे धनको बाँटे ॥ ८ ॥

मृतस्यपुत्रेपौत्रेचकन्यासुपितरिस्थिते ।

भार्यायामपिदायार्हःपुत्रएव नचापरः ॥ ९ ॥

अर्थ—यदि मृतक पुरुषके बेटा, पोता, कन्या, पिता और भार्या आदि वर्तमान हो तो पुत्रही धनका अधिकारी होगा और कोई धनका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ ९ ॥

बहवस्तनयायत्रसर्व्वे तत्रसमांशिनः ।

ज्येष्ठेराज्याधिकारित्वंतत्तुवंशानुसारतः ॥ १० ॥

द्वादशोल्लासः १२.

श्रीसदाशिव उवाच ।

भूयस्तेकथयाम्याद्ये ! व्यवहारान्सनातनान् ।

यात्रक्षन्प्रविदन् राजास्वच्छन्दं पालयेत्प्रजाः ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा:-हे आद्ये ! मैं फिर तुमसे सनातन व्यवहार कहता हूँ ज्ञानवान् राजा इसव्यवहारके अनुसार चलकर स्वच्छन्द हो प्रजापालन करसक्ता है ॥ १ ॥

नियमेन विनाराज्ञो मानवाधनलोलुपाः ।

मिथस्ते विविदिष्यन्ति गुरुस्वजनबन्धुभिः ॥ २ ॥

अर्थ-यदि राजा नियमको स्थापन नहीं करे तो मनुष्य धनके लोभी होकर गुरुजनोंके साथ, स्वजनोंके साथ और बन्धु बान्धवोंके साथ परस्पर झगड़ा करेंगे ॥ २ ॥

व्यतिष्ठन्ति तदा देवि ! स्वार्थिनो विवृत्तहेतवे ।

पापाश्रया भविष्यन्ति हिंसाया च जिहीर्षया ॥ ३ ॥

अर्थ-हे देवि ! राजनियमके न होनेसे मनुष्य धनके अभिलाषी होकर परस्पर एक दूसरेको मारेंगे; वध करेंगे और वह हिंसाके हेतु और धन हरण करनेकी इच्छाके हेतु अनेक पापोंमें लिप्त होंगे ॥ ३ ॥

अतस्ते पांहितार्थाय नियमो धर्मसम्मतः ।

नियोज्यते यमाश्रित्य न भ्रश्येयुः शुभान्नराः ॥ ४ ॥

दण्डयेत्पापिनो राजायथापापानुत्तये ।

तथैव विभजेद्वायान् नृणां सम्बन्धभेदतः ॥ ५ ॥

अर्थ-इसकारणसे मनुष्योंका हित करनेके लिये धर्मानुगत राजनियम बाँधता हूँ; जो मनुष्य इन नियमोंके अनुसार

कार्य करेंगे कदापि उनका अमंगल न होगा पाप दूर करनेके लिये जिसप्रकार राजा पापियोंको दण्ड देता है, वैसेही मनुष्योंके सम्बन्धानुसार दायविभाग करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

सम्बन्धोद्विविधोज्ञेयोविवाहाजन्मनस्तथा ।

तत्रोद्वाहिकसम्बन्धादपरोवलवत्तरः ॥ ६ ॥

अर्थ-विवाहाधीन और जन्माधीन, यह दो प्रकारके सम्बन्ध हैं इनमें वैवाहिक सम्बन्धसे जन्माधीन सम्बन्ध अधिक बलवान् है ॥ ६ ॥

दायेतूर्ध्वतनाज्यायान्सम्बन्धोऽधस्तनःशिवे ! ।

अधऊर्ध्वक्रमादत्रपुमान्मुख्यतरःस्मृतः ॥ ७ ॥

अर्थ-हे शिवे ! धनाधिकारमें ऊर्ध्वतन पुरुषोंके अधस्तन पुरुष अर्थात् दादा परदादा इत्यादिके रहते बेटे पोते इत्यादि धनके अधिकारी होंगे इसप्रकार अध ऊर्ध्वके क्रमसे धीजातिकी अपेक्षा पुरुषजातिही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

तत्रापिसन्निकर्षेणसम्बन्धीदायमर्हति ।

अनेनविधिनाधीराविभजेयुःक्रमाद्धनम् ॥ ८ ॥

अर्थ-इसमें जिसपुरुषके साथ सम्बन्ध अतिनिकट है; वह पुरुषही दाय्याधिकारी हो सक्ता है इस प्रकार पण्डितगण क्रमके अनुसार विविधविधानसे धनको बाँटे ॥ ८ ॥

मृतस्यपुत्रेपौत्रेचकन्यासुपितरिस्थिते ।

भार्यायामपिदायार्हःपुत्रएव नचापरः ॥ ९ ॥

अर्थ-यदि मृतक पुरुषके बेटा, पोता, कन्या, पिता और भार्या आदि वर्तमान हो तो पुत्रही धनका अधिकारी होगा और कोई धनका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ ९ ॥

बहवस्तनयायत्रसर्व्वे तत्रसमांशिनः ।

ज्येष्ठेराज्याधिकारित्वंतत्तुवंशानुसारतः ॥ १० ॥

अर्थ-बहुतसे पुत्र हो तो सबको बराबर अंश मिले वंश-क्रमके अनुसार बड़ा पुत्रही राज्यका अधिकारी होगा ॥ १० ॥

ऋण्यत्पैतृकंतच्चशोधयेत्पैतृकैर्धनैः ।

तस्मिन्स्थितेविभागार्हंनभवेत्पैतृकंवसु ॥ ११ ॥

अर्थ-जो पिताका लिया ऋण हो तो वह पिताके धनसेही निबटाया जायगा पैतृक ऋणके रहते हुए पैतृक धन नहीं बट सकता ॥ ११ ॥

विभज्ययदिगृहीयुर्विभवंपैतृकंनराः ।

तेभ्यस्तद्धनमाहृत्यपितृणांदापयेन्नृपः ॥ १२ ॥

अर्थ-यदि पैतृक ऋणके रहतेहुये पुत्र पिताके धनको वाट कर ग्रहणकर लें तो राजा उनसे उसधनको लेकर पैतृक ऋणको भुगता दे (ऋणको भुगताकर जो वचे उसे पुत्र ग्रहण करलें) ॥ १२ ॥

यथास्वकृतपापेननिरयंयान्तिमानवाः ।

ऋणेनापितथावद्धःस्वयमेव नचापरः ॥ १३ ॥

अर्थ-जिसप्रकार मनुष्य अपने किये पापसे वैसेही सब अपनेकिये ऋणसे आपही बंधते हैं उसे आपही नरकको जाते हैं और कोई नहीं बंधता ॥ १३ ॥

साधारणधनंयच्चस्थावरंस्थावरेतरम् ।

अंशिनःप्राप्तुमर्हन्तिस्वंस्वमंशंविभागतः ॥ १४ ॥

अर्थ-स्थावर व अस्थावर जो कुछ साधारण धन हो हिस्से-दार भागके अनुसार उसमस अपना २ हिस्सा ले ले ॥ १४ ॥

अंशिनांसम्मतत्वेवविभागःपरिसिद्ध्यति ।

तेषामसम्मतौराजासमदृष्ट्यांशमाचरेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—जहांपर सब अंशियोंकी सम्मति होवे वहांपर सम (बराबर) विषम (छोटा बड़ा) जैसे भाग कियेजाँय वही सिद्ध होंगे. जहाँ अंशियोंकी सम्मति नहो वहांपर राजाको चाहिये कि, सबको बराबर भाग दे ॥ १५ ॥

स्थावरस्यचरस्यापिविभागानर्हवस्तुनः ।

मूल्यंतदुपभोगंवाप्यांशिनांविभजेन्नृपः ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि स्थावर या अस्थावर वस्तुका भाग न किया जा सके तो राजा उसका माल या उपसत्त्व अंशियोंको बाँटे ॥ १६ ॥

विभक्तेऽपिधनेयस्तुस्वीयांशंप्रतिपादयेत् ।

पुनर्विभज्यतद्व्यमप्राप्तांशायदापयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—यदि धन बाँटनेके पीछे कोई और पुरुष प्रमाणित करे कि, धनमें मेरा अंश है तो राजा उसधनको फिर बाँटे और जिसने अंश नहीं पाया है और जिस २ ने उन सबका अंश पायाथा उन सबको दे ॥ १७ ॥

कृतेविभागेद्रव्याणामंशिनांसम्मतांशिवे ! ।

पुनर्विवादयस्तत्रशास्योभवतिभूभृतः ॥ १८ ॥

अर्थ—हे शिवे ! जहांपर सब अंशियोंकी सम्मतिसे धनका विभाग होगया है वहांपर यदि कोई अंशी पहले कियेहुए विभागको अस्वीकार करके फिर झगड़ा करे तो राजा उसे दंड दे ॥ १८ ॥

स्थितेप्रेतस्यपौत्रेचभार्यायाञ्चपितर्य्यपि ।

पौत्रएवधनार्हःस्यादधस्ताज्जन्मगौरवात् ॥ १९ ॥

अर्थ—यदि मृतकपुरुषका पोता, भार्या और पिता विद्यमानहों तो यह पोताही धनका अधिकारी होगा क्योंकि, जन्मके हेतु पोतेकोही गौरव अधिक है ॥ १९ ॥

अपुत्रस्यस्थितेतातेसोदरेचपितामहे ।

जन्मतःसन्निकर्षेणपितैवास्यधनंहरेत् ॥ २० ॥

अर्थ-अपुत्रक मृतकपुरुषका पिता और सहोदर यदि जीवित हो तो जन्मके अनुसार सम्बन्धके हेतु पिताही उस धनका अधिकारी होगा ॥ २० ॥

विद्यमानासुकन्यासुसन्निकृष्टास्वपिप्रिये ।।

मृतस्यपौत्रोधनभाग्यतोमुख्यतरःपुमान् ॥ २१ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! अत्यन्त निकटकी कन्याके रहते पोता धनका अधिकारी होगा क्योंकि, स्त्रीकी अपेक्षा पुरुष जानिही श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

धनंमृतेनपुत्रेणपौत्रंयातिपितामहात् ।

अतोऽत्रगीयतेलोकैःपुत्ररूपःस्वयंपिता ॥ २२ ॥

अर्थ-यदि धनवानका पुत्र पहले मरगया हो तो वह दादेका धन पोतेकेपास चलाजायगा इस कारण संसारमें कहा करते हैं कि, पिता स्वयंही पुत्रस्वरूप है ॥ २२ ॥

औद्धाहिकेऽपिसम्बन्धेब्राह्मीभाय्यावरीयसी ।

अपुत्रस्यहरेद्वक्त्यंपत्युद्धेहार्द्धहारिणी ॥ २३ ॥

अर्थ-विवाहके संबन्धमें ब्राह्मविधिके अनुसार विवाहिता भार्याही श्रेष्ठ है अपुत्रककी मृत्यु होनेपर स्वामीकी अर्द्धांग-स्वरूप वह ब्राह्मीभार्याही धनकी अधिकारिणी होगी ॥ २३ ॥

पतिपुत्रविहीनातुसम्प्राप्यस्वामिनोधनम् ।

नैवदातुंनविक्रेतुंसमर्थास्वधनंविना ॥ २४ ॥

अर्थ-पतिपुत्रहीननारी यदि स्वामीके धनको पावे तो वह स्त्री अपने धनके सिवाय इसस्वामीके धनको न बेचसकेगी न दान करसकेगी ॥ २४ ॥

पितृभिः श्वशुरैर्व्यापिदत्तं यद्धर्मसम्मतम् ।

स्वकृत्योपार्जितं यच्च स्त्रीधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥

अर्थ-पिताका दिया हुआ धन, श्वशुरका दिया हुआ धन
अथवा धर्मके अनुसार अपने परिश्रमसे पैदा किया हुआ धन
(स्त्रीधन) कहलाता है ॥ २५ ॥

तस्यामृतायामृकथं तत्पुनः स्वामिपदं व्रजेत् ।

तदा सन्नतरोरिक्थमधोर्द्ध्वक्रमाद्धरेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीने स्वामीके धनको पाया है उसके मरनेपर
वह धन फिर उसके स्वामी धनकारूप होजायगा और उसके
स्वामीके अधस्तन वा ऊर्ध्वतन पुरुष निकटके अधिकारी
उसको पावेंगे ॥ २६ ॥

मृतेपत्यौस्वधर्मेण पतिवन्धुवशे स्थिता ।

तदभावे पितृवन्धोस्तिष्ठन्ती दायमर्हति ॥ २७ ॥

अर्थ-स्वामीके मरे पीछे स्त्री अपने धर्ममें निरत रहकर
पतिके बंधुओंके वशमें रहे जो वह न हों तो पिताके बंधुओंके
वशमें रहे, नहीं तो धनकी अधिकारिणी नहीं होगी ॥ २७ ॥

शङ्कितव्यभिचारापिनपत्युर्दायभागिनी ।

लभते जीवनं वस्त्रं भर्तुर्विभवहारिणः ॥ २८ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके ऊपर व्यभिचारकी शंका होगी वह स्वा-
मीके धनको नहीं पावेगी, परन्तु जो पुरुष उसके स्वामीके
धनका अधिकारी होगा विभवके अनुसार वह इसे केवल
जीविका तथा वस्त्र देगा ॥ २८ ॥

बह्वयश्चेद्वनितास्तस्य स्वयया तु धर्मतत्पराः ।

भजेरन्स्वामिनो वित्तं समांशेन शुचिस्मिते ! ॥ २९ ॥

अर्थ-हे शुचिस्मिते ! यदि स्वर्ग प्राप्त हुए पुरुषके बहुतसी

स्त्रियें हों और वह सब अपने धर्ममें निरत हों तो सबही समान अंश स्वामीके धनका कर लें ॥ २९ ॥

पत्युर्धनहरायाश्चमृतौभर्तृसुतास्थितौ ।

पुनःस्वामिपदंगत्वाधनंदुहितरं व्रजेत् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो स्वामीके धनको भोगनेवाली यह सबस्त्रियें मर-जाँय और स्वामीकी कन्या वर्तमान हो तो वह धन फिर स्वामी धनके स्थानमें होकर दुहितृगामी होगा ॥ ३० ॥

एवंस्थितायांकन्यायामृक्थंपुत्रवधूगतम् ।

तन्मृतौस्वामिनंप्राप्यश्चशुरात्तत्सुतामियात् ॥ ३१ ॥

अर्थ—यदि कन्याके रहते पुत्रवधूको धन मिले अर्थात् धनीकी मौतके पीछे पुत्र धनाधिकारीहो परलोकको चला जाय और तिसकी स्त्री वह धन पावे तो वह धन इसमृत-पुत्रवधूके स्वामीका स्थानीय होकर उसकी पितृदुहिता अर्थात् मृतपुत्रवधूके स्वामीकी बहनको मिलेगा ॥ ३१ ॥

पितामहस्यसत्त्वेऽपिवित्तंमातृगतं शिवे !

तस्यामृतायांपुत्रेणभर्त्राश्चशुरगम्भवेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे शिवे ! इसप्रकार दादाके रहते यदि धन मातृ-गामी हो तो माताकी मृत्युके पीछे वह धन पुत्रधनका स्थानीय होकर पितृसम्यन्धसे दादाके पास जायगा ॥ ३२ ॥

मृतस्योर्ध्वगतंवित्तं यथाप्राप्नोति तत्पिता ।

जनन्यपि तथाप्नोति पतिहीना भवेद्यदि ॥ ३३ ॥

अर्थ—मृतकपुरुषका ऊर्ध्वगत धन जैसे पिताको प्राप्त होता है वैसेही पतिहीन माताकोभी मिलता है ॥ ३३ ॥

अतः सत्यां जनन्यां तु विमातान धनं हरेत् ।

मृते जनन्यास्तं प्राप्य पित्रागच्छेद्विमातरम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—माताके रहते सौतेली माको धन नहीं मिलता, परन्तु

यदि इसमाताकी मृत्यु होवे तो पिताके सम्बन्धसे सौतेली माताभी धनकी भागिनी होगी ॥ ३४ ॥

अधस्तनानां विरहाद्यथारिक्थं न यात्यधः ।

येनैवाधस्तनं प्राप्तं तनैवोद्धृतदाव्रजेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—यदि अधस्तन न हो तो धन अधोगामी नहीं होता परन्तु वह धन जिसनियमसे अधोगामी होसकता है उस नियमसेही ऊर्ध्वगामी होगा, अर्थात् जो जन्मसम्बन्धसे निकट है या पुरुष है वही आगे धनका अधिकारी होगा ॥ ३५ ॥

अतः स्थितौ पितृव्यस्य धनं स्वसृगतञ्च सत् ।

पत्यां स्थितेन पत्यायामृतौ पितृव्यमाश्रयेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अतएव चचाके रहते यदि कन्या धनको पाजाय और यह कन्या बिनापुत्र उत्पन्न किये पतिके जीवित रहते परलोकको चली जाँय तो वह धन चचाहीको मिलेगा ॥ ३६ ॥

ऊर्ध्वाद्वि तमधः प्राप्य पुमांसमवलम्बते ।

अतः सत्यांसोदरायां वैमात्रेया धनं हरेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—धन ऊपरको पहुँचकर जब नीचेको चलता है तब वह पुरुषहीको पहुँचाता है, इसकारण सगीवहनके वर्तमान रहते भी सौतेला भैया धनका भागी होता है ॥ ३७ ॥

स्थितायां सोदरायाञ्च विमातुः पुत्रसन्ततौ ।

वैमात्रेयगतं वित्तं वैमात्रेयान्वयो भजेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—सगीवहन और विमाताके पुत्रके वर्तमान रहते भैयाके पास गया हुआ धन सौतेले भाईके वंशवालेही प्राप्त करेंगे ॥ ३८ ॥

मृतस्य सोदरो भ्राता वैमात्रेयस्तथा शिवे ! ।

धनं पितृगतत्वेन विभजेतां समांशिनौ ॥ ३९ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जो मृतपुरुषका सगाभाई और सौतेलाभाई वर्तमान हो तो वह धन पितृगत हांकर पितृसम्बन्धसे, सम्बन्धी, सहोदर और सौतेलाभाई यह बराबर बाँटले ॥ ३९ ॥

कन्यायांजीवितायाश्चतदपत्यंनदायभाक् ।

यत्रयद्वाधितंवित्तंतन्मृतावपरं व्रजेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-कन्याके जीवित रहते हुए उसकी गर्भकी संतान धनाधिकारी नहीं होगी । क्योंकि, यहांपर कन्याही उसकी बाधक है, उस बाधकस्वरूप कन्याकी जब मृत्यु होजाय तब यह धन उसका सन्तान पावेगा ॥ ४० ॥

विजयेयुर्दुहितरःपुत्राभावेपितुर्वसु ।

उद्वाहयन्त्योऽनृढान्तुपितुःसाधारणैर्धनैः ॥ ४१ ॥

अर्थ-यदि पुत्र न हो तो कन्याओंको चाहिये कि, अपने पिताके धनको बाँटले, परन्तु इस साधारण पिताके धनसे पहले अनृढा कन्याका विवाह करदेना चाहिये ॥ ४१ ॥

असन्तत्यामृतायाश्चस्त्रीधनंस्वामिनं व्रजेत् ।

अन्यत्तुद्रविणंयायादासंतत्पदमाश्रयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-संतानरहित स्त्रीकी मृत्यु होनेपर उसका स्वामी स्त्रीधनको प्राप्त करे । स्त्रीधनके सिवाय और धन जिस पुरुषने दियाथा वही पुरुष उसको प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥

प्रेतलब्धधनैर्नारीविदध्यादात्मपोषणम् ।

पुण्यन्तुतदुपस्वत्वैर्नशक्तादानविक्रये ॥ ४३ ॥

अर्थ-उत्तराधिकारके सम्बन्धसे जो धन स्त्रीको मिले उससे वह अपना भरण पोषण करे और उसकी आमदनीसे पुण्यकर्म करे परन्तु वह इस सम्पत्तीको न दान करसक्ती है न बेचसक्ती है ॥ ४३ ॥

पितामहस्तृपायाञ्चसत्यांतातविमातरि ।

पितामहगतंरिक्थंतत्पुत्रेणस्तृपां व्रजेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जहाँपर चाची या सौतेली चाची विद्यमानहो वहाँ जो धन दादेपर पहुँचकर फिर चचाके पास पहुँचे तो वह धन चाचीहीको मिलेगा ॥ ४४ ॥

पितामहेपितृव्येचतथाभ्रातरिजीवति ।

अधोरावानांमुख्यत्वाद्भ्रातैवधनभागभवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ—यदि दादा, चचा और भ्राता जीवितहो नीचेके पुरुषों की प्रधानताके हेतु भैयाही धनका भागी होगा ॥ ४५ ॥

पितृव्यात्सन्निकर्षेऽत्रतुल्यौभ्रातृपितामहौ ।

धनंपितृपदंगत्वाप्रयातुर्भ्रातरं व्रजेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—चचासे सम्बन्धकी निकटताके हेतु भैया और भ्राता दोनोंही बराबर निकट आतेहैं । ऐसी जगह मृतकपुरुषका धन पितृस्थानमें पहुँचकर भैयाको पहुँचता है ॥ ४६ ॥

स्थितेऽप्यपत्येदुहितुःप्रेतस्यपितरिस्थिते ।

दुहितृपत्यंधनभागधनंयस्मादधोमुखम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो मृतकपुरुषका धेवता और पिता वर्तमान हो तो धेवताही धनका अधिकारी होगा क्योंकि, यह धन स्वभावसेही नीचेको पहुँचता है ॥ ४७ ॥

स्वःप्रयातुःस्थितेतातेतथामातरिकालिके ! ।

पुंसोमुख्यतरत्वेनधनहारीभवेत्पिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे कालिके ! यदि मृतकपुरुषके मायाप जीवित हो तो पुरुषकी विप्रधानताके हेतु पिताही अधिकारी होगा ॥ ४८ ॥

स्थितः स्वपितृसापिण्डोवर्त्तमानेऽपिमातुले ।

प्रेतस्यधनहारीस्यात्पितुः सम्बन्धगौरवात् ॥ ४९ ॥

अर्थ-यदि मृतकपुरुषके पिताका सपिंडी और मामा जीवितहो तो पिताके सम्बन्धके गौरवसे पिताका सपिंडी पुरुषही धनको पावे ॥ ४९ ॥

अधस्ताद्रमनाभावेधनमृद्धं भवं गतम् ।

तत्रापि पुंसां मुख्यत्वादितं पितृकुलं शिवे ! ।

अतोऽत्र सन्निकृष्टोऽपि मातुलो नाप्नुयाद्धनम् ॥ ५० ॥

अर्थ-हे शिवे ! जहाँपर धन नीचेको नहीं चलता ऐसी जगह वह ऊपरको पहुँचता है तिसमें पुरुषकी श्रेष्ठताके हेतु पहले धन पिताकेही कुलमें जाता है इसकारणसे इस स्थानमें मामा निकटका होकरभी धनका भागी नहीं हो सक्ता ॥ ५० ॥

अजीवत्पितृकः पौत्रः पितृव्यैः सह पार्वति ! ।

पितामहस्यद्रविणात्स्वपितुर्दायमर्हति ॥ ५१ ॥

अर्थ-जहाँपर मातापिताहीन पोता और पुत्र दोनों हैं तहाँपर मातापिताहीन पोता पिताके नियत धनके अंश-को पावेगा ॥ ५१ ॥

भ्रातृहीना तथा पौत्री पितृव्यैः समभागिनी ।

पितामहधनं साभ्याहरेच्चैन्मृतमातृका ॥ ५२ ॥

अर्थ-भ्रातृहीन और माता पिताहीन पोती, यदि अपने धर्ममें रहे तो दादाके धनमेंसे चचाके सहित बराबर भाग धनका पावेगी ॥ ५२ ॥

संत्यां पौत्र्याः पितामह्यां पौत्र्याः पितृष्वस्यर्यपि ।

वित्तोपितृगते देवि ! पौत्री तत्राधिकारिणी ॥ ५३ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो दादी और बुआ दोनों जीवित हो तो पिताको पहुँचते हुए दादाके धनकी पोतीही मालिक होगी ५३

अधोगामिपुवित्तेषुपुमाञ्ज्यायानधस्तनः ।

ऊर्ध्वगामिधनेश्रेष्ठःपुमानूद्धौद्रवोभवेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ-जो धन नीचेको पहुँचताहो तो नीचेके पुरुषही उसमें प्रधान हैं यदि धन ऊपरको पहुँचे तो ऊपरके पुरुषोंको प्रधानताही देखी जायगी ॥ ५४ ॥

अतःसुपायांपौत्र्याञ्चसत्यांदुहितरिप्रिये ! ।

प्रेतस्यविभवंहर्तुंनैवशक्नोतितत्पिता ॥ ५५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! इसकारणसे बेटेकी बहू, पोती और कन्याके जीवित रहते मृतकपुरुषका धन मृतकपुरुषका पिता ग्रहण नहीं करसक्ता ॥ ५५ ॥

यदापितृकुलेनस्यान्मृतस्यधनभाजनम् ।

पूर्वाक्तविधिनारिकथंमातामहकुलंभजेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ-जो मृतकपुरुषके कुलमें कोई उत्तराधिकारी न हो तो पहली कहीहुई युक्ति और विधिके अनुसार वह धनवानके कुलमें जायगा ॥ ५६ ॥

मातामहगतंवित्तंमातुलैस्तत्सुतादिभिः ।

अधऊर्ध्वक्रमेणैवंपुमांसंस्त्रियमाश्रयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-नानाके कुलमें गये हुए धनको मामा और मामाके पुत्र पावेंगे यहभी पहले नीचेके पुरुष तिनके न होनेपर ऊँचेके पुरुष और प्रधानताकेहेतु पुरुषजाति, तत्पश्चात् निकृष्टताके हेतु नारीजातिको धनका अधिकार मिलेगा ॥ ५७ ॥

ब्राह्म्यन्वयेविद्यमानेपित्नोःसापिण्डनेस्थिते ।

मृतस्यशैवीतनयोनपितुर्दायभागभवेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो ब्राह्मविवाहकी स्त्रीके संतान होवे और माताके सर्पिण्डके रहते शैवविवाहसे व्याही हुई स्त्रीका संतान धनका भागी नहीं होगा ॥ ५८ ॥

शैवीपत्नीचतत्पुत्रालभेरन्धनभागिनः ।

ग्रासमाच्छादनंभद्रे ! स्वप्रयातुर्यथाधनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! जो लोग इस धनके अधिकारी होंगे उनसे शैवविवाहसे व्याही भार्या और उसके गर्भसे हुई संतान मृतक पुरुषके विभवानुसार उदरपूरणको कुछ पावेंगे ॥ ५९ ॥

शैवोद्गाहंप्रकुर्वन्तीशैवभर्तृवपालयेत् ।

सौम्याञ्चेन्नाधिकारोऽस्याःपित्रादीनांधनेप्रिये ॥ ६० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! शैवविवाहसे विवाहीहुई भार्याको शैव स्वामीही पालन करे जो यह स्त्री व्यभिचारिणी हो तो उसका पालन नहीं करे; यह शैवीभार्या पिता, माता इत्यादिके धनकी अधिकारिणी नहीं होती ॥ ६० ॥

अतःसत्कुलजांकन्यांशैवैरुद्गाहयन्पिता ।

क्रोधाद्बालोभतोवापिसभवेल्लोकगर्हितः ॥ ६१ ॥

अर्थ-इसकारण क्रोध होनेसे या लोभके बश होकर अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई कन्याको पिता शैवविवाहसे व्याहदेगा तो वह संसारमें धृणित और निन्दित होगा ॥ ६१ ॥

शैवीतदन्वयाभावेसोदकोब्रह्मदोनृपः ।

हरेयुःक्रमतोवित्तंमृतस्यशिवशासनात् ॥ ६२ ॥

अर्थ-महादेवजीकी आज्ञा है कि, यदि शैवीभार्या या उसके गर्भसे उत्पन्न हुआ संतान न हो तो क्रमानुसार समानोदक ब्रह्मदाता और राजा मृतकपुरुषके धनको ग्रहण करे ॥ ६२ ॥

पिण्डदात्सप्तपुरुषाःसपिण्डाःकथिताःप्रिये ! ।

सोदकादशमान्ताःस्युस्ततःकेवलगोत्रजाः ॥ ६३ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! पिण्डदातासे सातवें पुरुषतकको सपिण्डशे-
वृद्धसे पुकारा जा सक्ता है, आठवेंसे लेकर दशमपुरुषतक
समानोदक कहा जायगा जो लोग दशम पुरुषके अन्तर्गत
नहीं हैं उनकी केवल सुगोत्र कहा जा सक्ता है ॥ ६३ ॥

विभक्तंद्रविण्यञ्चसंसृष्टंस्वेच्छयातुचेत् ।

अविभक्तविधानेनभजेरंस्तद्धनंपुनः ॥ ६४ ॥

अर्थ-जो धन एकवार विभागकर फिर अपनी इच्छाके
अनुसार मिलालिया गया है वह अविभक्त धन है । विभा-
गकी विधिके अनुसार इस अविभक्त धनको फिर बाँटे ॥ ६४ ॥

अविभक्तेविभक्तेवायस्ययादृग्विभागिता ।

मृतेऽपितस्यदायादास्तादृग्विभवभागिनः ॥ ६५ ॥

येयस्यधनहर्तारोभवेयुर्जिविनावधि ।

दद्युःपिण्डं त एवास्यशैवभार्यासुतंविना ॥ ६६ ॥

अर्थ-जब बटे हुए या बचे हुए धनमें जिसका जैसा अंश
नियत है वह पुरुष यदि मरजाय तो उसका उत्तराधिकारी
पुरुष जबतक जीवित रहे तबतक उसको पिण्डदे । परन्तु
शैवभार्याका पुत्र पिण्डदान नहीं कर सकेगा ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

लोकेऽस्मिजन्मसम्बन्धाद्यथाशौचंविधीयते ।

धनभागित्वसम्बन्धात्रिरात्रंविहितं तथा ॥ ६७ ॥

अर्थ-जिसप्रकार जन्मके सम्बन्धमें अशौच
है वैसेही उत्तराधिकारके सम्बन्धमें तीन रात्रि
होता है ॥ ६७ ॥

अर्थ-जो ब्राह्मविवाहकी स्त्रीके संतान होवे और माताके सपिंडके रहते शैवविवाहसे व्याही हुई स्त्रीका सन्तान धनका भारी नहीं होगा ॥ ५८ ॥

शैवीपत्नीचतत्पुत्रालभेरन्धनभागिनः ।

ग्रासमाच्छादनंभद्रे ! स्वप्रयातुर्यथाधनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! जो लोग इस धनके अधिकारी होंगे उनसे शैवविवाहसे व्याही भार्या और उसके गर्भसे हुई सन्तान मृतक पुरुषके विभवातुसार उदरपूरणको कुछ पावेंगे ॥ ५९ ॥

शैवोद्गाहंप्रकुर्वन्तीशैवभर्तृवपालयेत् ।

सौम्याश्चेन्नाधिकारोऽस्याःपित्रादीनांधनेप्रिये ॥ ६० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! शैवविवाहसे विवाहीहुई भार्याको शैव स्वामीही पालन करे जो यह स्त्री व्यभिचारिणी हो तो उसका पालन नहीं करे; यह शैवीभार्या पिता, माता इत्यादिके धनकी अधिकारिणी नहीं होती ॥ ६० ॥

अतःसत्कुलजांकन्यांशैवैरुद्गाहयन्पिता ।

क्रोधाद्बालोभतोवापिसभवेल्लोकगर्हितः ॥ ६१ ॥

अर्थ-इसकारण क्रोध होनेसे या लोभके बश होकर अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई कन्याको पिता शैवविवाहसे व्याहदेगा तो वह संसारमें घृणित और निन्दित होगा ॥ ६१ ॥

शैवीतदन्वयाभावेसोदकोब्रह्मदोनृपः ।

हरेयुःक्रमतोवित्तमृतस्यशिवशासनात् ॥ ६२ ॥

अर्थ-महादेवजीकी आज्ञा है कि, यदि शैवीभार्या या उसके गर्भसे उत्पन्न हुआ संतान न हो तो क्रमानुसार समानोदक ब्रह्मदाता और राजा मृतकपुरुषके धनको ग्रहण करे ॥ ६२ ॥

पिण्डदात्सप्तपुरुषाःसपिण्डाःकथिताःप्रिये ! ।

सोदकादशमान्ताःस्युस्ततःकेवलगोत्रजाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! पिण्डदातासे सातवें पुरुषतकको सपिण्डश-
ब्दसे पुकारा जा सक्ता है, आठवेंसे लेकर दशमपुरुषतक
समानोदक कहा जायगा जो लोग दशम पुरुषके अन्तर्गत
नहीं हैं उनको केवल सगोत्र कहा जा सक्ता है ॥ ६३ ॥

विभक्तद्रविण्यञ्चसंसृष्टस्वेच्छयातुचेत् ।

अविभक्तविधानेनभजेरस्तद्धनंपुनः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो धन एकवार विभागकर फिर अपनी इच्छाके
अनुसार मिलालिया गया है वह अविभक्त धन है । विभा-
गकी विधिके अनुसार इस अविभक्त धनको फिर बाँटे ॥ ६४ ॥

अविभक्तेविभक्तेवायस्ययादृग्विभागिता ।

मृतेऽपितस्यदास्यादास्तादृग्विभवभागिनः ॥ ६५ ॥

येयस्यधनहर्तारोभवेयुर्जविनावधि ।

दद्युःपिण्डंतएवास्यशैवभार्यासुतंविना ॥ ६६ ॥

अर्थ—जब बटेहुए या बचे हुए धनमें जिसका जैसा अंश
नियत है वह पुरुष यदि मरजाय तो उसका उत्तराधिकारी
पुरुष जबतक जीवित रहे तबतक उसको पिण्डदे । परन्तु
शैवभार्याका पुत्र पिण्डदान नहीं कर सकेगा ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

लोकैऽस्मिन्नन्मसम्बन्धाद्यथाशौचंविधीयते ।

धनभागित्वसम्बन्धात्रिरात्रंविहितंतथा ॥ ६७ ॥

अर्थ—जिसप्रकार जन्मके सम्बन्धमें अशौचकी व्यवस्था
है वैसेही उत्तराधिकारके सम्बन्धमें तीन रात्रितक अशौच
होता है ॥ ६७ ॥

पूर्णेऽशौचेऽथवाऽपूर्णेऽतत्कालाभ्यन्तरेऽशुते ।

श्रवणाच्छेषदिवसैर्विशुद्धयेयुर्द्विजादयः ॥ ६८ ॥

अर्थ-जो पूर्ण अशौच अथवा खंड अशौच होवे और जो नियत हुए अशौचकालके मध्यमें वह सुना जाय तो अशौच के जितने दिन बाकी रहे होंगे द्विजातिगण उतनेही दिनमें शुद्धि प्राप्त कर सकेंगे ॥ ६८ ॥

कालातीतेतुविज्ञातेऽखण्डेऽशौचं न विद्यते ।

पूर्णेऽत्रिरात्रं विहितं न चेत्संवत्सरात्परम् ॥ ६९ ॥

अर्थ-यदि अशौचकालके बीतजानेपर वर्षभरके बीचमें खण्ड अशौचका कारण सुना जाय तो अशौच नहीं होता । यदि अशौचकालके व्यतीत होजानेपर वर्षके भीतरही पूर्ण अशौचका कारण सुना जाय तो तीनरात्रितक अशौच होता है । वर्षके उपरान्त कारण श्रवण करनेसे कोई अशौच नहीं होता ॥ ६९ ॥ -

वर्षातीतेऽपि चेन्मातुः पितुर्वामरणश्रुतौ ।

त्रिरात्रमशुचिः पुत्रस्तथाभर्तुः पतिव्रता ॥ ७० ॥

अर्थ-यदि एकवर्ष बीतनेपर पुत्र, पिता या माताकी मृत्युका संवाद सुना जाय अथवा पतिव्रता स्त्री स्वामीके मरनेका समाचार सुने तो तीन रात्रितक अशौच रहेगा ॥ ७० ॥

अशौचाभ्यन्तरेऽस्मिन्नशौचान्तरमापतेत् ।

गुर्वशौचेन मर्त्यानां शुद्धिस्तत्र विधीयते ॥ ७१ ॥

अर्थ-जो एक अशौचमें दूसरा अशौच हो जाय तो गुरु अशौचसे अर्थात् दीर्घकालव्यापी अशौचसे मनुष्योंको शुद्धि प्राप्त होगी ॥ ७१ ॥

अशौचानांगुरुत्वञ्चकालव्यापित्वगौरवात् ।

व्याप्यव्यापकयोर्मध्येगरीयोव्यापकंस्मृतम् ॥ ७२ ॥

अर्थ-बहुतकालतक रहनेवाले अशौचको गुरु, कहा जाता है इस कारण थोड़े समयतक रहनेवाले अशौचको लघु कहा जाता है । व्याप्य और व्यापक इन दो प्रकारके अशौचोंमें व्यापक अशौचकाही गुरुत्व (भारीपन) माना जाता है ॥ ७२ ॥

यद्यशौचान्तदिवसेपतेदपरसूतकम् ।

पूर्वाशौचेनशुद्धिःस्यादाद्यवृद्ध्यादिनद्वयम् ॥ ७३ ॥

अर्थ-जो मरण अशौचके या जन्म अशौचके पिछले दिन रातके बीचमें और कोई मरणका या जन्मका खंड अशौच आपड़े तो पहले अशौचसेही उसका अशौच जायगा । अर्थात् खंड अशौचको ग्रहण नहीं किया जायगा यदि पूर्ण अशौच होतो पहले अशौचके पीछे एकदिन बढ़ालेना चाहिये ॥ ७३ ॥

तावत्पितृकुलाशौचंयावन्नोद्वहनांस्त्रियाः ।

जातेपरिणयेपित्रोर्मृतोऽयहमुदाहृतम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-विवाह न होनेतक स्त्रियोंका अशौच पितृकुलमें होता है विवाही नारीके माता पिता मरे तो तीन रात्रितक उसको अशौच होता है ॥ ७४ ॥

विवाहानन्तरंनारीपतिगोत्रेणगोत्रिणी ।

तथागृहीतगोत्रेणदत्तपुत्रस्यगोत्रिता ॥ ७५ ॥

अर्थ-विवाह हो जानेपर स्त्री पतिके गोत्रको प्राप्त करलेती है ऐसेही गोदलिया पुत्र गोदलेनेवालेके गोत्रको प्राप्त होगा ७५

सुतमादायसम्मत्याजनन्याजनकस्यच ।

स्वगोत्रनामान्युल्लिख्यसंस्कुर्यात्स्वजनैःसह ॥ ७६ ॥

अर्थ-माना पिता दोनोंकी सम्पत्तिके अनुसार दत्तकपुत्र लेलेनेपर दत्तक ग्रहण करनेवाला अपना गोत्र और नाम उच्चारण कर अपने कुटुम्बियोंके साथ इस दत्तकपुत्रका संस्कार करे ॥ ७६ ॥

औरसेऽपियथापित्रोर्धनेपिण्डेऽधिकारिता ।

आदात्रोर्दत्तकेतद्वद्यतोऽस्यपितरौहितौ ॥ ७७ ॥

अर्थ-औरस पुत्र जैसे पिता माताका धनाधिकारी और पिण्डाधिकारी होता है, वैसेही दत्तकपुत्रभी दत्तक लेनेवाले-धनका और पिण्डका अधिकारी होगा । कारण कि, ग्रहण करनेवाले ही इस दत्तकपुत्रके पिता माता हैं ॥ ७७ ॥

आपञ्चादंशिशुंगृह्णन्सवर्णात्पग्नौपालयेत् ।

पञ्चवर्षाधिकोयालोदत्तकोनप्रशम्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ-सवर्णसे पाँचवर्षकी उमरवाले अधरा दत्तसे कम उमरके बालकको गोद लेकर प्रतिपालन करे । दत्तकके ग्रहण करनेमें पाँचवर्षसे अधिक उमरवाला बालक श्रेष्ठ नहीं है ७८

भ्रातृपुत्रोऽपिदत्तश्चेद्गृहीतेवभवेत्पिता ।

उत्पादकःपितृव्यःस्यात्सर्वकर्मसुकालिके ! ॥ ७९ ॥

अर्थ-हैं कालिके । जो भ्राताका पुत्र (भतीजा) दत्तक हो तो दत्तकग्रहीताही इस दत्तकपुत्रका पिता होगा और इसका बाप सब कार्योंमें ही चन्दाकी न्याय समझा जायगा ॥ ७९ ॥

योयस्यधनहर्तास्यात्सनद्गम्माणिपालयेत् ।

संरक्षेत्रियमांस्तस्यतद्गन्धर्वगतिपयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-जो पुरुष जिसके धनका अधिकारी हो तो वही स्वामीके धर्म व नियमकी रक्षा करे और सबप्रकारसे धनीके वंशुओंको संतुष्ट करे ॥ ८० ॥

कानीनागोलकाःकुण्डाअतिपातकिनश्चये ।

नाशौचंमरणेतेषानैवदायाधिकारिता ॥ ८१ ॥

अर्थ-कानीन, गोलक कुंड (१) और अतिपातकी पुत्रोंके मरणमें अशौच नहीं होगा और वह धनके अधिकारीभी नहीं होसकेंगे ॥ ८१ ॥

लिङ्गच्छेदोदमोयेपांयासांनासानिकृन्तनम् ।

महापातकिनाश्चापिमृतौनाशौचमाचरेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ-जिन पुरुषोंका लिङ्गच्छेदरूप दंड हुआ है, अथवा जिन स्त्रियोंकी नाक राजदंडसे काटी गई है, अथवा जो ब्रह्म-हत्यादि करके महापातकी हुए हैं, उनके मरनेसे अशौचग्रहण नहीं किया जायगा ॥ ८२ ॥

नृणामुद्देशहीनानांपरिवारान्धनान्यपि ।

पालयेद्रक्षयेद्राजायावद्वादशवत्सरम् ॥ ८३ ॥

अर्थ जो पुरुष निरुद्देश (बेपत्ते या गुम) होगये हैं उनके परिवार और धनकी रक्षा बारहवर्षतक राजाको करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

द्वादशाब्देगतेतेपांदर्भदेहान्विदाहयेत् ।

त्रिरात्रान्तेतत्सुताद्यैःप्रेतत्वंपरिमोचयेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ-बारह वर्ष बीतनेपर इस निरुद्देश पुरुषके कुशसे बनेहुए देहका दाह करावे । उसके पुत्रादि तीन राततक अशौच ग्रहण करके श्राद्धादिसे उसके प्रेतपतको छुडावे ॥ ८४ ॥

(१) पिताके घर करी वन्याके गर्भसे छिपे २ जिस पुत्रका जन्महो उसको कानीन कहतेहैं विधवाके गर्भमें उपपत्तीसे गुप्तभाव करके जिस पुत्रका जन्म हुआहै उसका नाम गोलक है स्वाभाविके जीवित रहते पारके दास जो पुरुष गुप्तभावेसे जन्मा है तिसका नाम कुंड है ।

ततस्तत्परिवारेभ्यः पुत्रादिक्रमतोधनम् ।

विभज्य नृपतिर्दद्यादन्यथापातकी भवेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-फिर इस खोए हुए पुरुषका धन यथावत् बाँटकर पुत्रादि क्रमसे उसके परिवारवालोंको राजा दे देवे न देनेसे राजाको पाप होगा ॥ ८५ ॥

नकोऽपिरक्षितायस्य दीनस्यापद्रुतस्य च ।

तस्यैव नृपतिः पातायतो भूपः प्रजाप्रभुः ॥ ८६ ॥

अर्थ-अनाथ, दीन और विषदमें पड़े पुरुषकी राजा रक्षा करे क्योंकि राजाही प्रजाका स्वामी है ॥ ८६ ॥

यद्यागच्छेदनुदिष्टो विभागान्तेऽपि कालिके ! ।

तस्यैव दाराः पुत्राश्च धनं तस्यैव नान्यथा ॥ ८७ ॥

अर्थ-हे कालिके ! यदि खोया हुआ पुरुष विभाग होनेके पीछे आजाय तो वह अपने स्त्री, पुत्र और सब धनको पावेगा, इसमें अन्यथा नहीं होसकता ॥ ८७ ॥

न समर्थः पुमान् दातुं पैतृकं स्थावरञ्च यत् ।

स्वजानायाथ वान्यस्मै दायादानुमतिं विना ॥ ८८ ॥

अर्थ-विना उत्तराधिकारियोंकी सम्मतिके पुरुषजातिभी स्थावर पैतृक धन (जमींदादि इत्यादि) स्वजनको या और किसी पुरुषको दान नहीं करसक्ता ॥ ८८ ॥

यत्तु स्वोपाजितं रिक्थं स्थावरं स्थावरेतरम् ।

अस्थावरं पैतृकं च स्वेच्छया दातुमर्हति ॥ ८९ ॥

अर्थ-अपना पैदा किया हुआ स्थावर या अस्थावर धन और पैतृक अस्थावर धन अपनी इच्छाके अनुसार दानादि किया जासक्ता है ॥ ८९ ॥

स्थितेपुत्रेऽथवापत्न्यांकन्यायांतत्सुतेऽपिवा ।

जनकेचजनन्यांवाभ्रातर्येवंस्वसूर्यपि ॥ ९० ॥

अर्थ—यदि पुत्र विद्यमान हो, अथवा स्त्री हो या कन्या या धेवता विद्यमान हो अथवा माता, पिता, भ्राता वा बहन जीवितहो ॥ ९० ॥

स्वार्जितंस्थावरधनमस्थावरधनञ्चयत् ।

अस्थावरपैतृकञ्चदातुंसर्व्वक्षमोभवेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ—तो भी अपना पैदा किया हुआ स्थावर और अस्थावर धन और पैतृक अस्थावर (नगदी) धन दान किया जासक्ता है ९१

धनमेवंविधानेनदत्तंवाधर्मसात्कृतम् ।

पुंसांतदन्यथाकर्तुंपुत्राद्यैर्नैवशक्यते ॥ ९२ ॥

अर्थ—जो ऐसा धन किसीकोइस प्रकारसे पुरुष देदे या धर्म-कर्ममें लगादे तो उसके पुत्र पौत्रादि उसके विपरीत नहा करसक्ते ॥ ९२ ॥

धर्मार्थस्थापितंरिक्थंदातारक्षितुमर्हति ।

नप्रभुःपुनरादातुंधर्मोद्विष्ययतः प्रभुः ॥ ९३ ॥

अर्थ—जो धन धर्मार्थ लगाया गया है धनका देनेवालाही उसकी रक्षादि करेगा, परन्तु फिर वहभी उस धनको ग्रहण नहीं करसक्ता कारण कि, धर्मही उस धनका अधिकारी होगया ९३

मूलंवातदुपस्वत्वयथासङ्कल्पमम्बिके ।

स्वयंवातप्रतिनिधिर्धर्मार्थविनियोजयेत् ॥ ९४ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! अपने आप प्रतिनिधि (कारिन्दा, मुनीम) के संकल्पके अनुसार मूलधन या उसकी आमदनी धर्मकार्यमें लगादे ॥ ९४ ॥

स्वोपार्जितधनस्यार्द्धदायादायापिचेद्वनी ।

दद्यात्स्नेहेनतच्चान्योनान्यथाकर्तुमर्हति ॥ ९५ ॥

अर्थ-यदि किसी उत्तराधिकारीको स्नेहके वश धनका स्वामी अपने धनका ऊर्ध्वभाग देदे तो और कोई उसके विपरीत बात नहीं करसक्ता ॥ ९५ ॥

यदिस्वोपार्जितस्याद्धमेकस्मैधनहारिणाम् ।

ददात्यन्यैश्चदायादैःप्रतिरोद्धुंनशक्यते ॥ ९६ ॥

अर्थ-उत्तराधिकारियोंमेंसे यदि कोई एकपुरुषकोही अपने पैदा किये हुए धनका आधाभाग देदे तो और उत्तराधिकारी उसके विरुद्ध आचरण नहीं करसकेंगे ॥ ९६ ॥

एकेनपितृवित्तेनयत्रवित्तमुपार्जितम् ।

पित्रेसमांशादायादानलाभार्हाविनार्जकम् ॥ ९७ ॥

अर्थ-जो बहुतसे भाइयोंमेंसे एकभाई पैतृकधनसे धनको पैदा करे, तो इस पैतृकधनमेंही सब भाइयोंका यथायोग्य अंश रहेगा, पैदा किया हुआ धन पैदा करनेवालेके सिवाय और कोई नहीं पावेगा ॥ ९७ ॥

पैतृकाणिचवित्तानिनष्टेऽप्युद्धारयेत्तुयः ।

दायादानांतद्धनेभ्यउद्धर्त्ताद्रथंशमर्हति ॥ ९८ ॥

अर्थ-यदि पैतृक नष्ट हुए द्रव्यका उद्धार एक भ्राता करले तो उस धनसे उद्धार करनेवालेको दो भाग मिले और सब भ्राता एक २ अंश पावेंगे ॥ ९८ ॥

पुण्यंवित्तंचविद्याचनाश्रयेदशरीरिणम् ।

शरीरन्तुपितुर्यस्मात्किन्नस्यात्पैतृकंवसु ॥ ९९ ॥

अर्थ-अशरीरी पुरुषको पुण्य, धन और विद्या यह आश्रय नहीं करते, जब कि यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ, तब कौनसा धन पैतृक नहोगा ॥ ९९ ॥

पृथग्नैः पृथग्वित्तैर्मनुजैर्यदुपार्जितम् ।

सर्वतत्पितृसंक्रान्तंतदास्वोपार्जितंकुतः ॥ १०० ॥

अर्थ-मनुष्य पृथक् अन्न (अलग भोजनादि बनवाकर) और पृथक् धन (मा बापसे अलग) होकरभी जो कुछ पैदा करेंगे वह सबही पितृसम्बन्धी हैं अतएव अपने पैदा किये धनका स्थल कहाँ है ॥ १०० ॥

अतोमहेशि ! स्वायासैर्येनयद्धनमर्जितम् ।

स्वोपार्जितंतदेवस्यात्सतत्स्वामीनचापरः ॥ १०१ ॥

अर्थ-इसकारण हे महेश्वर ! जो पुरुष अपने आप परिश्रम करके धन पैदाकरे वह इसकाही पैदा किया है अर्थात् उसमें और किसीका अधिकार नहीं है ॥ १०१ ॥

मातरंपितरंदेवि ! गुरुंचैवपितामहान् ।

मातामहान्करेणापिप्रहरन्नैवदायभाक् ॥ १०२ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो पुरुष माता, पिता, गुरु दादा या नानाको हाथसे भी प्रहारकरे वह धनका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ १०२ ॥

निघ्नन्नन्यानपिप्राणैर्नतेपांधनमाप्नुयात् ।

हतानामन्यदायादाभवेयुर्थनभागिनः ॥ १०३ ॥

अर्थ-इसप्रकार उत्तराधिकारताके सम्बन्धसे धन प्राप्त होकर लोभसे या और किसी सम्बन्धसे सम्बन्धी पुरुषके प्राणोंका नाश करे तोभी वह नाशहुए पुरुषके धनको नहीं पावेगा । उस मरे हुए पुरुषके धनका अधिकारी और कोई उत्तराधिकारी होगा ॥ १०३ ॥

नपुंसकाः पद्गवश्चयसाच्छादनमम्बिके ! ।

यावज्जीवनमर्हन्तिनतेस्युर्दायभागिनः ॥ १०४ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! लँगड़े और नपुंसक जीवनभर ग्रासाच्छादन (रोटीकपड़ा) पावेंगे धनके भागी नहीं होसकते ॥ १०४ ॥

सस्वामिकंप्राप्तधनं पथिवायत्रकुञ्चित् ।

नृपस्तत्स्वामिनेप्राप्त्वादापयेत्सुविचारयन् ॥ १०५ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष मार्गमें वा और किसी स्थानमें दूसरेका धन पाजावे, तो राजा सूक्ष्म विचार करके वह धन उस धनके स्वामीको दिलादे ॥ १०५ ॥

अस्वामिकानांजीवानामस्वामिकधनस्यच ।

प्रातातत्रभवेत्स्वामीदशमांशंनृपेऽर्पयेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष अस्वामिक (अनाथ बेवारिस) धन या जीव, पावे तो पानेवालाही उसका अधिकारी होगा, परन्तु राजा उसका दशमांश ग्रहण करे ॥ १०६ ॥

स्थावरधनमन्यस्मैस्थितेसान्निध्यवर्त्तिनि ।

योग्येकैतरिविक्रेतुंशक्तःस्थावराधिपः ॥ १०७ ॥

अर्थ-जन्मके संबन्धसे या विवाहके संबन्धसे निकट होनेके कारण उचित क्रेता (खरीददार) जो मोललेनेका अभिलाषी हो तो स्थावर स्वामी (जमींदार) और किसीके हाथ स्थावर सम्पत्ति (जायदाद इत्यादि) नहीं बेच सकेगा ॥ १०७ ॥

सान्निध्यवर्त्तिनांज्ञातिःसवर्णोवाविशिष्यते ।

तयोरभावेसुहृदोविक्रेत्रिच्छागरीयसी ॥ १०८ ॥

अर्थ-मोल लेनेवालोंमें क्रमानुसार सपिंड समानोदक, सगोत्र और सजातीय पुरुष स्थावर सम्पत्तिको मोलले सकेंगे; यदि यह लोग मोल लेनेमें असमर्थ हों तो इष्ट मित्र मोल लेंगे; बहुतसे इष्ट मित्र होतो बेचनेवाला जिसको चाहे उसके हाथ अपनी स्थावर सम्पत्ति बेच देवे ॥ १०८ ॥

निर्णीतमूल्येऽप्यन्येन स्थावरस्य क्रयोद्यमे ।

तन्मूल्यं चेत्समीपस्थो रातिक्रेतानचापरः ॥ १०९ ॥

अर्थ—जो और किसीके साथ स्थावर सम्पत्ति (जायदाद इत्यादि) की दर ठहर गई हो और क्रेता (खरीददार) यदि उस मोलपर लेनेको तयार हो उस समयमें निकटका सम्बन्धी व कोई पुरुष जो उतनाही मूल्य देवे, तो वह उसको मोल लेगा और वह उसको मोल नहीं ले सकेगा कि, जिसके साथ दर ठहराई गई थी ॥ १०९ ॥

मूल्यं दातुमशक्तश्चेत्सम्मतविक्रयेऽपि वा ।

सन्निधिस्थस्तदान्यस्मै गृहीशक्रोतिविक्रये ॥ ११० ॥

अर्थ—यदि निकटके सम्बन्धका पुरुष मोल देनेमें असमर्थ हो अथवा दूसरेके हाथ बेंच देनेकी सम्पत्ति हो तो वह गृहस्थ दूसरे आदमीके हाथ भी वह स्थावरसम्पत्ति बेंच सकेगा ॥ ११० ॥

क्रीतं चेत्स्थावरं देवि ! परोक्षे प्रतिवासिनः ।

श्रवणदेवतन्मूल्यं दत्त्वा सौप्राप्तुमर्हति ॥ १११ ॥

अर्थ—हे देवि ! जो निकटसम्बन्धि और पड़ोसीके न जानते (पसगैवतमें) और कोई स्थावरसम्पत्तिको मोललेलेवे तो यह निकटका पुरुष यह सुनतेही मोल देकर उस स्थावरसम्पत्तिको ले सक्ता है ॥ १११ ॥

क्रेता तत्र गृहारामान्विनिर्माति भनक्ति वा ।

मूल्यं दत्त्वा पिनाप्रोति स्थावरं सन्निधिस्थितः ॥ ११२ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष निकट पुरुषके और पड़ोसीके न जानते हुए स्थावरसम्पत्तिको मोल लेकर उसमें गृह उद्यानादि बनावे या बुडवावे; तो निकटका पुरुष मूल्य देनेपर भी उसको प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥ ११२ ॥

करहीनाप्रतिहतावन्यारण्यातिदुर्गमा ।

अनादिष्टोऽपितांभूमिसम्पन्नांकर्तुमर्हति ॥ ११३ ॥

अर्थ-जो भूमि जलादिके अधिक होनेसे उपजाऊ नहीं है (बनेली है) जंगल है, या अतिदुर्गम है । लोग बिना राजाकी आज्ञाके भी ऐसे स्थानको जोतने बोनके योग्य करसक्ते हैं ॥ ११३ ॥

बहुप्रयाससाध्यायास्तस्याभूमेर्महीभृते ।

दत्त्वादशांशंभुजीयाद्भूमिस्वामीयतो नृपः ॥ ११४ ॥

अर्थ-यद्यपि यह भूमि बहुतसी मेहनत करनेसे ठीक होगी तथापि उसमें जो कुछ उत्पन्न होगा उसका दशमांश राजाको देना चाहिये कारण कि, राजाही सब भूमिका स्वामी है ॥ ११४ ॥

वापीकूपतडागानांखननंवृक्षरोपणम् ॥

परानिष्टकरेदेशेनगृहंकर्तुमर्हति ॥ ११५ ॥

अर्थ-जिस जगह कुछ पराया बिगाड हो सक्ता है, उस जगह वापी खुदवाना, कुआ बनाना, तडाग खनन करना वृक्ष लगा ना अथवा घर बनाना नहीं हो सक्ता है ॥ ११५ ॥

देवार्थदत्तकूपादौतथास्रोतस्वतजिले ।

पानाधिकारिणःसर्वेसेचनेऽन्तिकवासिनः ॥ ११६ ॥

अर्थ-जो जलाशय और कूपादि देवताके अर्थ बने हैं उनका और नदीका जलपान करनेमें सबहीका अधिकार है और उनके तीरपर वास करके सबही कोई इस जलका व्यवहार कर सक्ते हैं ॥ ११६ ॥

यत्तोयसेचनाल्लोकाभवेयुर्जलकातराः ।

नसिञ्चेयुर्जलं तस्मादपिसन्निधिर्वर्त्तिनः ॥ ११७ ॥

अर्थ—जिसका जलव्यवहार करनेसे मनुष्योंको जलकष्टहोवे निकट रहनेवालेभी उसके जलको व्यवहारमें नहीं ला सकेंगे ॥ ११७ ॥

धनानामविभक्तानामंशिनांसम्पत्तिविना ।

तथानिर्णीतवित्तानामसिद्धौन्यासविक्रयौ ॥ ११८ ॥

अर्थ—जिस स्थावर या अस्थावर धनका विभाग नहीं हुआ, विना भागीदारोंकी सम्पत्तिके उसको कोई बन्धक (गिरवी) नहीं रखसक्ता और न बेचसक्ता है, जिस सम्पत्तिकी अधिकारिताके विषयमें सन्देह है अथवा जिस सम्पत्तिका परिमाण नियत नहीं हुआहै उसका बेचना गिरवी रखना असिद्ध होगा ॥ ११८ ॥

स्थाप्यतांवद्धवित्तानांजानात्रप्रेऽप्ययत्नतः ।

तन्मूल्यंदापयेत्तेनस्वामिनेसर्वथानृपः ॥ ११९ ॥

अर्थ—जो वस्तु गिरवी रक्खी गई है, वह यदि जानबूझकर या अयत्न (लापरवाही) से नष्टकरदियाजाय तो राजाको चाहिये कि, महाजनसे उसका मोल लेकर देनदारको दे देवे । अथवा जो कोई पुरुष किसीके पास अपनी कोई वस्तु धरोहर रक्खे और यह वस्तु जानकर या अयत्नसे नष्टहो जाय तो राजा उसका मोल ग्रहण करके धरोहर रखनेवालेको दिलादे ॥ ११९ ॥

अभिमत्यास्थापकस्यपश्चादिन्यस्तवस्तुनाम् ।

व्यवहारेकृतेतत्रधर्त्तासम्पोषयेत्पशून् ॥ १२० ॥

अर्थ—जो कोई किसीके पास पशु आदि जीव धरोहरमें रक्खे और धरोहर रखनेवालेकी सम्पत्तिसे यह पशुआदि व्यवहारमें लाएजाय, तो जिसके पास पशु धरोहर रक्खे गये हैं उसेही इन पशुओंको भोजनादि देना पड़ेगा ॥ १२० ॥

लाभेनियोजयेद्यत्रस्थावरादीनिमानवः ।

नियमेनविनाकाललाभयोरन्यथाभवेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ—यदि कोई अदमी लाभकी आशासे स्थावर व अ-
स्थावर सम्पत्ति काममें लगादे और समय व लाभका परि-
माण नियत नहो तो वह असिद्ध हो सक्ता है ॥ १२१ ॥

साधारणानिवस्तूनिलाभार्थनैवयोजयेत् ।

मृतेपितरिसर्वेषामंशिनांसम्मतिंविना ॥ १२२ ॥

अर्थ—पिताके परलोकवासी होनेपर समस्त भागीदारोंकी
सम्मतिके विना कोईभी साधारण सम्पत्ति लाभके लिये
कार्यमें नहीं लगा सक्ता ॥ १२२ ॥

क्रमं व्यत्ययमूल्येनद्रव्याणां विक्रये सति ।

नृपस्तदन्यथाकर्तुं क्षमो भवति पार्वति ॥ १२३ ॥

अर्थ—हे पार्वति ! जो बड़े मोलकी चीज थोड़े मोलमें, या
थोड़े मोलकी चीज बड़े मोलमें बिकजाय तो राजा उसको
असिद्ध करसक्ता है ॥ १२३ ॥

जननञ्चापिमरणं शरीराणाम्यथा सकृत् ।

दानं तथैव कन्याया ब्राह्मोद्वाहः सकृत् सकृत् ॥ १२४ ॥

अर्थ—जैसे एकवारसे अधिक जन्म व मृत्यु नहीं होती
वैसेही दान और कन्याका ब्राह्मविवाह एक वारसे अधिक
नहीं होसक्ता ॥ १२४ ॥

नैकपुत्रः सुतं दद्यान्नैकस्त्रीकस्तथास्त्रियम् ।

नैककन्यः सुतां शिवोद्वाहे पितृहितः पुमान् ॥ १२५ ॥

अर्थ—कोई अपने इकलौते पुत्रको दान नहीं करसक्ता
कोई अपनी अकेली स्त्रीको दान करनेका सामर्थ्य नहीं

रखता पितृहितकारी पुरुषके यदि एकही कन्याहो तो वह उस कन्याका शिवविवाह नहीं करसक्ता ॥ १२५ ॥

दैवेपित्र्यचवाणिज्येराजद्वारेविशेषतः ।

यद्विदध्यात्प्रतिनिधिस्तन्त्रियन्तुः कृतिर्भवेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ-देवताके कष्टमें वाणिज्य और विशेष करके राजद्वारमें नियुक्त प्रतिनिधि (वकील) जो कुछ करे वह करना उस नियोगकर्ताकाही करना समझा जायगा ॥ १२६ ॥

नदण्डार्हः प्रतिनिधिस्तथादूतोपिसुव्रते ।

नियोक्तृकृतदोषेणविधिरेपसनातनः ॥ १२७ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! सदासे विधि चली आई है कि, नियोग करनेवाला जो किसी दोषसे दूषितहो नो उसके दोषसे प्रतिनिधि दंडका भागी नहीं होसक्ता ॥ १२७ ॥

ऋणेकृपौचवाणिज्येतथासर्वेषुकर्मसु ।

यद्यदङ्गीकृतंलोकैस्तत्कार्यधर्मसम्मतम् ॥ १२८ ॥

अर्थ-ऋण (कर्ज), कृपि (खेती), वाणिज्यमें (वाणिज्य) व्यापार (सौदागरी) व और सब कार्योंमें जैसे अंगीकार करे और धर्मानुसार हो तो वैसाही आचरण करना चाहिये १२८

अधीशेनावितंविश्वंनाशंयान्तिनिनक्षवः ।

तत्पातृन्पातिविश्वेशस्तस्माल्लोकहितोभवेत् ॥ १२९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे सनातनव्यवहारकथनं नामद्वादशोऽल्लासः ॥ १२ ॥

अर्थ-इस संसारकी रक्षा करनेवाला जगदीश्वर है, जो लोग इस जगत्का बुरा नैवले हैं, तनका मध्यं नाश होजाता है ।

ईश्वरसे पाले जाते हुए जगतकी जो लोग रक्षा करते हैं जगदीश्वर उनकीभी रक्षा करता है अतएव सदाही जगतका हित करना चाहिये ॥ १२९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यास-
दाशिवसंवादेब्रह्मदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां सनातनव्यवहार
कथननाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

इतिनिगदितवन्तंदेवदेवमहेशं
निखिलनिगमसारंस्वर्गमोक्षैकबीजम् ॥
कलिमलकलितानांपावनैकान्तचित्ता
त्रिभुवनजनमातापार्वतीप्राहभक्त्या ॥ १ ॥

अर्थ-सब नियमोंका सार और स्वर्ग वा मोक्षका बीज-
रूप यह वाक्य जब देवदेव महादेवजी कहचुके तब कलि-
मलसे कलुषित हुए जीवोंकी पवित्रताका अत्यन्त अभिलाष
करनेवाली त्रिलोकीके जीवोंकी माता श्रीपार्वतीजी भक्तिस-
हित कहती भई ॥ १ ॥

श्रीदेवुवाच ।

महद्योनेरादिशक्तेर्महाकाल्यामहाद्युतेः ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मभूतायाःकथंरूपानुरूपणम् ॥ २ ॥

अर्थ-भगवतीजीने कहा-जो महद्योनि अर्थात् जिससे सारा
ब्रह्माण्ड उत्पन्नहोरहा है जो महाद्युति अर्थात् जिससे स्थूलसू-
क्ष्म सारा संसार प्रकाशमान है जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अर्थात्
जो बड़ी कठिनाईसे जानी जाती है उन महाकालीजीके रूप-
का निरूपण किसप्रकारसे उचित होसکتा है ॥ २ ॥

रूपं प्रकृतिकार्याणां सा तु साक्षात्परात्परा ।

एतन्मे संशयं देव ! विशेषाच्छेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अर्थ—हे देव ! प्राकृतिक कार्य अर्थात् पाञ्चभौतिक घटपटा-
दिकाही रूप है महाकाली साक्षात् परेसे परे हैं । हमें इस
बातमें बड़ा संशय है आपमेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीवदाशिव उवाच ।

उपासकानां कार्याय पुरैव कथितं प्रिये ! ।

गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीमहादेवजी बोले:—मैंने पहले ही तुमसे कहा है कि,
उपासकोंके कार्यके अर्थ गुण और क्रियाके अनुसार देवीका रूप
कल्पित किया गया है ॥ ४ ॥

श्वेतपीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते ।

प्रविशन्ति तथा काल्यांसर्वभूतानि शैलजे ! ॥ ५ ॥

अर्थ—हे शैलनन्दिनि ! जैसे श्वेत पीले आदि रंग केवल एक
काले रंगमें लीन होजाते हैं, वैसेही सारे पदार्थ एक कालीजीमें
लीन होजाते हैं ॥ ५ ॥

अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणायानिराकृतेः ।

हितायाः प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः ॥ ६ ॥

अर्थ—इसकारण उनलोगोंने जो कि योगारूढ़ हुए हैं, निर्गुण
निराकारा संसारकी हित करनेवाली कालशक्तिका कृष्णवर्ण
निरूपण किया है ॥ ६ ॥

नित्यायाः कालरूपाया अव्ययायाः शिवात्मनः ।

अमृतत्वाल्ललटेऽस्याः शशिचिह्नं निरूपितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—वह नित्य कालरूप, अविनाशी और मंगलमयी हैं इस

वापीकूपगृहारामदेवप्रतिकृतेस्तथा ।

प्रतिष्ठासूचितापूर्वगदितानविशेषतः ॥ १७ ॥

अर्थ-आपने पहले वापी, कुआ, गृह, आराम, व देवप्रतिमा इन सबका वर्णन किया है; परन्तु विशेषतासे कुछ नहीं कहा १७

तद्विधानमपित्रोतुमिच्छामित्वन्मुसाम्बुजात् ।

कथ्यतां परमेशान ! कृपयायदिरोचते ॥ १८ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! मैं आपके मुखकमलसे उस सम्पूर्ण विधानको भी सुना चाहती हूँ, जो आपकी रुचि हो तो कृपाकरके कहिये ॥ १८ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

गुह्यमेतत्परंतत्त्वं यत्पृष्टं परमेश्वरि ! ।

कथयामितवस्नेहात्समाहितमनाः शृणु ॥ १९ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा:-तुमने इन अतिगोपनीय-तत्त्वोंको बूझा तुम्हारे स्नेहके वशसे मैं कहता हूँ तुम हृदयको सावधान करके सुनो ॥ १९ ॥

सकामाश्चैव निष्कामाद्विविधाभुविमानवाः ।

अकामानां पदं मोक्षः कामिनां फलमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ इस पृथ्वीपर मनुष्य दो प्रकारके हैं सकाम और निष्काम, निष्काम पुरुष मोक्षपदको पाते हैं और सकाम जिस फलको पाते हैं वह मैं तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ २० ॥

यो यद्देवप्रतिकृतिं प्रतिष्ठापयति प्रिये ! ।

स तल्लोकमवाप्नोति भोगानपि तदुद्भवान् ॥ २१ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो पुरुष जिस देवताके प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह पुरुष उसी देवताके लोकमें उस देवताके प्रसादसे अनेक प्रकारकी भोग्य करने योग्य वस्तुओंका भोग करता है २१

मृन्मयेप्रतिविम्बेतुवसेत्कल्पायुतंदिवि ।

दारुपापाणधातूनांक्रमादशगुणाधिकम् ॥ २२ ॥

अर्थ-मृत्तिकाकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेवाला पुरुष दशहजार कल्पतक स्वर्गमें वास करता है, काठकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेसे दशगुण समय अर्थात् एकलाखकल्प, पत्थरकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेसे तिससे शतगुणा समय अर्थात् दशलक्ष कल्प अर्थात् करोड़ कल्पतक देवलोकमें वास होता है ॥ २२ ॥

तृणकाष्ठादिरचितं ध्वजवाहनसंयुतम् ।

मंदिरं देवमुद्दिश्य काममुद्दिश्य वानरः ।

संस्कुर्व्यादुत्सृजेद्वापितस्य पुण्यं निशामय ॥ २३ ॥

अर्थ-देवताकी प्रीतिके लिये अथवा किसी कामनासे जो पुरुष ध्वज और वाहनके साथ तृणकाष्ठादिनिर्मित घरको बनायकर भेट दे उससे क्या पुण्य होता है सो कहता हूं सुनो २३

तृणादिनिर्मितं गेहं यो दद्यात्परमेश्वरि ! ।

वर्षकोटि सहस्राणिसर्वसे देववेष्मनि ॥ २४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! तृणादिसे बने हुए गृहको दान करनेवाला पुरुष हजार करोड़ वर्षतक देवलोकमें वास करता है २४

इष्टकागृहदाने तु तस्माच्छतगुणं फलम् ।

ततोऽयुतगुणं पुण्यं शिलागेहप्रदानतः ॥ २५ ॥

अर्थ-ईंटसे बने हुए घरका दान करनेवाला पुरुष इससे शतगुण फल पावेगा । पत्थरका बना घर दान करनेवाला पुरुष उससे दशगुणे फलको भागेगा ॥ २५ ॥

सेतुसंक्रमदाताद्ये । यमलोके न पश्यति ।

सुखं सुरालयं प्राप्य मोदते त्वर्निवासिभिः ॥ २६ ॥

अर्थ-हे आद्ये ! पुल बनवानेवाले पुरुषको यमलोकका मुख नहीं देखना पड़ता, वह परमसुख देवसदनमें जाय स्वर्गवासियोंके साथ आनंद करताहै ॥ २६ ॥

वृक्षारामप्रतिष्ठातागत्वात्रिदशमन्दिरम् ।

कल्पपादपवृन्देऽपुनिवसन्दिव्यवेश्मनि ।

भुङ्क्तेऽनोरमान्भोगान्मनसोऽयानभीप्सितान् ॥ २७ ॥

अर्थ-वृक्ष और कुलवाड़ीकी प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष देवलोकमें जाय, कल्पवृक्षके पौधोंसे विराजमान हुए दिव्य गृहमें वास करके अभिलाषाके अनुसार मनकी रमानेवाली भोगने योग्य वस्तुओंके समूहको भोग करता है ॥ २७ ॥

प्रीतयेऽसर्वसत्त्वानां यैः प्रदधुर्जलाशयम् ।

विधूतपापास्तेऽप्राप्य ब्रह्मलोकमनामयम् ।

निवसेयुः शतवर्षान् गम्भसां प्रतिशीकरम् ॥ २८ ॥

अर्थ-सर्वप्राणियोंकी तृप्तिके लिये जलाशयका उत्सर्ग करनेवाला पुरुष पापराहित हो वा निर्दोष हो ब्रह्मलोकमें चला जाता है और उस जलाशयमें जितने जलके कण होंगे उतने शत वत्सरतक वह ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ २८ ॥

यो दद्याद्वाहनं देवि ! देवताप्रीतिकारकम् ।

स तेन रक्षितो नित्यं तल्लोके निवसेच्चिरम् ॥ २९ ॥

अर्थ-हे देवि ! देवताकी प्रसन्नताके लिये किसी वाहनका दान करनेवाला पुरुष सदा उस वाहनकरके रक्षित हो बहुत कालतक देवलोकमें वास करेगा ॥ २९ ॥

मृन्मये वाहने दत्ते यत्फलं जायते भुवि ।

दारुजेत दशगुणं शिलाजेत दशाधिकम् ॥ ३० ॥

अर्थ-इस पृथ्वीमें मृत्तिकाका पात्र दान करनेसे जो फल होता है, काठके पात्रको दान करनेसे तिससे दशगुण फल होता है और पत्थरका पात्र दान करनेसे तिससेभी दशगुण फल होता है ॥ ३० ॥

रीतिकाकांस्यताम्रादिनिर्मितेदेववाहने ।

दत्तेफलमवाप्नोतिकमाच्छतगुणाधिकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-पीतल, कांसी, तांबा आदि धातुओंसे बनेहुए देववाहनके दान करनेसे क्रमानुसार शतगुण फल अधिक होता है ३१

देव्यगारेमहासिंहंवृषभंशङ्करालये ।

गरुडकैशवेगेहेप्रदद्यात्साधकोत्तमः ॥ ३२ ॥

अर्थ-परमसाधक पुरुष, भगवतीके गृहमें महासिंह, महादेवजीके मंदिरमें बैल और विष्णुजीके मंदिरमें गरुड बनाते हैं ३२

तीक्ष्णदंष्ट्रःकरालास्यःसदाशोभितकन्धरः ।

चतुरङ्गध्रिर्वज्रनखोमहासिंहःप्रकीर्तितः ॥ ३३ ॥

अर्थ-जिसके दाँत तीक्ष्ण हैं, जिसका वदनमंडल भयंकर है, जिसकी गर्दन केशरसमूहसे शोभायमान है, जिसके नाखून वज्रकी समान कठिन हैं ऐसे चतुष्पद जन्तुओंको महासिंह कहा जाता है. अर्थात् (इसप्रकार महासिंह देवीके मंदिरमें स्थापित करना चाहिये) ॥ ३३ ॥

शृङ्गायुधःशुद्धकायःचतुष्पादःसितक्षुरः ।

वृहत्ककुत्कृष्णपुच्छःश्यामस्कन्धोवृषःस्मृतः ॥ ३४ ॥

अर्थ-जिसके शरीरका वर्ण श्वेत है, जिसके मस्तकपर दो सिंग शोभा दे रहे हैं, जिसके छुर श्वेतवर्ण हैं, जिसकी पीठपर ककुद है, जिसका कंधा श्यामवर्ण है ऐसे चौपाए जन्तुको बैल कहा जाता है ॥ ३४ ॥

गरुडःपक्षिजंयस्तुनरास्योदीर्घनासिकः ।

पादसङ्कोचसंविष्टःपक्षयुक्तःकृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥

अर्थ-गरुडजीकी जंघा पक्षीकी समान, बदन मनुष्यकी समान और नासिका लम्बीहो दो पंख होंवें यह गरुडजी दोनों पांव सकौड़े हाथ जोड़े बैठे हुए हों (इस प्रकारकी गरुडमूर्ति घासुदेवजीके मंदिरमें स्थापन करनी चाहिये) ॥ ३५ ॥

पताकाध्वजदानेनदेवप्रीतिःशतंसमाः ।

ध्वजदण्डस्तुकर्तव्योद्वात्रिंशद्धस्तसम्मितः ॥ ३६ ॥

अर्थ-देवालयमें ध्वजा पताका दान करनेसे देवतालोग शतवर्षतक प्रसन्न रहते हैं ध्वजाका दंड बत्तीस हाथ लम्बा करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सुदृढच्छिद्ररहितःसबलःशुभदर्शनः ।

वेष्टितोर्क्तवस्त्रेणकोटौचक्रसमन्वितः ॥ ३७ ॥

अर्थ-ध्वजाका यह दंड मजबूत छिद्ररहित सीधा, देखनेमें अच्छा और लालवस्त्रसे लपेटा हुआ हो । उसके अग्रभागमें विष्णुचक्र रहे ॥ ३७ ॥

पताकातत्रसंयोज्यातत्तद्वाहनचिह्निता ।

प्रशस्तमूलामूक्ष्माग्रादिव्यवस्त्रविनिर्मिता ।

शोभमानाध्वजाग्रेयापताकासाप्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥

अर्थ-इस दंडके अग्रभागमें पताका लगानी चाहिये पताकाका पिछला भाग श्रेष्ठ और अग्रभाग सूक्ष्म हो तिसको रमणीय वस्त्रसे बबाना चाहिये । तिसमें वन २ देवताओंके वाहनोंके चिह्न हों यह पताका ध्वजाके आगे शोभायमान होती रहे ॥ ३८ ॥

वासोभूषणपर्यङ्कयानसिंहासनानिच ।

पानप्राशनताम्बूलभाजनानिपतद्ब्रह्म ॥ ३९ ॥

अर्थ-जो-वस्त्राभूषण, सिंहासन, गिलास, भोजनपात्र (थाली इत्यादि) ताम्बूल पात्र (खासदान) पीकदान ॥ ३९ ॥

मणिमुक्ताप्रवालादिरत्नान्यात्माप्रियञ्चयत् ।

योदद्यादेवमुद्दिश्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।

सतल्लोकंसमासाधतत्तत्कोटिगुणंलभेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-मणि, मुक्ता, मूँगा आदि रत्न और अपनी प्यारी वस्तुयें देवताके अर्थ श्रद्धाभक्तिके साथ दान करता है, वह पुरुष उसही देवताके स्थानमें जायकर उस दी हुई वस्तुका कोटिगुण फल प्राप्त करसक्ता है ॥ ४० ॥

कामिनांफलमित्युक्तंक्षयिष्णुस्वप्नराज्यवत् ।

निष्कामानान्तुनिर्वाणंपुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-कामना करके कर्म करनेवालोंका फल स्वप्नमें प्राप्त हुए राज्यकी समान क्षयशील है, निष्काम होकर कर्म करनेवालोंको जन्म नहीं लेना पड़ता वह लोग निर्वाण मुक्तिपदको पाते हैं ॥ ४१ ॥

जलाशयगृहारामसेतुसंकमशाखिनाम् ।

देवतानांप्रतिष्ठायांवास्तुदैत्यंप्रपूजयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-जलाशयप्रतिष्ठा, गृहप्रतिष्ठा, आरामप्रतिष्ठा, सेतुप्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा और देवप्रतिष्ठाके समय वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अनर्चायित्वायोवास्तुंकुर्यात्कर्माणिमानवः ।

विघ्नन्तस्त्याचरेद्वास्तुःपरिवारगणैःसह ॥ ४३ ॥

अर्थ-जो मनुष्य विना गृहदेवताकी पूजा किये देवप्रतिष्ठा आदि कोई कर्म करे तो वास्तुदेवता अर्थात् गृहदेवता परिवारके साथ मिलकर उसके तिस शुभकर्ममें विघ्न करदेते हैं ॥ ४३ ॥

कपिलास्यःपिङ्गकेशोभीषणोरक्तलोचनः ।

कोटराक्षोलम्बकर्णोदीर्घजंघोमहोदरः ॥ ४४ ॥

अर्थ-कपिलास्य, पिङ्गकेश, भीषण, रक्तलोचन, कोटराक्ष, लम्बकर्ण, दीर्घजंघ, महोदर ॥ ४४ ॥

अश्वतुण्डःकाककण्ठोवज्रबाहुर्व्रतान्तकः ।

एतेपरिकरावास्तोःपूजनीयाःप्रयत्नतः ॥ ४५ ॥

अर्थ-अश्वतुण्ड. काककंठ, वज्रबाहु, व्रतान्तक यह सब वास्तुदेवताका परिवार है यत्रसहित इनकी पूजा करे ॥४५॥

मण्डलंशृणुवक्ष्यामियत्रवास्तुंप्रपूजयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-जिस मंडलमें वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये अब उसको कहताहूं सुनो ॥ ४६ ॥

वेद्यांवासमदेशेवाशस्ताद्विरुपलेपिते ।

वाय्वीशकोणयोर्मध्येहस्तमात्रप्रमाणतः ।

सूत्रपातक्रमेणैवरेखामेकांप्रकल्पयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-वेदी या और किसी बराबर पृथ्वीको श्रेष्ठजलसे लीपना चाहिये फिर तिसमें वायुकोणसे लेकर ईशानकोण तक हाथभरकी एक सीधी रेखा खेंचे ॥ ४७ ॥

ईशानादग्निपथ्यन्तमपरारचयेत्तथा ।

अग्न्यान्नेर्ऋतंयावन्नेर्ऋताद्वायवावधि ॥ ४८ ॥

अर्थ-फिर ईशानकोणसे लेकर अग्निकोणतक ऐसीही और एकहाथ सीधी रेखा खेंचे । तत्पश्चात् अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋतकोणतक और नैर्ऋतकोणसे लेकर वायुकोणतक ॥४८॥

दत्तारेखेचतुष्कोणमेकंमण्डलमालिखेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-रेखा खेंचनेसे एक चौकोन मंडल बन जायगा ॥४९॥

कोणसूत्रेपातयित्वाचतुर्द्धविभजेत्तत् ।

यथातत्रभवेद्देवि ! मत्स्यपुच्छचतुष्टयम् ॥ ५० ॥

अर्थ-हे देवि ! इस मंडलके एक कोणसे लेकर दूसरे कोणतक दो रेखा खेंचकर ऐसा करे कि जिससे पुच्छाकार चार मत्स्य होजाय ॥ ५० ॥

ततोभित्त्वापुच्छमूलंवारुणाद्वासवावधि ।

कौवेराद्याम्यपर्यन्तदद्याद्रेखाद्वयंसुधीः ॥ ५१ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुष इस पूँछकी मूलको भेदनकर पश्चिम दिशासे लेकर पूर्वदिशातक एक और उत्तर दिशासे लेकर दक्षिणदिशातक एकरेखा खेंचे ॥ ५१ ॥

ततश्चतुर्षुकोणेषुकोणरेखान्वितेष्वपि ।

कर्णाकर्णिप्रयोगेणन्यसेद्रेखाचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-फिर इस मंडलके भीतर चौकोन चार मंडलोंमें कर्णाकर्णि ऐसी मिली हुई एक एक रेखा और मध्यस्थलमें पश्चिमसे लेकर पूर्वतक एक एक और उत्तरसे दक्षिणतक एक २ रेखाकी कल्पना करे ॥ ५२ ॥

एवंसङ्केतविधिनाकोष्ठानांपोडशंलिखन् ।

पञ्चवर्णेनचूर्णेनरचयेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-इसप्रकार संकेतके अनुसार इन मंडलोंमें सोलह कोठे बनजाँयगे अर्थात् मंडलमें सोलह चौकोन अथवा बत्तीस त्रिकोण वृत्त हो जाँयगे फिर पांच रंगके चूर्णसे यह मंत्र भलीभाँतिसे बनावे ॥ ५३ ॥

चतुर्षुमध्यकोष्ठेषुपद्मंकुर्यान्मनोहरम् ।

चतुर्दलंपीतरक्तकर्णिकंरक्तकेशरम् ॥ ५४ ॥

अर्थ-फिर बीचमें स्थित हुए चार कोठोंके ऊपर एक मनो

हर चारदलवाला कमल बनावे, तिसकी घंघोल पीली और लालही ॥ ५४ ॥

दलानिशुकुवर्णानियद्वापीतानिकल्पयेत् ॥

यथेष्टंपूरयेत्पद्मसन्धिस्थानानिर्वर्णकैः ॥ ५५ ॥

अर्थ-फिर कमलकी सब पंखुडियें श्वेतवर्ण या पीले रंगकी करे। तदुपरान्त कमलके सन्धिस्थानमें चाहे जैसा रंग भरदे ५५

शाम्भवंकोष्ठमारभ्यकोष्ठानांद्वादशक्रमात् ।

श्वेतकृष्णपीतरक्तैश्चतुर्वर्णैःप्रपूरयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर ईशान कोणके कोठेसे आरंभ करके शेष बारह कोठे क्रमानुसार सफेद, काले, पीले, लाल इन चारों रंगसे पूर्ण करे ॥ ५६ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५७ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५७ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! दक्षिणावर्तयोगमें इन सब कोठोंको पूर्ण करना चाहिये फिर तिसमें वामावर्तके योगसे देवताओंकी पूजा करे ॥ ५७ ॥

पद्मेसमर्चयेद्वास्तुदैत्यंविघ्नोपशान्तये ।

ईशादिद्वादशकोष्ठेकपिलास्यादिदानवान् ॥ ५८ ॥

अर्थ-पहले तो विघ्नकी शांतिके लिये पद्ममें वास्तुदैत्यकी पूजा करे। फिर ईशानकोणमें स्थित कोठेसे आरंभ करके (वामावर्तमें) बारह कोठोंमें कपिलास्यादि दानवोंकी पूजा करे ॥ ५८ ॥

कुशण्डिकोक्तविधिनाकुर्वन्नलसंस्कृतिम् ।

यथाशक्त्याहुतिं दत्त्वा वास्तुयज्ञं समापयेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ-फिर कुशण्डिकामें कहीहुई विधिके अनुसार अग्नि-संस्कार करके यथाशक्ति आहुति देकर वास्तुयज्ञको समाप्त करे ॥ ५९ ॥

इतितेकथितादेवि ! वास्तुपूजाशुभप्रदा ।

यांसाधयन्नरः क्वापिवास्तुविघ्नैर्नवाध्यते ॥ ६० ॥

अर्थ—हे देवि ! यह तुमसे कल्याणकी देनेवाली वास्तु-पूजा कही । वास्तुपूजाका अनुष्ठान करनेवालेको कोई विघ्न नहीं होता ॥ ६० ॥

देव्युवाच ।

मण्डलंकथितंवास्तोर्विधानमपिपूजने ।

ध्यानंनगदितंनाथ ! तदिदानींप्रकाशय ॥ ६१ ॥

अर्थ—देवीजीने कहा—हे नाथ ! आपने वास्तुदेवताकामंड-ल और वास्तुपूजाका विधान कहा, परन्तु वास्तुदेवताका ध्यान नहीं कहा सो अब कहिये ॥ ६१ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

ध्यानंवाच्मिमहेशानि ! श्रयतांवास्तुरक्षसः ।

यस्यानुशीलनात्सद्योनश्यन्तिसकलापदः ॥ ६२ ॥

अर्थ—श्रीमहादेवजी बोले—हेमहेश्वर ! वास्तुरक्षसका ध्यान कहताहूं सुनो । इसका बारंबार अभ्यास करनेसे सब आ-पत्तियें दूर होती हैं ॥ ६२ ॥

चतुर्भुजंमहाकायंजटामण्डितमस्तकम् ।

त्रिलोचनंकरालास्यंहारकुण्डलशोभितम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—जो चतुर्भुज और बड़े शरीरवाले हैं, जिनका मस्तक जटाके समूहसे शोभायमान है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका वदन कराल हैजो हार कुण्डलसे शोभायमान है ॥ ६३ ॥

लम्बोदरंदीर्घकर्णलोमशंपीतवाससम् ।

गदात्रिशूलपरशुखट्वाङ्गदधतंकरैः ॥ ६४ ॥

अर्थ-जो लम्बोदर और दीर्घकर्ण हैं, जिनका शरीर रुओं-से ढका हुआ है, जो पीला वस्त्र पहन रहे हैं, जो चारों भुजाओंसे गदा त्रिशूल, परशु, खट्वाङ्ग (अस्त्रविशेष) धारण करते हैं ॥ ६४ ॥

असिचर्मधरैर्वीरैःकपिलास्यादिभिर्वृतम् ।

शत्रूणामन्तकंसाक्षादुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ६५ ॥

ध्यायेद्देववास्तुपतिंकूर्मपद्मासनस्थितम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-कपिलास्यादि वीरगण खड्ग चर्म धारण करके जिनके चारों ओर विराजमान हैं जो शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं, जो उदित होते हुए सूर्यके समान अरुण वर्ण जो कछुएके ऊपर पद्मासन पर बैठे हैं ऐसे वास्तुपति देवताका ध्यान करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मारीभयरोगभयेडाकिन्यादिभयेतथा ॥

औत्पातिकापत्यदोषेव्यालरक्षोभयेऽपिच ।

ध्यात्वैवंपूजयेद्वास्तुंपरिवारसमन्वितम् ॥ ६७ ॥

अर्थ-मारीभय, रोग भय और डाकिनीभयके पड़नेपर हिंसक जन्तु या राक्षसभय होने या इसप्रकारसे परिवारयुक्त वास्तुदेवताकी पूजा करे ॥ ६७ ॥

तिलाज्यपायसैर्हुत्वासर्वशान्तिमवाप्नुयात् ।

यथावास्तुःपूजनीयःप्रोक्तकर्मसुसुव्रते ! ॥ ६८ ॥

अर्थ-फिर तिल, घी और खीरसे होम करके सब बातोंमें शान्ति प्राप्त करसकेगा । हे सुव्रते ! पहले कहेहुए सब कार्योंमें जैसे वास्तुदेवताकी पूजा करनी होती है ॥ ६८ ॥

ग्रहाश्चापितथापूज्यादशदिक्पतिभिर्युताः ।

ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चवाणिलक्ष्मीश्चशंकरौ ॥ ६९ ॥

अर्थ-वैसेही नवग्रह, दशदिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वतीकी ॥ ६९ ॥

मातरःसगणेशाश्चसम्पूज्यावसवस्तथा ।

पितरोयद्यतृप्ताःस्युःकर्मस्वेतेषुकालिके ! ॥ ७० ॥

अर्थ-मातृगणोंकी, गणेश, वसुगण और पितृगणोंकी पूजा करनी चाहिये । हे कालिके ! पहले कहेहुए सब कर्मोंसे जो यह संतुष्ट नहो ॥ ७० ॥

सर्वन्तस्यभवेद्यर्थविघ्नश्चापिपदेपदे ।

अतोमहेशि ! यत्नेनप्रोक्तसंस्कारकर्मसु ॥ ७१ ॥

अर्थ-तो कर्मकर्ताका सब कुछ व्यर्थ होजाता है और पग २ पर उसको विघ्न होते हैं ॥ ७१ ॥

पितृणांतृप्तयेऽत्राभ्युदयिकंश्राद्धमाचरेत् ।

ग्रहयन्त्रंप्रवक्ष्यामिसर्वशान्तिविधायकम् ॥ ७२ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! इसकारण पहले कहेहुए सब कर्मोंमें पितृगणोंकी तृप्तिके लिये यत्नसहित आभ्युदयिक श्राद्ध करें । अब सर्वशान्तिका करनेवाला ग्रहयंत्र कहता हूँ ॥ ७२ ॥

यत्रसम्पृजिताःसेन्द्राग्रहायच्छन्तिवाञ्छितम् ।

त्रित्रिकोणैर्लिखेद्यन्त्रंतद्ग्रहवृत्तमालिखेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-तिसमें ग्रह और इन्द्रादिक देवता पूजे जाकर अभिलषित फल देते हैं तीन त्रिकोण यंत्र लिखकर तिसके बाहर गोलमंडल बनावें ॥ ७३ ॥

विदध्याद्रत्तलग्नानिदलान्यष्टौचतुर्दशः ।

चतुर्दशान्वितंकुर्याद्रूपुरंसुमनोहरम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-उस वृत्तके बाहर तिससे लगाहुआ आठ दलवाला

पद्म लिखे तिसके बाहर चारद्वारवाला एक मनोहर भूपुर बनावे ॥ ७४ ॥

वासवेशानयोर्मध्येभूपुरस्यवहिःस्थले ।

वृत्तांविचयेदेकंप्रादेशपरिमाणकम् ॥ ७५ ॥

अर्थ-भूपुरके बाहर पूर्वदिशामें और ईशानकोणमध्यमें आधे हाथका एक वृत्त खेंचे ॥ ७५ ॥

रक्षोवाहणयोर्मध्येचापरंकल्पयेत्तथा ॥ ७६ ॥

अर्थ-फिर पश्चिमदिशा और नैऋतकोणके बीचमें भी ऐसाही एक मंडल बनावे ॥ ७६ ॥

नवग्रहाणां वर्णेन नवकोणानि पूरयेत् ।

मध्यत्रिकोणाद्वैपाथ्यौ सव्यदक्षिणभेदतः ॥ ७७ ॥

अर्थ-फिर नवग्रहके वर्णसे रसयंत्रके नौ कोण भरे ॥ ७७ ॥

श्वेतपीतौ विधातव्यौ पृष्ठभागः सितेतरः ।

अष्टदिक्पतिवर्णेन पर्णान्यष्टौ प्रपूरयेत् ॥ ७८ ॥

✓ अर्थ-बीचमें स्थित हुए त्रिकोणके दौंयेबांगे दोनों पार्श्व श्वेत और पीले रंगे । तिसका पिछला भाग काला हो, आठ दिक्पालोंके वर्णसे आठ दल पूर्ण करे ॥ ७८ ॥

सितरक्तासितैश्चूर्णैः पुरः प्राकारमाचरेत् ।

पुरोवहिस्थे द्वे वृत्ते देवि ! प्रादेशसम्मिते ॥ ७९ ॥

अर्थ-श्वेत, लाल और कालेचूनसे भूपुरकी प्राकार (भीत) को रंगे । हे देवि ! भूपुरके बाहिरें बने हुए आधे हाथके दोनों वृत्त ॥ ७९ ॥

उपर्यधः क्रमेणैव रक्तश्वेते विधाय च ।

सन्धिस्थानानि यन्त्रस्य स्वेच्छया रचयेत्सुधीः ॥ ८० ॥

अर्थ-ऊपरके भाग और नीचेके भागके क्रमसे लाल और श्वेत रंगकर ज्ञानी पुरुष संधिके सब स्थानोंको चाहै जैसे रंगसे भरदे ॥ ८० ॥

यत्कोष्ठेयोग्रहः पूज्यो यत्पत्रेयश्च दिक्पतिः ।

यद्वारेऽवस्थिता ये च तत्क्रमं शृणु साम्प्रतम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-जिस २ कोठेमें जिस २ ग्रहकी पूजा होनी चाहिये, जिस २ पत्रमें जिस २ दिक्पालकी पूजा होनी चाहिये और जिस द्वारमें जो देवतादि कोण सो अब इसका क्रम कहा जाता है सुनो ॥ ८१ ॥

मध्यकोणे यजेत्सूर्यपार्श्वयोररुणं शिखाम् ।

पश्चात्प्रचण्डयोर्दण्डौ पूजयेदं शुमालिनः ॥ ८२ ॥

अर्थ-मध्यकोणमें सूर्यकी पूजा करनी चाहिये, तिसके दोनों बगलमें अरुण और शिखाकी पूजा करनी चाहिये फिर सूर्यके पिछले भागमें प्रचंड और उदण्डकी पूजा करना योग्य है ॥ ८२ ॥

भानूर्ध्वकोणे पूर्वस्यामर्चयेद्भजनीकरम् ।

आग्नेये मङ्गलं याम्ये बुधं नैऋतकोणके ॥ ८३ ॥

अर्थ-सूर्यके उर्ध्वकोणमें पूर्वदिशाको चंद्रमाकी पूजा करे फिर अग्निकोणमें मङ्गलकी, दक्षिण दिशामें बुधकी, नैऋतकोणमें ॥ ८३ ॥

बृहस्पतिं वारुणे च दैत्याचार्य्यं प्रपूजयेत् ।

शुक्रैश्च स्तुवायत्येकौ वै ईशानयोः क्रमात् ।

राहुं केतुं यजेच्चन्द्रं परितस्तारकागणान् ॥ ८४ ॥

अर्थ-बृहस्पतिकी, वरुण कोणमें शुक्रकी अर्चना करे । फिर वायुकोणमें शनिकी, उत्तर दिशामें राहुकी, ईशानकोणमें केतुकी अर्चना करके चंद्रमाके चारों ओर ताराओंकी पूजकरो ८४

सूरोरक्तःशशीशुक्लोमङ्गलोऽरुणविग्रहः ।

बुधजीवौपाण्डुपीतौश्वेतःशुक्रोऽसितःशनिः ॥ ८५ ॥

अर्थ-सूर्य रक्तवर्ण, चंद्रमा शुक्लवर्ण, मंगल अरुणवर्ण, बुध पाण्डुवर्ण, वृहस्पति पीतवर्ण, शुक्र श्वेतवर्ण और शनि कृष्णवर्ण हैं ॥ ८५ ॥

राहुकेतूविचित्राभौग्रहवर्णाःप्रकीर्तित्ताः ।

चतुर्भुजंरविंव्यायेत्पद्मद्वयवराभयैः ॥ ८६ ॥

अर्थ-राहु और केतुका वर्ण विचित्र हैं यह तुमसे ग्रहोंका वर्ण कहा । सूर्यका चतुर्भुज ध्यान करना चाहिये, उनके दो हाथमें पद्म हैं, वह एक हाथसे वर और एक हाथसे अभय दे रहे हैं ८६

चिन्तयेच्छशिनंदानमुद्राऽमृतकराम्बुजम् ।

कुजमीपत्कुब्जतनुंहस्ताभ्यांदण्डधारिणम् ।

ध्यायेत्सोमात्मजंवालंभाललोलितकुन्तलम् ॥ ८७ ॥

अर्थ-चंद्रमाका ध्यान इसप्रकारसे करे कि, उनके एक हाथमें अमृत और दूसरे हाथमें दान मुद्रा है. मंगलका ध्यान इस प्रकार करे कि, वह कुब्जेक कुब्जे हैं और दोनों हाथोंसे ६ दंड धारण किये हैं. बुधका ध्यान इसप्रकारसे करे कि, वह बालक है और उनके माथेमें चंचल केश शोभायमान हो रहे हैं ८७

यज्ञसूत्रान्वितंध्यायेत्पुस्तकाक्षकरंगुरुम् ।

एवंदैत्यगुरुश्चापिकाणंखड्गंशनैश्वरम् ॥ ८८ ॥

राहुकेतूशिरःकायौविकृतौक्रूरचंपितौ ।

स्वैःस्वैर्ध्यानैर्ग्रहानिद्वायजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ॥ ८९ ॥

अर्थ-वृहस्पतिका ध्यान इस भाँति करे कि, उनके गलेमें यज्ञोपवीत पड़ा है, एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें अक्षमाला है, इसप्रकार शुक्रको एकनेत्र हीन और शनैश्वरको

लँगडा ध्यान करे । यह दोनों ही क्रूरचेष्टायुक्त और विकृताकार हैं । ग्रहोंको उनके स्थानसहित पूजकर फिर इन्द्रादि दिक्पालोंकी पूजा करे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

दलेष्वष्टसुपूर्वादिक्रमतःसाधकोत्तमः ।

सहस्राक्षंयजेदादौपीतकौशेयवाससम् ॥ ९० ॥

अर्थ—साधकश्रेष्ठको उचित है कि, आठ दलवाले पद्मके पूर्वकी ओरके दलसे आरंभ करके (प्रत्येक दलमें एक २ दिक्पालकी पूजा करे) पहले पूर्वदिशाके पद्ममें इन्द्रकी पूजा करे । इन्द्रके सहस्र नेत्र हैं उनका वर्ण पीला है, वह रेशमी वस्त्र पहरे हुए हैं ॥ ९० ॥

वज्रपाणिपीतरुचिस्थितमैरावतोपरि ।

रक्ताभंछागवाहस्थंशक्तिहस्तंहुताशनम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—उनके हाथमें वज्र है, शरीरका वर्ण पीत है, ऐरावत नामक हाथीके ऊपर बैठे हैं, अग्निका शरीर रक्त वर्ण है, वह अपने वाहन छागपर बैठे हैं, उनके हाथमें शक्तिनामक अस्त्र है ॥ ९१ ॥

ध्यायेत्कालंलुलायस्थंदण्डिनंकृष्णविग्रहम् ।

निर्ऋतिखड्गहस्तश्चश्यामलंवाजिवाहनम् ॥ ९२ ॥

वरुणंमकरारूढंपाशहस्तंसितप्रभम् ।

ध्यायेत्कृष्णत्विपंवायुंमृगस्थञ्चाङ्कुशायुधम् ॥ ९३ ॥

अर्थ—कालस्वरूप यमराजके शरीरका वर्ण काला है, वह दण्ड हाथमें लिये भैंसेपर सवार हैं । निर्ऋति श्यामलवर्ण है, उनके हाथमें खड्ग है, उनका वाहन अश्व है । वरुणजिका ध्यान इस प्रकारसे करे कि, वह मकरपर सवार हैं, वर्ण श्वेत है, हाथमें पाश है । वायुका ध्यान इस प्रकारसे करे कि, उनके हाथमें अङ्कुश नामक अस्त्र है, वह मृगपर बैठे हैं, शरीर कृष्णवर्ण है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

कुबेरंकनकाकाररत्नसिंहासनस्थितम् ।

स्तुतंयक्षगणैःसर्वैःपाशांकुशकराम्बुजम् ॥ ९४ ॥

अर्थ-कुबेरके शरीरका वर्ण सुवर्णकेसा है, वह रत्नसिंहासन-
पर बैठे हैं, उनके करकमलमें पाश और अंकुश है, चारोंओर
यक्षलोग खड़े हुए उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ९४ ॥

ईशानंवृषभारूढंविशूलवरधारिणम् ।

व्याघ्रचर्माम्बरधरंपूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ॥ ९५ ॥

अर्थ-ईशान (शिव) बैलपर सवार होकर विशूल धारण
किये हुए हैं, उनकी कान्ति पूर्णचंद्रमाके समान है, व्याघ्रचर्म-
को पहरे हुए हैं ॥ ९५ ॥

ध्यात्वाचैतान्क्रमादिद्वाग्रहानन्तौपुराद्वहिः ।

ऊर्ध्वाधोवृत्तयोरर्च्याततोऽर्च्याद्वारदेवताः ॥ ९६ ॥

अर्थ-क्रमानुसार ध्यानसहित इन आठ दिक्पालोंकी पूजा
करके भूपुरके बाहिरे ऊपर जो मंडल स्थित है उसमें ब्रह्माजी
की और नीचेके मंडलमें अनन्तकी पूजा करे फिर द्वारदेवता
ओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

उग्रभीमौप्रचण्डेशौपूर्वद्वारस्थाःप्रकीर्त्तिताः ।

जयन्तःक्षेत्रपालश्चनकुलेशोबृहच्चिह्नराः ।

याम्यद्वारेपश्चिमेष्वृकाश्वानन्ददुर्जयाः ॥ ९७ ॥

अर्थ-उग्र, भीम, प्रचंड और ईश यह लोग पूर्वद्वारके स्वामी
हैं । जयन्त, क्षेत्रपाल, नकुलेश्वर, बृहच्चिह्नरा यह दक्षिणद्वारके
अधीश्वर हैं । वृक, अश्व, आनंद और दुर्जय यह पश्चिमद्वारके
अधिदेवता हैं ॥ ९७ ॥

त्रिशिराःपुरजिच्चैवभीमनादोमहोदरः ।

उत्तरद्वारपाश्चैतेसर्वेऽष्टास्त्रपाणयः ॥ ९८ ॥

— अर्थ—त्रिशिरा, पुरजित, भीमनाद, महोदर यह उत्तरद्वारके मालिक हैं इन सबकेही साथमें अस्त्र शस्त्र हैं ॥ ९८ ॥

श्रूयतां ब्रह्मणो ध्यानमनन्तरस्यापि सुव्रते ! ।

रक्तोत्पलनिभो ब्रह्मा चतुरास्यश्चतुर्भुजः ॥ ९९ ॥

— अर्थ—हे सुव्रते ! ब्रह्मा और अनन्तके ध्यानको कहता हूं सुनो ब्रह्माजी चतुर्भुज और चतुर्मुख हैं उनका शरीर लाल कमलकी समान लालवर्ण है ॥ ९९ ॥

हंसारूढो वराभीतिमालापुस्तकपाणिकः ॥ १०० ॥

— अर्थ—वह हंसपर सवार हैं उनके एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें माला है, वह एक हाथसे वर और दूसरे हाथसे अभय दे रहे हैं ॥ १०० ॥

हिमकुन्देन्दुधवलः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

सहस्रपाणिवदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः ॥ १०१ ॥ ~

— अर्थ—अनन्तका वर्ण हिम (पाला) कुन्द (बबुलेका फूल) और चंद्रमाकी समान शुभ्र है, उनके हजार नेत्र और हजार चरण हैं. देवता और दानव लोग इसप्रकारसे हजार हाथवाले और हजार पांववाले अनन्तजीका ध्यान करते हैं ॥ १०१ ॥

ध्यानपूजाक्रमश्चापियन्त्रञ्च कथितं प्रिये ! ।

वास्त्वादि क्रमतो ह्येषां मन्त्रानां पिशृणु प्रिये ! ॥ १०२ ॥

— अर्थ—हे प्रिये ! वास्तु इत्यादिके देवताओंका मंत्र, ध्यान और पूजाकी विधि क्रमानुसार कही गई, अब क्रमानुसार इन वास्तुदेवादिकोंका मंत्र कहता हूं सुनो ॥ १०२ ॥

क्षकारो हव्यवाहस्थः पड्दोर्ध्वस्वरसंयुतः ।

भूपितो नादा विंदुभ्यां वास्तुमन्त्रः पडक्षरः ॥ १०३ ॥

— अर्थ—क्षकार अग्नि (रेफ) के ऊपर रहे तिसमें दीर्घस्वर

कुबेरंकनकाकारंरत्नसिंहासनस्थितम् ।

स्तुतंयक्षगणैःसर्वैःपाशांकुशकराम्बुजम् ॥ ९४ ॥

अर्थ-कुबेरके शरीरका वर्ण सुवर्णकेसा है, वह रत्नसिंहासन-
पर बैठे हैं, उनके करकमलमें पाश और अंकुश है, चारोंओर
यक्षलोग खड़े हुए उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ९४ ॥

ईशानंवृषभारूढंतिशूलवरधारिणम् ।

व्याघ्रचर्माम्बरधरंपूर्णचंद्रमाप्रभम् ॥ ९५ ॥

अर्थ-ईशान (शिव) बैलपर सवार होकर त्रिशूल धारण
✓ किये हुए हैं, उनकी कान्ति पूर्णचंद्रमाके समान है, व्याघ्रचर्म-
को पहरे हुए हैं ॥ ९५ ॥

ध्यात्वाचैतान्क्रमादिद्वात्रह्यानन्तौपुराद्वहिः ।

ऊर्ध्वाधोवृत्तयोरर्च्यैततोऽर्च्याद्वारदेवताः ॥ ९६ ॥

अर्थ-क्रमानुसार ध्यानसहित इन आठ दिक्पालोंकी पूजा
करके भूपुरके बाहिरे ऊपर जो मंडल स्थित है उसमें ब्रह्माजी
की और नीचेके मंडलमें अनुन्तकी पूजा करे फिर द्वारदेवता
ओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

उग्रभीमौप्रचण्डेशौपूर्वद्वारस्थाःप्रकीर्त्तिताः ।

जयन्तःक्षेत्रपालश्चनकुलेशोबृहच्छिराः ।

याम्यद्वारेपश्चिमेष्वृकाश्चानन्ददुर्जयाः ॥ ९७ ॥

अर्थ-उग्र, भीम, प्रचंड और ईश यह लोग पूर्वद्वारके स्वामी
हैं । जयन्त, क्षेत्रपाल, नकुलेश्वर, बृहच्छिरा यह दक्षिणद्वारके
अधीश्वर हैं । वृक, अश्व, आनंद और दुर्जय यह पश्चिमद्वारके
अधिदेवता हैं ॥ ९७ ॥

त्रिशिराःपुरजिच्चैवभीमनादोमहोदरः ।

उत्तरद्वारपाश्चैतेसर्वेशघ्नास्त्रपाणयः ॥ ९८ ॥

अर्थ-त्रिशिरा, पुरजित्, भीमनाद, महोदर यह उत्तरद्वारके मालिक हैं इन सबकेही साथमें अस्त्र शस्त्र हैं ॥ ९८ ॥

श्रूयतां ब्रह्मणो ध्यानमनन्तस्यापि सुव्रते ! ।

रक्तोत्पलनिभो ब्रह्मा चतुरास्यश्चतुर्भुजः ॥ ९९ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! ब्रह्मा और अनन्तके ध्यानको कहता हूं सुनो ब्रह्माजी चतुर्भुज और चतुर्मुख हैं उनका शरीर लाल कमलकी समान लालवर्ण है ॥ ९९ ॥

हंसारूढो वराभीतिमाला पुस्तकपाणिकः ॥ १०० ॥

अर्थ-वह हंसपर सवार हैं उनके एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें माला है, वह एक हाथसे वर और दूसरे हाथसे अभय दे रहे हैं ॥ १०० ॥

हिमकुन्देन्दुधवलः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

सहस्रपाणि वदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः ॥ १०१ ॥

अर्थ-अनन्तका वर्ण हिम (पाला) कुन्द (चबुलेका फूल) और चंद्रमाकी समान शुभ्र है, उनके हजार नेत्र और हजार चरण हैं. देवता और दानव लोग इस प्रकारसे हजार हाथवाले और हजार पांववाले अनन्तजीका ध्यान करते हैं ॥ १०१ ॥

ध्यानपूजाक्रमश्चापि यन्त्रञ्च कथितं प्रिये ! ।

वास्तुवादि क्रमतो ह्येषां मन्त्रानां पेशृणु प्रिये ! ॥ १०२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! वास्तु इत्यादिके देवताओंका मंत्र, ध्यान और पूजाकी विधि क्रमानुसार कही गई, अब क्रमानुसार इन वास्तुदेवादिकोंका मंत्र कहता हूं सुनो ॥ १०२ ॥

क्षकारो हव्यवाहस्थः पड्दीर्घस्वरसंयुतः ।

भूपितो नादविंदुभ्यां वास्तुमन्त्रः पडक्षरः ॥ १०३ ॥

अर्थ-क्षकार अग्नि (रेफ) के ऊपर रहे तिसमें दीर्घस्वर

मिल वह नादचिन्दुसे विभूषितहो । वस इसप्रकारसे यह षडक्षर वास्तुमंत्र होजायगा (१) ॥ १०३ ॥

तारंमायांतिग्मरश्मेडेऽन्तमारोग्यदंषदेत् ।

वह्निजायांततोदत्त्वासूर्यमन्त्रंसमुद्धरेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ—प्रणव और माया इन दो पदोंको उच्चारण करके “तिग्मरश्मये” पद उच्चारण कर फिर “आरोग्यदाय” पदके पीछे “स्वाहा” उच्चारण करे । इसप्रकार सूर्यके मंत्रका उद्धार होगा (२) ॥ १०४ ॥

कामोमायाचवाणीचततोऽमृतकरेतिच ।

अमृतंप्लावयद्रन्द्रंस्वाहासोममनुर्मतः ॥ १०५ ॥

अर्थ—काम, माया, वाणी, अमृतकर अमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा इन शब्दोंके मिलानेसे सोम (चंद्रमाका) मंत्र होजायगा (३) ॥ १०५ ॥

ऐंद्वांर्द्वांसर्वपदाद्दुष्टान्नाशयनाशय ।

स्वाहावसानोमन्त्रोयमङ्गलस्यप्रकीर्तितः ॥ १०६ ॥

अर्थ—“ऐं द्वां र्द्वां” सर्व, पदके पीछे “दुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा” इस पदके उच्चारण करनेसे मंगलका मंत्र होगा (४) ॥ १०६ ॥

ह्रीं श्रीं सौम्यपदञ्चोक्तासर्वान्कामांस्ततोवदेत् ।

पूरयान्तेवह्निकान्तामेषसोमात्मजेमनुः ॥ १०७ ॥

अर्थ—“ह्रीं श्रीं सौम्य” पदको उच्चारण करनेके पीछे “सर्वान् क मान्” पद उच्चारण करके “पूरय स्वाहा” इस पदके उच्चारण करनेसे बुधका मंत्र होजायगा (५) ॥ १०७ ॥

१. - (१) मंत्रोद्धार यथः—“६ रा ६ री ६ रू ६ रै ६ रे ६ रः” यही षडक्षर वास्तुमंत्र है ।

(२) सूर्यमंत्र यथाः—“ओ ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय स्वाहा” ।

(३) चंद्रमाका मंत्रः—“ह्रीं ह्रीं ऐ अमृतकरा अमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा” ।

(४) मंगलका मंत्रः—“ऐं द्वां र्द्वां सर्वदुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा” ।

(५) बुधका मंत्रः—“ह्रीं श्रीं सौम्य सर्वान् कामान् पूरय स्वाहा” ।

तारेणपुटितावाणीततःसुरगुरो!पदम् ॥

अभीष्टंयच्छयच्छेतिस्वाहामन्त्रोवृहस्पतेः ॥ १०८ ॥

अर्थ-पहले तारपुटिता वाणी फिर “सुरगुरो” तदुपरान्त “अभीष्टं यच्छ यच्छ” तदुपरान्त “स्वाहा” उच्चारण करनेसे वृहस्पतीका मंत्र होगा (१) ॥ १०८ ॥

शांशींशूंशैततःशौंशःशुक्रमन्त्रःसमीरितः ॥ १०९ ॥

अर्थ-“शां शीं शूं शैं शौं शः” यह शुक्रका मंत्र है ॥ १०९ ॥

ह्रांह्रांहींहींसर्वशत्रून्विद्रावयपदद्वयम् ।

मार्तण्डसूनवेपश्चात्रमोमन्त्रःशनैश्चरे ॥ ११० ॥

अर्थ-शनैश्चरका मंत्र यह है “ह्रां ह्रां हीं हीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्डसूनवेनमः” ॥ ११० ॥

रांह्रैभ्रैह्रैसोमशत्रोशत्रून्विध्वंसयद्वयम् ।

राहवेनमइत्येपराहोर्मनुरुदाहृतः ॥ १११ ॥

अर्थ-राहुका मंत्र यह है कि “रां ह्रैं भ्रैं ह्रैं सोमशत्रो शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय राहवेनमः” ॥ १११ ॥

क्रूंह्रूंक्रूंकेतवेस्वाहाकेतोर्मन्त्रःप्रकीर्तितः ॥ ११२ ॥

अर्थ-“क्रूं ह्रूं क्रूं केतवे स्वाहा” यह केतुका मंत्र है ॥ ११२ ॥

लंरंमृंस्त्रूंवंयमितिश्नंहींत्रीममितिक्रमात् ।

इन्द्राद्यनन्तदिक्पानांदशमन्त्राःसमीरिताः ॥ ११३ ॥

अर्थ-इन्द्रका मंत्र “लं” अग्निका मंत्र “रं” यमका मंत्र “मृं” निर्ऋतिका मंत्र “स्त्रूं” वरुणका मंत्र “वं” वायुका मंत्र “यं” कुबेरका मंत्र “क्षं” ईशानका मंत्र “ह्रीं” ब्रह्माका मंत्र “त्रीं” अनन्तका मंत्र “अं” यह इन्द्रादि दश दिक्पालोंके मंत्र कहे ॥ ११३ ॥

(१) “ओं ऐं ओं सुरगुरो ! अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहा” यह वृहस्पतीका मंत्र है ।

अन्येषां परिवाराणां नाममन्त्राः प्रकीर्तिताः ।

अनुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेप शिवोदितः ॥ ११४ ॥

✓ अर्थ-और अंगदेवताओं के परिवारों का या जिस देवता का मंत्र नहीं कहा, मंत्र की जगह उसका नाम ही ले लेना चाहिये, सदाशिव ने सब जगह ऐसा ही विधान कहा है ॥ ११४ ॥

नमोऽन्तमन्त्रे देवेशि ! न नमो योजयेधुः ।

स्वाहान्तेऽपि तथामन्त्रेन दद्याद्ब्रह्मि वल्लभाम् ॥ ११५ ॥

✓ अर्थ-हे देवि ! जिस मंत्र के अंत में “नमः” पद है, वह मंत्र पढ़कर पूजा करने के समय पाद्यादि देने के अवसर में फिर “नमः” शब्द नहीं लगावे ऐसे ही जिस मंत्र के अंत में “स्वाहा” पद है अर्घ्यादि देने के समय फिर दुबारा “स्वाहा” पद नहीं मिलाना चाहिये ॥ ११५ ॥

ग्रहादिभ्यः प्रदातव्यं पुष्पं वासश्च भूषणम् ।

तेषां वर्णानुरूपेण नान्यथा प्रीतये भवेत् ॥ ११६ ॥

✓ अर्थ-जिस ग्रह का जैसा वर्ण कहा है उस ग्रह को उसी रंग के वस्त्राभूषण और फल देने चाहिये, ऐसा न करने से ग्रह प्रसन्न नहीं होते ॥ ११६ ॥

कुशण्डिकोक्तविधिनावह्निसंस्थापयन्सुधीः ॥

पुष्पैरुच्चावचैर्यद्वा समिद्धिर्होममाचरेत् ॥ ११७ ॥

✓ अर्थ-ज्ञानी पुरुष को उचित है कि, कुशण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार अग्निस्थापन करके विधिमें कहे हुए पुष्पसे अथवा समिधासे होम करे ॥ ११७ ॥

शान्तिकर्मणि पुष्टौ च वरदो हव्यवाहनः ।

प्रतिष्ठायां लोहिताक्षः शत्रुहा क्रूरकर्मणि ॥ ११८ ॥

अर्थ-शान्ति और पुष्टिकर्ममें अग्निका नाम वरद है, प्रतिष्ठाके समय अग्निका नाम लोहिताक्ष है और क्रूरकर्मके समय अग्निका नाम शुचुहा होता है ॥ ११८ ॥

शान्तौपुष्टौमहेशानि ! तथाक्रूरेऽपिकर्मणि ।

ग्रहयागंप्रकुर्वाणोवांछितार्थमवाप्नुयात् ॥ ११९ ॥

अर्थ-हे महेश्वर ! शान्ति, पुष्टि या किसी और क्रूरकर्म करनेके समय जो ग्रहयाग करता है, वह अभिलाषित फलको पाता है ॥ ११९ ॥

यथाप्रतिष्ठाकार्येषु देवार्चापितृतर्पणम् ।

वास्तोयोगेग्रहाणाञ्चतद्देवविधीयते ॥ १२० ॥

अर्थ-प्रतिष्ठाके समय जैसे देवताओंकी पूजा और पितृतर्पण करना आवश्यक है, ग्रहयागमेंभी वैसेही देवताओंकी पूजा और पितृतर्पणकी विधि है ॥ १२० ॥

यद्येकस्मिन्दिनेद्विस्त्रिःप्रतिष्ठायागकर्मच ।

मन्त्रेणतत्रदेवार्चापितृश्राद्धाग्निसंस्क्रियाः ॥ १२१ ॥

अर्थ-जो एकदिनमें दो तीन प्रतिष्ठा और यागकर्म आपढ तो एक बारही देवपूजा और पितृश्राद्ध और अग्निसंस्कार होसक्ता है ॥ १२१ ॥

जलाशयगृहारामसेनसंक्रमशाखिनः ।

वाहनासनयानानिवासोऽलङ्करणानिच ॥ १२२ ॥

अर्थ-जलाशय, गृह, आराम (विश्रामालय,) पुल, संक्रमवृक्ष, वाहन, आसन, यान, वस्त्र, आभूषण ॥ १२२ ॥

पानाशनीयपात्राणिदेवस्तूनियान्यपि ।

असंस्कृतानिदेवायनप्रदद्युःफलेप्सवः ॥ १२३ ॥

अर्थ-पानपात्र (गिलास लोटा आदि) भोजन पात्र (थाली इत्यादि) अथवा जो और कोई वस्तु दान कीजाय, तो फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष विना संस्कार किये इन चीजोंको नदे ॥ १२३ ॥

काम्येकर्मणिसर्वत्रयुधःसङ्कल्पमाचरेत् ।

विधिवाक्यानुसारेणसम्पूर्णसुकृताप्तये ॥ १२४ ॥

अर्थ-सम्पूर्ण प्रकृतिका लाभ होनेके अर्थ ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि, सब काम्यकर्मोंमें विधिके वाक्यके अनुसार संकल्प करे ॥ १२४ ॥

संसृताभ्यर्चितंद्रव्यं नामोच्चारणपूर्वकम् ।

सम्प्रदानाभिधाञ्चोक्त्वादत्त्वासम्यक्फलं लभेत् ॥ १२५ ॥

अर्थ-जिस वस्तुका दान करना हो पहले उसका संस्कार करे और उसको पूजे । फिर उसका नाम लेवे, जिसको दान करे उसका नाम ले, ऐसे दान करनेसे संपूर्ण फल मिलता है ॥ १२५ ॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।

कथ्यन्तेप्रोक्षणेमन्त्राःप्रयोज्याव्रह्मविद्यया ॥ १२६ ॥

अर्थ-जलाशय, गृह, आराम (विश्रामालय), पुल, संक्रमवृक्षके प्रोक्षित करनेका मंत्र कहताहूं गायत्री पढ़कर उन सब मंत्रोंको पढ़े ॥ १२६ ॥

जीवनाधार ! जीवानां जीवनप्रद ! वारुण ! ।

प्रोक्षणे तव तृप्यन्तु जलभूचरखेचराः ॥ १२७ ॥

अर्थ-हे वारुण ! तुम जीवोंको जीवन देतेहो, तुम सबके जीवनके आधार हो, मैं जो तुमको प्रोक्षित करताहूं तिससे जलचारी थलचारी, और आकाशचारी सब जीव तृप्त हो । इस मंत्रको पढ़कर जलाशयको प्रोक्षित करे ॥ १२७ ॥

तृणकाष्ठादिसम्भूतवासेयब्रह्मणः प्रिय ! ।

त्वांप्रोक्षयामितोयेन प्रीतये भव सर्वदा ॥ १२८ ॥

अर्थ—हे गृह ! तुम तृण और काष्ठादिसे बने हो तुम उत्तम वासके योग्य स्थानमें हो तुम ब्रह्माके प्रिय पदार्थ हो मैं तुमको जलसे प्रोक्षित करता हूँ तुम सदा प्रीतिदायक होवो यह मंत्र पढ़कर तृणादिसे बने हुए गृहको प्रोक्षित करो ॥ १२८ ॥

इष्टकादिसमुद्भूत ! वक्तव्यन्तिवृष्टकामये ॥ १२९ ॥

अर्थ—ईंट आदिसे बने हुए गृहकी प्रतिष्ठाके समय तृण काष्ठादिसमुद्भव अर्थात् तुम तृण व काष्ठादिसे बने हो ऐसा कहकर । इष्टकादिसमुद्भूत अर्थात् तुम ईंट आदिसे बने हो ऐसा मंत्र पढ़े पत्थरसे बने हुए गृहकी प्रतिष्ठाके समय यहां पर प्रस्तरादिसमुद्भूत अर्थात् तुम पत्थरादिसे बने हो ऐसा वाक्य कहना चाहिये ॥ १२९ ॥

फलैः पत्रैश्च शाखाद्यैश्छायाभिश्च प्रियङ्कराः ।

यच्छन्तु मेऽखिलान्कामान् प्रोक्षितास्तीर्थवारिभिः १३० ॥

अर्थ—आराम और वृक्षकी प्रतिष्ठाके समय भी ऐसा ही मंत्र पढ़कर तिसको अभ्युक्षित करो कि, हे आराम ! हे वृक्ष ! तुम फल, पत्र और शाखा आदिसे और छायासे आराम देकर सबका प्रियकार्य करते रहो । तुम तीर्थके जलसे अभ्युक्षित हो मेरी समस्त कामना पूर्ण करो ॥ १३० ॥

सेतुस्त्वं भवसिन्धूनां पारदः पथिकप्रियः ।

मया संप्रोक्षितः सेतो ! यथोक्तफलदो भव ॥ १३१ ॥

अर्थ—हे सेतु ! तुम्हारे द्वारा संसारसमुद्रके पार उत्तराजासत्ता है । तुम पथिक लोगोंके अत्यंत प्यारे हो । मैंने तुमको अभ्युक्षित किया, तुम हमको यथोचित फल दो (यह वाक्य पढ़कर पुलको अभ्युक्षित करो) ॥ १३१ ॥

संक्रम ! त्वांप्रोक्षयामिलोकानांसंक्रमयथा ।

ददार्साहतथास्वर्गसंक्रमोमेप्रदीयताम् ॥ १३२ ॥

अर्थ—हे संक्रम ! मैं तुमको प्रोक्षित करता हूँ, जिसप्रकार तुम पथिकलोगोंके संक्रम अर्थात् दूसरी पार उतरनेका मार्ग दिखाते हो, वैसेही हमें स्वर्गमें उतरनेका मार्ग दो । (यह वाक्य पढ़कर संक्रमको अभ्युक्षित करे) ॥ १३२ ॥

आरामप्रोक्षणेमन्त्रोयएषकथितःप्रिये ! ।

सएवशाखिसंस्कारेप्रयोक्तव्योमनीषिभिः ॥ १३३ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! आरामप्रोक्षणमें जो मंत्र कहा, पण्डितोंको चाहिये कि, वृक्षकी शनिष्ठामें भी वही मंत्र पढ़ें ॥ १३३ ॥

प्रणवेवारुणश्चास्त्रंबीजत्रितयमम्बिके ! ।

सर्वसाधारणद्रव्यप्रोक्षणेविनियोजयेत् ॥ १३४ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! सर्व साधारण वस्तु प्रोक्षित करनेके समय प्रणव(वृरुण)बीज)और अस्त्र इन तीन बीजोंका व्यवहार करे (१) ॥ १३४ ॥

स्नापनार्हवाहनंचस्नापयेद्ब्रह्मविद्यया ।

अन्यत्रैवार्पणेनकुशाग्रेणविशोधयेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ—जिस वस्तुको स्नान कराया जासکتा है; ऐसे वाहनादिको गायत्री पढ़कर स्नान करावे, जिनको स्नान नहीं कराया जासکتा उनको कुशकी नोकसे ग्रहण किये हुए अर्घ्यके जलसे शुद्ध करे ॥ १३५ ॥

प्राणप्रतिष्ठामाचर्य्यतत्तद्वाहनसंज्ञया ।

पूजितोऽलंकृतोवाहोदेयोभवतिदैवते ॥ १३६ ॥

अर्थ—जब किसी देवताके वाहनकी प्रतिष्ठा करनी हो तो पहले उस वाहनका नाम ले प्राणप्रतिष्ठा करके उसको पूजे और अलंकार (आभूषणादि) पहरावे । फिर उस वाहनकी प्रतिष्ठा करे ॥ १३६ ॥

जलाशयेपूजनीयोवरुणोयादसाम्पतिः ।

गृहेप्रजापतिर्ब्रह्मारामसेतौचसंक्रमे ।

पूज्योविष्णुर्जगत्पातासर्वात्मासर्वदृग्विभुः ॥ १३७ ॥

अर्थ—जलाशयकी प्रतिष्ठा करनेके समय जलचारियोंके स्वामी वरुणजीकी पूजाकरे । गृहकी प्रतिष्ठाके समय प्रजापति ब्रह्माजीकी पूजाकरे वृक्ष, आराम, सेतु, संक्रमकी प्रतिष्ठा करनेके समय जगत्पति सर्वात्मा सबके साक्षी, विभु विष्णुजी की पूजाकरे ॥ १३७ ॥

श्रीदशगुवाच ।

विविधानिविधानानिकथितान्युक्तकर्मसु ।

क्रमोदर्शितोयेनमानवःकर्मसाधयेत् ॥ १३८ ॥

अर्थ—देवीजीने कहा, सब उत्तम कर्मोंमें अनेकप्रकारका विधान कहा, परंतु मनुष्य जिस कर्मको अवलंबन करके कर्मकरे वह आपने प्रकाशित नहीं किया ॥ १३८ ॥

क्रमव्यत्ययकर्माणिवह्वायासकृतान्यपि ।

नयच्छन्तिफलंसम्यङ् नृणांकर्मानुजीविनाम् ॥ १३९ ॥

अर्थ—जो मनुष्य फलको चाहते हैं, वह जो कर्म करते हैं, यद्यपि वह कर्म बहुत क्लेशसे सिद्ध होते हैं तथापि क्रम बिगड़नेसे वह कर्म फलदायक नहीं होते ॥ १३९ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

यदुक्तंपरमेशानि ! मातेव हितकारिणि ! ।

निःश्रेयसन्तल्लोकानांफलव्यापृतचेतसाम् ॥ १४० ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा:-हे परमेश्वरि ! तुम मातासमान जगत्की हितकारिणी हो रही हो मैंने जो कुछ तुमसे कहा सो फलमें आसक्त हुए पुरुषोंके लिये सब प्रकारसे मंगलकारी है ॥ १४० ॥

एतेपामुक्तकृत्यानामनुष्ठानं पृथक् पृथक् ।

वास्तुयागक्रमाद्देवि । कथयाम्यवधीयताम् ॥ १४१ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैंने जिन कर्मोंका वर्णन किया है उनका अनुष्ठान अलग २ है । अब मैं वास्तुयागसे आरंभ करके क्रमानुसार कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ १४१ ॥

पूर्वेऽह्निनियताहारः श्वः प्रातः स्नानमाचरेत् ।

कृत्वा पौर्वाहिकं कर्म गुरुं नारायणं यजेत् ॥ १४२ ॥

— अर्थ-(वास्तुयज्ञके समय) पहले दिन आहारको संयम करके दूसरे दिन सबेरेही स्नान करे फिर मंत्रका जाननेवाला पुरुष प्रातःकृत्य समाप्त करके गुरु और नारायणजीकी पूजा करे ॥ १४२ ॥

ततः स्वकाममुद्दिश्य विधिदर्शितवर्त्मना ।

कृतसङ्कल्पको मन्त्री गणेशादीन् समर्चयेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत कामनाके अनुसार विधिविधानसे संकल्प करके गणेशादिकी पूजा करे ॥ १४३ ॥

बन्धूकाभंत्रिनेत्रं द्विरद्वरमुखं नागयज्ञोपवीतं

शंखचक्रं कृपाणं विमलसरसिजं हस्तपद्मैर्दधानम् ॥

उद्यद्बालेन्दुमौलिं दिनकरकिरणोद्दीप्तवस्त्राङ्गशोभं

नानालंकारयुक्तं भजत गणपतिं रक्तपद्मोपविष्टम् ॥ १४४ ॥

अर्थ-(अब गणेशजीका ध्यान कहा जाता है) जिनकी आभा बंधूकके फूलकी समान है, जो त्रिनेत्र हैं, जिनका हाथी-

की समान मुख है, नागकरके जिनका यज्ञोपवीत हुआ है, जो चार हाथोंसे शंख, चक्र, कृपाण और सुन्दर पद्म धारण किये हैं, उदय हुई चंद्रकला जिनके शिरका भूषण है, जिनके वस्त्र और अंगकी शोभा उदय हुए सूर्यनारायणकी किरणके समान है, जिनके अंगमें अनेक प्रकारके आभूषण शोभायमान हो रहे हैं, जो रक्त (लाल) कमलपर बैठे हैं ऐसे गणेशजीका भजन करे ॥ १४४ ॥

एवंध्यात्वायथाशक्त्यापूजयित्वागणेश्वरम् ।

ब्रह्माणश्चततोवाणींविष्णुंलक्ष्मींसमर्चयेत् ॥ १४५ ॥

अर्थ-इसप्रकार ध्यान करके शक्तिके अनुसार गणेशजीकी पूजा करे । फिर ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु और लक्ष्मीजीकी पूजा करे ॥ १४५ ॥

शिवंदुर्गाग्रहांश्चापितथापोडशमातृकाः ।

घृतधारास्वपिवसूनिद्वाकुर्व्यात्पितृक्रियाम् ॥ १४६ ॥

अर्थ-अनंतर शिव, दुर्गा, ग्रह व पोडश मातृकाओंकी पूजा करके घृतकी धारासे वसुगणोंकी पूजा करे फिर पितृ-कृत्य करे ॥ १४६ ॥

ततःप्रोक्तविधानेनमण्डलंवास्तुरक्षसः ।

निर्मायपूजयेत्तत्रवास्तुदैत्यंगणैःसह ॥ १४७ ॥

अर्थ-इसके उपरांत पहले कही हुई विधिके अनुसार, वास्तुरक्षसके मंडलको बनाय तिसमें परिवारसहित वास्तु-दैत्यकी पूजा करे ॥ १४७ ॥

ततस्तुस्थण्डलंकृत्वावाह्निसंस्कृत्यपूर्ववत् ।

धाराहोमान्तमाचर्य्यवास्तुहोमंसमारभेत् ॥ १४८ ॥

अर्थ-फिर स्थंडिल (रेतिका चोंतरा) बनाय पहलेकी नाई अग्निसंस्कार करके धाराहोमतक सब कार्योंको करके वास्तु-होमको आरंभ करे ॥ १४८ ॥

यथाशक्त्याहुतीस्तस्मैपरिवारगणायच ।

तथापूजितदेवेभ्योदत्त्वाकर्मसमापयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-फिर वास्तुराक्षस और उसके परिवारके अर्थ यथाश-क्ति आहुति दे, पूजितदेवताओंके लिये आहुति देकर कर्मको समाप्त करे ॥ १४९ ॥

वास्तुयागेपृथक्कार्य्यैपतेकथितःक्रमः ।

अनेनैवग्रहाणाञ्चयज्ञोऽपिविहितःप्रिये ! ॥ १५० ॥

ग्रहाणामत्रमुख्यत्वान्नाद्भत्वेनप्रपूजनम् ।

सङ्कल्पानन्तरंकार्य्यवास्त्वर्चनमितिक्रमः ॥ १५१ ॥

अर्थ-यदि वास्तुयज्ञ अलग करना हो तो इस कहेहुए क्रमसे करे. हे प्रिये ! इस क्रमके अनुसार ग्रहोंका यज्ञभी किया जा सकता है, परंतु ऐसे स्थानमें ग्रहोंकी प्रधानताके हेतु अंग स्वरूपमें पूजा नहीं होगी तैसे स्थानमें क्रम यह है कि संकल्पके पीछेही वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये ॥ १५० ॥ १५१ ॥

गणेशार्चनंसर्ववास्तुयागविधानवत् ।

ग्रहाणायन्त्रमन्त्रौचध्यानंप्रागेवकीर्तितम् ॥ १५२ ॥

अर्थ-वास्तुयज्ञके विधानकी नाई गणेशआदि सब देव-ताओंकी पूजा करे । ग्रहोंके यंत्र मंत्र और ध्यान पहलेही कहे हैं ॥ १५२ ॥

प्रसङ्गात्कथितौभद्रे ! ग्रहवास्तुक्रतुक्रमौ ।

अथप्रस्तुतकृत्यानामुच्यतेकूपसंस्क्रिया ॥ १५३ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! प्रसंगानुसार ग्रहयज्ञ और वास्तुयज्ञका क्रम कहा, अब इस समयके कार्योंमें कूपसंस्कार कहताहूँ ॥ १५३ ॥

संकल्पविधिवत्कृत्वावास्तुपूजनमाचरेत् ।

मण्डलेकलशेवापिशालिग्रामेयथामति ॥ १५४ ॥

अर्थ-पहले यथाविधिसे संकल्प करके अपनी इच्छाके अनुसार मंडलमें, कलशमें वा शालिग्राममें वास्तुपूजा आरंभ करे ॥ १५४ ॥

ततःपूज्योगणपतिर्ब्रह्मावाणीहरीरमा ।

शिवोदुर्गाग्रहाश्चापिपूज्यादिकपतयस्तथा ॥ १५५ ॥

अर्थ-इसके उपरांत गणेश, ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु, लक्ष्मी, शिव, दुर्गा, ग्रह, दिक्पाल इनकी पूजा करके ॥ १५५ ॥

मातरोवसवोऽष्टौचततःकार्य्यापितृक्रिया ।

प्राधान्यंवरुणस्यात्रसहिपूज्योविशेषतः ॥ १५६ ॥

अर्थ-मातृगणोंकी और आठ गणोंकी पूजा करे तदुपरांत पितृश्राद्ध करे । इस कूपसंस्कारमें वरुणदेवताकीही प्रधानता है इस कारणसे भलीभाँति उनकी पूजा करे ॥ १५६ ॥

नानोपहारैर्वरुणमर्चयित्वास्वशक्तिः ।

विधिवत्संस्कृतेवह्नौवारुणंहोममाचरेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ-फिर अनेक भाँतिके उपहारोंसे यथाशक्ति वरुणजीकी पूजा करके संस्कार कीहुई आग्निमें विधिपूर्वक वरुणजीका होम करे ॥ १५७ ॥

पूजितेभ्यश्चदेवेभ्योदत्त्वाप्रत्येकमाहुतिम् ।

पूर्णाहुत्यन्तकृत्येनहोमकर्मसमापयेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ-फिर पूजित देवताओंमेंसे प्रत्येकको आहुति दे, पूर्णाहुति देकर होमकर्मको समाप्त करे ॥ १५८ ॥

ततो ध्वजपताकास्रग्गन्धसिन्दूरचर्चितम् ।

उक्तप्रोक्षणमन्त्रेण प्रोक्षयेत्कूपमुत्तमम् ॥ १५९ ॥

अर्थ-फिर कहाहुआ प्रोक्षणमंत्र पढ़कर ध्वजा, पताका, स्रक् चंदन और सिन्दूरसे शोभायमान उत्तम कुण्डको प्रोक्षित करे ॥ १५९ ॥

ततः स्वकाममुद्दिश्य देवमुद्दिश्य वानरः ।

सर्वभूतप्रीणनायोत्सृजेत्कूपजलाशयम् ॥ १६० ॥

अर्थ-फिर मनुष्य अपनी कामनाके अर्थ अथवा देवताकी प्रीतिके लिये, सर्व प्राणियोंको संतोषित करनेकी कुआ या जलाशयका उत्सर्ग करे ॥ १६० ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्साधकाग्रणीः ।

सुप्रीयन्तां सर्वभूतान् भो भूतो यवासिनः ॥ १६१ ॥

अर्थ-फिर साधक श्रेष्ठको हाथ जोड़कर प्रार्थना करनी चाहिये कि, जलचारी, थलचारी, व आकाशचारी समस्त प्राणी नृत्त हों ॥ १६१ ॥

उत्सृष्टं सर्वभूतेभ्यो मया तज्जलमुत्तमम् ।

तृप्यन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥ १६२ ॥

अर्थ-मैंने सर्व प्राणियोंके नृत्तिके लिये यह उत्तम जल उत्सर्ग किया, स्नान, पान और अवगाहन करके सब प्राणी नृत्त हों ॥ १६२ ॥

सामान्यं सर्वजीवेभ्यो मया दत्तामि दंजलम् ।

ये च केचिद्रिपद्यन्ते स्वस्वकर्मविपाकतः ॥ १६३ ॥

अर्थ-मैंने समान समझकर सर्व जीवोंको यह जल दिया जो जो अपने कर्मके विपाकसे इस जलसे प्राणत्याग करेंगे १६३

तत्पापैर्न प्रलिप्येऽहं सफलास्तु मम क्रियाः ।

ततस्तु दक्षिणां कृत्वा कृतशान्त्यादिकक्रियः ॥ १६४ ॥

अर्थ-मैं उनके पापमें नहीं फसूंगा । किया सफल होवे फिर शान्ति इत्यादि करके दक्षिणान्त करे ॥ १६४ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्कौलान्दीनानपिबुभुक्षितान् ।

जलाशयप्रतिष्ठासुसर्वत्रैपक्रमःशिवे ॥ १६५ ॥

अर्थ-अनंतर कुलवानोंको, ब्राह्मणोंको और भूखे दीन लोगोंको भोजन करावे । जलाशयकी प्रतिष्ठामें सब स्थानोंपर ऐसा ही क्रम करना चाहिये ॥ १६५ ॥

तडागादौचकर्तव्यानागस्तम्भजलेचराः ॥ १६६ ॥

अर्थ-तड़ागादिकी प्रतिष्ठाके समय विशेषता यह है कि, उसमें नाग, स्तम्भ और जलचर निर्माण करना चाहिये ॥ १६६ ॥

मीनमण्डूकमकरकूर्माश्चजलजन्तवः ।

कार्याधातुमयाश्चेतकर्तृवित्तानुसारतः ॥ १६७ ॥

अर्थ-कर्मकर्ताके विभवके अनुसार मत्स्य, मेंढक, मकर, कछुआ यह सब जलजन्तु धातुके बनवावे ॥ १६७ ॥

मत्स्यौस्वर्णमयौकुर्व्यान्मण्डूकावपिहेमजौ ।

राजतौमकरौकूर्ममिथुनंताम्ररीत्यिकम् ॥ १६८ ॥

अर्थ-दो मत्स्य और दो मेंढक सुवर्णके बनवावे, दो मकर चांदीके बनवावे, दो कछुए तांबेके और पीतलके बनवावे १६८

एतैर्जलचरैःसार्द्धतडागमपिदीर्घिकाम् ।

सागरञ्चसमुत्सृज्यप्रार्थयन्नागमर्चयेत् ॥ १६९ ॥

अर्थ-इन जलचर जन्तुओंके साथ तड़ाग बावडी और सरोवरके उत्सर्ग कर प्रार्थना करके नागकी पूजा करे ॥ १६९ ॥

अनन्तोवासुकिःपद्मोमहापद्मश्चतक्षकः ।

कुलीरःकर्कटःशंखःपाथसारक्षकाश्चैव ॥ १७० ॥

अर्थ-वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कट, शंख
यह जलके रक्षक हैं ॥ १७० ॥

इत्यष्टौनागनामानिलिखित्वाश्वत्थपल्लवे ।

स्मृत्वाप्रणवगायत्र्यौघटमध्येविनिःक्षिपेत् ॥ १७१ ॥

अर्थ-पीपलके पत्तोंके ऊपर यह आठ नाम लिखकर प्रणव
और गायत्रीका स्मरण करके घड़ेमें वह पत्ते डाले ॥ १७१ ॥

चन्द्रार्कौसाक्षिणौकृत्वाविलोड्यैकंसमुद्धरेत् ।

तत्रोत्तिष्ठतियोनागस्तंकुर्य्यात्तोयरक्षकम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-फिर चंद्रमा सूर्यको साक्षी बनाय इन पीपलके पत्तोंको
घड़ेहीमें घुमाय फिराय उनमेंसे एक पत्ता निकाले तिस पत्तेमें
जिसका नाम निकले उसकोही जलका रक्षक करे ॥ १७२ ॥

स्तम्भमेकंसमानीयविंशहस्तिमितंशुभम् ।

सरलंदारुजंतैलैरुक्षितञ्चहरिद्रया ॥ १७३ ॥

अर्थ-फिर बीसहाथ लंबा उत्तम व सीधे काठका बनाहुआ
एक थंभ लाकर उसमें तेल व हल्दी लगावे ॥ १७३ ॥

स्नापयेत्तीर्थतोयेनव्याहृत्याप्रणवेनच ।

तत्रह्रीश्रीक्षमाशान्तिसहितंनागमर्चयेत् ॥ १७४ ॥

अर्थ-फिर तिथेके जलसे प्रणव और व्याहृति पढ़कर इस
थंभको स्नान करावे फिर उसमें ह्री श्री क्षमा और शान्तिके
साथ नागकी पूजा करे ॥ १७४ ॥

नागत्वंविष्णुशय्यासिमहादेवविभूषणम् ।

स्तम्भमेनमधिष्ठायजलरक्षांकुरुष्वमे ॥ १७५ ॥

अर्थ-अनंतर यह कहकर प्रार्थना करे कि हे नाग ! तुम
विष्णुजीकी शय्या और महादेवजीके भूषण हो तुम इस
थंभमें वास करके हमारे इस जलकी रक्षा करो ॥ १७५ ॥

इतिप्रार्थ्यततोनागस्तम्भमध्येजलाशयम् ।

समारोप्यतद्भागश्चकर्त्ताकुर्व्यात्प्रदक्षिणम् ॥ १७६ ॥

अर्थ-इसप्रकार नागसे प्रार्थना करके कर्मकर्त्ता जलाशयमें थंभको गाढकर तद्भागकी प्रदक्षिणा करे ॥ १७६ ॥

यूपश्चेत्स्थापितःपूर्वतदानागं घटेऽर्चयन् ।

तज्जलंतत्रनिक्षिप्याशिष्टंकर्मसमापयेत् ॥ १७७ ॥

अर्थ-जो थंभ पहलेही गाढ दिया हो तो घड़ेके ऊपर नागकी पूजा करे फिर इस घड़ेका जल इस जलाशयमें डालकर शेषकर्म समाप्त करे ॥ १७७ ॥

एवंगृहप्रतिष्ठायांकृतसंकल्पकोबुधः ।

वास्त्वादिवसुपूजान्तपैत्रकर्मचकूपवत् ॥ १७८ ॥

अर्थ-इसीप्रकार गृहकी प्रतिष्ठाके समय ज्ञानी पुरुष संकल्प करके कुणकी प्रतिष्ठाकी नाई वास्तुपूजा इत्यादि वसुपूजातक समाधान करके पितृकर्म करे ॥ १७८ ॥

विधायात्रविशेषेणयजेद्देवंप्रजापतिम् ।

प्राजापत्यञ्चहवनंकुर्व्यात्साधकसत्तमः ॥ १७९ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठको चाहिये कि, भलीभाँतिसे देव प्रजापतिकी पूजा करे फिर प्राजापत्यहोम करे ॥ १७९ ॥

गृहंपूर्वोक्तमन्त्रेणप्रोक्ष्यगन्धादिनार्चयन् ।

ईशानाभिमुखोभूत्वाप्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ १८० ॥

अर्थ-फिर पहला कहाहुआ मंत्र पढ़ गृह प्रोक्षित कर गंध पुष्पादिसे पूजा करे अनंतर ईशानकी ओर मुखकर हाथ जोड़ प्रार्थना करे कि ॥ १८० ॥

प्रजापतिश्च ते गेह पुष्पमाल्यादिभूषितः ।

अस्माकं शुभवासाय सर्वथा सुखदो भव ॥ १८१ ॥

अर्थ—हे गृह ! प्रजापति तुम्हारे अधिष्ठाता हैं तुम पुष्प-मालादिसे भूषित हुए हो । हमारे शुभवासके लिये तुम सब प्रकारसे सुख दायक होवो ॥ १८१ ॥

ततस्तु दक्षिणां कृत्वा शांत्या शीर्वादमाचरेत् ।

विप्रान्कुलीनान्दीनांश्च भोजयेदात्मशक्तितः ॥ १८२ ॥

अर्थ—फिर दक्षिणान्त करके शान्ति और आशीर्वाद ग्रहण करे, तदुपरांत कुलवानोंको, ब्राह्मणोंको और दीन दरिद्रोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥ १८२ ॥

अन्यार्थन्तु प्रतिष्ठाचेत्तद्वासायान्नयोजयेत् ।

देवताकृतगेहस्यविधानं शृणु शैलजे ॥ १८३ ॥

अर्थ—यदि दूसरेके लिये गृहकी प्रतिष्ठा की जाय तो “अस्माकं शुभवासाय” ना कहकर “अमुकस्य शुभवासाय” अथवा “अन्येषां शुभवासाय” यह पद मिलावे । हे शैलतनये ! देवताके लिये गृहप्रतिष्ठाकी विधि कहता हूं तुम सुनो ॥ १८३ ॥

इत्थं संस्कृत्य भवनं शंखतूर्य्यादिनिःस्वनैः ।

देवतासन्निधिं गत्वा प्रार्थयेद्ब्रिहिताञ्जलिः ॥ १८४ ॥

अर्थ—इसप्रकार गृहसंस्कार कर शंखादि बजाय देवताके निकट जाय हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि ॥ १८४ ॥

उत्तिष्ठ देवदेवेश भक्तानां वाञ्छितप्रद ।

आगत्य जन्मसाफल्यं कुरु मे करुणानिधे ॥ १८५ ॥

अर्थ—हे देवदेवेश ! उठो तुम भक्तवृन्दके अभिलाषित फलको देनेवाले हो । हे करुणानिधे ! नये प्रतिष्ठित गृहमें आकर उसको सफल करो ॥ १८५ ॥

इत्यभ्यर्थ्यगृहाभ्यर्णेदेवमानीयसाधकः ।

उपस्थाप्यगृहद्वारिपुरतोवाहनंन्यसेत् ॥ १८६ ॥

अर्थ—इसप्रकार अभ्यर्थना करके साधक, देवताको गृहके समीप लाय घरके द्वारमें स्थापित करके सामने वाहनकी रक्षा करे ॥ १८६ ॥

त्रिशूलमथवाचक्रंविन्यस्यभवनोपरि ।

रोपयेन्मन्दिरेशानेसपताकंध्वजंसुधीः ॥ १८७ ॥

अर्थ—भवनके ऊपर त्रिशूल अथवा चक्र लगाकर बुद्धिमान् साधक मन्दिरके ईशानकोणमें पताकाके साथ ध्वजाको लगावे ॥ १८७ ॥

चन्द्रातपैःकिङ्किणीभिःपुष्पस्रक्चूतपल्लवैः ।

शोभयित्वागृहंसम्यक्च्छादयेदिव्यवाससा ॥ १८८ ॥

अर्थ—फिर चन्द्रोवेसे, किंकिणीसे, फूलोंकी मालासे, गिरे हुए पत्तोंसे इस मन्दिरको शोभायमान करके दिव्यवस्त्रोंसे ढके ॥ १८८ ॥

उत्तराभिमुखंदेवंवक्ष्यमाणविधानतः ।

स्नापयेद्विहितैर्द्रव्यैस्तत्क्रमंवच्मिन्तेशृणु ॥ १८९ ॥

अर्थ—फिर देवताको उत्तरमुख स्थापित करके वक्ष्यमाण विधिके अनुसार विधिमें कहेहुए द्रव्यसे स्नान करावे । अब स्नानका क्रम कहता हूं सुनो ॥ १८९ ॥

ऐर्ह्रींश्रीमितिमन्त्रान्तेमूलमन्त्रंसमुच्चरन् ।

दुग्धेनस्नापयामित्वांमातिवपरिपालय ॥ १९० ॥

अर्थ—“ऐं ह्रीं श्रीं” इस मन्त्रके पीछे मूलमन्त्र उच्चारण करके फिर “दुग्धेन स्नापयामि त्वाम्” अर्थात् मैं तुमको दूधसे स्नान कराता हूं, तुम मुझको माताकी समान प्रतिपालन करो यह मन्त्र पढ़े ॥ १९० ॥

प्रोक्तबीजत्रयस्यान्तेतथामूलंनियोजयन् ।

दध्नात्वांस्नापयाम्यद्यभवतापहरोभव ॥ १९१ ॥

अर्थ-“ऐं ह्रीं श्रीं” उच्चारणकर मूलमन्त्र पढ़ “दध्नात्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव” अर्थात् मैं तुमको दहीसे स्नान कराता हूँ, तुम संसारका संताप हट करों यह मन्त्र पढ़े १९१

पुनर्बीजत्रयंमूलंसर्वानन्दकरेतिच ।

मधुनास्नापितःप्रीतोमामानन्दमयंकुरु ॥ १९२ ॥

अर्थ-फिर “ऐं ह्रीं श्रीं” बीज पढ़कर “सर्वानन्दकर” पाठ करके फिर कहै कि, मैं मधुसे स्नान कराता हूँ तुम प्रसन्न होकर मुझे आनन्दमय करो (१) ॥ १९२ ॥

प्राग्वन्मूलंमुच्चार्य्यसावित्रींप्रणवंस्मरन् ।

देवप्रियेणहविषाआयुः शुक्रेणतेजसा ।

स्नानंतेकल्पयामीश ! मामरोगंसदाकुरु ॥ १९३ ॥

अर्थ-पहलेकी समान मूलमन्त्र गायत्री और प्रणव स्मरण करके पीछे आयुः, शुक्र और तेजके बढ़ानेवाले देवताओंके प्यारे घृतसे तुमको स्नान कराता हूँ । हे ईश्वर ! तुम हमको सदा रोगरहित रखो यह मन्त्र पढ़कर घीसे स्नान करावे ॥ १९३ ॥

तद्वन्मूलञ्चगायत्रींव्याहृतिंमुदीरयन् ।

देवेश ! शर्करातोयैःस्नातोमेयच्छवाञ्छितम् ॥ १९४ ॥

अर्थ-इसप्रकार मूलगायत्री और व्याहृतिका उच्चारण करके कहै कि, हे देवेश ! मैं तुमको शर्करासे स्नान कराता हूँ तुम मुझे वाञ्छित फल दो ॥ १९४ ॥

तथामूलंमुच्चार्य्यगायत्रींवारुणंमनुम् ।

विधात्राभिर्मितैर्दिव्यैःप्रियैःस्निग्धैर्लोकिकैः ॥

नारिकेलोदकैःस्नानंकल्पयामिनमोस्तुते ॥ १९५ ॥

अर्थ—इसप्रकार पहली कहीहुई मूलगायत्री और “वं” वरुणबीज उच्चारण करके कहे कि, विधाता करके बनाहुआ दिव्य, प्रिय, चिकने, अलौकिक नारियलके जलसे तुमको स्नान कराताहूं तुम्हें नमस्कार हो ॥ १९५ ॥

गायत्र्यामूलमन्त्रेणस्नापयेदिक्षुजैरसैः ॥ १९६ ॥

अर्थ—फिर गायत्री और मूलमन्त्र पढ़कर गन्नेके रससे स्नान करावै ॥ १९६ ॥

कामबीजंतथातारंसावित्रौमूलमीरयन् ।

कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः ।

सुस्नातोभवसुप्रीतोभुक्तिमुक्तीप्रयच्छमे ॥ १९७ ॥

अर्थ—फिर “क्लीं ओं” उच्चारण करके गायत्री व मूलमन्त्र पढ़कर कहे कि—कपूर, अगर, केशर, कस्तूरी और चन्दनके जलसे उत्तम स्नान कर तुम प्रसन्न होवो और हमको भोग व मोक्ष दो ॥ १९७ ॥

इत्यष्टकलशैःस्नानंकारयित्वाजगत्पतिम् ।

गृहाभ्यन्तरमानीयस्थापयेदासनोपरि ॥ १९८ ॥

अर्थ—इसप्रकार जगन्नाथको आठ कलशोंसे स्नान कराय गृहमें लेजाय आसनके ऊपर स्थापन करे ॥ १९८ ॥

स्नापनार्हानिचेदर्चातथ्यन्त्रेवापितन्मनौ ।

शालिग्रामशिलायांवास्नापयित्वाप्रपूजयेत् ॥ १९९ ॥

अर्थ—जो देवताकी मूर्ति स्नान करानेके योग्य न हो तो उस देवताको यन्त्रमें, मन्त्रमें अथवा शालिग्रामशिलामें स्नान करायकर पूजा करे ॥ १९९ ॥

अनुक्तमन्त्रायेतत्रतानेवात्रशृणुप्रिये ।

आसनाद्युपचाराणांप्रदानेविनियोजयेत् ॥ २११ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! वहांपर जो मन्त्र नहीं कहे, उनको अब कहताहूं तुम सुनो । आसनादि उपचार देनेके समय इसमन्त्रका प्रयोग करना चाहिये ॥ २११ ॥

सर्वभूतान्तरस्थायसर्वभूतान्तरात्मने ।

कल्पयाम्युपवेशार्थमासनन्तेनमोनमः ॥ २१२ ॥

अर्थ-तुम प्राणियोंके अन्तरमें विराजमानहो तुम्हारे बैठनेको आसन कल्पित करताहूं तुमको बारंबार नमस्कार है ॥ २१२ ॥

उक्तक्रमेणदेवेशि ! प्रदायासनमुत्तमम् ।

कृताञ्जलिपुटोभूत्वास्वागतंप्रार्थयेत्ततः ॥ २१३ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! इस मन्त्रसे उत्तम आसन देकर फिर हाथ जोड़कर स्वागतकी प्रार्थना करे कि ॥ २१३ ॥

देवाःस्वाभीष्टसिद्धयर्थयस्यवाञ्छन्तिदर्शनम् ।

सुस्वागतंस्वागतम्मेतस्मैतेपरमात्मने ॥ २१४ ॥

अर्थ-अपनी २ अभीष्टसिद्धिके लिये देवतालोग जिसे दर्शनकी कामना करते हैं, तुम वही परमात्माहो, हमारे लिये तुम्हारा स्वागत, सुस्वागत निवेदित हुआ ॥ २१४ ॥

अद्यमेसफलंजन्मजीवनंसफलाः क्रियाः ।

स्वागतंयत्त्वयातन्मेतत्संपलमागतम् ॥ २१५ ॥

अर्थ-आज तुम्हारा शुभागमन होनेसे मेरा जन्म सफल, जीवन सार्थक हुआ सब क्रिया सार्थक हुई, आज मैं तपके फलको प्राप्त हुआ ॥ २१५ ॥

देवमामन्त्र्यसंप्राथर्यस्वागतप्रश्रमम्बिके ! ।

विहितंपाद्यमादायमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २१६ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! इसप्रकार स्वागत प्रदानसे देवताको संभाषण कर प्रार्थना करे और विधिसे पाद्यग्रहण करके यह मन्त्र पढ़े कि ॥ २१६ ॥

यत्पादजलसंस्पर्शाच्छुद्धिमाप्सजगत्रयम् ।

तत्पादान्जप्रोक्षणार्थपाद्यन्तेकल्पयाम्यहम् ॥ २१७ ॥

अर्थ-जिसके चरणामृतको स्पर्श करनेसे त्रिलोकी पवित्र हुई है उसके चरणकमल धोनेके लिये यह पाद्य देता हूँ ॥ २१७ ॥

परमानन्दसन्दोहोजायतेयत्प्रसादतः ।

तस्मैसर्वात्मभूतायआनन्दायैसमर्पये ॥ २१८ ॥

अर्थ-जिसके प्रसादसे परमानन्दके समूह उत्पन्न होते हैं उस सर्वात्माके लिये यह आनन्दाद्यै समर्पण करता हूँ ॥ २१८ ॥

जातीलवङ्गकंकोलैर्जलकेवलमेववा ।

प्रोक्षितार्चितमादायमन्त्रेणानेनचार्पयेत् ॥ २१९ ॥

अर्थ-जायफल, लोंग, कंकोल आदि द्वारा सुगंधित जल अथवा केवल जलअर्घ्यके जलसे प्रोक्षित और पूजित करके उक्त मन्त्र पढ़कर अर्पण करे ॥ २१९ ॥

यदुच्छिष्टमपस्पृष्टंशुद्धिमेत्यखिलंजगत् ।

तस्मैसुखारविन्दायआचमंकल्पयामिते ॥ २२० ॥

अर्थ-अपवित्रमय समस्त जगत् जिसकी जूँठनसे पवित्र होता है तुम्हारे उस सुखारविन्दमें आचमनीय कल्पना करता हूँ ॥ २२० ॥

मधुपर्कसमादायभक्त्यानेनसमर्पयेत् ॥ २२१ ॥

अर्थ-फिर मधुपर्क ग्रहण करके इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक समर्पण करे ॥ २२१ ॥

तापत्रयविनाशार्थमखण्डानन्दहेतवे ।

मधुपर्कददाम्यद्यप्रसीदपरमेश्वर ! ॥ २२२ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! तुम अखण्ड आनन्दके कारण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन तापोंके नाशके लिये मैं तुमको मधुपर्क देता हूँ, तुम प्रसन्न होवो २२२

अशुचिः शुचितामेतियत्स्पृष्टस्पर्शमात्रतः ।

अस्मिन्स्तेवदनाम्भोजेपुनराचमनीयकम् ॥ २२३ ॥

अर्थ-जिसकी छुईहुई वस्तुका स्पर्श करनेसे अपवित्र वस्तुभी तत्काल पवित्र हो जाती है, तुम्हारे वस वदनकमलमें पुनराचमनी देता हूँ ॥ २२३ ॥

स्नानार्थजलमादायप्राग्वत्प्रोक्षितमर्चितम् ।

निधायदेवपुरतोमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २२४ ॥

अर्थ-फिर स्नानके लिये जल लेकर पहलेकी समान प्रोक्षित और पूजकर देवताके सामने रखके यह मन्त्र पढ़े कि ॥ २२४ ॥

यत्तेजसाजगद्व्याप्तं यतो जातमिदं जगत् ।

तस्मै तेजगदाधार स्नानार्थतोयमर्पये ॥ २२५ ॥

अर्थ-तुम जगतके आधार हो तुम्हारा तेज जगतमें व्याप्त रहा है तुमसे यह जगत उत्पन्न हुआ है, मैं तुम्हारे स्नानके निमित्त यह जल अर्पण करता हूँ ॥ २२५ ॥

स्नानेवस्त्रेचनेवेद्ये ! दद्यादाचमनीयकम् ।

अन्यद्रव्यप्रदानान्ते दद्यात्तोयं सकृत्सकृत् ॥ २२६ ॥

अर्थ-स्नान, वस्त्र और नैवेद्य उत्सर्ग करनेके पीछे आचमनीय देना चाहिये । और द्रव्य देनेके पीछे एक २ बार जल देवे ॥ २२६ ॥

वस्त्रमानीयदेवाग्रे शोधितं पूर्ववर्त्मना ।

धृत्वाकराभ्यामुत्तोल्य पठेदेतं मनुंसुधीः ॥ २२७ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि, देवताके सन्मुख पहली—कही हुई विधिके अनुसार शुद्ध वस्त्र लाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर उठाय यह मंत्र पढ़े ॥ २२७ ॥

सर्वावरणहीनाय मायाप्रच्छन्नतेजसे ।

वाससी परिधानाय कल्पयामिनमोऽस्तुते ॥ २२८ ॥

अर्थ—तुम्हारा कोई आवरण नहीं है, मायाकरके तुम्हारा तेज ढका हुआ है, तुम्हारे पहरनेके लिये वस्त्र कल्पित करता हूँ, तुमको नमस्कार हो ॥ २२८ ॥

नानाभरणमादाय स्वर्णरौप्यादिनिर्मितम् ॥

प्रोक्ष्यार्चयित्वा देवाय दद्यादेतं समुच्चरन् ॥ २२९ ॥

अर्थ—इसके उपरांत सुवर्ण, चांदी आदिके बने हुए अनेक प्रकारके आभूषण ले प्रोक्षण करके पूजा कर यह मंत्र पढ़ते २ देवताको देवे ॥ २२९ ॥

विश्वाभरणभूताय विश्वशोभैकयोनये ।

मायाविग्रहभूषार्थं भूषणानि समर्पये ॥ २३० ॥

अर्थ—जो जगत्के भूषणस्वरूप है, जो जगत्की शोभाके खानि हैं, उनके मायासे बने हुए शरीरके अर्थ यह सब गहने समर्पण करता हूँ ॥ २३० ॥

गन्धतन्मात्रया सृष्टये न गन्धधराधरा ।

तस्मै परात्मने तुभ्यं परमं गन्धमर्पये ॥ २३१ ॥

अर्थ—जिससे गंध तन्मात्रद्वारा गंधकी आधार यह पृथ्वी उत्पन्न हुई है, वह परमात्मा तुम्ही हो मैं तुमको दिव्य गंध देता हूँ ॥ २३१ ॥

पुष्पमनोहरं रम्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् ।

मयानिवेदितं भक्त्या पुष्पमेतत्प्रगृह्यताम् ॥ २३२ ॥

अर्थ-यह फूल देवता करके बनेहुए मनोहर दिव्य और सुगन्धित हैं। मैं भक्तिके साथ तुमको यह पुष्प चढ़ाताहूँ तुम ग्रहण करो ॥ २३२ ॥

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।

आग्नेयः सर्वभूतानां धूपो घ्राणाय तेऽर्प्यते ॥ २३३ ॥

अर्थ-यह वनस्पतिके रस करके बनाहुआ मनोहर दिव्य और सुगन्धसंपन्न है। यह धूप सबके सूँघने योग्य है, मैं तुम्हारे सूँघनेके लिये यह धूप समर्पण करताहूँ ॥ २३३ ॥

सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः ।

सत्राह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ २३४ ॥

अर्थ-यह महादीप उत्तम प्रकाश करनेवाली और महादीप्ति है यह चारों ओरके अंधकारका नाश करती है इसके बाहर और भीतर ज्योति है तुम इस दीपको ग्रहण करो ॥ २३४ ॥

नैवेद्यं स्वादुसंयुक्तं नानाभक्ष्यसमन्वितम् ।

निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर ! ॥ २३५ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! इस नैवेद्यमें अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ हैं। यह उत्तम और स्वादिष्ट है मैं भक्तिपूर्वक इसे निवेदन करताहूँ तुम आहार करो ॥ २३५ ॥

पानार्थं सलिलं देव ! कर्पूरादि सुवासितम् ।

सर्वतृप्तिकरं स्वच्छमर्पयामि नमोऽस्तुते ॥ २३६ ॥

अर्थ-हे देव ! कर्पूरादिसे सुवासित यह पीनेका जल सब को तृप्त करनेवाला और अत्यंत निर्मल है। मैं यह पानार्थ जल तुमको अर्पण करताहूँ आपको नमस्कार है ॥ २३६ ॥

ततःकर्पूरखदिरलवङ्गैलादिभिर्गुतम् ।

ताम्बूलं पुनराचम्यंदेत्वावन्दनमाचरेत् ॥ २३७ ॥

अर्थ-फिर कर्पूर, खैर, इलायची, लवणादिके साथ ताम्बूल और पुनराचमनीय देकर नमस्कार करे ॥ २३७ ॥

उपचाराधारदानेसाधारद्रव्यमुल्लिखेत् ।

दद्याद्वापृथगाधारंतत्तन्नामसमुच्चरन् ॥ २३८ ॥

अर्थ-जो उपचारके साथ आधार दिया जाय तो आधारके साथ द्रव्यका नाम ले । अथवा सब आधारोंका नाम लेकर पृथक् आधारदे ॥ २३८ ॥

इत्थमर्चितदेवायदत्त्वापुष्पाञ्जलित्रयम् ।

साच्छादनंगृहंप्रोक्ष्यपठेदेतंकृताञ्जलिः ॥ २३९ ॥

अर्थ-इसप्रकार पूजित देवताको तीनबार पुष्पांजलिदे, आच्छादनके साथ गृह प्रोक्षित करके हाथ जोड़कर यह मंत्र पढ़े ॥ २३९ ॥

गेह ! त्वंसर्वलोकानांपूज्यःपुण्ययशप्रदः ।

देवतास्थितिदानेनसुमेरुसदृशोभव ॥ २४० ॥

अर्थ-हे गृह ! तुम सब लोगोंके पूज्य और पवित्र यश देनेवाले हो तुम देवताओंको स्थान देकर सुमेरुकी समान हो ॥ २४० ॥

त्वंकैलासश्चैकुण्ठस्त्वंब्रह्मभवनंगृह ! ।

यत्त्वयाविधृतोदेवस्तस्मात्त्वंसुरवन्दितः ॥ २४१ ॥

अर्थ-हे गृह ! तुम कैलास, तुम चैकुण्ठ और तुम ब्रह्म-भवनहो तुमने देवताको धारण किया है, अतएव तुम देवताओंके भी पूजनीयहो ॥ २४१ ॥

यस्यकुक्षौजगत्सर्ववरीवर्त्तिचराचरम् ।

मायाविधृतदेहस्यतस्यमूर्त्तेर्विधारणात् ॥ २४२ ॥

अर्थ-जो अपनी कुक्षिमें सब संस्कारको धारण करते हैं
तिनके मायामें व देह धारण करनेसे तुम उनकी मूर्ति धारण
करते हो ॥ २४२ ॥

देवमातृमयस्त्वंहिसर्वतीर्थमयस्तथा ।

सर्वकामप्रदोभूत्वाशान्तिमेकुरुतेनमः ॥ २४३ ॥

अर्थ-अतएव तुम देवताकी माके समान और तीर्थमय हो ।
तुम हमारी सब अभिलाषायें पूर्ण करो, तुम हमको शान्ति
दो तुमको नमस्कार करता हूँ ॥ २४३ ॥

इत्यभ्यर्थ्यत्रिरभ्यर्च्यगृहं चक्रादिसंयुतम् ।

आत्मनःकाममुद्दिश्यदद्याद्देवायसाधकः ॥ २४४ ॥

अर्थ-इसप्रकार चक्रादिके सहित गृहकी प्रार्थना करके
साधक तीनवार पूजे फिर अपनी कामनादिको कहकर देव-
ताके लिये उस गृहको उत्सर्ग करे ॥ २४४ ॥

विश्वावासायवासायगृहंतेविनिवेदितम् ।

अङ्गीकुरुमहेशान ! कृपयासन्निधीयताम् ॥ २४५ ॥

अर्थ-और इस मंत्रको पढ़े कि, हे महेश्वर ! यद्यपि तुम
संसारके रहनेके स्थान हो तथापि तुम्हारे वासके लिये यह
घर उत्सर्ग किया तुम कृपाकरके ग्रहण करो और इस घरमें
स्थिति करके विराजो ॥ २४५ ॥

इत्युक्त्वापितगेहायदेवायदत्तदक्षिणः ।

शंखतूर्यादिवोपैस्तंस्थापयेद्देदिकोपरि ॥ २४६ ॥

अर्थ-यह मंत्र पढ़ देवताके लिये गृहको भेंट दे दक्षिणा
देकर शंख तुरही आदिके शब्दसे उस देवताको वेदिके ऊपर
स्थापित करे ॥ २४६ ॥

स्पृष्ट्वादेवपदद्वन्द्वंमूलमन्त्रं समुच्चरन् ।

स्थांस्थींस्थिरोभवेत्युक्त्वावासस्तेकलिप्तोमया ।

इतिदेवंस्थिरीकृत्यभवनंप्रार्थयेत्पुनः ॥ २४७ ॥

अर्थ—फिर देवताके दोनों चरण पकड़ मूलमंत्र उच्चारण करके “स्थां स्थां स्थिरो भव” मैंने इस गृहमें तुम्हारा वास कल्पित किया, यह मन्त्र कह देवताको स्थिरकर फिर गृह-से प्रार्थना करे कि ॥ २४७ ॥

गृह ! देवनिवासायसर्वथाप्रीतिदोभव ।

उत्सृष्टेत्वयिमेलोकाःस्थिराःसन्तुनिराम्याः ॥ २४८ ॥

अर्थ—हे घर ! तुम देवताके निवासमें सर्वप्रकारसे प्रीति-दायक होवो । मैंने तुमको उत्सर्ग किया, मेरे लिये स्वर्गलोक निरुपद्रव हो ॥ २४८ ॥

द्विसप्तातीतपुरुषान्द्विसप्तानागतानपि ।

मांचमेपरिवारांश्चदेवधाम्निनिवासय ॥ २४९ ॥

अर्थ—मेरे बहत्तर पूर्व और बहत्तर पीछेके पुरुषोंको मेरे परिवार वा लोगोंको देवलोकमें वास कराओ ॥ २४९ ॥

यजनाःसर्वयज्ञानांसर्वतीर्थनिपेवणात् ।

यत्फलंतत्फलंमेऽद्यजायतांत्वत्प्रसादतः ॥ २५० ॥

अर्थ—सब यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल होता है, सब तीर्थोंमें गमन करनेसे जो फल होता है आज तुम्हारे प्रसादसे मुझे वह समस्त फल होवे ॥ २५० ॥

यावद्रसुन्धरातिष्ठेद्यावदेतेधराधराः ।

यावद्विवानिज्ञानाथौतावन्मेवर्त्ततांकुलम् ॥ २५१ ॥

अर्थ—जबतक पृथ्वी रहै, जबतक सर्व पर्वत रहें, जबतक चन्द्र सूर्य रहै तबतक मेरा वंश स्थिर रहे ॥ २५१ ॥

इतिप्रार्थ्यगृहंप्राज्ञःपुनर्देवंसमर्चयन् ।

दर्पणाद्यन्यवस्तूनिध्वजंचापिनिवेदयेत् ॥ २५२ ॥

अर्थ-इसप्रकार गृहसे प्रार्थना करके फिर ज्ञानीपुरुष
द्वारा देवताको पूजे । और ध्वजा दर्पणादि और सब वस्तु-
यें निवेदन करे ॥ २५२ ॥

ततस्तुवाहनंदद्याद्यस्मिन्देवेयथोदितम् ।

शिवायवृषभंदत्त्वाप्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ २५३ ॥

अर्थ-फिर जिस देवताके लिये जो वाहन कहा है, वह
उसको देव यदि शिवकी प्रतिष्ठा होवे तो शिवको वृषभ
दानदे हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि ॥ २५३ ॥

वृषभ ! त्वंमहाकायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽरिघातकः ।

पृष्ठेवहसिदेवेशंपूज्योऽसिन्निदशैरपि ॥ २५४ ॥

अर्थ-हे वृषभ ! तुम बड़े शरीरवाले, तेज सींगवाले और
शत्रुसंहारकारी हो तुम देव देव महादेवजीको पीठपर चढ़ा-
ओ हो इसकारण देवतालोगभी तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २५४ ॥

शुरेषुसर्वतीर्थानिरोम्निवेदाःसनातनाः ।

निगमागमतन्त्राणिदशनाग्रेवसन्ति ॥ २५५ ॥

अर्थ-तुम्हारे चारों छोरोंमें सब तीर्थ, रुओंमें सब वेद
और तुम्हारे दांतोंकी नोकोंमें सब निगम आगम और तन्त्र
विराजमान हैं ॥ २५५ ॥

त्वयिदत्तेमहाभाग ! सुप्रीतःपार्वतीपतिः ।

वासंददातुकेलासेत्वंमांपालयसर्वदा ॥ २५६ ॥

अर्थ-हे महाभाग ! मैंने तुमको दान किया । इसकारण
भगवान् पार्वतीके पति प्रसन्न होकर कैलासमें मुझे स्थानदे
तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ २५६ ॥

सिंहदत्त्वामहादेव्यैगरुडंविष्णवेतथा ।

यथास्तूयान्महेशानि । तन्मेनिगदतःशृणु ॥ २५७ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! इसप्रकार महादेवीको सिंह, विष्णु-जीको गरुड देकर जैसी स्तुति कीजाती है सो मैं तुमसे कहता हूँ श्रवण करो ॥ २५७ ॥

सुरासुरनियुद्धेषुमहाबलपराक्रमः ।

देवानांजयदोर्भीमोदनुजानांविनाशकृत् ॥ २५८ ॥

अर्थ-हे सिंह ! देवासुरसंग्राम होनेके समय तुमने महाबल और पराक्रम प्रगट कियाथा, तुमसेही देवताओंकी जीतहुईथी तुम दैत्योंके संहारकारी और अत्यन्त भयंकर हो ॥ २५८ ॥

सदादेवीप्रियोसित्वं ब्रह्मविष्णुशिवप्रियः ।

देव्यैसमर्पितोभक्त्याजहिशत्रून्मोस्तुते ॥ २५९ ॥

अर्थ-तुम सदा देवीजीके प्यारे और ब्रह्मा, विष्णु व सदाशिवकेभी प्यारेहो, मैं भक्तिके साथ देवीजीके निकट तुमको समर्पण करता हूँ, तुम मेरे शत्रुओंका नाश करो, तुम्हें नमस्कार है ॥ २५९ ॥

गरुत्मन् ! पतगश्रेष्ठ ! श्रीपतिप्रीतिदायक ! ।

वज्रचञ्चो ! तीक्ष्णनख ! तवपक्षाहिरण्मयाः ।

नमस्तेऽस्तुखगेन्द्रायपक्षिराज ! नमोस्तुते ॥ २६० ॥

अर्थ-हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड ! तुम श्रीपति विष्णुजीको प्रसन्न करतेहो । तुम्हारी चोंच वज्रके समान दृढ़ है । पंख सुवर्णमय हैं । नख तीक्ष्ण हैं । हे पक्षिराज ! तुमको नमस्कार करता हूँ ॥ २६० ॥

यथाकरपुटेनत्वंसंस्थितोविष्णुसन्निधौ ।

यथामामरिदपैत्र ! विष्णोरग्रेनिवासय ॥ २६१ ॥

अर्थ-तुम शत्रुओंके गर्वको चूराकर देतेहो, जैसे तुम विष्णुजीके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहेहो। मुझेभी विष्णु-जीके सन्मुख वैसेही कर रखो ॥ २६१ ॥

त्वयिप्रीतेजगन्नाथः प्रीतः सिद्धिप्रयच्छति ।

देवायदत्तद्रव्याणांदद्याद्देवायदक्षिणाम् ॥ २६२ ॥

अर्थ-तुम्हारे प्रसन्न होनेसे जगन्नाथ प्रसन्न होकर सिद्धि देते हैं जिस देवताको द्रव्य दिया जाय उसहीकी प्रीतिके लिये दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २६२ ॥

तथाकर्मफलञ्चापिभक्त्यात्स्मैसमर्पयेत् ॥ २६३ ॥

अर्थ-फिर भक्तिके साथ उस देवतामें कर्मफल समर्पण करे ॥ २६३ ॥

नृत्यैर्गीतैश्चवादित्रैःसामात्यःसहवान्धवः ।

वेश्मप्रदक्षिणंकृत्वादेवंनत्वाशयेद्विजान् ॥ २६४ ॥

अर्थ-फिर नाचना, गाना और बाजे आदिके साथ मन्त्रियोंके सहित और बांधवोंके साथ गृहकी प्रदक्षिणा कर देवताको नमस्कार करनेके उपरांत ब्राह्मणभोजन करावै ॥ २६४ ॥

देवागारप्रतिष्ठायांयएकथितः क्रमः ।

आरामसेतुसंक्रामशाखिनामीरितोऽपिसः ॥ २६५ ॥

अर्थ-देवताके गृहकी प्रतिष्ठामें जो विधि कही, आराम-प्रतिष्ठा और वृक्षप्रतिष्ठामें भी वही विधि लगेगी ॥ २६५ ॥

विशेषेणात्रकृत्येषुपूज्योविष्णुःसनातनः ।

पूजाहोमस्तथासर्वगृहदानविधानवत् ॥ २६६ ॥

अर्थ-परंतु इन स्थानोंमें सनातन विष्णुजीकी पूजा भली-भाँतिसे करनी होगी इसके सिवाय पूजा होमादि समस्त कार्य गृहप्रतिष्ठाके समान होंगे ॥ २६६ ॥

अप्रतिष्ठितदेवायनैवदद्याद्ब्रह्मादिकम् ।

प्रतिष्ठितेऽर्चितेदेवपूजादानंविधीयते ॥ २६७ ॥

अर्थ-अप्रतिष्ठित देवताकेलिये गृहादि भेंट नहीं देना चाहिये, प्रतिष्ठित और पूजित देवताके अर्थही भेंट और पूजाकी विधि है ॥ २६७ ॥

अथतत्रश्रीमदाद्याप्रतिष्ठाक्रमउच्यते ।

येनप्रतिष्ठितादेवीतूर्णयच्छतिवाञ्छितम् ॥ २६८ ॥

अर्थ-अब श्रीमती आदिकालीकी प्रतिष्ठाका क्रम कहता हूँ । इसप्रकार देवीजी प्रतिष्ठित होनेपर शीघ्रतासे अभिलषित फल देती है ॥ २६८ ॥

तद्दिनेसाधकःप्रातःस्नातःशुचिरुदङ्मुखः ।

संकल्पंविधिवत्कृत्वायजेद्वास्त्वीश्वरंततः ॥ २६९ ॥

अर्थ-उस दिन प्रभातकोही स्नान कर विशुद्धाचारही साधक उत्तरकी ओर मुख करके विधिविधानसे संकल्प करे और वास्तुदेवताकी पूजाकरे ॥ २६९ ॥

ग्रहदिक्पतिहेरम्बाद्यर्चनंपितृकर्मच ।

विधायसाधकैर्विप्रैःप्रतिमासन्निधिं व्रजेत् ॥ २७० ॥

अर्थ-फिर ग्रहोंकी, दश दिक्पालोंकी और गणेशजीकी पूजा कर पितृकृत्य करे । फिर साधकको चाहिये कि, ब्राह्मणोंके साथ प्रतिमाके निकट जावे ॥ २७० ॥

प्रतिष्ठितगृहेयद्वाकुक्षचिच्छोभनस्थले ।

आनीयार्चामर्चयित्वास्नापयेत्साधकोत्तमः ॥ २७१ ॥

अर्थ-प्रतिष्ठित गृहमें अथवा किसी मनोहर स्थानमें साधकश्रेष्ठ प्रतिमाकी पूजा करके स्नान करावे ॥ २७१ ॥

भस्मनाप्रथमंस्नानंततोवल्मीकमृत्स्नया ।

वराहदन्तिदन्तोत्थमृत्तिकाभिस्ततःपरम् ।

वेश्याद्वारमृदाचापिप्रद्युम्नद्वदजातया ॥ २७२ ॥

अर्थ-पहले भस्मसे स्नान कराय फिर बमईकी मिट्टीसे, तदुपरांत शूकरके दांतोंकी उखाड़ी मिट्टीसे, फिर हाथीके दांतोंसे उखाड़ी मिट्टीसे फिर बैश्याके द्वार पर पड़ी हुई मिट्टीसे, तिसके पीछे कामकूपसम्भूत द्रव्यविशेषसे ॥ २७२ ॥

ततःपञ्चकपायेणपञ्चपुष्पैस्त्रिपत्रकैः ।

कारयित्वागन्धतैलैःस्नापयेत्पतिमांसुधीः ॥ २७३ ॥

अर्थ-फिर आगे कहे हुए पंच कपायसं फिर आगे कहे हुए पंच पुष्पसे, तदुपरांत आगे कहे हुए त्रिपत्रसे प्रतिमाको स्नान करावै फिर साधक सुगंधित तेलसे स्नान करावै ॥ २७३ ॥

वाट्यालवदरीजम्बुवकुलाः शालमलिस्तथा ।

एतेनिगदिताःस्नानेकपायाःपञ्चभूरुहाः ॥ २७४ ॥

अर्थ-वाट्याल, बेर, जामन, मौलसिरी, शाल इन पांच वृक्षोंके काटोंको पंच कपाय कहते हैं । इनसे देवीको स्नान करावै ॥ २७४ ॥

करवीरंतथाजातीचम्पकंसरसीरुहम् ।

पाटलीकुसुमञ्चापिपञ्चपुष्पंप्रकीर्तितम् ॥ २७५ ॥

अर्थ-कनेर, आमला, चंपा, कमल, गुलाब इनको पंच-पुष्प कहा जाता है ॥ २७५ ॥

वर्धुरातुलसीविल्वंपत्रत्रयमुदाहृतम् ॥ २७६ ॥

अर्थ-वर्धुरापत्र, (बबूरके पत्ते) तुलसीपत्र, बेलपत्र इनको त्रिपत्र कहा जाता है ॥ २७६ ॥

एतेपुप्रोक्तद्रव्येषुजलयोगोविधीयते ।

पञ्चामृतेगन्धतैलेतोययोगंविधर्जयेत् ॥ २७७ ॥

अर्थ-इन सबके साथ जलको मिलावै, परंतु पंचामृत और सुगंधित तैलके साथ जल मिलाकर न दे ॥ २७७ ॥

सव्याहृतिसप्रणवांगायत्रीमूलमुच्चरन् ।

एतद्रव्यस्यतोयेनस्नापयामिनमोवदेत् ॥ २७८ ॥

अर्थ-प्रणवके साथ व्याहृति पढ़ गायत्री और मूलमंत्र उच्चारण कर. "एतद्रव्यस्यतोयेन स्नापयामि नमः" अर्थात् भस्मके या बल्मीकके, मिट्टीके या पहले कहे हुए और किसी द्रव्यके जलसे तुमको स्नान कराताहूं यह स्नान अर्पित होवे । यह वाक्य पढ़े ॥ २७८ ॥

ततःप्रागुक्तविधिनादुग्धाद्यैरष्टभिर्घटैः ।

कवोष्णसलिलैश्चापिस्नापयेत्प्रतिमांबुधः ॥ २७९ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि, पहली कही हुई विधिके अनुसार पहले दुग्धादिके आठ घड़ोंसे और कुछ गरम जलसे प्रतिमाको स्नान करावै ॥ २७९ ॥

सितगोधूमचूर्णेनतिलकल्केनवाशिवाम् ।

शालितण्डुलचूर्णेनमार्जयित्वाविरूक्षयेत् ॥ २८० ॥

अर्थ-फिर सित गोधूमचूर्णसे अर्थात् दूधमें पड़ी हुई गे-हूंकी मयदासे, तिलकल्कसे आमन धान्यके तण्डुलचूर्णसे प्रतिमाको मांजकर रूखी करे ॥ २८० ॥

तीर्थाम्भसामष्टघटैःस्नापयित्वासुवाससा ।

सम्मार्जिताङ्गीप्रतिमांपूजास्थानंसमानयेत् ॥ २८१ ॥

अर्थ-फिर आठकलश तीर्थके जलसे देवताको स्नान कराय उत्तम बस्त्रोंसे पोछकर इस प्रतिमाको पूजाके स्थानमें लेजावै ॥ २८१ ॥

अशक्तौशुद्धतोयानांपञ्चविंशतिसंख्यकैः ।

कलशैःस्नापयेदर्चाभक्त्यासाधकसत्तमः ॥ २८२ ॥

अर्थ-जो ऐसा अनुष्ठान नहोसके तो साधकश्रेष्ठको चा-

हिये कि भक्तिपूर्वक २५ घड़े विशुद्ध जलसे प्रतिमाको स्नान करावे ॥ २८२ ॥

स्नानेस्नानेमहादेव्याःशक्त्याःपूजनमाचरेत् ॥ २८३ ॥

अर्थ-प्रत्येक स्नानके पीछे यथाशक्ति उपचारसे महादेव-
जीकी पूजा करे ॥ २८३ ॥

ततोनिवेद्यप्रतिमामासनेमुपरिष्कृते ।

पाद्याध्याद्यैरर्चयित्वाप्रार्थयेद्ग्रहिताञ्जलिः ॥ २८४ ॥

अर्थ-फिर स्वच्छ आसनपर प्रतिमाको विराजमान कराय
पाद्य अर्घ्यादिसे पूजाकर हाथ जोड़ प्रार्थना करे कि ॥ २८४ ॥

नमस्तेप्रतिमे ! तुभ्यंविश्वकर्मविनिर्मिते !

नमस्तेदेवतावासे ! भक्ताभीष्टमदे ! नमः ॥ २८५ ॥

अर्थ-हे प्रतिमे ! तुमको विश्वकर्माने बनायाथा तुमको
नमस्कार है । तुम देवताकी आवासहो, तुमको नमस्कार है,
तुम भक्तवृन्दोंको अभीष्ट फल देती हो, तुमको नमस्कार है ॥ २८५ ॥

त्वयिसंपूजयाम्याद्यांपरमेशींपरात्पराम् ।

शिल्पदोषावशिष्टाङ्गसम्पन्नंकुरुतेनमः ॥ २८६ ॥

अर्थ-तुम्हारे ऊपर मैं परात्परा परमेश्वरी आदिकालिकाकी
पूजा करताहूं, शिल्पके दोषसे यदि किसी अंगकी विकलता
हुई हो तो उसे सम्पूर्ण करो । तुम्हें नमस्कार करता हूं ॥ २८६ ॥

ततस्तत्प्रतिमामूर्ध्निपाणिंविन्यस्यवाग्यतः ।

अष्टोत्तरशतंमूलंजस्वागात्राणिसंस्पृशेत् ॥ २८७ ॥

अर्थ-फिर प्रतिमाके मस्तकपर हाथ रख, वाक्यको संघतकर
१०८ बार मूल मंत्र जपे, फिर प्रतिमाके गात्रको छुए ॥ २८७ ॥

पङ्कजमातृकान्यासंप्रतिमाङ्गेप्रविन्यसन् ।

पङ्दीर्घभाजामूलेनपङ्कजन्यासमाचरेत् ॥ २८८ ॥

अर्थ-फिर प्रतिमाके अंगमें षडङ्गन्यास और मातृकान्यास करे षडङ्गन्यास करनेके समय मूलमंत्रमें “आ ई ऊ औ अः” यह छैः दीर्घ स्वर मिलाने चाहिये । यथा “ह्रां ह्रदयाय नम । ह्रीं शिरसे स्वाहा । हूं शिखायै वषट् । ह्रै कवचाय हूं । ह्रां नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट्” ॥ २८८ ॥

तारमायारमाद्यैश्च नमोऽन्तैर्विन्दुसंयुतैः ।

अष्टवर्गैर्देवताङ्गैर्वर्णन्यासं प्रकल्पयेत् ॥ २८९ ॥

अर्थ-प्रणव, माया और रमाका उच्चारण करके विन्दुयुक्त आठवर्गके अक्षरोंको पढ़े फिर “नमः” पद उच्चारणकर देवताके अंगमें वर्णन्यास करे (१) ॥ २८९ ॥

मुखेस्वरान्कवर्गश्च कण्ठदेशेन्यसेद्बुधः ।

चवर्गमुदरेदक्षबाहौ टाद्यक्षराणि च ॥ २९० ॥

अर्थ-देवताके अंगमें वर्णन्यास करनेके समय जानी पुरुष देवताके मुखमें स्वरवर्ण, कण्ठमें कवर्ग, उदरमें चवर्ग, दाहिने हाथमें टवर्ग ॥ २९० ॥

तवर्गश्च वामबाहौ दक्षवामोरुयुग्मयोः ।

पवर्गश्च यवर्गश्च शवर्गमस्तकेन्यसेत् ॥ २९१ ॥

अर्थ-बांये हाथमें तवर्ग, दाहिनी ऊरुमें पवर्ग, बाई ऊरुमें यवर्ग अर्थात् य र ल व मस्तकमें शवर्ग अर्थात् श ष ह ल क्ष न्यास करे ॥ २९१ ॥

वर्णन्यासं विधायैतत्तत्त्वन्यासं समाचरेत् ॥ २९२ ॥

अर्थ-इसप्रकार देवताओंके अंगमें वर्णन्यास करके तत्त्व-न्यास करे ॥ २९२ ॥

पादयोः पृथिवी तत्त्वं तोय तत्त्वञ्च लिङ्गके ।

तेजस्तत्त्वं नाभिदेशे वायु तत्त्वं हृदम्बुजे ॥ २९३ ॥

(१) “ओं ह्रीं श्रीं अ नमः । ओ ह्रीं श्रीं आ नमः । ओं ह्रीं श्रीं इ नमः” इत्यादि ।

अर्थ-देवताके दोनों चरणोंमें पृथ्वीतत्त्व, योनिमें जल-
तत्त्व, नाभिमें तेजस्तत्त्व, हृदयकमलमें वायुतत्त्व ॥ २९३ ॥

आस्येगगनतत्त्वञ्चक्षुषोरूपतत्त्वकम् ।

घ्राणयोगन्धतत्त्वञ्चशब्दतत्त्वंश्रुतिद्वये ॥ २९४ ॥

अर्थ-मुखमें आकाशतत्त्व, दोनों नेत्रोंमें रूपतत्त्व, नासि-
काके दो स्वरोंमें गन्धतत्त्व, कानोंमें शब्दतत्त्व ॥ २९४ ॥

जिह्वायारसतत्त्वञ्चस्पर्शतत्त्वंचविन्यसेत् ।

मनस्तत्त्वंभ्रुवोर्मध्येसहस्रदलपङ्कजे ॥ २९५ ॥

अर्थ-जीभमें रसतत्त्व और स्पर्शतत्त्व, भ्रुवोंमें मनस्तत्त्व
ललाटमें स्थित हुए सहस्रदलकमलमें ॥ २९५ ॥

शिवतत्त्वंज्ञानतत्त्वंपरतत्त्वंतथोरसि ।

जीवप्रकृतितत्त्वेचविन्यसेत्साधकाग्रणीः ।

महत्तत्त्वमहङ्कारतत्त्वंसर्वाङ्गकेक्रमात् ॥ २९६ ॥

अर्थ-शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और परतत्त्व. हृदयमें जीवतत्त्व
और प्रकृतितत्त्वका न्यास करे, फिर साधकश्रेष्ठ सर्वाङ्गमें
महत्तत्त्व और अहङ्कारतत्त्वका न्यास करे ॥ २९६ ॥

तारमायारमाद्येनडेनमोऽन्तेनविन्यसेत् ॥ २९७ ॥

अर्थ-यह न्यास करनेके समय प्रणव, माया और रमा
उच्चारण करके चतुर्थ्यन्त तत्त्वपद पढ़कर फिर "नमः" यह
मंत्र पढ़े । (१) ॥ २९७ ॥

सविन्दुमातृकावर्णपुटितंमूलमुच्चरन् ।

नमोऽन्तंमातृकास्थानेमन्त्रन्यासंप्रयोजयेत् ॥ २९८ ॥

अर्थ—फिर विन्दुयुक्त मातृकावर्णपुटित मूलमंत्र उच्चारण करके “नमः” यह मन्त्र उच्चारणकरे और मातृकास्थानमें मन्त्रन्यास करे (१) ॥ २९८ ॥

सर्वयज्ञमयं तेजः सर्वभूतमयं वपुः ।

इयं ते कल्पिता मूर्ति रत्रत्वां स्थापयाम्यहम् ॥ २९९ ॥

अर्थ— फिर देवीजीसे प्रार्थना करे कि,) यद्यपि तुम्हारा सर्वयज्ञमय तेज और सर्वभूतमय शरीर है तथापि मैंने तुम्हारी यह मूर्ति कल्पित की तुम्हें इस मूर्तिमें स्थापन करता हूँ ॥ २९९ ॥

ततः पूजाविधानेन ध्यानमावाहनादिकम् ।

प्राणप्रतिष्ठां सम्पाद्य पूजयेत् परदेवताम् ॥ ३०० ॥

अर्थ—फिर पूजाकी विधिके अनुसार ध्यान, आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि करके उस परमदेवताकी पूजा करे ॥ ३०० ॥

देवगेहप्रदाने तु ये ये मन्त्राः समीरिताः ।

त एवात्र प्रयोक्तव्या मन्त्रलिङ्गेन पूजने ॥ ३०१ ॥

अर्थ—देवमंदिरकी प्रतिष्ठाके समय जो २ मन्त्र कहे गये हैं, यहांपर उनमंत्रोंका प्रयोग करना चाहिये; परन्तु पूजाके समय मन्त्र और लिंगका भेद करे ॥ ३०१ ॥

विधिवत्संस्कृते बह्वावर्चितेभ्योऽर्चिताहुतिः ।

आवाह्यदेवीं सम्पूज्य जातकर्माणिसाधयेत् ॥ ३०२ ॥

(१) ‘अ ह्रीं श्रीं कीं परमेश्वरि स्वाहा अं नमो ललाटे’ । आ ह्रीं श्रीं कीं परमेश्वरि स्वाहा अं नमो ललाटे’ इसप्रकार ५१ वर्ण पुटित करके न्यासकरे, किस स्थानमें किस वर्णका न्यास होगा, उसकी मुद्रा के संकेत हैं । किस उंगलीके साथ किस उंगलीको भिलाकर वा किस उंगलीसे कौनसा स्थान स्पर्श होगा सो इस पुस्तकके चचमरल्लासकी टिप्पणीमें मातृकान्यासके प्रयोगमें दिखाया है तिमको पढ़कर सरलतासे न्यास किया जासकेगा ॥

अर्थ-फिर यथाविधिसे अग्निसंस्कार करके उसमें पूजित देवताओंके लिये पूजित आहुति देकर विधिविधानसे आ-
वाहन करे और देवीजीकी पूजा करके जातकर्म करे ॥३०२॥

जातनाम्रीनिष्क्रमणमन्नप्राशनमेवच ।

चूडोपनयनंचैतेष्वसंस्काराः शिवोदिताः ॥ ३०३ ॥

अर्थ-जातकर्मादि छे प्रकारके संस्कार महादेवजीने कहे हैं । उन षट्संस्कारोंके नाम यह हैं-जातकर्म, नामकरण, बाहर निकलना, अन्नप्राशन, मुण्डन और उपनयन ॥ ३०३॥

प्रणवंव्याहृतिंचैवगायत्रीमूलमन्त्रकम् ।

सामन्त्रणाभिधानंतेजातकर्मादिनामच ॥ ३०४ ॥

अर्थ-(किस मन्त्रसे यह छे संस्कार किये जाते हैं सो क-
इतेहैं) प्रणव, व्याहृति, गायत्री, मूलमन्त्र, संबोधनान्तनाम
उच्चारण करके 'ते' अर्थात्-तुम्हारा यह पद उच्चारण करे,
फिर जातकर्मादिका नामकीर्तन करे ॥ ३०४ ॥

सम्पादयाम्यग्निकान्तांसमुच्चार्यविधानवित् ।

पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यात्प्रतिसंस्कारकर्मणि ॥ ३०५ ॥

अर्थ-फिर विधानका जाननेवाला पुरुष, "संपादयामि
स्वाहा" यह पद उच्चारण करके प्रत्येक संस्कारमें पांच बार
आहुति देवे (१) ॥ ३०५ ॥

दत्तनाम्नाहुतिशतंमूलोच्चारणपूर्वकम् ।

देव्यैदत्ताहुतेरंशंप्रतिमामूर्ध्निःक्षिपेत् ॥ ३०६ ॥

(१) 'ओम्प्रभुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवाय धियो नो मः प्रचो-
दयात् । ईं श्रीं पौं परमेष्वर स्वाहा । श्रीमदाये नालिने 'ते' जातकर्म संपादयामि
स्वाहा' ॥ इस मंत्रमें पठ पांच बार आहुति देकर "जातकर्म" पदके बादले "नाम
करणम्" पद लगाने । इसपरार षट् कर्ममें केवल नाम बदल देना चाहिये ।

अर्थ-फिर मूल उच्चारण कर दत्त नामपढ़े । और देवीको एकशत आहुति देवे, परन्तु आहुति देनेके पीछे बचाहुआ साकल्य देवीके मस्तकपर डालदे ॥ ३०६ ॥

प्रायश्चित्तादिभिःशेषकर्मसम्पादयन्सुधीः ।

भोजयेत्साधकान्विप्रान्दीनानाथांश्चतोपयेत् ॥ ३०७ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि, प्रायश्चित्तादिसे शेष कर्म करके साधक ब्राह्मण दीन, दरिद्र और अनार्योंको भोजनादि देकर संतुष्ट करे ॥ ३०७ ॥

उक्तकर्मस्वशक्तश्चेत्पाथसांसप्तभिर्वटैः ।

स्नापयित्वा र्चयञ्छक्त्याश्रावयेन्नामदेवताम् ॥ ३०८ ॥

अर्थ-जो इन कार्योंके करनेमें असमर्थ हो तो केवल सात कलश जलसे देवताको स्नान कराय यथाशक्ति पूजाकर नाम श्रवण करावै ॥ ३०८ ॥

इतिते श्रीमदाद्यायाःप्रतिष्ठाकथिताप्रिये ! ।

एवंदुर्गादिविद्यानांमहेशादिदिवौकसाम् ॥ ३०९ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मैंने तुमसे आदिकालिकाकी प्रतिष्ठाका प्रयोग कहा । ऐसेही दुर्गाआदि विद्याओंकी, महेश्वरादि देवताओंकी ॥ ३०९ ॥

चलतःशिवलिंगस्यप्रतिष्ठायामयंविधिः ।

प्रयोक्तव्योविधानज्ञैर्मन्त्रेणामोहपूर्वकम् ॥ ३१० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रेसर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमेसर्व्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादेआद्याकालीप्रतिष्ठानुष्ठाने
वास्तुगृहयागजलाशयादिप्रतिष्ठादेवगृहदानाद्या-
दिसर्व्वदेवादिप्रतिष्ठाकथनं नाम त्रयोदशो

अर्थ—एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रख दिया जाय, ऐसे शिवलिंगकी प्रतिष्ठामें विधान जाननेवाला पुरुष मोहरहित हो मन्त्र पढ़के इस विधिके अनुसार प्रयोग करे ॥ ३१० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिवसंवादे आद्याकार्यप्रतिष्ठानुष्ठाने प्र० चण्डदेवप्रसादमि
श्रकृतभाषाटीकायां वास्तु, ग्रहयाग, जटाशयादिप्रतिष्ठा-
कथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोल्लासः १४.

श्रीदेव्युदवाच ।

आद्यशक्तेरनुष्ठानात्कृपयाभूरिसाधनम् ।

कथितं मे कृपानाथ ! तृप्तास्मितवभावतः ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीभगवतीजीने कहा—हे कृपानाथ ! आदिकालि-
ष्ठाके प्रसंगमें आपने कृपा करके बहुत साधन कहे, मैं आपका
भाव देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई हूँ ॥ १ ॥

सचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठाविधिरीरितः ।

अचलस्य प्रतिष्ठायाम्किं फलं विधिरेवकः ॥ २ ॥

अर्थ—आपने सचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठाका विधान कहा,
परन्तु अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा कैसी होती है और उस
अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठाका फल क्या है ॥ २ ॥

कथ्यतां जगतां नाथ ! सविशेषेण साम्प्रतम् ।

इदं हि परमं तत्त्वं प्रष्टुं वद वृणोमि कम् ॥ ३ ॥

त्वत्तः को वास्ति सर्वज्ञो दयालुः सर्वविद्भिभुः ।

आशुतोषो दीननाथो ममानन्दविवर्द्धनः ॥ ४ ॥

अथ—सो अब भलीभाँतिसे कहिये । हे जगन्नाथ ! आपके सिवाय यह परमतत्त्व किससे पूछू सो कहो आपकी अपेक्षा कौन पुरुष सर्वज्ञ है । आप दयालु, विभु, सर्ववित्, आशु-तोष, दीननाथ और मेरे आनंदके बढ़ानेवाले हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

शिवलिङ्गस्थापनस्यमाहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।

यत्स्थापनान्महापापैर्मुक्तोयाति परंपदम् ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहा, शिवलिंगके स्थापन करनेका माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन करूं ! इस शिवलिंगके स्थापन करनेसे मनुष्य महापातकसे छूटकर परमपदको प्राप्त हो ताहै ॥ ५ ॥

स्वर्णपूर्णमहीदानाद्वाजिमेधायुतार्जनात् ।

निस्तोयेतोयकरणाद्दीनार्त्तपरितोषणात् ॥ ६ ॥

अर्थ—सुवर्णके ढेरसे पूर्णहुइ पृथ्वीके दान करनेसे, दश-हजार अश्वमेधयज्ञ करनेसे, निर्जल देशमें जलाशय खुदानेसे, दीन व आतुर पुरुषोंको संतुष्ट करनेसे ॥ ६ ॥

यत्फलं लभते मर्त्यस्तस्मात्कोटिगुणं फलम् ।

शिवलिङ्गप्रतिष्ठायां लभते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

अर्थ—मनुष्योंको जो फल होताहै सो इस फलसे करोड़ गुणा फल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करनेसे मिलताहै, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ७ ॥

लिङ्गरूपी महादेवो यत्र तिष्ठति कालिके ! ।

तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च सेन्द्रास्तिष्ठन्ति देवताः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे कालिके, जिस स्थानमें लिंगरूपी शिव विराजते

हैं, वहांपर ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और देवताभी वास करते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ८ ॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थानिदृष्टादृष्टानियानिच ।

पुण्यक्षेत्राणिसर्वाणिवर्तन्तेशिवसन्निधौ ॥ ९ ॥

अर्थ-साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ और प्रकाशित व अप्रकाशित पुण्यक्षेत्र शिवजीके निकट वास करते हैं ॥ ९ ॥

लिङ्गरूपधरंशम्भुंपरितोदिग्विदिक्षुच ।

शतहस्तप्रमाणेनशिवक्षेत्रंप्रकीर्तितम् ॥ १० ॥

अर्थ-लिंगरूपी शिवजीकी सब दिशाओंमें शतहाथतक शिवक्षेत्र कहलाता है ॥ १० ॥

ईशक्षेत्रंमहापुण्यंसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।

यतामराविराजन्तेसर्वतीर्थानिसर्वदा ॥ ११ ॥

अर्थ-यह शिवक्षेत्र अत्यंत पवित्र और सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ है । इस शिवक्षेत्रमें सब देवता और सब तीर्थ सदा विराजमान रहते हैं ॥ ११ ॥

क्षणमात्रंशिवक्षेत्रेयोवसेद्भावतत्परः ।

ससर्वपापनिर्मुक्तोयात्यन्तेशङ्करालयम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जो पुरुष एक क्षणभरतकभी शिवभावपरायणहो शिवक्षेत्रमें वास करता है, वह सब पापोंसे छूटकर अंतसमय शिवलोकको चलाजाता है ॥ १२ ॥

अत्रयत्क्रियतेकर्मस्वलपंवावहुलंतथा ।

प्रभावाद्दर्जटेस्तस्यतत्तत्कोटिगुणंभवेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-इस शिवक्षेत्रमें जो थोड़ा बहुत पापपुण्यका कर्म किया जाता है, महादेवजीके प्रभावसे वह करोड़ गुण होजाता है ॥ १३ ॥

यत्तत्रकृतात्पापान्मुच्यतेशिवसन्निधौ ।

शैवक्षेत्रेकृतं पापं वज्रलेपसमं प्रिये ॥ १४ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! मनुष्यगण चाहें जिस स्थानमें पाप करे शिवके निकट आतेही वह पाप छूट जाते हैं, परन्तु शिव-जके निकट जो पाप किया जाताहै वह वज्रलेपकी समान कठोर हो जाता है ॥ १४ ॥

पुरश्चर्याजपदानं श्राद्धं तर्पणमेव च ।

यत्करोति शिवक्षेत्रे तदानन्त्यायकल्पते ॥ १५ ॥

अर्थ—पुरश्चरण, जप, दान, श्राद्ध, तर्पणादि जो कर्म शिव-क्षेत्रमें किये जाते हैं उनका फल अनन्त होता है ॥ १५ ॥

पुरश्चर्याशतं कृत्वा ग्रहेशशिदिने शयोः ।

यत्फलं तदवाप्नोति सकृज्जप्त्वा शिवान्तिके ॥ १६ ॥

अर्थ—सूर्यग्रहणके समय या चन्द्रग्रहणके समय शत पुर-श्चरण करनेसे जो फल प्राप्त होताहै, शिवजके पास केवल एकवार करनेसे वह फल मिल जाता है ॥ १६ ॥

गयागङ्गाप्रयागेषु कोटिपिण्डप्रदानरः ।

यत्प्राप्नोति तदत्रैव सकृत्पिण्डप्रदानतः ॥ १७ ॥

अर्थ—गयाक्षेत्रमें, गंगाक्षेत्रमें और प्रयागमें करोड़ पिण्ड-दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, इस शिवक्षेत्रमें केवल एकवार पिण्ड देनेसे वह फल मिल जाता है ॥ १७ ॥

अतिपातकिनेये च महापातकिनश्च ये ।

शैवतीर्थैकृतश्राद्धास्तेऽपियान्ति परांगतिम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जो लोग महापातकी और अतिपातकी हैं वहभी इस शिवक्षेत्रमें केवल एकवार श्राद्ध करनेसे परमगतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

लिंगरूपीजगन्नाथोदेव्याश्रीदुर्गयासह ।

यत्नास्ति तत्र तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ॥ १९ ॥

अर्थ-लिंगरूपी जगन्नाथ महेश्वर श्रीदुर्गाजीके साथ जिस स्थानमें विराजमान रहते हैं, वहांपर चौदह भुवनका रहवास होता है ॥ १९ ॥

स्थापितेशस्य महात्म्यं किञ्चिदेतत्प्रकाशितम् ।

अनादिभूतभूतेशमहिमा वागगोचरः ॥ २० ॥

अर्थ-यह तुमसे स्थापित महादेवजीका कुछ थोड़ासा महात्म्य वर्णन किया । जो महादेवजी अनादिलिंग हैं उनकी महिमा वचनकेभी अगोचर है ॥ २० ॥

महापीठे तवाच्चायामस्पृश्यस्पर्शदूषणम् ।

विद्यते सुव्रते ! नैतल्लिङ्गरूपधरे हरे ॥ २१ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! तुम्हारी प्रतिमाके महापीठस्थानमें अस्पृश्यके स्पर्शका दोष होता है, परन्तु लिंगरूपी महेश्वरमें अस्पृश्यके स्पर्शका दोष नहीं होता ॥ २१ ॥

यथा च कर्त्तव्येने देवि ! कोऽपि दोषो न विद्यते ।

शिवक्षेत्रे महातीर्थे तथा जानीहिकालिके ॥ २२ ॥

अर्थ-हे देवि ! हे कालिके ! चक्रकी पूजाके समय जिस प्रकार स्पर्शदोष नहीं होता, वैसेही महातीर्थस्वरूप शिवक्षेत्रमें स्पर्शका दोष नहीं है ॥ २२ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रेसत्यमुच्यते ।

प्रभावः शिवलिंगस्य मया वक्तुं न शक्यते ॥ २३ ॥

अर्थ-मैं अधिक और क्या कहूं तुमसे सत्य कहता हूं कि, भलीभाँतिसे मैं शिवलिंगके प्रभावको वर्णन नहीं करसکتा ॥ २३ ॥

अयुक्तवेदिकंलिङ्गंयुक्तंवेदिकयापिवा ।

साधकःपूजयेद्रत्नयास्वाभीष्टफलसिद्धये ॥ २४ ॥

अर्थ-शिवलिंगमें गौरीपट मिला रहै या न रहै, साधकको अपना अभीष्टसिद्धि करनेके लिये भक्तिपूर्वक उसकी प्रजा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

प्रतिष्ठापूर्वसायाह्नेदेवतांयोऽधिवासयेत् ।

सोऽश्वमेधायुतफलंलभतेसाधकोत्तमः ॥ २५ ॥

अर्थ-देवताकी प्रतिष्ठाके एकदिन पहले साधकश्रेष्ठ देवताका अधिवास (शुभ कर्मकी पूर्व क्रिया) करते हैं, वह दशहजार अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करसके हैं ॥ २५ ॥

महीगन्धःशिलाधान्यंदूर्वापुष्पफलंदधि ।

घृतंस्वस्तिकसिन्दूरंशंखकज्जलोचनाः ॥ २६ ॥

अर्थ-मही, गन्ध, शिला, धान्य, दूब, फूल, फल, घृत, स्वस्तिक (चावलके आटेका बनाहुआ त्रिकोणाकार एक अधिवासद्रव्य) सिन्दूर, शंख, काजल, रोचन ॥ २६ ॥

सिद्धार्थकाञ्चनंरौप्यंताम्रंदीपश्चदर्पणम् ।

अधिवासविधौविंशद्रव्याण्येतानियोजयेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-सफेद सरसों, सुवर्ण, चांदी, तांबा दीप, दर्पण यह बीस प्रकारके द्रव्य अधिवासके विधानमें लगावै ॥ २७ ॥

प्रत्येकंद्रव्यमादायमाययाब्रह्मविद्यया ।

अनेनामुष्यपदतःशुभमस्त्वधिवासनम् ॥ २८ ॥

अर्थ-इन बीस द्रव्यमेंसे एक २ द्रव्यको ग्रहण करकेमाया और गायत्रीको पढ़ फिर कहे कि, इस द्रव्यसे इस देवताका शुभाधिवास नहो ॥ २८ ॥

इतिस्पृशेत्साध्यभालंमद्वाद्यैःसर्ववस्तुभिः ।

ततःप्रशस्तिपात्रेणत्रिधैवमधिवासयेत् ॥ २९ ॥

अर्थ—यह मंत्र पढ़कर मही आदि प्रत्येक वस्तुसे देवताका माथा छुए । फिर प्रशस्तिपात्रसे तीनवार अधिवास करे ॥ २९ ॥

अनेनविधिनादेवमधिवास्यविधानवित् ।

गृहदानविधानेनदुग्धाद्यैःस्नापयेत्ततः ॥ ३० ॥

सम्मार्ज्यवाससालिंगंस्थापयित्वासनोपरि ।

पूजानुष्ठानविधिनागणेशादीन्समर्चयेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—विज्ञानके जाननेवाले साधकको चाहिये कि, इस विधिके अनुसार देवताका अधिवास करके गृहप्रतिष्ठाकी विधिके अनुसार दुग्धादिसे उस देवताका स्नान करावे, फिर घस्रसे लिंगको मार्जित कर (पोंछकर) आसनके ऊपर स्थापनकर पूजा अनुष्ठानकी विधिके अनुसार गणेशादि देवताओंकी पूजा करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

प्रणवेनकरन्यासौप्राणायामंविधायच ।

ध्यायेत्सदाशिवंशान्तंचन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रणवके द्वारा करांगन्यास और प्राणायाम करके सदाशिवका ध्यान करे । वह शान्त और चंद्रमाकी कलांकि समान कान्तिमान हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

व्याघ्रचर्मपरीधानंनागयज्ञोपवीतिनम् ।

विभूतिलिप्तसर्वांगंनागालङ्कारभूषितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—वह व्याघ्रचर्म पहिरे और नागका यज्ञोपवीत पहरे हुए हैं, उनके सब अंग विभूतिकरके शोभायमान हैं, उनके शरीरमें नागोंके गहने शोभायमान हैं ॥ ३३ ॥

धूम्रपीतारुणश्वेतरक्तैःपञ्चभिराननैः ।

युक्तं त्रिनयनं विभ्रज्जटाजूटधरं विभुम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-वह धूम्रवर्ण, पीतवर्ण, अरुणवर्ण, श्वेतवर्ण और रक्तवर्ण के पांच मुखों करके शोभायमान हैं त्रिनेत्र जटाजूट-धारी और विभु हैं ॥ ३४ ॥

गङ्गाधरं दशभुजं शशिशोभितमस्तकम् ।

कपालं पावकं पाशं पिनाकं परशुकैः ॥ ३५ ॥

अर्थ-उनके मस्तकपर गंगाजी विराज रही हैं । उनके दश हाथ हैं । उनके माथेपर चन्द्रमाकी कलां शोभायमान हैं । वह चायें हाथसे कपाल, पावक, पाश, पिनाक और परशु धारण किये हुए हैं ॥ ३५ ॥

वामैर्दधानं दक्षैश्च शूलं वज्राङ्कुशं शरम् ।

वरश्च विभ्रतं सर्वैर्देवैर्भुनिवरैस्तुतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-वह दहिने हाथमें शूल, वज्र, अंकुश, बाण और वर धारण करते हैं । सब देवता और सब महर्षियोंकरके चारों ओरसे वह स्तुति किये जाते हैं ॥ ३६ ॥

परमानन्दसन्दोहोल्लसत्कुटिललोचनम् ।

हिमकुन्देन्दुसङ्काशं वृषासनविराजितम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-उनके कुटिल नेत्र परमानन्दके समूहमें हर्षित हैं । उनकी कान्ति हिम, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत है । वह बैलके ऊपर विराजमान हैं ॥ ३७ ॥

परितः सिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिरहर्निशम् ।

गीयमानमुमाकान्तमेकान्तशरणप्रियम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-उनके चारों ओर सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओंके साथ

दिनरात स्तुति गाते हैं ! वह उमाके पति शरणागतजनोंके बहुत प्यारे हैं ॥ ३८ ॥

इतिध्यात्वामहेशानंमानसैरुपचारकैः ।

संपूज्यावाह्यतल्लिङ्गेयजेच्छत्तयाविधानवित् ॥ ३९ ॥

अर्थ-विधानका जाननेवाला पुरुष इसप्रकार महादेवजीका ध्यानकरके मानसिक उपचारके साथ पूजकर उस लिंगके ऊपर आवाहन करे और यथाशक्ति उसकी पूजा करे ॥ ३९ ॥

आसनाद्युपचाराणांदानेमन्त्राःपुरोदिताः ।

मूलमन्त्रमनुवक्ष्येमहेशस्यमहात्मनः ॥ ४० ॥

अर्थ-आसनादि उपचार देनेके मन्त्र पीछे कह आयाहूँ, अब महात्मा महेश्वरजीका मूलमन्त्र कहताहूँ ॥ ४० ॥

मायातारःशब्दबीजंस्तन्ध्वर्णान्ताक्षरान्वितम् ।

अर्द्धेन्दुविन्दुभूपाश्वंशिवबीजंप्रकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-माया, "प्रणव" शब्दबीज "र" और चन्द्रविन्दु अर्थात् "ह्रीं ओं ह्रौं" यह शिवबीजहै ॥ ४१ ॥

सुगन्धिपुष्पमाल्येनवाससाच्छाद्यशङ्करम् ।

निवेश्यदिव्यशय्यायांवेदीमेवंविशोधयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-फिर सुगंधित पुष्प गंध मालासे और वस्त्रसे शिवजीको ढककर दिव्यसेजपर रथापित करके गौरीपट्ट शोधन करे ॥ ४२ ॥

वेद्यांप्रपूजयेद्देवीमेवमेवविधानतः ।

माययात्रकरन्यासोप्राणायामंसमाचरेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-इस गौरीपट्टके ऊपर ऐसी विधिके अनुसार देवीकी पूजा करे यथा:-पहले "ह्रीं" बीज पट्टके करन्यास और प्राणायाम करे ॥ ४३ ॥

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिममलां वह्न्यर्कचन्द्रेक्षणां
मुक्तायन्त्रितहेमकुण्डललसत्स्मेराननाम्भोरुहाम् ।

हस्ताब्जैरभयं वरञ्च दधतीं चक्रं तथाब्जं दध-

त्पीनोत्तुङ्गपयोधरां भयहरां पीताम्बरां चिन्तये ॥ ४४ ॥

अर्थ-फिर इसप्रकार देवीजीका ध्यान करे कि, जिनकी कांति उदय होते हुए हजार सूर्यके समान निर्मल है, अग्नि, मूर्य, चंद्रमा यही हैं तीन नेत्र जिसके वदनकमलपर मुस्कान है और वह मोतियोंकी राशिसे विराजते सुवर्णके कुण्डलसे शोभित हो रहा है, जो करकमलसे चक्र, पद्म, वर और अभय धारण किये हुए हैं, जिनके दोनों पयोधर पीन और ऊंचे हैं, जो पीतवस्त्र पहनती हैं, ऐसी भयहारिणी भगवतीका ध्यान करता हूं ॥ ४४ ॥

इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेन्निजशक्तिः ।

ततस्तु दशदिक्पालान्वृषभश्च समर्चयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-इसप्रकार ध्यान करके अपनी शक्तिके अनुसार महादेवीकी पूजा करे । फिर दशदिक्पाल और वृषभकी पूजा करे ॥ ४५ ॥

भगवत्यामनुवंक्ष्ये येनाराध्या जगन्मयी ॥ ४६ ॥

अर्थ-अब जगन्मयी भगवतीकी आराधना करनेके मंत्रको कहता हूं ॥ ४६ ॥

मायां लक्ष्मीं समुच्चार्य्य सान्तं पृष्ठस्वरान्वितम् ॥

विन्दुयुक्तं तदन्ते च योजयेद्ब्रह्मिवल्लभाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-माया, लक्ष्मी, पृष्ठ स्वरयुक्त हकारमें चन्द्रविन्दु उच्चारण कर अन्तमें “स्वाहा” मिलावै, इससे यह मंत्र सिद्ध होगा कि “ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा” ॥ ४७ ॥

पूर्ववत्स्थापयन्देवींसर्वदेवबलिहरेत् ।

दधियुक्तमापभक्तंशर्करादिसमान्वितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-पहलेकी समान देवीको स्थापित कर सब देवताओंके लिये शर्करादियुक्त, दहीयुक्त, उरदयुक्त भक्तबलि दे ॥ ४८ ॥

ऐशान्यांबलिमादायवारुणेनाविशोधयेत् ।

संपूज्यगन्धपुष्पाभ्यामन्त्रेणानेनचार्पयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-यह बलि, अर्थात् पूजाकी सामग्री, ईशानकोणमें रखकर वरुणबीज (वं) से शुद्धकरे फिर सुगंधित पुष्पोंसे पूजकर यह मंत्र पढ़कर उत्सर्ग करे कि ॥ ४९ ॥

सर्वदेवाःसिद्धगणागन्धर्वोरगराक्षसाः ।

पिशाचामातरोयक्षाभूताश्चपितरस्तथा ॥ ५० ॥

अर्थ-समस्तदेव, सिद्ध, गंधर्व, नाग, राक्षस, पिशाच, मातृगण, यक्ष, भूत, पितर ॥ ५० ॥

ऋषयोऽन्यदेवाश्चबालिगृह्णन्तुसंयताः ।

परिवार्यमहादेवंतिष्ठन्तुगिरिजामपि ॥ ५१ ॥

अर्थ-ऋषि और सब देवता सावधान होकर बलिको ग्रहण करें और सबही इन महादेव व महादेवीके साथ रहें ॥ ५१ ॥

ततोऽजपेन्महादेव्यामन्त्रमेतंयथेप्सितम् ॥

गीतवाद्यादिभिःसद्भिर्विदध्यान्मङ्गलक्रियाम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-फिर “ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा” इच्छानुसार इस महादेवीके मंत्रको जपे । अनंतर उत्तम गीत बाजे गाजे इत्यादिसे मांगलिक क्रिया करे ॥ ५२ ॥

अधिवासंविधायेत्यपरेऽह्निविहितक्रियः ।

संकल्पंविधिवत्कृत्वापञ्चदेवान्प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-इसप्रकार अधिवास करके दूसरे दिन नित्यक्रिया करके यथाविधि संकल्प कर पांचदेवताओंकी पूजा करे ॥ ५३ ॥

मातृपूजावसोर्द्धारिवृद्धिश्राद्धसमाचरन् ।

महेशद्वारपालांश्चयजेद्भक्त्यासमाहितः ॥ ५४ ॥

अर्थ-फिर मातृकापूजा, वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध करके भक्तिपूर्वक महादेवजीके नंदीआदिद्वारपालोंकी पूजा करे ॥ ५४ ॥

नन्दीमहावलःकीशवदनोगणनायकः ।

द्वारपालाःशिवस्यैते सर्वे शस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ५५ ॥

अर्थ-नन्दी, महावल, कीशवदन, गणनायक यह शिवजीके द्वारपाल हैं । इन सबके हाथमें अस्त्र शस्त्र हैं ॥ ५५ ॥

ततोऽलिंगसमानीयवेदीरूपांचतारिणीम् ।

मण्डलेऽसर्वतोभद्रेऽस्थापयेद्वाशुभासने ॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर वेदीरूप तारिणी और शिवलिंगको लाय सर्वतोभद्र मण्डलमें वा उत्तम आसनपर स्थापित करे ॥ ५६ ॥

अष्टभिःकलशैःशम्भुंमनुनात्र्यम्बकेनच ।

स्नापयित्वाचयेद्भक्त्यापोडशैरुपचारकैः ॥ ५७ ॥

अर्थ-फिर “ ह्रीं ओं ह्रीं ” मन्त्र और “ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनम् ” इस मन्त्रको पढ़के अष्टकलश जलसे महादेवजीको स्नान कराय भक्तिसहित षोडशोपचारसे पूजा करे ॥ ५७ ॥

वेदींचमूलमन्त्रेणतद्रत्नसंस्थाप्यपूजयन् ।

कृताञ्जलिपुटःसाधुः प्रार्थयेच्छङ्करंशिवम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-फिर “ ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा ” इस मन्त्रसे वेदीको स्थापन कर उसमें लिंगको स्थापकर पूजा करे, फिर साधु पुरुष हाथ जोड़कर महादेवजीसे प्रार्थना करे कि ॥ ५८ ॥

आगच्छभगवच्छम्भो ! सर्वदेवनमस्कृत ! ॥

पिनाकपाणे ! सर्वेश ! महादेव ! नमोऽस्तुते ॥ ५९ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! हे शम्भो ! आगमन करो । तुम सब देवताओंके नमस्कार करने योग्य हो । हे पिनाकपाणे ! तुम सबके ईश्वर हो । हे महादेव ! तुमको नमस्कार है ॥ ५९ ॥

आगच्छमन्दिरेदेव ! भक्तानुग्रहकारक ! ।

भगवत्यासहागच्छकृपांकुरुनमोनमः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे देव ! तुम कृपा करो; तुम भक्तोंपर अनुग्रह करके भगवतीके साथ इस मंदिरमें आगमन करो । तुमको बार-बार नमस्कार है ॥ ६० ॥

मातर्देवि ! महामाये ! सर्वकल्याणकारिणि ! ।

प्रसीदशम्भुनासाध्वै नमस्तेऽस्तुहरप्रिये ! ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे महामाये ! सर्वकल्याणकारिणी ! हरप्रिये ! मातः ! देवि ! महादेवजीके साथ तुम प्रसन्न होवो ! तुमको नमस्कार है ॥ ६१ ॥

आयाहिवरदे ! देवि ! भवनेऽस्मिन्वरप्रदे ! ।

प्रीताभवमहेशानि ! सर्वसम्पत्करीभव ॥ ६२ ॥

अर्थ—हे वरदे ! हे देवि ! इस भवनमें आगमन करो, हे वरदायिनि ! प्रसन्न होवो । हे महेश्वरि ! हमें सर्व संपत्तिकी देनेवाली होवो ॥ ६२ ॥

उत्तिष्ठदेवदेवांश्च ! स्वैःस्वैःपरिकरैःसह ।

सुखंनिवसतांगेहप्रीयेतांभक्तवत्सलौ ॥ ६३ ॥

अर्थ—हे महेश्वर ! हे महेश्वरि ! अपने २ परिवारके साथ उठो तुम भक्तवत्सल हो । तुम इस गृहमें रहकर प्रसन्न होवो ॥ ६३ ॥

इतिप्रार्थ्यशिवं देवीं मंगलध्वनिपूर्वकम् ।

प्रदक्षिणं त्रिधा वेदमकारयित्वा प्रवेशयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—महेश्वर और महेश्वरीसे ऐसी प्रार्थना करके मंगलध्वनि कर तीनवार गृहकी परिक्रमा कराय गृहमें प्रवेश करावै ६४॥

पापाणखनितेगर्तेऽष्टकारचितेऽपिवा ।

अधस्त्रिभागलिङ्गस्यरोपयेन्मूलमुच्चरन् ॥ ६५ ॥

अर्थ—फिर मूलमंत्र पढ़कर पत्थरके खुदेहुए थांबलेमे अथवा ईंटोंके बने हुये थांबलेमें लिंगके नीचेका भागतीनहिस्से गाड़दे ॥ ६५ ॥

यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्चयावत्पृथ्वीचसागराः ।

तावदत्रमहादेवस्थिरोभवनमोऽस्तुते ॥ ६६ ॥

अर्थ—जबतक चंद्रमा और सूर्य स्थिर रहें, जबतक समुद्र रहै हे महादेव ! तबतक तुम इस स्थानमें स्थिर होवो । तुमको नमस्कार है ॥ ६६ ॥

मन्त्रेणानेनसुदृढंकारयित्वासदाशिवम् ।

उत्तराग्रांतत्रवेदिमूलेनैवप्रवेशयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ—यह मंत्र पढ़ सदाशिवको दृढ़तासे स्थापन करे और मूलमंत्र पढ़ उत्तरमुख किया हुआ गौरीपट्ट रखके उनको प्रवेशित करावै ॥ ६७ ॥

स्थिराभवजगद्धात्रि ! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।

यावद्विवानिशानाथौतावदत्रस्थिराभव ॥ ६८ ॥

अनेनसुदृढीकृत्यलिङ्गंस्पृष्ट्वापठेदिमम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—फिर यह मंत्र पढ़े कि, हे सृष्टिस्थितिसंहारकारिणि जगद्धात्रि ! स्थिर होवो, जबतक चंद्र, सूर्य रहें तबतक तुम इस स्थानमें स्थिर होवो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

व्याघ्रभूताःपिशाचाश्चगन्धर्वाःसिद्धचारणाः ।

यक्षानागाश्चेतालालोकपालामहर्षयः ॥ ७० ॥

अर्थ-व्याघ्र, भूत, पिशाच, गंधर्व, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, वेताल, लोकपाल, महर्षिगण ॥ ७० ॥

मातरोगणनाथाश्चविष्णुर्ब्रह्मावृहस्पतिः ।

यस्यसिंहासनेयुक्ताभूचराःखेचरास्तथा ॥ ७१ ॥

अर्थ-और मातृकाएँ, गणपतिगण, भूचरगण, खेचरगण, ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति जिनके सिंहासनको उठातेहैं ७१

आवाहयामितंदेवंयक्षमीशानमव्ययम् ।

आगच्छभगवन्नब्रह्मनिर्मितयन्त्रके ॥ ७२ ॥

अर्थ-उन त्रिनयन अविनाशी देव महादेवजीका आवाहन करताहूँ हे भगवन् ! तुम इस ब्रह्मनिर्मितयन्त्रमें रहो ७२

ध्रुवायभवसर्वेषांशुभायचसुखायच ।

ततोदेवप्रतिष्ठोक्तविधिनास्नापयश्चिवम् ॥ ७३ ॥

अर्थ-तुम सबको स्थिर करो । तुम सबके लिये मंगल और सुखका विधान करो । फिर देवप्रतिष्ठामें कहीहुई विधिके अनुसार शिवजीको स्नान करावै ॥ ७३ ॥

प्राग्वद्ध्यात्वामानसोपचारैःसम्पूजयेत्प्रिये ! ।

विशेषमर्घ्यसंस्थाप्यसमर्च्यगणदेवताः ।

पुनर्ध्यात्वामहेशानंपुष्पंलिंगोपरिन्यसेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! पहलेकी समान ध्यान करके मानसिक उपचारसे पूजा करे । फिर विशेष अर्घ्य स्थापित करके गणदेवताओंकी पूजा करे । और फिर ध्यान करके लिंगके ऊपर पुष्प स्थापित करे ॥ ७४ ॥

पाशांकुशपुटाशक्तियादिसान्ताःसविन्दुकाः ।

ह्रींहंसइतिमन्त्रेणतत्रप्राणाग्निवेशयेत् ।

चन्दनागुरुकाश्मीरैर्विलिप्यगिरिजापतिम् ॥ ७५ ॥

अर्थ-पाश और अंकुश पुटित माया उच्चारण करके 'य' से लेकर 'स' तक सात अक्षरमें अनुस्वार मिलाय पढ़कर फिर "हौं हंसः" यह मन्त्र (१) पढ़कर उस लिंगकी प्राण-प्रतिष्ठा करे । फिर चन्दन, अगर, और केशरसे गिरिजाप-तिके अंग पूजितकर ॥ ७५ ॥

यजेत्प्रागुक्तविधिनापोडशैरुपचारकैः ।

जातनामादिसंस्कारान्कृत्वापूर्वविधानवत् ॥ ७६ ॥

अर्थ-पहले कहीहुई विधिके अनुसार सोलह उपचारसे पूजा करे । फिर पहले कहे विधानकी नाई जातकर्म, नाम-करणआदि संस्कार करके ॥ ७६ ॥

समाप्यसर्वविधिवद्वेद्यादेर्विमहेश्वरीम् ।

अभ्यर्च्यतत्रदेवस्यमूर्त्तिरिष्टौप्रपूजयेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ-विधिविधानसे सब कर्मोंको करे । फिर बेदीमें महेश्वरीकी पूजा करके तिसमें देवदेवीकी अष्टमूर्तिकी पूजा करे ॥ ७७ ॥

शर्वःक्षितिः समुद्रिष्टाभवाजलमुदाहृता ।

रुद्रोऽग्निरुग्रोवायुःस्याद्भीमआकाशशब्दितः ॥ ७८ ॥

अर्थ-अष्टमूर्तिकी पूजाके समय इसप्रकार कहना चाहिये एक, (शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः १ । भवाय जलमूर्तये नमः २ । रुद्राय अग्निमूर्तये नमः ३ । उग्राय वायुमूर्तये नमः ४ । भीमाय आकाशमूर्तये नमः ५) ॥ ७८ ॥

पशोःपतिर्यजमानोमहादेवः सुधाकरः ।

ईशानःसूर्य्यइत्येतेषूर्त्तयोष्टौप्रकीर्त्तिताः ॥ ७९ ॥

अर्थ-पशुपतये यजमानमूर्तये नमः ६ । महादेवाय सोम-

मूर्तये नमः ७ । ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः ८) इसप्रकार आठ मूर्ति कहीहैं ॥ ७९ ॥

प्रणवादिनमोऽन्तेनप्रत्येकाह्वानपूर्वकम् ।

पूर्वादिशानपर्यन्तमष्टमूर्त्तीः क्रमाद्यजेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-पहले "प्रणव" अन्तमें "नमः" पद लगाय प्रत्येक मूर्तिका आवाहन करके पूर्वदिशासे लेकर ईशान कोणतक क्रमसे उक्त आठ मूर्तिकी पूजा करे (१) ॥ ८० ॥

इन्द्रादिदिक्पतीनिष्ठाब्राह्म्याद्याश्चाष्टमातृकाः ।

वृषं वितानं गेहादिदद्यादीशायसाधकः ॥ ८१ ॥

अर्थ-फिर साधकको चाहिये कि, इन्द्रादि सब दिक्पालों की और ब्राह्मीआदि आठ मातृकाओंकी पूजा करके वृष, वितान गृहादि सब महादेवजीको भेंट करे ॥ ८१ ॥

ततः कृताञ्जलिर्भक्त्या प्रार्थयेत्पार्वतीपतिम् ॥ ८२ ॥

अर्थ-फिर हाथ जोड़ भक्तिके सहित पार्वतीके नाथ महादेवजीसे प्रार्थना करे कि ॥ ८२ ॥

गृहेऽस्मिन् करुणासिन्धो ! स्थापितोऽसिमया प्रभो ! !

प्रसीद भगवन् ऋम्भो ! सर्वकारणकारण ! ॥ ८३ ॥

अर्थ-हे करुणासागर ! मैंने तुमको इस गृहमें स्थापन किया । हे प्रभो ! तुम सब कारणोंके कारण हो । हे भगवन् ऋम्भो ! प्रसन्न होवो ॥ ८३ ॥

(१) आठ मूर्तियोंका आवाहन और पूजा इसप्रकार है । "हे शर्वा हे शक्तिमूर्ते ! इहागच्छ इहागच्छ १ । इह तिष्ठ इह तिष्ठ २ । इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि ३ । इह सम्मुखो भव इह सम्मुखो भव ४ । इह सन्निरुद्धो भव इह सन्निरुद्धो भव ५ । मम पूजा गृहाण" । ऐसे मन्त्रसे आवाहन करके पूर्वदिशामें इस मन्त्रमें पूजा करे कि "ओं शर्वाय शक्तिमूर्तये नमः" आठ दिशामें अष्टमूर्तिभी पूजामें भी नाम बदलकर इस प्रकार आवाहन और पूजा करे ।

यावत्ससागरापृथ्वीयावच्छशिदिवाकरौ ।

तावदस्मिन्गृहेतिष्ठनमस्तेपरमेश्वर ! ॥ ८४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! जबतक समुद्रसहित पृथ्वी रहैगी, जबतक चन्द्रमा, सूर्य रहेंगे । तबतक इस गृहमें विराजो । तुमको नमस्कार है ॥ ८४ ॥

गृहेऽस्मिन्यस्यकस्यापिजीवस्यमरणंभवेत् ।

नतत्पापैःप्रलिप्येऽहंप्रसादात्तवधूर्जटे ! ॥ ८५ ॥

अर्थ-हे धूर्जटे ! इस गृहमें यदि किसी जीवकी अपमृत्यु होवे तो तुम्हारे प्रसादसे मैं उसके पापमें न फसूं ॥ ८५ ॥

ततःप्रदक्षिणीकृत्यनमस्कृत्यगृहंव्रजेत् ।

प्रभातेपुनरागत्यस्नापयेच्चन्द्रशेखरम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-फिर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके गृहमें गमन करे, दूसरे दिन प्रभातको उस स्थानमें आय उन चंद्रशेखर (महादेवजी) को स्नान करावे ॥ ८६ ॥

शुद्धैःपञ्चामृतैःस्नानंप्रथमंप्रतिपादयेत् ।

ततःसुगन्धितोयानांकलशैःशतसंख्यकैः ॥ ८७ ॥

अर्थ-पहले शुद्ध पंचामृतसे स्नान करावे । फिर सुगंधित एकशत कलशजलसे स्नान करावे ॥ ८७ ॥

संपूज्यतंयथाशक्त्याप्रार्थयेद्भक्तिभावतः ॥ ८८ ॥

अर्थ-अनंतर भक्तिभावसे यथाशक्ति पूजाकर प्रार्थना करे कि ॥ ८८ ॥

विधिहीनंकियाहीनंभक्तिहीनंयदर्चितम् ।

सम्पूर्णमस्तुतत्सर्वत्वत्प्रसादादुमापते ! ॥ ८९ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! मैं सब आगमोंमेंसे निकालकर संक्षेपसे
अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा तुमसे कही ॥ ९४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

यद्यकस्माद्देवतानांपूजाबाधोभवेद्विभो ! ।

विधेयंतत्रकिंभक्तैस्तन्मेकथयतत्त्वतः ॥ ९५ ॥

अर्थ-भगवतीने पूछा, हे विभो ! यदि अचानक किसी
दिन शिवकी पूजा न हो तो वहांपर भक्तोंको क्या करना
चाहिये सो मुझसे कहो ॥ ९५ ॥

अपूजनीयाःकैर्दोषैर्भवेयुर्देवमूर्तयः ।

त्याज्यावाकेनदोषेणतदुपायश्चभण्यताम् ॥ ९६ ॥

अर्थ-किस दोषोंके होनेसे देवमूर्ति अपूज्य और त्याग देने
योग्य होती है सोभी मुझसे कहो ॥ ९६ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

एकाहमर्चनाबाधेद्विगुणंदेवमर्चयेत् ।

दिनद्वयेतद्विगुणंतद्विगुण्यंदिनत्रये ॥ ९७ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा--जो एक दिन पूजा नहीं तो
दूसरे दिन दुगुनी पूजा करे । दोदिन पूजा न हों तो चौगुनी
पूजाकरे, तीन दिन पूजा नहोनेसे उसे दुगुनी अर्थात् आठ-
गुनी पूजा करनी चाहिये ॥ ९७ ॥

ततःपण्मासपर्यन्तंयदिपूजानसम्भवेत् ।

तदाष्टकलशैर्दवंस्त्रापयित्वायजेत्सुधीः ॥ ९८ ॥

अर्थ-यदि छैःमासतक पूजामें बाधा पड़े तो शानीपुरु-
षको चाहिये कि, आठकलश जलसे देवमूर्तिको स्नान कराय
पूजा करे ॥ ९८ ॥

पण्मासात्परतोदेवंप्राक्संस्कारविधानतः ।

पुनः सुसंस्कृतंकृत्वापूजयेत्साधकाग्रणीः ॥ ९९ ॥

अर्थ-यदि छैः माससे अधिक समयतक पूजा न हों तो पहले कहे संस्कारकी विधिके अनुसार फिर देवमूर्तिका संस्कार करके साधकश्रेष्ठको पूजा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

खण्डितस्फुटितंव्यङ्ग्यं संस्पृष्टं कुष्ठरोगिणा ।

पतितंदुष्टभूम्या दौनदेवंपूजयेद्बुधः ॥ १०० ॥

अर्थ-जो देवमूर्ति टूटगई है, जिस मूर्तिमें छेद होगया है, अंग हीन होगई है, कोढ़ीसे छुईगई है, अथवा दूषित भूमिमें गिरी है, ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि, ऐसी प्रतिमाको न पूजे ॥ १०० ॥

हीनाङ्गस्फुटितं भग्नं देवतोये विसर्जयेत् ।

स्पर्शादिदोषदुष्टं तु संस्कृत्य पुनरर्चयेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-जो मूर्ति अंगहीन होगई है अथवा जो टूटगई है, उसको जलमें मिलादेवे । परन्तु जो मूर्ति स्पर्शादिदोषसे दूषित हुई है उसको फिर संस्कार करके पूजे ॥ १०१ ॥

महापीठेऽनादिलिङ्गे सर्वदोषविवर्जिते ।

सर्वदा पूजयेत्तत्र स्वस्वमिष्टं सुखाप्तये ॥ १०२ ॥

अर्थ-जो महापीठ और अनादि लिंग हैं, तिसमें छुआ छूतका दोष नहीं लगता । इस कारण उसमें सुखप्राप्तिके लिये सरा अपने अपने अभीष्टदेवताकी पूजा करे ॥ १०२ ॥

यद्यत्पृष्ठं महाभागे ! नृणां कर्मानुजीविनाम् ।

निःश्रेयसायतत्सर्वसविशेषं प्रकीर्तितम् ॥ १०३ ॥

अर्थ-हे महाभागे ! कर्मानुजीवी मनुष्योंके मंगलार्थ जो २ तुमने पूँछा वह मैंने भलीभाँतिसे कहा ॥ १०३ ॥

विना कर्मन तिष्ठन्ति क्षणार्द्धमपि देहिनः ।

अनिच्छन्तोऽपि विवशाः कृष्यन्ते कर्मबाधुना ॥ १०४ ॥

अर्थ—मनुष्यगण विनाकर्म, करे क्षणभरभी नहीं रहसक्त, यदि वह कर्म करनेकी इच्छा नभी करे तोभी कर्म करनेकी पवनसे खींच जाते हैं ॥ १०४ ॥

कर्मणासुखमश्नन्तिदुःखमश्नन्तिकर्मणा ।

जायन्तेचप्रलीयन्तेवर्तन्तेकर्मणोवशात् ॥ १०५ ॥

अर्थ—मनुष्य कर्मसे सुख भोगते हैं, कर्मसे दुःख भोगते हैं, कर्मसे जन्मते और मरते हैं ॥ १०५ ॥

अतोबहुविधंकर्मकथितंसाधनान्वितम् ।

प्रवृत्तयेऽल्पबोधानांदुश्चेष्टितनिवृत्तये ॥ १०६ ॥

अर्थ—इसकारण मैं अल्पज्ञानी पुरुषोंकी प्रवृत्तिके लिये और दुष्टप्रवृत्तिके अलग करनेको साधन समेत अनेकप्रकारके कर्म कहे ॥ १०६ ॥

यतोहिकर्मद्विविधंशुभाशुभमेवच ।

अशुभात्कर्मणोयान्तिप्राणिनस्तीव्रयातनाम् १०७॥

अर्थ—कर्म दो प्रकारके हैं शुभ और अशुभ, अशुभ कर्म करनेसे प्राणियोंको तीव्र पीड़ा होती है ॥ १०७ ॥

कर्मणोऽपिशुभाद्देवि ! फलेष्वासक्तचेतसः ।

प्रयान्त्यायान्त्यमुन्नेहकर्मशृंसलयन्त्रिताः ॥ १०८ ॥

अर्थ—हे देवि ! जो फलमें चित्तको आसक्त करके शुभ कर्म करते हैं वह भी इस कर्मकी जंजीरमें बंधकर इसलोक और परलोकमें गमनागमन करते हैं ॥ १०८ ॥

यावन्नक्षीयतेकर्मशुभंवाशुभमेववा ।

तावन्नजायतेमोक्षोनृणांकल्पशतैरपि ॥ १०९ ॥

अर्थ—जबतक शुभ या अशुभ कर्मोंका क्षय नहीं होता तबतक शतकल्पसेभी मनुष्यकी मुक्ति नहीं होसکت ॥ १०९ ॥

यथालोहमयैःपाशैःपाशैःस्वर्णमयैरपि ।

तथावद्धोभवेजीवःकर्मभिश्चाशुभैःशुभैः ॥ ११० ॥

अर्थ-जैसे पशु लोहेकी या सुवर्णकी जंजीरसे बंधारहता है तैसेही मनुष्य शुभ या अशुभ कर्मोंसे बंधा रहता है ११०

कुर्वाणःसततंकर्मकृत्वाकष्टशतान्यपि ।

तावन्नलभतेमोक्षंयावज्ज्ञानंनविन्दति ॥ १११ ॥

अर्थ-जबतक ज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक, सदा कर्मका अनुष्ठान करके और शत २ कष्ट करके भी मुक्ति नहीं प्राप्त होसक्ती ॥ १११ ॥

ज्ञानंतत्त्वविचारेणनिष्कामेनापिकर्मणा ।

जायतेक्षीणतमसांविदुर्पानिर्मलात्मनाम् ॥ ११२ ॥

अर्थ-जिनका स्वभाव निर्मल है और जो लोग विज्ञानी हैं उनको तत्त्वोंके विचारसे अथवा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ११२ ॥

ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तमाययाकल्पितंजगत् ।

सत्यमेकंपरंब्रह्मविदित्वैवसुखीभवेत् ॥ ११३ ॥

अर्थ-ब्रह्मासे लेकर तृण गुल्मतक सब जगत् मायासे कल्पित हुआ है । एक परम ब्रह्मको सत्य जानकर नित्य सुख भोग किया जासक्ता है ॥ ११३ ॥

विहायनामरूपाणिनित्येब्रह्मणिनिश्चले ।

परिनिश्चिततत्त्वोयःसमुक्तःकर्मबन्धनात् ॥ ११४ ॥

अर्थ-जो नामरूपको छोड़कर नित्य निश्चल ब्रह्मके तत्त्वका निरूपण करता है, वह कर्मबंधनसे छूट जाता है ॥ ११४ ॥

नमुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि ।

ब्रह्मैवाहमितिज्ञात्वामुक्तोभवतिदेहभृत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-जप, होम और शत २ उपवास करनेसे मुक्ति नहीं होती है । मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसा ज्ञान होनेसे शरीरधारीकी मुक्ति हो जाती है ॥ ११५ ॥

आत्मासाक्षिविभुःपूर्णःसत्योऽद्वैतःपरात्परः ।

देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग भवेत् ॥ ११६ ॥

अर्थ-आत्मा साक्षिस्वरूप है अर्थात् शुभाशुभको देखने-वाला है । वह विभु अर्थात् सर्वव्यापक है । वह पूर्ण अर्थात् अखंडस्वरूप है । वह अद्वितीय अर्थात् परेसे परे है । ऐसा ज्ञान होनेसे जीवकी मुक्ति होसکتی है ॥ ११६ ॥

बालक्रीडनवत्सर्वरूपनामादिकल्पनम् ।

विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः समुक्तो नात्र संशयः ॥ ११७ ॥

अर्थ-ब्रह्मका नाम स्वरूपादि कल्पना करना बालकोंको खेलकी समान है, जो इस बाल खेलको छोड़कर केवल ब्रह्म निष्ठ होता है, वह निःसंदेह मुक्ति प्राप्त करलेता है ॥ ११७ ॥

मनसा कल्पिता मूर्तिर्नृणां चेन्मोक्षसाधनी ।

स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तथा ॥ ११८ ॥

अर्थ-मनःकल्पित देवमूर्ति यदि मनुष्योंको मोक्ष देसके तो मनुष्य स्वप्नमें पाये राज्यसे राजा होनेको भी समर्थ होवे ११८

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तां विश्वरबुद्धयः ।

क्षिप्यन्तस्तपसा ज्ञानं विना मोक्षं न यान्ति ते ॥ ११९ ॥

अर्थ-जो मिट्टीकी, काठकी, पत्थरकी मूर्त्तिको ईश्वर सम्झकर तपस्यादि करते हैं, वोह वृथा कष्ट पाते हैं । क्योंकि विना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती ॥ ११९ ॥

आहारसंयमं क्लिष्टायथेष्टाहारतुन्दिलाः ।

ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिते त्रजन्ति किम् ॥ १२० ॥

अर्थ—मनुष्य आहारको वशमें रखकर क्लेश भोग करें, इच्छानुसार आहार करके तोन्दबलिहों, परंतु ब्रह्मज्ञानके न होनेसे किसीप्रकार उनकी मुक्ति नहीं होसकी ॥ १२० ॥

वायुपर्णकणातोयव्रतिनोमोक्षभागिनः ।

सन्तिचेत्पन्नगामुक्ताः पशुपक्षिजलेचराः ॥ १२१ ॥

अर्थ—जो लोग केवल वायु, पत्ते, कणा भक्षणकर या जलही पीकर व्रत धारण करते हैं यदि इनलोगोंकी मुक्ति होजाय तो सर्प, पशु, पक्षी और जलचरभी मोक्षके भागी होसके हैं ॥ १२१ ॥

उत्तमोब्रह्मसद्भावोऽध्यानभावस्तुमध्यमः ।

स्तुतिर्जपोऽधमोभावोवहिः पूजाऽधमाधमा ॥ १२२ ॥

अर्थ—ब्रह्मके सिवाय और सबही मिथ्या है, ऐसा भावकरना उत्तम कल्प है । ध्यानभाव मध्यमकल्प है । स्तुति और जप अधम कल्प है और बाह्यपूजा अधमसे भी अधम कल्प है ॥ १२२ ॥

योगोजीवात्मनोरैक्यं पूजनं सेवकेशयोः ।

सर्वब्रह्मेति विदुषो न योगो न च पूजनम् ॥ १२३ ॥

अर्थ—जीव और आत्माकी एकताका नाम योग है, सेवक और ईश्वरकी एकताका नाम पूजा है जिसको ऐसा ज्ञान हो- गया है कि, सब ब्रह्म है उसके लिये योग वा पूजा कुछभी नहीं है ॥ १२३ ॥

ब्रह्मज्ञानं परं ज्ञानं यस्य चित्ते विराजते ।

किन्तु स्य जपयज्ञाद्यैस्तपोभिर्नियमव्रतैः ॥ १२४ ॥

अर्थ—जिसके हृदयमें परमज्ञान ब्रह्मज्ञान विराजित हुआ है—उसको जप, यज्ञ, तप, नियम, व्रतादि कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ १२४ ॥

सत्यंविज्ञानमानन्दमेकं ब्रह्मेति पश्यतः ।

स्वभावाद्ब्रह्मभूतस्य किं पूजा ध्यान धारणा ॥ १२५ ॥

अर्थ—जो सर्वत्र सत्यस्वरूप, विज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म अवलोकन करता है, वह स्वभावसे ही ब्रह्म-स्वरूप होगया, उसके लिये पूजा और ध्यान धारणा कुछ भी नहीं है ॥ १२५ ॥

न पापं नैव सुकृतं न स्वर्गो न पुनर्भवः ।

नापि ध्येयो न वा ध्याता सर्वं ब्रह्मेति जानतः ॥ १२६ ॥

अर्थ—जिसने सबको ब्रह्ममय जान लिया है, उसके लिये पाप, पुण्य, स्वर्ग, पुनर्जन्म, नहीं है, न उसके लिये ध्येय है, न ध्याता है ॥ १२६ ॥

अयमात्मा सदा मुक्तो निर्लिप्तः सर्ववस्तुषु ।

किं तस्य बन्धनं कस्मान्मुक्तिमिच्छन्ति दुर्द्धियः ॥ १२७ ॥

अर्थ—यह आत्मा सदा ही मुक्त है, किसी वस्तु में लिप्त नहीं है । उसका बंधन कहां फिर किस कारणसे कुबुद्धि लोग मुक्तिकी कामना करते हैं ॥ १२७ ॥

स्वमायारचितं विश्वमवितर्क्य सुरैरपि ।

स्वयं विराजते तत्तद्ब्रह्म प्रविष्टः प्रविष्टवत् ॥ १२८ ॥

अर्थ—यह जगत् ब्रह्मकी मायासे बना है, देवता लोग भी इसके भेदको नहीं पासते । परमब्रह्म इस जगत् में प्रवेशित न होकर भी प्रवेशितकी समान विराजमान है ॥ १२८ ॥

वहिरन्तर्यथाकाशं सर्वेषामेव वस्तुनाम् ।

तथैव भातिसद्रूपो ह्यात्मा साक्षी स्वरूपतः ॥ १२९ ॥

अर्थ—जैसे सब वस्तुओं के भीतर और बाहर आकाश रहता है तैसे ही सत्स्वरूप और साक्षीस्वरूप, आत्मा स्वरूप करके सबमें विराजमान है ॥ १२९ ॥

नवाल्पमस्तिबृद्धत्वंनात्मनोयौवनंजराः ।

सदैकरूपाश्चिन्मात्रोविकारपरिवर्जितः ॥ १३० ॥

अर्थ-आत्माका जन्म, बालकपन और बृद्धावस्था नहीं है, वह सदाही एकरूप, चिन्मय और विकारसे रहित है ॥ १३० ॥

जन्मयौवनवार्द्धक्यदेहस्यैवनचात्मनः ।

पश्यन्तोऽपिपश्यन्तिमायाप्रावृतबुद्ध्यः ॥ १३१ ॥

अर्थ-जन्म, जवानी और बुढ़ापा देहकोही होता है । आत्मामें नहीं होता । मनुष्योंकी बुद्धि मायासे ढकीरहती है । इसकारण वे इसे देखकरभी नहींसे देखते हैं ॥ १३१ ॥

यथाशरावतोयस्थंरविंपश्यत्यनेकधा ।

तथैवमाययादेहेवहुधात्मानमीक्षते ॥ १३२ ॥

अर्थ-जैसे बहुतसी रक्खीहुई सरईयोंके जलमें बहुतसे सूर्य दिखाई देतेहैं तैसेही मायाके प्रभावसे बहुतसे शरीरमें बहुतसे आत्मा दिखाई देते हैं ॥ १३२ ॥

यथासलिलचाञ्चल्यमन्यन्तेतद्गतेविधौ ।

तथैवबुद्धेश्चाञ्चल्यंपश्यन्त्यात्मन्यकोविदाः ॥ १३३ ॥

अर्थ-जैसे जलके चंचल होनेसे उसमें पड़ीहुई चंद्रमाकी परछाईभी चंचल मालूम होती है, वैसेही अज्ञानीलोग बुद्धिकी चंचलता आत्माहीमें देखते हैं ॥ १३३ ॥

घटस्थंयादृशंव्योमघटेभग्रेऽपितादृशम् ।

नष्टेदेहेतथैवात्मासमरूपोविराजते ॥ १३४ ॥

अर्थ-जैसे घड़ा टूट जानेपरभी घड़ेका आकाश पहलेकी समान विकाररहित रहता है, तैसेही देह नष्ट होनेपरभी आत्मा सब समय समभावसे विराजमान रहता है ॥ १३४ ॥

आत्मज्ञानमिदं देवि ! परं मोक्षैकसाधनम् ।

जानन्निहैव मुक्तः स्यात्सत्यं सत्यनसंशयः ॥ १३५ ॥

अर्थ—हे देवि ! यह ब्रह्मज्ञान मोक्षका परमकारण है, जो इसको जानते हैं, वह निःसन्देह इस लोकमें ही जीवन्मुक्त होते हैं ॥ १३५ ॥

न कर्मणा विमुक्तः स्यान्न सन्तत्याधनेन वा ।

आत्मनात्मानमाज्ञाय मुक्तो भवति मानवः ॥ १३६ ॥

अर्थ—कर्मसे मनुष्यकी मुक्ति नहीं होती, सन्तान उत्पन्न करनेसे या धनसे मुक्ति नहीं, परन्तु अपने आप अपनेको जानते ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ १३६ ॥

प्रियो ह्यात्मैव सर्वेषां नात्मनोऽस्त्यपरं प्रियम् ।

लोकेऽस्मिन्नात्मसम्बन्धाद्भवन्त्यन्ये प्रियाः शिवे १३७

अर्थ—सब जीवोंको आत्मा ही परमप्यारा है और कोई वस्तु आत्मासे प्यारी नहीं है । हे शिवे ! इसलोकमें और पुरुष अपने सम्बन्धके अनुसार ही प्रेमपात्र होता है ॥ १३७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं भाति मायया ।

विचार्यमाणे त्रितये आत्मैव कोऽवशिष्यते ॥ १३८ ॥

अर्थ—ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता यह तीनों मायासे ही प्रतिभाता होते हैं इन तीनोंका तत्त्वविचार करनेसे केवल एक आत्मा ही बचता है ॥ १३८ ॥

ज्ञानमात्मैव चिद्रूपो ज्ञेयमात्मैव चिन्मयः ।

विज्ञाता स्वयमेवात्मा योजानाति स आत्मवित् ॥ १३९ ॥

अर्थ—चिन्मय आत्मा ही ज्ञान, चिन्मय आत्मा ही जानने योग्य वस्तु है, स्वयं आत्मा ही ज्ञाता है इसको जाननेवाला आत्मवित् है ॥ १३९ ॥

एतत्तेकथितंज्ञानंसाक्षात्निर्वाणकारणम् ।

चतुर्विधावधूतानामेतदेवंपरंधनम् ॥ १४० ॥

अर्थ-यह मैंने तुमसे साक्षात् निर्वाणका कारण ज्ञान उप-
देश कहा । यही चार प्रकारके अवधूतोंका परमधन है १४०
श्रीदेवुवाच ।

द्विविधावाश्रमौप्रोक्तौगार्हस्थोभैक्षुकस्तथा ।

किमिदंश्रूयतेचित्रमवधूताश्चतुर्विधाः ॥ १४१ ॥

अर्थ-श्रीभगवतीने कहा-आपने पहले गृह और भिक्षुक
इन दो आश्रमोंका वर्णन किया, अब आप अवधूत आश्रम
चार प्रकारके बतलातेहो; इससे मुझको अचरज होताहै, यह
क्या बात है ॥ १४१ ॥

श्रुत्वावेदितुमिच्छामितत्त्वतःकथयप्रभो ।।

चतुर्विधावधूतानालक्षणंसविशेषतः ॥ १४२ ॥

अर्थ-हे प्रभो ! चारप्रकार अवधूतोंके लक्षण यथार्थ २ भली-
भाँतिसे कहिये, मैं श्रवणकर उसके जाननेका अभिलाष
करती हूँ ॥ १४२ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

ब्रह्ममन्त्रोपासकायेब्राह्मणक्षत्रियादयः ।

गृहाश्रमेवसन्तोऽपिज्ञेयास्तेयतयः प्रिये ! ॥१४३॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा-हे प्रिये ! जो ब्राह्मण, क्षत्री,
आदि ब्रह्ममन्त्रके उपासक हैं वह गृहस्थाश्रममें वास करके
भी (ब्राह्मावधूत) और यति (१) होंगे ॥ १४३ ॥

पूर्णाभिषेकविधिनासंस्कृतोयचमानवाः ।

शैवावधूतास्तेज्ञयाःपूजनीयाःकुलार्चिते ! ॥ १४४ ॥

(१) “ ब्रह्मचारिसङ्घं तु वानप्रस्थज्ञानिनश्च । ब्राह्मणानान्तु कौट्यस्तु यतिरेको
चिज्ञेयते ” । एक सहस्र ब्रह्मचारी, शत वानप्रस्थ और एक एक करोड़ ब्राह्मणसे भी
सघति श्रेष्ठ है ।

अर्थ-हे कुलार्चिते ! जो मनुष्य पूर्ण अभिषेककी विधिके अनुसार संस्कृत हुए हैं, वह शैवावधूत हैं सबहीं पूजनीय हैं १४४

ब्राह्मावधूताः शैवाश्च स्वाश्रमाचारवर्तिनः ।

विदध्नुः सर्वकर्माणि मदुदीरितवर्त्मना ॥ १४५ ॥

अर्थ-ब्राह्मावधूत और शैवावधूतोंको चाहिये कि, अपने आश्रम और अपने आचारोंमें रहकर मेरे कहेहुए मार्गका आश्रय लेकर सब कर्म करे ॥ १४५ ॥

विना ब्रह्मापितं चैततथा चक्रापितं विना ।

निषिद्धमन्नं तोयञ्च न गृह्णीयुः कदाचन ॥ १४६ ॥

अर्थ-ब्राह्मावधूत, ब्रह्ममें अपित द्रव्यके सिवाय और शैवावधूत चक्रमें अपित द्रव्यके सिवाय कभी निषिद्ध अन्न और निषिद्ध जल ग्रहण नहीं करें ॥ १४६ ॥

ब्राह्मावधूतकौलानां कौलानामभिषेकिणाम् ।

प्रागेव कथितो धर्म आचारश्च वरानने ॥ १४७ ॥

अर्थ-हे वरानने ! ब्राह्मावधूत कौललोगोंके और अभिषिक्त कौललोगोंके (१) आचार व धर्म पहलेही प्रगट कर चुका हूं १४७

स्नानं सन्ध्यां शनं पानं दानं च दाररक्षणम् ।

सर्वमागममार्गेण शैवब्राह्मावधूतयोः ॥ १४८ ॥

अर्थ-स्नान, संध्या, भोजन, पान, दान, दाररक्षा, इन कर्मोंका अनुष्ठान शैवावधूत और ब्राह्मावधूतोंको आगमके अनुसार करना चाहिये ॥ १४८ ॥

उक्तावधूतो द्विविधः पूर्णः पूर्णविभेदतः ।

पूर्णः परमहंसाख्यः परित्राडपरः प्रिये ! ॥ १४९ ॥

(१) “सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदो ज्यो वैष्णवं महत् । वैष्णवादुत्तमं क्षेत्रं दोगादक्षिण-
मुत्तमम् । दक्षिणादुत्तमं धर्मं धाम ॥ इति शिष्टान्तमुत्तमम् । शिष्टान्तादुत्तमं श्रीलं श्रीन्या-
त्परतरोनदि” ॥ इतियोनितेयम् ॥

अर्थ-यह शैवावधूत और ब्राह्मावधूत दो प्रकारके हैं । पूर्ण और अपूर्ण । हे प्रिये ! पूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूतका नाम परमहंस है । अपूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूतको परिव्राट् कहा जाता है ॥ १४९ ॥

कृतावधूतसंस्कारोयदित्याज्ज्ञानदुर्बलः ।

तदालोकालयेतिष्टन्नात्मानंसतुशोधयेत् ॥ १५० ॥

अर्थ-जो मनुष्य अवधूतसंस्कारके द्वारा संस्कृत हुआ है, वह यदि ज्ञानके विषयमें दुर्बलहो अर्थात् जो उसको पूर्ण अद्वैतभाव न उत्पन्न हुआ हो तो वह बस्तीमें या गृहस्थाश्रममें रहकर आत्माको शुद्ध करे और जिससे “एकमेवाद्वितीयम्” यह ज्ञान जन्मे इस विषयमें यत्न करतारहे १५०

रक्षन्स्वजातिचिह्नञ्चकुर्वन्कर्माणिकौलवत् ।

सदाब्रह्मपरोभूत्वासाधयेज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ १५१ ॥

अर्थ-वह अपनी जातिके चिह्न शिखा व सूत्रादिकी रक्षा करे । वह कौलकी समान सब कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे । वह सदा ब्रह्मनिष्ठ होकर निरंतर ज्ञान साधन करे ॥ १५१ ॥

ओंतत्सन्मन्त्रमुच्चार्यसोऽहमस्मीतिचिन्तयन् ।

कुर्व्यादात्मोचितं कर्मसदावैराग्यमाश्रितः ॥ १५२ ॥

अर्थ-वोह सदा रोगरहित होकर “ओं तत्” मंत्र उच्चारण करके “सोहमस्मि” इसप्रकार चिन्ता करके योग्य कर्मका अनुष्ठान करे ॥ १५२ ॥

कुर्वन्कर्माण्यनासक्तो नलिनीदलनीरवत् ।

यतेतात्मानमुद्धर्तुं तत्त्वज्ञानविवेकतः ॥ १५३ ॥

अर्थ-वह पद्मपत्रपर स्थित हुए जलकी समान आसक्तिरहित होकर सब कर्मोंका अनुष्ठान करके तत्त्वज्ञानके विचारद्वारा अपनेको (संसारसागरसे) उद्धार करनेका यत्न करे ॥ १५३ ॥

ओतत्सदितिमन्त्रेणयोयत्कर्मसमाचरेत् ।

गृहस्थोवाप्युदासीनस्तस्याभीष्टायतद्भवेत् ॥ १५४ ॥

अर्थ-गृहस्थ हो या उदासी हो “ओं तत्सत्” इस मन्त्रसे जो जिस कार्यका अनुष्ठान करे, वही अपना अभीष्ट फल पावेगा ॥ १५४ ॥

जपोहोमःप्रतिष्ठाचसंस्काराद्याखिलाःक्रियाः ।

ओतत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाःसम्पूर्णाःस्युर्नसंशयः ॥ १५५ ॥

अर्थ-जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कारादि सब काम “ओतत्सत्” मन्त्रसे किये जानेपर निःसंदेह पूर्ण होजायगे ॥ १५५ ॥

किमन्यैर्वहुभिर्मन्त्रैःकिमन्यैर्भूरिसाधनैः ।

ब्राह्मेणानेनमन्त्रेणसर्वकर्माणिसाधयेत् ॥ १५६ ॥

अर्थ-और बहुतसे मन्त्रोंकी या बहुतसे साधनोंकी क्या आवश्यकता है केवल “ओं तत्सत्” मन्त्रसे सब कर्मोंको साधन करे ॥ १५६ ॥

सुखसाध्यमबाहुल्यंसम्पूर्णफलदायकम् ।

नास्त्येतत्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमंविक्ते ॥ १५७ ॥

अर्थ-यह मन्त्र सुखसे सिद्ध होजाता है, इसमें कोई बहुतायत नहीं है, परंतु यह सम्पूर्ण फलदायक है । हअम्बिके ! इस महामन्त्रके बिना जीवके निस्तार होनेका दूसरा उपाय नहा है ॥ १५७ ॥

पुरःप्रदेशेदेहेवालिखित्वाधारयेदिमम् ।

गेहस्तस्यमहातीर्थदेहःपुण्यमयोभवेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ-जो गृहके किसी अंशमें अथवा शरीरके किसी अंशमें “ओं तत्सत्” मन्त्र लिखकर धारण करेंगे, उसका गृह महातीर्थस्वरूप और देह पुण्यमय होगा ॥ १५८ ॥

निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरोमनुः ।

ओं तत्सदिति देवेशि ! तवाग्रेसत्यमीरितम् ॥ १५९ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैं तुम्हारे सन्मुख सत्यही सत्य कहता हूँ कि “ओं तत्सत्” मन्त्र निगम, आगम और सब तन्त्रोंमें सारका सार है ॥ १५९ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां भित्वा तालुशिरः शिखाः ।

प्रादुर्भूतोऽयमो तत्सत्सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ १६० ॥

अर्थ-सब तन्त्रोंसे अतिश्रेष्ठ “ओं तत्सत्” मन्त्र ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके ब्रह्मरंध्रको भेदकर उत्पन्न हुआ है १६०

चतुर्विधानामन्नानामन्येषामपि वस्तुनाम् ।

मन्त्रान्यैः शोधनेनालं स्याच्चेदेतेन शोधितम् ॥ १६१ ॥

अर्थ-जो “ओं तत्सत्” मन्त्रसे चर्व्य, चोप्य, भक्ष्य, लेह्य यह चार प्रकारके अन्न या और किसी वस्तुका शोधन किया जाय तो और किसी वैदिक या तांत्रिक मन्त्रसे शोधन करनेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ १६१ ॥

पश्यन्सर्वत्र सद्रूपं जपंस्तत्सन्महामनुम् ।

स्वेच्छाचारः शुद्धचित्तस्स एव भुविकौलराट् ॥ १६२ ॥

अर्थ-जो सदा सत्स्वरूप ब्रह्मको प्रत्यक्ष करता है, जो “ओं तत्सत्” इस महामन्त्रका जप करता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध होगया है और जो स्वेच्छाचारी है, वही पृथ्वीमें श्रेष्ठ कौल है ॥ १६२ ॥

जपादस्य भवेत्सिद्धो मुक्तः स्यादर्थचिन्तनात् ।

साक्षाद्ब्रह्मसमो देही सार्थमेनं जपन्मनुम् ॥ १६३ ॥

त्रिपदोऽयं महामन्त्रः सर्वकारणकारणम् ।

साधनादस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयम् ॥ १६४ ॥

अर्थ—“ओं तत्सत्” मंत्रका जप करनेसे मनुष्य सिद्ध होजाताहै । इसके अर्थ (१) को विचारनेसे मुक्ति होजाती है जो अर्थ विचार कर इस महामंत्रका जप करता है, वह मनुष्य शरीरी होकरभी साक्षात् ब्रह्म होजाता है । यह त्रिपदयुक्त महामंत्र सब कारणोंका कारण है । इस मंत्रके सिद्ध करलेनेसे स्वयं मृत्युञ्जय हो जासक्ताहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

युग्मंयुग्मपदंवापिप्रत्येकपदमेववा ।

जप्त्वेतस्यमहेशानि ! साधकःसिद्धिभागभवेत् ॥ १६५ ॥

अर्थ—हे महेश्वरि ! इस त्रिपदमंत्रके दोदो पद अथवा एक २ पदका जप (२) करनेसे साधक सिद्ध होसक्ता है ॥ १६५ ॥

शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्मणः ।

नापिदैवेनवापिज्येणार्पकृत्येऽधिकारिता ॥ १६६ ॥

अर्थ—जो लोग शैवावधूतके संस्कारसे संस्कृत हुएहैं उनको और कोई काम्यकर्म नहीं रहता, इस कारण वह देव कर्ममें, आर्पकर्ममें या पितृकर्ममें अधिकारी नहीं हैं ॥ १६६ ॥

चतुर्णामवधूतानांतुरीयोहंसउच्यते ।

तयोन्येयोगभोगाव्यामुक्ताःसर्वेशिवोपमाः ॥ १६७ ॥

अर्थ—चारप्रकारके अवधूतोंमें चतुर्थ अर्थात् पूर्ण ब्रह्मावधूतको हंस कहाजाता है और तीनप्रकारके अवधूत योग और भोग करते हैं, परंतु सबही अर्थात् चारप्रकारके अवधूतही मुक्त और शिवकी समान हैं ॥ १६७ ॥

हंसो न कुर्व्यात्स्त्रीसङ्गं न वाधातुपरिग्रहम् ।

प्रारब्धमश्रन्विहरेन्निषेधविधिवर्जितः ॥ १६८ ॥

(१) “ओं तत्सत्” मंत्रका अर्थ—जिसमें सृष्टि स्थिति मलय होती है, वह परब्रह्मही नित्य है ।

(२) “ओं तत्सत्” । ओं तत् । ओ सत् । (तत्सत्) ओं तत् । सत् । यह सात प्रकारके मंत्र होते हैं ।

निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरोमनुः ।

ओं तत्सदिति देवेशि ! तवाग्रेसत्यमीरितम् ॥ १५९ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैं तुम्हारे सन्मुख सत्यही सत्य कहता हूँ कि “ओं तत्सत्” मन्त्र निगम, आगम और सब तन्त्रों में सारका सार है ॥ १५९ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां भित्वा तालुशिरः शिखाः ।

प्रादुर्भूतोऽयमातत्सत्सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ १६० ॥

अर्थ-सब तन्त्रों से अतिश्रेष्ठ “ओं तत्सत्” मन्त्र ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी के ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर उत्पन्न हुआ है ॥ १६० ॥

चतुर्विधानामन्नानामन्येषामपि वस्तुनाम् ।

मन्त्रान्यैः शोधनेनालं स्याच्चेदेतेन शोधितम् ॥ १६१ ॥

अर्थ-जो “ओं तत्सत्” मन्त्र से चर्व्य, चोप्य, भक्ष्य, लेख्य यह चार प्रकार के अन्न या और किसी वस्तु का शोधन किया जाय तो और किसी वैदिक या तांत्रिक मन्त्र से शोधन करने की आवश्यकता नहीं होती ॥ १६१ ॥

पश्यन्सर्वत्र सद्रूपं जपंस्तत्सन्महामनुम् ।

स्वेच्छाचारः शुद्धचित्तस्तस्यैव भुविकौलराट् ॥ १६२ ॥

अर्थ-जो सदा सत्स्वरूप ब्रह्म को प्रत्यक्ष करता है, जो “ओं तत्सत्” इस महामन्त्र का जप करता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध होगया है और जो स्वेच्छाचारी है, वही पृथ्वी में श्रेष्ठ कौल है ॥ १६२ ॥

जपादस्य भवेत्सिद्धो मुक्तः स्यादर्थचिन्तनात् ।

साक्षाद्ब्रह्मसमो देही सार्थमेनं जपन्मनुम् ॥ १६३ ॥

त्रिपदोऽयं महामन्त्रः सर्वकारणकारणम् ।

साधनादस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयम् ॥ १६४ ॥

अर्थ—“ओं तत्सत्” मंत्रका जप करनेसे मनुष्य सिद्ध होजाताहै । इसके अर्थ (१) को विचारनेसे मुक्ति होजाती है जो अर्थ विचार कर इस महामंत्रका जप करता है, वह मनुष्य शरीरी होकरभी साक्षात् ब्रह्म होजाता है । यह त्रिपदयुक्त महामंत्र सब कारणोंका कारण है । इस मंत्रके सिद्ध करलेनेसे स्वयं मृत्युञ्जय हो जासکتाहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

युग्मंयुग्मपदंवापिप्रत्येकपदमेववा ।

जप्तैतस्यमहेशानि । साधकःसिद्धिभागभवेत् ॥ १६५ ॥

अर्थ—हे महेश्वर ! इस त्रिपदमंत्रके दोदो पद अथवा एक २ पदका जप (२) करनेसे साधक सिद्ध होसکتा है ॥ १६५ ॥

शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्मणः ।

नापिदैवेनवापित्र्येणार्पकृत्येऽधिकारिता ॥ १६६ ॥

अर्थ—जो लोग शैवावधूतके संस्कारसे संस्कृत हुएहैं उनको और कोई काम्यकर्म नहीं रहता, इस कारण वह देव कर्ममें, आर्पकर्ममें या पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है ॥ १६६ ॥

चतुर्णामवधूतानांतुरीयोहंसउच्यते ।

तयोन्येयोगभोगाढ्यामुक्ताःसर्वेशिवोपमाः ॥ १६७ ॥

अर्थ—चारप्रकारके अवधूतोंमें चतुर्थ अर्थात् पूर्ण ब्रह्मावधूतको हंस कहाजाता है और तीनप्रकारके अवधूत योग और भोग करते हैं, परंतु सबही अर्थात् चारप्रकारके अवधूतही मुक्त और शिवकी समान हैं ॥ १६७ ॥

हंसोनकुर्यात्स्त्रीसङ्गंनवाधातुपरिग्रहम् ।

प्रारब्धमश्रन्विहरेन्निपेधविधिवर्जितः ॥ १६८ ॥

(१) “ओं तत्सत्” मंत्रका अर्थ —जिसमे सृष्टि स्थिति मलय होती है, वह परब्रह्मही नित्य है ।

(२) “ओं तत्सत् । ओतत् । ओसत् । तत्सत् । ओ तत् । सत्” । यह सात प्रकारके मंत्र होते हैं ।

अर्थ-हंस अर्थात् पूर्ण ब्राह्मावधूत स्त्रीसंसर्ग या धातु (रूपया, पैसा) ग्रहण नहीं करसक्ता वह विधिनिषेधरहित हो प्रारब्ध भोग करके विहार करेगा ॥ १६८ ॥

त्यजेत्स्वजातिचिह्नानिकर्माणिगृहमेधिनाम् ।

तुरीयोविचरेत्क्षोणीनिःसङ्कल्पोनिरुद्यमः ॥ १६९ ॥

अर्थ-यह तुरीय परमहंस अपनी जातिके चिह्न, शिखा, सूत्र, तिलक आदि त्याग करदे, वह गृहस्थके कर्म भी न करे । वोह संकल्परहित और उद्यमरहित होकर पृथ्वीपर विचरण करे ॥ १६९ ॥

सदात्मभावसन्तुष्टः शोकमोहविवर्जितः ।

निर्विकेतस्तिक्षुः स्यान्निःशङ्कोनिरुपद्रवः ॥ १७० ॥

अर्थ-वह सदा आत्माके विचारमें संतुष्ट रहे । वह शोक और मोहसे न घिरे, वह किसी नियत स्थानमें न रहे । वह सहनशील, शंकारहित निरुपद्रव होवे ॥ १७० ॥

नार्पणंभक्ष्यपेयानान्तस्यध्यानधारणाः ।

मुक्तोविरक्तोनिर्द्वन्द्वोहंसाचारपरोयतिः ॥ १७१ ॥

अर्थ-वह खाने पानेका पदार्थ किसीमें अर्पण न करे । उसको न ध्यान है न धारणा है । वह मुक्त, विरागयुक्त निर्द्वन्द्व, हंसाचारपरायण और यति होवे ॥ १७१ ॥

इतितेकथितंदेवि ! चतुर्णांकुलयोगिनाम् ।

लक्षणंसविशेषेणसाधूनामत्स्वरूपिणाम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-हे देवि ! यह तुमसे चारप्रकारके कुलयोगियोंके लक्षण भलीभाँतिसे वर्णन किये । यह सबही साधु और सत्स्वरूप हैं ॥ १७२ ॥

एतेपाददर्शनस्पर्शादालापात्परितोषणात् ।

सर्वतीर्थफलावाप्तिर्जायतेमनुजन्मनाम् ॥ १७३ ॥

अर्थ-इन कुलयोगियोंका दर्शन करनेसे, स्पर्श करनेसे, इनके

साथ बातचीत करनेसे वा इनको सन्तुष्ट करनेसे मनुष्योंको सर्व तीर्थोंके दर्शनका फल मिलता है ॥ १७३ ॥

पृथिव्यांयानितीर्थानिपुण्यक्षेत्राणियानिच ।

कुलसंन्यासिनादिहेसन्तितानिसदाप्रिये ॥ १७४ ॥

अर्थ—हे प्रिये ! पृथ्वीमें जितने तीर्थ और पुण्यक्षेत्र हैं, कुलसंन्यासियोंकी देहमें वह सब विद्यमान हैं ॥ १७४ ॥

तेधन्यास्तेकृतार्थाश्चतेपुण्यास्तेकृताध्वराः ।

यैरर्चिताःकुलद्रव्यैर्मानवैःकुलसाधवः ॥ १७५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुलसाधकोंको कुलद्रव्यसे पूजते हैं, वही धन्य, वही कृतार्थ, वही पवित्र और वही सर्व यज्ञोंके फलके भागी होते हैं ॥ १७५ ॥

अशुचिर्यातिशुचितामस्पृश्यः स्पृश्यतामियात् ।

अभक्ष्यमपिभक्ष्यस्याद्येपांसंस्पर्शमात्रतः ॥ १७६ ॥

अर्थ—कुलयोगियोंके स्पर्श करनेसे अपवित्र पुरुषभी पवित्र होता है न छूने योग्य भी छूनेयोग्य होता है, न खानेयोग्य वस्तु भी खानेयोग्य होती है ॥ १७६ ॥

किराताःपापिनःक्रूराःपुलिन्दायवनाःखसाः ।

शुद्ध्यन्तिरेपांसंस्पर्शान्निनाकोऽन्यमर्चयेत् १७७

अर्थ—जिस कुलयोगीके स्पर्शसे किरात, पापी, क्रूर, पुलिन्द (एक प्रकारका चांडाल) यवन, खस भी शुद्ध होजाते हैं, उसको छोड़कर और किसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये १७७

कुलतत्त्वैःकुलद्रव्यैःकौलिकान्कुलयोगिनः ।

येर्चयन्तिसकृद्भक्त्यातेऽपिपूज्यामहीतले ॥ १७८ ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुलयोगियोंको और कौलियोंको कुलतत्त्वसे और कुलद्रव्यसे केवल एकबार भी भक्तिपूर्वक पूजेंगे वहभी पृथ्वीमें पूज्य होंगे ॥ १७८ ॥

कौलधर्मात्परोधर्मोनास्त्येवकमलानने ।।

अन्त्यजोऽपियमाश्रित्यपूतःकौलपदं व्रजेत् ॥ १७९ ॥

अर्थ-हे कमलानने ! कौलधर्मसे परमश्रेष्ठ दूसरा और कोई धर्म नहीं है क्योंकि अन्त्यज पुरुषभी इस धर्मके आश्रयसे पवित्र होकर कौलपदको प्राप्त होता है ॥ १७९ ॥

करिषादेविलीयन्तेसर्वप्राणिपदायथा ।

कुलधर्मेनिमज्जन्तिसर्वधर्मास्तथाप्रिये ! ॥ १८० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जैसे समस्त प्राणियोंके चरणचिह्न हाथीके चरणचिह्नमें लीन होजाते हैं, वैसेही सब धर्म कुलधर्ममें लीन होजाते हैं ॥ १८० ॥

अहोपुण्यतमाःकौलास्तीर्थरूपाःस्वयंप्रिये ।।

येपुनन्त्यात्मसम्बन्धान्म्लेच्छश्वपचपामरान् ॥ १८१ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! स्वयं तीर्थस्वरूप कौलगण कैसे अतिपवित्र हैं । वह अपने सम्बन्धसे म्लेच्छ, श्वपच और पामरोंको भी पवित्र करते हैं ॥ १८१ ॥

गङ्गायांपतिताम्भांसियान्तिगंगेयतांयथा ।

कुलाचारेविशन्तोऽपिसर्वेगच्छन्तिकौलताम् ॥ १८२ ॥

अर्थ-जैसे गंगामें गिरकर कुएका जलभी गंगाजलरूप होजाता है, वैसेही कुलाचारोंमें प्रवेश कियेहुए सब जातिके मनुष्य भी कौल होजाते हैं ॥ १८२ ॥

यथार्णवगतंवारिनपृथग्भावमाप्नुयात् ।

तथाकुलाम्बुधौमग्नानभवेयुर्जनाःपृथक् ॥ १८३ ॥

अर्थ-जैसे समुद्रमें गया हुआ जल पृथक्भावको नहीं प्राप्त होता तैसेही कुलसागरमें मग्न हुआ कोई पुरुष भी पृथक् नहीं होसक्ता ॥ १८३ ॥

विप्राद्यन्त्यजपर्यन्ताद्विपदायेऽब्रभूतले ।

तेसर्वेऽस्मिन्कुलाचारेभवेयुरधिकारिणः ॥ १८४ ॥

अर्थ—इस पृथ्वीमें ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजतक जितने प्रकारके दोषाये जन्तु हैं, वह सबही इस कुलाचारमें अधिकारी होसक्ते हैं ॥ १८४ ॥

आहूताःकुलधर्मेऽस्मिन्येभवन्तिपराङ्मुखाः ।

सर्वधर्मपरिभ्रष्टास्तेगच्छन्त्यधमांगतिम् ॥ १८५ ॥

अर्थ—जो कुलधर्ममें आहुति देकर विमुख होजाते हैं, वह सब धर्मसे भ्रष्ट होकर अधमगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ १८५ ॥

प्रार्थयन्तिकुलाचारंयेकेचिदपिमानवाः ।

तान्वञ्चयन्कुलीनोऽपिरौरवन्तरकं व्रजेत् ॥ १८६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुलाचारकी प्रार्थना करे और उनको कोई कौल बंधना करे तो वह कौल रौरवन्तरकमें जायगा ॥ १८६ ॥

चाण्डालंयवनं नीचं मत्वास्त्रियमवज्ञया ।

कौलं न कुर्यादधः कौलः सोऽधमो यात्यधोगतिम् १८७

अर्थ—जो कोई कौलपुरुष किसी कौलधर्मके चाहनेवाले को स्त्री, नीच, चाण्डाल वा यवन समझ निरादर करके कौल नहीं करेगा वह कौललोगोंमें अधम है और अंत-कालमें उसको नीचगति प्राप्त होती है ॥ १८७ ॥

शताभिषेकाद्यत्पुण्यं पुरश्चर्य शतैरपि ।

तस्मात्कोटिगुणं पुण्यमेकस्मिन्कौलिके कृते ॥ १८८ ॥

अर्थ—शत अभिषेकसे जो पुण्य मिलना है. शत पुरश्चरण करनेसे जो पुण्य होता है एक कौलके करनेसे उससे कोटि-गुण पुण्य होता है ॥ १८८ ॥

येयवर्णाः क्षितौ सन्ति यद्यधर्ममुपाश्रिताः ।

कौला भवन्तस्ते पाशैर्मुक्तायान्ति परंपदम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-पृथ्वीमें जितने वर्ण हैं और जितने प्रकारके धर्मावलम्बी पुरुष हैं. उनमें जो कौल होगा वह कर्मकी फाँसीसे छूटकर परमपदको प्राप्त कर सकेगा ॥ १८९ ॥

शैवधर्माश्रिताःकौलास्तोर्थरूपाःशिवात्मकाः ।

स्नेहेनश्रद्धयाप्रेम्णापूज्यामान्याःपरस्परम् ॥ १९० ॥

अर्थ-शिवके धर्मका अवलम्बन करनेवाले कौल साक्षात् शिवस्वरूप और तीर्थस्वरूप हैं । स्नेह, श्रद्धा और प्रेमसे जोह परस्पर एक दूसरेकी पूजा और सन्मान करे ॥ १९० ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतवाप्रेसत्यमुच्यते ।

भवाच्चितरणेसेतुःकुलधर्मोहिनापरः ॥ १९१ ॥

अर्थ-मैं अब अधिक क्या कहूँ, तुमसे सत्य कहता हूँ कि, इस संसारसागरसे पार होनेके लिये एक धर्मही पुल है । इसके सिवाय और कोई संसारसागरसे पार होनेका उपाय नहीं है ॥ १९१ ॥

छिद्यन्तेसंशयाःसर्वेक्षीयन्तेपापसञ्चयाः ।

दह्यन्तेकर्मजालानिकुलधर्मनिपेवणात् ॥ १९२ ॥

अर्थ-कुलधर्मका सेवन करनेसे सब संशय नाशको प्राप्त होजाते हैं सारे पापपुंज क्षय होकर कर्मसमूहभी नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १९२ ॥

सत्यव्रताब्रह्मनिष्ठाःकृपयाहूयमानवान् ।

पावयन्तिकुलाचारैस्तेज्ञेयाःकौलिकोत्तमाः ॥ १९३ ॥

अर्थ-सत्यव्रत और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि, कृपाके वश हो कुलाचारसे मनुष्योंको बुलाकर पवित्र करें । इन सब महात्माओंको कौलिकश्रेष्ठ कहा जाता है ॥ १९३ ॥

इतितेकथितेदेवि ! सर्वकर्मविनिर्णयम् ।

महानिर्वाणतन्त्रस्यपूर्वाद्धैलोकपावनम् ॥ १९४ ॥

अर्थ-हे देवि ! यह मैंने तुमसे लोकपावन सर्व धर्मको निर्णय करनेवाले महानिर्वाणतंत्रका पूर्वाह्न कहा ॥ १९४ ॥

यददंशृणुयान्नित्यंश्रावयेद्वापिमानवान् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तःसोऽन्तेनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ १९५ ॥

अर्थ-जो सदा इसको श्रवण करेगा अथवा मनुष्योंको सुनावेगा, वह सब पापोंसे छूटकर अंतमें मोक्षको प्राप्त करेगा ॥ १९५ ॥

सर्वागमानांतन्त्राणांसारत्सारंपरात्परम् ।

तन्त्रराजमिदंज्ञात्वाजायतेसर्वशास्त्रवित् ॥ १९६ ॥

अर्थ-समस्त आगम और समस्त तंत्रोंमें परात्पर और सारा-सार इस तंत्रराजके जाननेसे सब शास्त्रज्ञ हुआ जासکتा है ॥ १९६ ॥

किन्तस्यतीर्थभ्रमणैःकिंयज्ञैर्जपसाधनैः ।

जानत्रेतन्महातन्त्रंकर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ १९७ ॥

अर्थ-महानिर्वाणतंत्रके जाननेवालेको तीर्थमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, वह केवल महानिर्वाणतंत्रके ज्ञान करके कर्मकी फाँसीसे छूट सक्ता है ॥ १९७ ॥

सविज्ञःसर्वशास्त्रेषुसर्वधर्मविदांवरः ।

सज्ञानी ब्रह्मवित्साधुर्यत्नतद्वेत्तिकालिके ॥ १९८ ॥

अर्थ-हे कालिके ! महानिर्वाणतंत्रका जाननेवाला, सर्व शास्त्रमें विज्ञानी और सब धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ है, वही साधू वही ज्ञानी और वही ब्रह्मज्ञानी है ॥ १९८ ॥

अलंवेदैःपुराणैश्चस्मृतिभिःसंहितादिभिः ।

किमन्यैर्बहुभिस्तन्त्रैर्ज्ञात्वेदंसर्वविद्वेत् ॥ १९९ ॥

अर्थ-वेद, पुराण, स्मृति, संहिता और बहुतसे तंत्र जाननेकी क्या आवश्यकता है केवल इस महानिर्वाण तंत्रकेही ज्ञान लेनेसे सर्वज्ञ हुआ जा सक्ता है ॥ १९९ ॥

आसीद्ब्रह्मतमंयन्मेसाधनंज्ञानमुत्तमम् ।

तवप्रश्नेनतन्त्रेऽस्मिस्तत्सर्वसुप्रकाशितम् ॥ २०० ॥

अर्थ-जो कि, साधन और उत्तम ज्ञान अत्यंत गुप्त थे, तुम्हारे प्रश्नके अनुसार उन सबको इस महानिर्वाणतन्त्रमें प्रकाश किया ॥ २०० ॥

यथात्वंब्रह्मणःशक्तिर्ममप्राणाधिकापरा ।

महानिर्वाणतन्त्रमेतथाजानीहिसुव्रते । ॥ २०१ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! तुम जैसे ब्रह्मशक्ति और हमारी परम प्यारी हो, वैसेही इस महानिर्वाणतन्त्रकोभी जानो ॥ २०१ ॥

यथानगेषुहिमवांस्तारकासुयथाशशी ।

भास्वांस्तेजःसुतन्त्रेषुतन्त्रगजमिदंतथा ॥ २०२ ॥

अर्थ-जैसे पर्वतोंमें हिमालय, नक्षत्रोंमें चंद्रमा, तेज पदार्थोंमें सूर्य श्रेष्ठ है, वैसेही सबतन्त्रोंमें यह तन्त्रराज श्रेष्ठ है ॥ २०२ ॥

सर्वधर्ममयंतं ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।

पठित्वापाठयित्वापित्रह्मज्ञानीभवेन्नरः ॥ २०३ ॥

अर्थ-यह तन्त्र सर्वधर्ममय और ब्रह्मज्ञानका एकही साधन है इसको पढ़ने पढ़ानेवाला ब्रह्मज्ञानी हो जायगा ॥ २०३ ॥

विद्यतेयस्यभवनेसर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ।

नतस्यवंशेदेवेति । पशुर्भवतिकर्हिचित् ॥ २०४ ॥

अर्थ-हे देवि ! सब तन्त्रोंमें श्रेष्ठ यह तन्त्र जिसके घरमें रक्खा होगा उसके वंशमें कभी कोई पशु न होगा ॥ २०४ ॥

अज्ञानतिमिरान्धोऽपिमूर्खःकर्मजडोपिवा ।

शृण्वन्नेतन्महातन्त्रंकर्मवन्धाद्विमुच्यते ॥ २०५ ॥

अर्थ-अज्ञानके अन्धकारसे अन्धाहुआ मूर्ख और कर्मसिद्ध

करनेमें जड पुरुषभी जो इस महानिर्वाण नामक महानिर्वाण-
तन्त्रको श्रवण करे तो वह कर्मकी फाँसीसे छूट जाता है २०५

एतत्तन्त्रस्य पठनं श्रवणं पूजनं तथा ।

वन्दनं परमेशानि ! नृणां कैवल्यदायकम् ॥ २०६ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! इस महातन्त्रके पाठ करने या श्रवण
करनेसे, पूजा या वन्दन करनेसे मनुष्यको कैवल्यकी प्राप्ति
होती है ॥ २०६ ॥

उक्तं बहुविधं तन्त्रमेकैकारख्यानसंयुतम् ।

सर्वधर्मान्वितं तन्त्रं नातः परतरं क्वचित् ॥ २०७ ॥

अर्थ—एक २ आख्यानके साथ बहुतसे तन्त्र कहे हैं तिन सबमें
सब धर्मोंका वर्णन है परन्तु इससे श्रेष्ठ और तन्त्र नहीं है २०७

पातालचक्रभूचक्रज्योतिश्चक्रसमन्वितम् ।

परार्द्धमस्य यो वेत्ति स सर्वज्ञो न संशयः ॥ २०८ ॥

अर्थ—इस महानिर्वाणतन्त्रके उत्तरार्द्धमें पातालचक्र, भूचक्र
और ज्योतिश्चक्र है, जो उस उत्तरार्द्धको जानता है, वह
निःसन्देह सर्वज्ञ हो जाता है ॥ २०८ ॥

परार्द्धसहितं ग्रन्थमेनं जानन्नरो भवेत् ।

त्रिकालवार्त्ता त्रिलोक्यवृत्तान्तं कथितुं क्षमः ॥ २०९ ॥

अर्थ—जो परार्द्धके साथ इस महानिर्वाणतन्त्रको जानते हैं
वह त्रिकालवार्त्ता और त्रिलोकीका वृत्तान्त वर्णन करनेमें
समर्थ होते हैं ॥ २०९ ॥

सन्ति तन्त्राणि बहुधा शास्त्राणि विविधान्यपि ।

महानिर्वाणतन्त्रस्य कलानां हन्ति षोडशीम् ॥ २१० ॥

अर्थ—अनेकप्रकारके तन्त्र हैं बहुत शास्त्रभी हैं परन्तु
कोई शास्त्र या कोई तन्त्र इस महानिर्वाणतन्त्रके सोलहवें
अंशके एकांशकीभी बराबर नहीं होसक्ता ॥ २१० ॥

महानिर्वाणतन्त्रस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।

विदित्वैतन्महातन्त्रं ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्ण-
यसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पूर्वकाण्डे शिवलि-
ङ्गस्थापनचतुर्विधावधूतविवरणकथनं नाम

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अर्थ-मैं इस महानिर्वाणतन्त्रका माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन
करूँ इस महानिर्वाणतन्त्रके जानलेनेसे ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त
होता है ॥ २११ ॥

• दोहा-ब्रह्ममिलावनहार यह, अनुपम तन्त्रमहान् ॥

पढ़त सुनत समुझत गुनत, देत सुभगनिर्वाण ॥

इक इक अक्षर ब्रह्मसम, पढ़ै जो चित्तलगाय ॥

साक्षात् हरिरूपवन, सो सुरलोक सिधाय ॥

जगहितकारण उमासों, वरणों तन्त्रमहेश ॥

याकी महिमा कहनको, शक्ति नराखे शेष ॥

सो मैं प्राकृतविच कियो, सबतन्त्रनको सार ॥

याहूँके पढ़िवें सुनै, है है जगउपकार ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यास-

दाशिवसंवादे पूर्वकाण्डे शिवलिङ्गस्थापनचतुर्विधावधूतविवरणकथननाम,

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना -

खेमराज श्रीकृष्णदास,

श्रीवेङ्कटेश्वर स्टोम् प्रेस, खेतवाडी-मुंबई.

